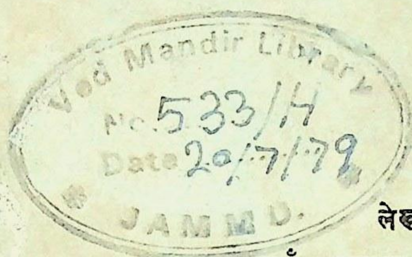
महाभारत

(सुरुचिपूर्ण, एतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक चारित्रिक व प्रेरक कथाओं की अमूल्य कृति)



लेखक।

डॉ० चमन लाल गौतम

पूर्व सम्पानक। "युग-सस्कृति", "जीवन-यज्ञ"

रचयिता : मंत्र महाविज्ञान, उपासना महाविज्ञान, वैदिक मंत्र विद्या, मंत्र योग, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, ओंकार सिद्धि, भागवत सप्ताह कथा, देव रहस्य, विष्णु रहस्य, शिव रहस्य, मंत्र शक्ति से रोग निवारण-विपत्ति निवारण कामना सिद्धि, तंत्र विज्ञान, तंत्र रहस्य, तंत्र महाविद्या, तंत्र महासिद्धि।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर), बरेली-२४३००१ (उ. प्र.)

महाभारत

(सुरुचिपूर्ण एतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक, चारित्रिक व प्रेरक कथाओं की अमूल्य कृति)



※

लेखक—

डा. चमनलाल गौतम

पूर्व सम्पादक—जीवनयज्ञ और युग संस्कृति

रचयिता—मंत्र महाविज्ञान, तन्त्र महाविज्ञान, उपासना महा-विज्ञान, मंत्रयोग, वैदिक मंत्र विद्या, ऊँकार सिद्धि, मंत्र शक्ति से रोग निवारण—विपत्ति निवारण-कामना सिद्धि, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग इत्यादि ।

※

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :

डा. चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली,

※

लेखक :

डा. चमनलाल गौतम

※

प्रथम बार
सन् १९७३

※

※

मुद्रक :
विश्व भारती प्रेस.
मथुरा

※

मूल्य : आठ रुपये

दो शब्द

महाभारत ग्रन्थ की रचना महर्षि वेदव्यासजी ने की थी। उन्होंने जो अठारह पुराणों का सृजन किया था, उनसे भी ऊपर इस महापुराण को रखा गया। क्योंकि श्री वेदव्यासजी की यह घोषणा थी कि तराज़ू के एक पलड़े में सम्पूर्ण पुराण, संपूर्ण इतिहास और यहाँ तक कि सम्पूर्ण धर्मशास्त्रों को रख दें और दूसरे पलड़े में इस ग्रन्थ को, तो इसी का पलड़ा भारी बैठेगा।

महाभारत शब्द में महत्तत्व और भारत्व निहित है। यह भरतवंशीय राजाओं के चरित्रों से ओत-प्रोत होने के कारण भी महाभारत कहा गया। इसकी विशेषता इसी से समझी जाती है कि इसे व्यासजी ने तीन वर्षों में लिख कर पूर्ण किया था। इस इतिहास का कितना धार्मिक महत्व है, उससे कम महत्व सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी नहीं समझना चाहिए।

भारत की ही नहीं, संसारभर की प्राचीन संस्कृति की झलक इसमें मिलती है। उस समय का रहन-सहन, गृहस्थजीवन और लोकाचार सभी का पूर्ण ज्ञान इसमें कूट-कूट कर भरा है, जो उस समय के मनुष्यों के लिए ही नहीं, वरन् आज के मानव के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। क्योंकि उस समयके अध्यात्मवाद की ओर आज का भौतिकवाद भी तेजी से बढ़ रहा है और संभवतः वह दिन दूर नहीं, जब मानव उसी अध्यात्मवाद में सुख शान्ति का अनुभव करेगा। हमें विश्वास है कि इस दृष्टि से भी हमारा, यह संस्करण पाठकों को अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

——प्रकाशक

विषय सूची

डसना, ऋतुपर्ण का नल को अक्षविद्या सिखाना, नलोपाख्यान का समापन, पाण्डवों का काम्यकवन-त्याग, अगस्त्य द्वारा वातापि दैत्य का नाश, अगस्त्य का समुद्र को पी जाना, परशुराम चरित्र वर्णन, च्यवन-सुकन्या-विवाह वर्णन, राजा मान्धाता का वृत्तान्त, अष्टावक्र का वृत्तान्त वर्णन, भीमसेन-हनुमान सम्वाद, भीम का यक्ष, राक्षसों से युद्ध, अजगर द्वारा भीमसेन का जकड़ा जाना, मार्कण्डेयजी द्वारा मनुचरित्र वर्णन, धुन्धुमार का चरित्र, धर्म व्याध का वृत्तान्त, चित्रसेन का दुर्योधनादि को पकड़ना, दुर्योधन का प्रायोपवेशन करना, पाण्डवों का काम्यकवन में निवास, कृष्ण-कृपा से दुर्वासा की तृप्ति, पाण्डवों का जयद्रथ को हराना, रामचरित्र, सीता की खोज वर्णन, रावण वध, राम को राज्य-प्राप्ति, सावित्री-सत्यवान का वृत्तान्त, कर्ण का इन्द्र को कवच-कुण्डल-प्रदान, चार पाण्डवों का मर कर जीवित होना ।

पाण्डवों की विराट के यहाँ नियुक्ति, कीचक वध वर्णन, भीम से सुशर्मा का पराजित होना, कौरवों से युद्ध में अर्जुन की विजय, पाण्डवों का प्रकट होना ।

युद्ध की तैयारी, त्रिशिरा एवं वृत्रासुर वध वर्णन, नहुष का स्वर्ग से उतरना, शान्ति-स्थापन के प्रयास, युद्ध न करने का दुर्योधन को उपदेश, दूत बन कर श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर गमन, हस्तिनापुर में विदुर का आतिथ्य ग्रहण, परशुराम और कण्व का दुर्योधन को समझाना, गालव और ययाति का उपाख्यान, श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का षड्यन्त्र, कुन्ती का कर्ण से मिलना, पाण्डव-सेना का कुरुक्षेत्र प्रस्थान, कौरवों का कुरुक्षेत्र पहुँचना, बलराम और रुक्मी का तीर्थयात्रा में जाना, दोनों पक्ष के रथी, अतिरथी का वर्णन, भीष्म-परशुराम युद्ध वर्णन ।

महाभारत

आदि पर्व

उत्तङ्क ऋषि का तक्षक पर कोप

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।

एक समय नैमिषारण्य में सूत-पुत्र उग्रश्रवा शौनक ऋषि के यज्ञमण्डप में समागत हुए । सूतजी को देख कर सब ऋषि पुराण कथाएँ सुनने की इच्छा से उनके चारों ओर बैठ गए । तब ऋषियों ने उनसे पूछा—हे सूतजी । आप कहाँ से आ रहे हैं ? सूतजी बोले–हे महर्षिगण ! राजाजनमेजय के सर्प यज्ञ में श्रीवेद व्यास ने महाभारत की पवित्र कथाएँ विस्तृत रूप से कही थीं । मैंने वे कथाएँ सुनीं थीं और फिर अनेक तीर्थों में घूमता हुआ आपके दर्शनों के निमित्त यहाँ चला आया हूँ । ऋषियों ने कहा-- हे सूतजी ! हमें महाभारत की वे ही पवित्र कथाएँ सुनाने की कृपा कीजिए ।

सूतजी बोले—सर्व प्रथम चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाले परब्रह्म को नमस्कार करके मैं महाभारत का पवित्र इतिहास कहता हूँ । पहिले यह विश्व घोर अन्धकार से ढका था, फिर सब का बीज स्वरूप एक अण्ड हुआ, जिसमें आदि-अन्त-रहित परब्रह्म प्रविष्ट हुए और फिर उसी अण्ड से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । फिर स्वायंभुव मनु, दस प्रचेता, दक्ष, दक्ष के सात

पुत्र और चौदह मनु हुए। तदनन्तर विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ और फिर दस विश्वेदेवा, द्वादश आदित्य, आठ बसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, साध्य, पिशाच, गुह्यक, पितर, ऋषि, मनुष्य और सम्वत्सरादि काल की उत्पत्ति हुई। यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रलय में नष्ट हो जायगी। एक बार लोक गुरु ब्रह्माजी व्यासजी के समीप पधारे और महाभारत ग्रन्थ को देख कर प्रसन्न होते हुए बोले—अब तुम इस ग्रन्थ का प्रारम्भ करने के लिए गणेशजी का स्मरण करो। तब व्यासजी ने गणेशजी से कहा—प्रभो ! इस ग्रन्थ को आप लिखें। गणेशजी बोले—अवश्य किन्तु मेरी कलम क्षणभर के लिए भी नहीं रूकनी चाहिए। तब व्यासजी बोले—किन्तु आप भी अर्थ ठीक समझ कर ही लिखना। इस प्रकार व्यासजी रचना करते और गणेशजी लिखते थे।

पूर्वकाल में व्यासजी ने अपनी माता सत्यवती की आज्ञा से विचित्रवीर्य की पत्नियों में तीन पुत्र उत्पन्न किये, उनके नाम धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर हुए। जब वे तीनों ही मर गये तब व्यासजी ने महाभारत ग्रन्थ प्रकट किया और राजा जनमेजय के सर्पयज्ञ में उसे वैशम्पायनजी द्वारा सुनवाया। उसे ही मैं आपको सुनाता हूँ। राजा पाण्डु ने अपने बाहुबल से राज्य की श्रीवृद्धि की। एक बार उन्होंने विहार-रत मृग को मार दिया तो मृगी ने शाप दिया कि जब तुम विहार-रत होगे, तभी मर जाओगे। कुन्ती ने धर्म, वायु और इन्द्र से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन उत्पन्न किये तथा अपनी सौत माद्री के अश्विद्वय से नकुल और सहदेव उत्पन्न कराये। इन्हीं युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था, जिसके कारण बड़े-बड़े योद्धा परास्त हो गए थे। पाण्डवों के बढ़ते हुए वैभव से दुर्योधन ईर्ष्या करने लगा। उसने पाँसों का खेल खेलने की योजना बनाई इसमें जो घोर अन्याय

हुआ, उससे श्रीकृष्ण को क्रोध तो बहुत आया पर चुप रहे आये। बस, उसी समय से कलह की नींव जम गई।

हे ऋषिगण ! महाभारत में बहुत-से पर्व हैं, वे सभी इन १८ प्रमुख पर्वों में आ जाते हैं—(१) आदिपर्व, (२) सभापर्व, (३) वनपर्व, (४) विराट्पर्व (५) उद्योगपर्व (६) भीष्मपर्व (७) द्रोणपर्व, (८) कर्णपर्व, (९) शल्यपर्व, (१०) सौप्तिकपर्व, (११) स्त्रीपर्व, (१२) शान्तिपर्व, (१३) अनुशासनपर्व, (१४) अश्वमेधपर्व, (१५) आश्रमवासिक पर्व, (१६) मौसलपर्व, (१७) महाप्रस्थानिक पर्व, और (१८) स्वर्गारोहण पर्व। अब इनमें वर्णित कथाओं को कहेंगे। परीक्षित के पुत्र जनमेजय अपने तीन भाइयों के साथ यज्ञ कर रहे थे, तभी एक कुत्ता यज्ञ-मंडप में आ घुसा। राजा के भाइयों ने उसे मारा तो वह रोता हुआ अपनी माता, देवताओं की कुतिया सरमा के पास पहुँचा। सरमा क्रोध में भर कर यज्ञ मंडप में आई और उसने शाप दिया कि तुम्हें भय की प्राप्ति होगी। तब यज्ञ पूर्ण होने पर राजा एक ऐसे पुरोहित की खोज करने लगे जो उस शाप से छुड़ा सके। एक दिन वे श्रुतश्रवा ऋषि के आश्रम में जाकर उनके पुत्र सोमश्रवा को ले आये। वे सब शापों को दूर करने में समर्थ थे। एक बार जनमेजय ने तक्षशिला पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया।

हे ऋषिगण ! धौम्य ऋषि के तीन शिष्य उपमन्यु, आरुणि और वेद नामक थे। उनमें से आरुणि, खेत के जल को बाहर न निकलने देने के लिए स्वयं ही आड़े होकर लेट गये, इससे गुरु ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सर्वसिद्धि और विद्या प्राप्ति का वर देकर उसका नाम उद्दालक रख दिया। तब वह किसी देश के लिए चला गया। इसी प्रकार धौम्य के दूसरे शिष्य उपमन्यु ने भी गुरु की प्रसन्नता प्राप्त कर ली और तीसरे शिष्य भी

गुरु-कृपा से सर्वज्ञता को प्राप्त होकर गृहस्थ बन गए। एक बार वेद ऋषि के शिष्य उत्तङ्क ने अपना अध्ययन पूर्ण कर जाते समय गुरु से निवेदन किया कि मैं क्या गुरुदक्षिणा दूँ तो उन्होंने कहा कि अपनी गुरुमाता से पूछो। उत्तङ्क ने उससे पूछा तो वह बोली कि मैं राजा पौष्य की रानी के कुण्डल चाहती हूँ। आज से चौथे दिन जो पुण्यकर्म का उत्सव है, उसमें पहनूँगी। तब उत्तक राजमार्ग पर चले, किन्तु मार्ग में एक महान् पुरुष के कहने से उन्हें बैल का गोबर खाना पड़ा। जब वे राजसभा में गये और राजा से अपना मन्तव्य कहा तो उसने कहा—भगवन् ! आप स्वयं अन्त:पुर में जाकर महारानी से माँग लीजिए। किन्तु अन्त:पुर में महारानी दिखाई न दीं तो उत्तङ्क ने महाराज से महारानी के न होने की बात बताई, इस पर महाराज ने कहा—अवश्य तुम्हारा मुख उच्छिष्ट होगा, पतिव्रता स्त्री झूठे मुख वाले को कैसे दिखाई दे सकती है ? तब उत्तङ्क ने तीन बार आचमन और मार्जनादि किया और अन्त:पुर में जाकर महारानी से कुण्डलों की प्राप्ति की। उस समय महारानी ने कहा कि सावधान रहना, तक्षक इन कुण्डलों की ताक में लगा रहता है।

तदनन्तर राजा षौष्य ने उत्तंक को भोजन कराया तो उसमें बाल निकल आये इससे क्रोधित हो उन्होंने राजा को अन्धे होने का शाप दिया। तब राजा ने भी शाप दे दिया कि तुमने अन्न को बिना देखे ही मुझे शाप दे दिया है, इसलिए तुम सन्तान-हीन रहोगे। किन्तु अपनी भूल ज्ञात होने पर राजा ने उनसे क्षमा-याचना की तो उत्तंक ने कहा कि तुम्हारी नेत्रहीनता शीघ्र दूर हो जायगी। वहाँ से चल कर उत्तंक एक सरोवर पर पहुँच कर स्नान करने लगे। उन्होंने कुण्डल तट पर ही रख दिये, तब साधु वेशधारी तक्षक उन्हें उठा कर भाग चला। यह देख कर उत्तंक ने दौड़ कर उसे पकड़ा तो वह अपने नागरूप में होकर

धरती में घुस गया। उत्तंक ने भी धरती खोद कर नागलोक में जाने की चेष्टा की और इन्द्र की परोक्ष कृपा से प्राप्त वज्र द्वारा उन्हें बिल को चौड़ा करने में सफलता मिल गई। नागलोक में पहुँच कर उन्होंने नागों की स्तुति की किन्तु कुछ फल नहीं निकला। तब उन्होंने इन्द्र की स्तुति की तो इन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा—देखो, इस अश्व के मलद्वार में मुख लगा कर फूंक मारो। वैसा करने पर अश्व के रोम छिद्रों से अग्नि की लपटें निकल कर नागलोक को भस्म करने लगीं, तब तक्षक ने उपस्थित होकर कुण्डल उन्हें दे दिये। फिर इन्द्र ने उन्हें उसी अश्व पर चढ़ने का आदेश दिया तो वे उस पर बैठ कर शीघ्र ही गुरु के घर में जा पहुँचे और कुण्डल गुरुमाता के समक्ष रख दिये। इससे प्रसन्न हुए गुरु ने कहा कि इन्द्र मेरे मित्र हैं, उन्होंने तुम्हें बड़ी सहायता दी है। मार्ग में उन्होंने तुम्हें गोबर रूप अमृत खिलाया था, जिससे तुम नागलोक में सकुशल रह सको। अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा।

उत्तंक वहाँ से चल दिये। उनके मन में तक्षक के कार्य से अत्यन्त रोष था, इसलिए वे हस्थिनापुर में जाकर राजा जनमेजय से बोले—हे राजन्! तक्षक ने आपके पिता को डस लिया था, आपको उससे प्रतिशोध लेना चाहिए। उस पाप नाग की आहुति देकर पिता का बदला चुकाने के लिए सर्पयज्ञ कीजिए। यह सुन कर राजा अधीर हो उठे, उन्होंने सर्पयज्ञ के आयोजन का मन्त्रियों को आदेश दे दिया।

रुरु-प्रमद्वारा का वृत्तान्त

सूतजी बोले—हे ऋषिगण! अब पहिले भृगुवंश का वर्णन करता हूँ। ब्रह्मा से भृगु, भृगु से च्यवन, च्यवन से प्रमति, प्रमति से रुरु और रुरु से महर्षि शुनक उत्पन्न हुए। तभी शौनक ने पूछा कि च्यवन ऋषि का नाम किस कारण पड़ा? उग्रश्रवा

सूत ने कहा—एक बार भृगु-पत्नी पुलोमा गर्भवती थी, तभी पुलोमा नाम का ही राक्षस भृगु की अनुपस्थिति में आश्रम में घुस आया और कामातुर हो उसका अपहरण करने लगा। उस राक्षस ने इस सुन्दरी के पिता से इसे अपने लिये माँगा था, किन्तु उसने भृगु के साथ इसका विवाह कर दिया। राक्षस उसे ले जाने लगा वैसे ही उसकी दृष्टि प्रज्वलित यज्ञाग्नि पर पड़ी तो उसने अग्नि से पूछा—हे अग्ने! यह भृगु की पत्नी पुलोमा ही है न! मेरे द्वारा याचिता इस स्त्री से भृगु ने विवाह कर लिया तभी से मेरा हृदय धधक रहा है। तुम देवताओं के मुख हो, शीघ्र ही उत्तर दो। अग्नि से बार-बार पूछने पर उसने उत्तर दिया—हाँ, इसे तुमने माँगा था, किन्तु भृगु के साथ विधिवत विवाह होने के कारण यह उन्हीं की पत्नी है। यह सुन कर वह राक्षस शूकर का रूप रख कर उसे लिये हुए द्रुतगति से भागा, किन्तु स्त्री का गर्भ उस दुराचार को सहन न कर माता की कोख से बाहर आ गिरा। गिरने के कारण ही उसका नाम च्यवन हुआ, जिसे देख कर राक्षस भृगुपत्नी को वहीं छोड़ कर भाग गया। तब रोती हुई पुलोमा पुत्र को गोद में लेकर अपने आश्रम में लौटी और ऋषि को सब समाचार बताया। तब ऋषि ने क्रोधपूर्वक अग्नि को शाप दिया कि तूने पुलोमा का मेरी स्त्री बता कर बुरा कार्य किया है, इसलिए तू सर्वभक्षी हो जायगा।

इस पर अग्नि ने कहा—मैं मिथ्या नहीं कह सकता था। इसलिए पूछने पर सत्य कहना पड़ा। मैं देवताओं और पितरों का मुख हूँ, मुझ में जो हवन किया जाता है, उससे वे दोनों ही तृप्त होते हैं। तब सर्वभक्षी कैसे हो जाऊँगा? यह कह कर अग्नि ने अपने को अग्निहोत्र और यज्ञादि कर्म से पृथक् कर लिया, तब तो सब कृत्य रुक गये। तब सम्पूर्ण प्रजा, ऋषि, देवता, पितर आदि दुःखित होगए। यह देख कर ब्रह्माजी ने अग्नि को बुला कर समझाया—हे अग्ने! ऐसा कार्य करो, जिससे कर्मकाण्ड

का लोप न हो जाय । तुम सदैव पवित्र हो और रहोगे । तुम्हारा अनान देश की ज्वालाएँ और माँसभक्षी अंश ही सर्वभक्षक रहेगा । इसलिए ऋषि-शाप सत्य करते हुए भी देवताओं और पितरों का मुख पूर्ववत रहते हुए ही हव्य ग्रहण करते रहो । ब्रह्माजी की आज्ञा मान कर अग्नि पुनः संसार में प्रकट होगए । इससे सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्नता हुई ।

अब च्यवन के पौत्र महर्षि रुरु का चरित्र कहता हूँ । गन्धर्व-राज विस्वावसु से उत्पन्न पुत्री को मेनका नाम की अप्सरा स्थूलकेश ऋषि के आश्रम के समीप छोड़ कर चली गई थी । उस कन्या को उठा कर स्थूलकेश अपने आश्रम में ले आये और दिन-दिन बढ़ती हुई उस कन्या का नाम उन्होंने प्रमद्वरा रखा । महात्मा रुरु उस पर मोहित होगए तो ऋषि ने उसे उन्हें देना स्वीकार कर लिया । किन्तु, इसी मध्य प्रमद्वरा को सर्प ने काट खाया, जिससे वह मर गई । यह देख कर सब ऋषि रोने लगे । उसके वियोग में विलाप करते हुए रुरु एक घने वन में चले गए । तब देवदूत ने आकर कहा कि इतना प्रेम है तो उसे अपनी आधी आयु दे दो । यह सुन कर रुरु ने तुरन्त अपनी आधी आयु देने का संकल्प किया तो प्रमद्वरा जीवित होगई और उसका विवाह रुरु के साथ हो गया । किन्तु रुरु ने सर्पों को मारने का व्रत ले लिया । एक बार एक डुण्डुभ सर्प को देखकर ज्योंही उसे मारने लगे, त्योंही सर्प ने कहा कि मुझ निरपराध को क्यों मारते हो ? रुरु ने कहा-मेरी स्त्री को सर्प ने डस लिया था, इसीलिए मैं किसी भी सर्प को नहीं छोड़ता हूँ । तब डुण्डुभ ने कहा---मनुष्यों को काटने वाले सर्प दूसरे हैं, हम मनुष्यों को कभी नहीं काटते । इसलिए हमारी हत्या न कीजिए । तब रुरु ने उसे नहीं मारा और उसका वृत्तान्त जानना चाहा तब वह सर्प बोला---हे ऋषि ! मैं पूर्वजन्म में सहस्रपाद नामक ऋषि था, मैंने बचपन में अपने मित्र खगम ऋषि के कण्ठ में घास का एक सर्प बना

कर डाल दिया, जिससे डर के वे अचेत हो गए और चेत होने पर उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि विष-वीर्य से हीन सर्प हो जाओ। तब मैंने शाप-निवारणार्थ बहुत याचना की तो उन्होंने कहा मेरा शाप तो मिथ्या नहीं हो सकता, किन्तु महर्षि रुरु के दर्शन से तुम शाप-मुक्त हो जाओगे। यह कहकर वे मुनि सर्परूप से मुक्त होकर और पूर्व रूप धारण कर बोले---हे रुरु ! अहिंसा धर्म सब से महान है, इसलिए ब्राह्मण को किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिए। राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ में सर्पों का संहार किया तो तपस्वी आस्तीक ने ही उनकी रक्षा की थी। तब रुरु ने पूछा कि जनमेजय ने सर्पों को क्यों मारा था ? इस पर सहस्रपाद ने कहा कि मुझे अब शीघ्र जाना है। इसलिए वह सब वृत्तान्त अपने पिता से पूछ लेना। यह कह कर वे ऋषि अन्तर्धान होगए तो रुरु को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने पिता के पास जाकर सब बात बताई तो वे उस कथा को सुनाने लगे।

आस्तीक चरित्र एवं समुद्र मन्थन वर्णन

उग्रश्रवा सूत बोले---हे ऋषिगण ! जरत्कारु ऋषि के पुत्र आस्तीक हुए, जो कि अल्पाहारी, ब्रह्मचारी, व्रती एवं तेजस्वी थे। वे रात्रि में भी नहीं सोते थे। एक दिन उन्होंने एक स्थान पर देखा कि एक विशाल गढ़े में कुछ मनुष्य उल्टे लटके हुये हैं। जरत्कारु के पूछने पर उन्होंने बताया कि हम यायावर संज्ञक ऋषि हैं। हमारे वंश के आगे न चलने के कारण ही हमारी यह गति हुई है। क्योंकि हमारा एक ही वंशज जरत्कारु है, जो तपस्यारत रह कर प्रजोत्पत्ति से विरत है। तुम कौन हो जो आत्मीयजन की भाँति हमसे पूछते हो। ऋषि ने कहा---मैं ही जरत्कारु हूँ, अब मुझे आज्ञा दीजिये, वही करूँ। यह सुन कर उन्होंने वंश चलाने के लिये पुत्र उत्पन्न करने को कहा तो ऋषि बोले--अपने सुख के लिये तो नहीं किन्तु, आपकी आज्ञा पाल-

नार्थ विवाह करूँगा। वह भी तब जब मेरे समान नाम की कन्या को उसका कोई संरक्षण स्वेच्छा से भिक्षा के समान मुझे दे देगा। तदनन्तर वन में जाकर जरत्कारु ऋषि ने तीन बार कन्या की भिक्षा माँगी, तभी वासुकि नाग अपनी जरत्कारु नाम की बहिन को लेकर आया और उसका हाथ ऋषि को पकड़ा दिया।

सूतजी बोले—हे ऋषिगण! सर्पों की माता ने सर्पों को जनमेजय के यज्ञ में जलने का शाप दिया था, उसी की शान्ति के निमित्त वासुकि ने अपनी बहन का व्याह इन ऋषि के साथ किया था। इन जरत्कारु दम्पत्ति ने ही महात्मा आस्तीक को जन्म दिया था। जनमेजय के सर्पयज्ञ में जलते हुए अपने मामा, नाना आदि सर्पों की आस्तीक ने ही रक्षा की थी। यह सुन कर ऋषियों ने आस्तीक का चरित्र विस्तार से कहने की प्रार्थना की तब उग्रश्रवा बोले—दक्ष ने अपनी कद्रू और विनता नाम की दो कन्याओं का विवाह महर्षि कश्यप के साथ कर दिया, तब कद्रू ने कश्यप जैसे तेजस्वी नागरूप एक सहस्र पुत्र होने का वर माँगा, जिसे सुन कर विनता ने उन सहस्र पुत्रों से बल, वीर्य, विक्रम और देह में भी अधिक केवल दो ही पुत्र माँगे। कश्यपजी ने उन्हें वर देकर प्रसन्न हुए। कुछ कालोपरान्त उनके गर्भ रहा तो कद्रू के गर्भ से एक सहस्र अण्डे और विनता के गर्भ से दो अण्डे निकले। वे पाँच वर्ष तक पात्रों में रखे रहे, तब कद्रू के सहस्र पुत्र तो अण्डे फोड़ कर बाहर निकल आये, किन्तु विनता के दोनों पुत्र उस समय तक न निकले, इससे ईर्ष्या और लज्जा के वशीभूत हुई विनता ने एक अण्डे को तोड़ दिया। उसमें जो बालक था वह ऊपर के भाग में तो परिपक्व हो चुका था, पर नीचे का भाग अभी कच्चा था। उस बालक ने विनता को शाप दिया कि तुमने लोभवश मेरा कच्चा अण्डा ही तोड़ दिया है, इसलिए तुम पाँच वर्ष तक के लिए कद्रू की दासी बनोगी। यदि

तुम दूसरे अण्डे को तोड़ कर उस बालक को भी अंगहीन कर दोगी तो वही तुम्हें शाप से मुक्त करेगा। यदि तुम इसे अत्यन्त प्रतापी देखना चाहती हो तो पाँच सौ वर्ष से अधिक समय तक इसकी प्रतीक्षा करनी होगी। यह कह कर वह शिशु आकाश में जाकर भगवान् सूर्य का साथी अरुण बन गया। उसके पश्चात् समय पूर्ण होने पर दूसरा अण्डा फोड़ कर गरुड़ उत्पन्न हुए जो तुरन्त ही अपने आहार की खोज में आकाश में उड़ने लगे। हे ऋषिगण! तभी कद्रू और विनता दोनों ने आकाश मार्ग से जाते हुए इन्द्र के उच्चैःश्रवा नामक अश्व को देखा, जो कि समुद्र-मन्थन के समय निकला था।

शौनकजी बोले—हे सूतजी! समुद्र-मन्थन से अमृत और अश्वादि के निकलने का पूर्ण वृत्तान्त कहने का कष्ट करिये। सूतजी ने कहा—सब देवता और गन्धर्व सुमेरु पर्वत पर निवास करते हैं। वहाँ एकत्रित हुए देवगण अमृत प्राप्ति का उपाय सोचने लगे। तभी भगवान् विष्णु ने कहा कि देवता और दैत्य परस्पर मेल करके क्षीरसागर को मथें, उससे अमृत, औषधि एवं रत्नादि की प्राप्ति होगी। यह सुन कर सब मँदराचल को उखाड़ने का उद्योग करने लगे और जब वह न उखड़ा तो भगवान् ने अनन्त नाग को उसे उखाड़ने की आज्ञा दी, जिन्होंने शीघ्र ही उसे उखाड़ लिया। तब देवताओं ने समुद्र से उसके मन्थन की आज्ञा माँगी। अमृत का अंश भाग पाने के वचन पर उसने भी आज्ञा दे दी। फिर कच्छप से प्रार्थना की गई कि समुद्र मन्थन के समय मँदराचल को अपनी पीठ पर रख लें तो उन्होंने उसे पीठ पर रख लिया। तब वासुकि नाग को मथने की रस्सी बना कर देवता और दैत्य दोनों ने समुद्र का मन्थन किया। उससे चन्द्रमा, लक्ष्मी, सुरा, उच्चैःश्रवा अश्व, कौस्तुभ मणि आदि निकले और फिर अमृत से परिपूर्ण कमण्डलु लिये हुए धन्वतरिजी उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् ऐरावत हाथी और फिर

कालकूट विष उत्पन्न हुआ, जिससे सम्पूर्ण विश्व दग्ध होने लगा। तब ब्रह्माजी ने शिवजी से रक्षा-प्रार्थना की तो उन्होंने विष-पान कर लिया। इससे उनका कण्ठ नीला हो गया और वे नीलकण्ठ कहलाने लगे।

लक्ष्मीजी और अमृत दोनों में से कुछ भी न मिलता देख दैत्यगण लड़ते हुए अमृत-कलश छीन ले गए। तब भगवान् विष्णु ने मोहनि रूप धारण कर अमृत कलश अपने हाथ किया और देवताओं को पिलाने लगे। राहु ने देवतावेश में अमृत पी लिया तो चन्द्र-सूर्य ने उसका दैत्य होना बता दिया। उसे जान कर विष्णु ने सुदर्शन चक्र से उसका शिर काट दिया, तभी से वह राहु-केतु रूप होकर सूर्य-चन्द्र का ग्रास किया करता है। इसके बाद खिसियाए हुए दैत्य झगड़ने लगे तब भगवान् नारायण ने मोहिनी रूप त्याग कर शस्त्रास्त्रों से अनेक दैत्यों को मार डाला। दैत्य भी बार-बार हटते और साहस कर पुनः अधिक शक्ति से युद्ध करने लगते। अन्त में नारायण के सुदर्शन चक्र से और देवताओं के शस्त्रास्त्रों से पीड़ित हुए दैत्य भाग गये इस प्रकार विजयी देवताओं ने मँदराचल को यथा स्थान रख और अमृत-कलश भगवान् नर को सोंप अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया

गरुड़ की उत्पत्ति और पराक्रम वर्णन

सूतजी बोले—हे शौनक! समुद्र से निकले हुए उसी उच्चैःश्रवा अश्व को देखती हुई क्रद्रू और विनता परस्पर उसके रंग के विषय में बाजी लगाने लगीं। उसमें निश्चय हुआ कि जिसकी बात झूँठी निकले, वह दासी बने। विनता ने अश्व का रंग श्वेत बताया था, इसलिए कद्रू ने अपने पुत्रों से कहा कि तुम उस अश्व की पूँछ में लिपट कर उसे काला कर दो, किन्तु पुत्रों ने वह बात स्वीकार नहीं की। इससे कुपित हुई कद्रू ने शाप दिया कि तुम जनमेजय के यज्ञ में जलोगे। तदन्तर रात्रि व्यतीत

होने पर दोनों बहनें उच्चैःश्रवा को देखने चलीं तो उन्हें मार्ग में विशाल समुद्र दिखाई दिया। उधर शापित कद्रू पुत्रों ने माता की आज्ञा मानने का निश्चय किया और अश्व की पूँछ में जाकर लिपट गये। तभी दोनों बहिनें अश्व के पास जा पहुँची। उसका वर्ण चन्द्रमा के समान स्वच्छ होते हुए भी पूँछ काली दिखाई दे रही थी। इस प्रकार विनता बाजी हार कर कद्रू की दासी बन गई।

तभी अण्डा फोड़ कर निकले हुए गरुड़ आकाश मार्ग में घूमने लगे। देवताओं ने अपना हितैषी जान कर उनकी स्तुति की। तब वे अपना तेज समेट कर और अपने बड़े भाई अरुण को पीठ पर बैठा कर अपनी माता के पास जा पहुंचे। उसी समय सूर्य अपने उग्र तेज से संसार को भस्म करने लगे तो उन्होंने अरुण को सूर्य के आगे बैठा दिया। तब से वे नित्य प्रति सूर्य के तेज को ढकते हुए सारथी का कार्य किया करते हैं।

तदुपरान्त गरुड़ अपनी माता के पास जाकर रहने लगे। एक दिन कद्रू ने विनता से कहा—बहन ! समुद्र उस रमणीक द्वीप में मेरे पुत्र नाग रहते हैं, तुम मुझे वहाँ ले चलो। यह सुन कर विनता ने कद्रू को अपनी पीठ पर चढ़ाया और माता की आज्ञा से गरुड़ ने भी नागों को अपनी पीठ पर लादा और आकाश मार्ग से चले तो सूर्य के तेज से वे सब नाग अत्यन्त सन्तप्त एवं अचेत होने लगे। उनकी यह दशा देख कर कद्रू ने अपने पुत्रों की स्तुति की, जिससे प्रसन्न हुए इन्द्र ने सूर्य को मेघों से ढक कर जल की वर्षा आरम्भ की। तब सब नाग आनन्दपूर्वक विश्वकर्मा-निर्मित अपने द्वीप में पहुँच गए। वहाँ उन्होंने गरुड़ से कहा कि गरुड़ ! तुम हमें किसी स्वच्छ जल वाले स्थान में ले चलो। यह सुन कर गरुड़ ने माता से पूछा कि मुझे सर्पों की आज्ञा क्यों माननी चाहिये ? तब विनता ने अपने हारने और दासी होने की पूरी बात गरुड़ को सुना दी। इससे अत्यन्त दुःखित

हुए गरुड़ ने नागों से पूछा कि मैं ऐसा कौन-सा कार्य करूँ जिससे अपनी माता सहित तुम्हारी दासता से मुक्त हो सकूँ। नाग बोले–हमें अमृत लाकर दो तो ऐसा हो सकता है।

नागों की बात सुन कर गरुड़ ने माता से कहा कि मैं अमृत लेने के लिए जाता हूँ, किन्तु क्षुधा के कारण अत्यन्त व्याकुल हूँ। माता ने कहा—समुद्र के भीतर एक द्वीप में सहस्रों नाविक रहते है, तुम उनको खाओ और अमृत भी ले आओ। किन्तु देखो, किसी ब्राह्मण को मत खा लेना, क्योंकि वह उपकारी को कुल सहित भस्म करने में समर्थ होता है। गरुड़ ने ब्राह्मण की पहि-चान पूछी तो माता ने बताया कि जो कण्ठ तक पहुँचते ही जलाने लगे और काँटे जैसा खटके तथा उदर में पहुँच कर न पचे उसे ब्राह्मण जान कर उगल देना। तब गरुड़ अपने गन्तव्य स्थान पर जाकर ऐसी धूल उड़ाने लगे कि समुद्र का जल भी सख गया और व्याकुल हुए नाविक घरों से निकल आये, जिन्हें गरुड़ चटपट भक्षण करने लगे। उस समय उनके गले में अपनी पत्नी के सहित पहुँचा हुआ ब्राह्मण अंगार के समान गले को जलाने लगा तो गरुड़ ने उससे कहा—हे विप्र! तुम तुरन्त निकल जाओ। उसने कहा कि मेरी पत्नी नाविक जाति की है, इसे भी छोड़ दो। गरुड़ ने उसे भी छोड़ दिया तो वह आशीर्वाद देने लगा। तब गरुड़ आकाशमार्ग से होते हुए अपने पिता कश्यपजी के आश्रम में गये। वहाँ पिता द्वारा कुशल पूछने पर उन्होंने कहा—सभी सकुशल हैं। किन्तु मुझे भरपेट भोजन नहीं मिल पाता। नागों ने मेरी माता को दास्य भाव से मुक्त करने के बदले अमृत की माँग की है, उसे लेने जा रहा हूँ। मैं क्षुधातुर हूँ, कुछ भोजन बताने की कृपा करिये।

कश्यप बोले—पुत्र ! समीप के ही सरोवर में विशाल गज-राज और भीमकाय कच्छप हैं। यह कभी विभावसु और सुप्र-तीक नामक दो तपस्वी भाई थे। सुप्रतीक अपने बड़े भाई से

नित्य प्रति पिता का धन बाँट देने का प्रस्ताव करते और विभावसु उन्हें समझाते कि मोहवश जो लोग पितृधन को बाँटते हैं, उनमें परस्पर फूट पड़ जाती है और शत्रु अवसर पाकर उनका सर्वनाश करने का यत्न करते हैं, इसलिए दो भाइयों को पृथक् न होना चाहिए। विभावसु के इस कथन को सुप्रतीक ने स्वीकार न किया तो उन्होंने उसे हाथी हो जाने का शाप दिया, जिसे सुन कर सुप्रतीक ने भी विभावसु को शाप दिया कि तुम कच्छप हो जाओ। तभी से यह दोनों इन योनियों में पड़े हुए पुराने वैर के कारण अब भी परस्पर लड़ते रहते हैं। तुम इन दोनों को खाकर अपना पेट भर लो। यह सुन कर गरुड़ ने उस सरोवर पर जाकर उन दोनों को एक-एक नख से पकड़ कर उठा लिया और अनेक स्थानों पर होते हुए सुमेरु पर्वत के रौहिण नामक विशाल वट वृक्ष पर पहुँचे, किन्तु उस पर पाँव रखते ही शाखा टूट गई। उस शाखा में बालखिल्य संज्ञक साठ हजार ऋषि अँगूठे के पोर जितने शरीर से नीचा शिर किये हुए तपस्या कर रहे थे। यह देखकर गरुड़ ने उस शाखा को चोंच से दबा लिया, जिससे कि शाखा के गिरने से कहीं ऋषियों की हत्या न हो जाय और पंजों से हाथी और कच्छप को थामे हुए गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे, जहाँ उनके पिता कश्यपजी तपस्या कर रहे थे। उन्होंने गरुड़ को सावधान करके बालखिल्य ऋषियों से प्रार्थना की कि गरुड़ का कार्य लोक-कल्याणार्थ ही है, इसलिए आप कृपया उसे अनुमति प्रदान कीजिए। यह सुनकर वे ऋषिगण उस शाखा को छोड़कर तपस्या के लिए हिमालय पर्वत पर चले गए। तब पिता की आज्ञा से गरुड़ ने उस शाखा को एक निर्जन पर्वत पर जाकर छोड़ दिया और उसी पर्वत के शिखर पर बैठकर हाथी और कच्छप का भक्षण भी किया। हे शौनक! उस समय स्वर्ग में अनेक उत्पात होने लगे, जिससे डरे हुए देवताओं ने बृहस्पतिजी

से उसका कारण पूछा। बृहस्पति बोले—हे इन्द्र ! तुम्हारी पूर्व असावधानी और बालखिल्य ऋषियों के तप से उत्पन्न गरुड़ अमृत की इच्छा से यहाँ आ रहे हैं। यह सुनकर इन्द्र ने अमृत की रक्षा का कड़ा प्रबन्ध किया और स्वयं भी वज्र लेकर रखवाली करने लगे।

शौनक ने पूछा—हे सूतपुत्र ! इन्द्र ने क्या असावधानी की थी ! बालखिल्य ऋषियों के प्रभाव से गरुड़ की उत्पत्ति कैसे हुई ! यह सुनकर सूतजी बोले—हे शौनक ! कश्यपजी यज्ञ करना चाहते थे, उसमें सब देव, ऋषि, गन्धर्व आदि ने सहायता की। बालखिल्य ऋषि सब मिलकर भी एक छोटी-सी ढाक की लकड़ी उठाये ला रहे थे, यह देखकर इन्द्र ने उनकी हँसी उड़ाई और स्वयं लकड़ियों का पर्वत जैसा भारी ढेर उठा लाये। अपनी हँसी से क्रोधित हुए ऋषि इन्द्र से भी अधिक पराक्रमी दूसरा इन्द्र उत्पन्न करने के उद्देश्य से महायज्ञ करने लगे। इससे इन्द्र व्याकुल होकर कश्यप की शरण में गया। कश्यप ने उन ऋषियों को समझा बुझा कर मनाया तो वे बोले—अच्छा, कश्यपजी ! हमारे इस कर्म के प्रभाव से आपके द्वारा एक अन्य इन्द्र उत्पन्न होगा। वही पक्षियों के इन्द्र यह गरुड़ हुए। इन्हें आता हुआ देखकर सब देवता भय से कांपने लगे। अमृत-कलश के प्रधान रक्षक विश्वकर्मा गरुड़ के नख, चोंच और पंजों की मार से आहत और अचेत हो गए। तब वायु ने धूल उड़ाना प्रारम्भ किया। उस समय गरुड़ अन्तरिक्ष में पहुँच कर देवताओं पर झपट्टा मारते और फिर ऊपर चढ़ जाते। इस प्रकार देवता गण बुरी तरह हार गये, तब गरुड़ अमृत कलश के पास पहुँचे। वहाँ भयंकर रूप में प्रज्वलित अग्नि ने उसे सब ओर से घेर रखा था। यह देखकर गरुड़ ने आठ हजार एक सौ मुख करके बहुत-सी नदियों का जल उनमें भर लिया और वहाँ पुनः पहुँच कर

उस जल को छोड़कर अग्नि को बुझा दिया तथा लघु रूप धारण कर अमृत-घट के पास जा पहुँचे।

किन्तु, वहाँ तीक्ष्ण धार के अरों से युक्त एक लौहचक्र तेजी से घूम रहा था। तब गरुड़ और भी सूक्ष्म देह बनाकर अरों की सन्धि के छेदों में होकर भीतर निकल गए। वहाँ अग्नि के समान प्रज्वलित नेत्र वाले दो महाविषधर क्रोध से फन उठाये हुए उस कलश के आधार रूप में स्थित थे। गरुड़ ने उन सर्पों को धूल उड़ा कर अन्धा बनाया और उनके दो-दो खण्ड कर दिये तथा तीक्ष्णधार वाले यन्त्र को भी नष्ट-भ्रष्ट कर कलश उठाया और बड़े वेग से आकाश की ओर बढ़े। मार्ग में भगवान् विष्णु ने उनसे कहा—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर माँगो। गरुड़ बोले—मुझे यह वर दीजिए कि मैं आपकी ध्वजा में स्थित रहूँ। विष्णु ने वर दे दिया तो गरुड़ बोले कि आप भी मुझसे वर माँग लीजिए। विष्णु बोले—तुम मेरे वाहन बन जाओ। गरुड़ ने स्वीकार कर लिया। जब विष्णु चले गए तभी पीछा करते हुए इन्द्र ने गरुड़ पर वज्र-प्रहार किया, किन्तु उससे गरुड़ को कोई पीड़ा नहीं हुई। गरुड़ बोले—महर्षि दधीचि की अस्थि से निर्मित इस वज्र का मान रखने के लिए मैं अपना एक पर यहाँ छोड़े देता हूँ। इस अद्भुत घटना से चकित हुए इन्द्र ने कहा—पक्षिराज ! तुम धन्य हो, मैं तुमसे मित्रता करने का इच्छुक हूँ।

गरुढ़ बोले-मुझे मित्रता करना स्वीकार है। तब इन्द्र ने कहा कि यदि अमृत से कुछ कार्य न हो तो इसे मुझे लौटा दो, क्योंकि इसे पीकर जो अमर होगा, वही हमारा शत्रु बन जायगा। यह सुनकर गरुड़ ने कहा—चिन्ता न करो देवराज ! मैं इसे किसी को भी नहीं पीने दूँगा। मैं इसे जहाँ ले जाकर रखूँ, वहाँ से तुम उसी समय ले आना। यह सुनकर इन्द्र प्रसन्न होकर मार्ग से हट गये। इधर गरुड़ शीघ्रता पूर्वक नागों के पास जाकर

बोले—मैं अमृत ले आया, इस पात्र को कुशों पर रख रहा हूँ। तुम स्नानादि से पवित्र होकर इसे पीना। मैंने तुम्हारी आज्ञा पूर्ण कर दी, अब मेरी माता दासी-भाव से मुक्त हो गई है। नागों न यह बात मानली और स्नानादि के लिए चल दिये। तभी अवसर देखकर इन्द्र ने अमृत-कलश उठाया और उसे लेकर स्वर्गलोक को गये। इधर नागों ने स्नानादि से निवृत्त होकर आने पर वहाँ अमृत-कलश न देखा तो समझ लिया कि हमने छलपूर्वक विनता को दासी बनाया था, और गरुड़ ने छलपूर्वक ही उसे दासता से मुक्त कर लिया। उन्होंने सोचा कि अमृतघट रखने के कारण इन कुशों में अमृत अवश्य लग गया होगा। इसलिए वे उन कुशों को चाटने लगे, जिससे उनकी जीभ मध्य से चिर कर दो हो गई। अमृत का स्पर्श होने के कारण उस दिन से कुश भी पवित्र हो गये। हे शौनक! यह कथा श्रोता और वक्ता दोनों को स्वर्ग-लाभ कराती है।

परीक्षित को शाप, जनमेजय को राज्य प्राप्ति

सूतजी बोले—हे शौनक! शेषजी, वासुकि, ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, कालिय आदि नाग कद्रू के ही पुत्र हैं। शेष नाग अपनी माता के पास से जाकर अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हुए हिमालय में पहुँचे, जहाँ उन्होंने घोर तप किया। तब ब्रह्मा-जी ने उनसे वर माँगने को कहा। शेषजी बोले—हे भगवन्! मैं अपने मूर्ख और पापी भाइयों की दुष्टता से दुःखित हो रहा हूँ, मैं उनका मुख भी नहीं देखना चाहता। मुझे आप यही वर दीजिए कि मेरी बुद्धि सदैव धर्म और तप में लगी रहे। ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही होगा नागराज! मैं तुमसे लोकहित का एक अन्य कार्य भी लेना चाहता हूँ। उसे तुम ही कर सकते हो। इस पृथिवी को अपने शिर पर इस प्रकार धारण कर लो, जिससे

कि यह किंचित् भी न हिल सके। अब तुम पृथिवी के नीचे जाकर इसे उठा लो।

यह सुनकर शेषजी ने बिल के मार्ग से पृथिवी के नीचे जाकर पृथिवी को सिर पर धारण कर लिया और तब से वे उसे निरन्तर धारण किये रहते हैं। हे मुनिवर! उसी समय ब्रह्माजी ने शेषजी और गरुड को परस्पर मित्र बना दिया। उधर शेष के चले आने के पश्चात् सब नाग माता के शाप से बचने का उपाय सोचने लगे। किसी ने कहा कि राजा जनमेजय से विप्रवेश में जाकर सर्पयज्ञ न करने की भिक्षा माँगलें, किसी ने कहा कि यज्ञ की सामग्री मलमूत्र से भ्रष्ट कर दें, और किसी ने कहा कि राजा जनमेजय को ही डस लें, इत्यादि में से कोई भी विचार वासुकि नाग की समझ में नहीं आया तब एलापत्र नामक सर्प ने कहा—हे भाइयो! सर्पयज्ञ तो अवश्य होना है, जब माता ने हमें शाप दिया था, तब मैंने उसकी गोद में छिपे हुए ही देवताओं और ब्रह्माजी की बातचीत सुनी थी। उस समय देवताओं ने कहा था—भगवन्! आपने कद्रू को ऐसा घोर शाप देने से निवारण क्यों नहीं किया? इस पर ब्रह्माजी बोले—सर्पों का स्वभाव अत्यन्त उग्र और क्रूर है, उनसे प्रजा की कोई भलाई नहीं हो सकती, इसलिए उनका संहार कराने की दृष्टि से ही मैंने कद्रू को नहीं रोका था। किन्तु उस सर्पयज्ञ में क्षुद्र, क्रूर एवं पापी नागों का ही नाश होगा, धर्मात्मा नाग नहीं जलेंगे। देखो जरत्कारु ऋषि का विवाह वासुकि की बहन जरत्कारु से होना है। इनसे आस्तीन ऋषि उत्पन्न होंगे, वे सर्पयज्ञ को पूर्ण नहीं होने देंगे। इस प्रकार कह कर ब्रह्माजी चले गए। अब मेरी सम्मति मानकर अपनी बहिन उन्हीं ऋषि को दे देनी चाहिए। यह सुनकर सब नाग अत्यन्त प्रसन्न हुए और सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

हे शौनक ! एक बार राजा परीक्षित के वाण से आहत हुआ एक मृग भाग गया। परीक्षित उसका पीछा करते-करते शमीक ऋषि के आश्रम पर पहुँच कर उनसे उस मृग के विषय में पूछने लगे। ऋषि ने मौनव्रत के कारण कुछ उत्तर न दिया तो क्रोध में भरे राजा ने वहीं पड़े हुए एक मृत सर्प को धनुष की नोंक से उठा कर ऋषि के कण्ठ में डाल दिया। ऋषि तब भी शान्त बैठे रहे तो राजा वहाँ से चले आये। शमीक के पुत्र शृंगी ऋषि बड़े क्रोधी थे। उस समय ब्रह्मलोक से लौटते हुए शृंगी ऋषि से उनके साथी कृश ने शमीक के कण्ठ में सर्प पड़ा होने की बात कही और सब वृत्तान्त सुना दिया, जिससे क्रोधित शृंगी ने शाप दिया कि जिस पापी ने मेरे वृद्ध पिता के कण्ठ में मृत सर्प डाला है, उसे सातवें दिन तक्षक नाग डस लेगा।

शृंगी ऋषि द्वारा दिये गए शाप की बात सुन कर शमीक ऋषि प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा—पुत्र ! राजा परीक्षित न्याय पूर्वक हमारी रक्षा करते हैं, इसलिए उन्हें शाप देना ठीक नहीं हुआ। हमारा धर्म क्षमा-भाव है। जो अपने धर्म को छोड़ देता है उसे वह त्यागा हुआ धर्म ही नष्ट कर डालता है। तदनन्तर शमीक ऋषि ने वह पूरा वृत्तान्त राजा के पास भेज दिया, जिससे कि वह सावधान हो जाँय। तव राजा ने मंत्रियों के परामर्श से एक स्तम्भ के ऊपर सुरक्षित भवन का निर्माण कराया। वहाँ मंत्र, ओषधि एवं विद्याओं के ज्ञाता विद्वानों को रक्षा के लिए नियुक्त किया गया। बिना आज्ञा कोई भी व्यक्ति राजा से नहीं मिल सकता था। छः दिन इस प्रकार शान्ति पूर्वक व्यतीत हुए। सातवें दिन सर्प के काटने से मरे हुए को मंत्रशक्ति से जीवित करने वाले काश्यप नामक एक ब्राह्मण राजा के पास जाने लगे तो मार्ग में तक्षक ने उन्हें देख कर सब बात पूछ ली और फिर बोला—मैं तक्षक हूँ, आप मेरे काटे को जीवित नहीं कर सकते। ब्राह्मण ने कहा—मैं अवश्य कर सकता

हूँ। तो तक्षक ने एक वटवृक्ष को दंशित कर विषाग्नि में भस्म कर दिया और कहा कि इसे यथावत करो। यह सुन कर ब्राह्मण ने मन्त्र बल से उसे वैसा ही हराकर दिया। तब तो तक्षक को बड़ा अचरज हुआ और वह कहने लगा—विप्र ! राजा की आयु विप्र शाप से क्षीण हो चुकी है। इसलिए यदि तुम उसे जीवित न कर सके तो अपयश हाथ लगेगा। मेरी राय में तुम अपने स्थान को लौट जाओ और जो कुछ इच्छा हो मुझ से ले लो। तब काश्यप इच्छित धन लेकर लौट गये। इधर तक्षक ने हस्तिनापुर पहुँच कर अपने अनुचर सर्पों को मुनिवेश में राजा के पास भेजा। उनके साथ भेंट के रूप में जो फल-मूल भेजे गये उनमें तक्षक स्वयं छिप कर बैठ गया। परीक्षित ने मुनिवेशधारी नागों को भीतर आने की आज्ञा दे दी और उनके फल-मूलादि स्वीकार कर लिया। उनके चले जाने पर राजा ने उनमें से एक फल उठाकर ज्योंही खाना चाहा, त्योंही उन्हें उसमें एक अत्यन्त सूक्ष्म कीट बैठा हुआ दिखाई दिया। उसे चुटकी में दाब कर राजा ने उठा लिया और कहने लगे—सूर्यास्त का समय है, यदि यह कीड़ा तक्षक होकर मुझे डस ले तो ऋषि पुत्र का वचन भी मिथ्या न हो और मैं भी शाप मुक्त हो जाऊँ। यह कह कर उन्होंने दैववशात् उस कीड़े को अपने कण्ठ पर रख लिया और तभी वह तक्षक बनकर उनके कण्ठ से लिपटा तुरन्त ही डस लिया।

अब तो नागराज तक्षक की फुंकार से डर कर सब मंत्री आदि वहाँ से भाग निकले। अपना काम करके तक्षक भी चला गया। तब राजा का मृतक-संस्कार कराया गया और परीक्षित-पुत्र जनमेजय को राज्य सिंहासन पर आरूढ़ किया। बालक जनमेजय धर्मपूर्वक राज्य चलाने लगे। काशिराज सुवर्ण वर्मा ने अपनी पुत्री वपुष्टमा का विवाह जनमेजय के साथ कर दिया। तब वे दोनों सुख पूर्वक विहार करने लगे।

सर्पयज्ञ एवं कौरव पाण्डव वंश वर्णन

सूतजी बोले—हे शौनक। मैं उस वृत्तान्त को पहले कह चुका हूँ कि जरत्कारु ऋषि के पूर्वपुरुष उल्टे लटके हुए थे, जिन्हें देख कर जरत्कारु ने उनके विषय में पूछा और अपने ही पुरखे जान कर उन्हें विवाह करने का वचन दे दिया। तत्पश्चात् वासुकि नाग ने अपनी बहिन जरत्कारु का विवाह उनके साथ कर दिया। फिर एक उसके गर्भ रह गया, जो कि दिनों दिन बढ़ने लगा। इसी मध्य एक दिन ऋषि उसकी गोद में शिर रखे ऐसे सोरहे थे कि सूर्य अस्त होते समय भी उनकी नींद न खुली। तब जरत्कारु सोचने लगी कि यदि इन्हें न जगाऊँ सायंकालीन कर्म से विरत रहने के कारण इनका नियम भंग होकर धर्म नष्ट होगा और जगा दूँ तो यह भारी क्रोध प्रदर्शित करेंगे, किन्तु धर्म न जाय वही उपाय करना चाहिए। यह सोच कर उसने ऋषि को जगा दिया तो वे अत्यन्त रुष्ट होते हुए उठे और कहा कि तू ने मुझे जगा कर मेरा अपमान किया मैं तुझे त्याग कर चला जाऊँगा। तब नागकुमारी ने बहुत अनुनय विनय की, किन्तु ऋषि उसे छोड़ कर चले ही गए। वासुकि को उनके जाने का पता लगा तो वह बड़े यत्न से अपनी बहिन की सेवा सुश्रूषा करने लगा। फिर समय पाकर सुन्दर बालक ने जन्म लिया, उसका नाम आस्तीक हुआ।

उधर मन्त्रियों से अपने पिता का तक्षक द्वारा डसे जाने का पूरा वृत्तान्त जान कर जनमेजय अत्यन्त क्रोधित और दुःखित हुए और सर्पयज्ञ की प्रतिज्ञा करके उसकी सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी। फिर शीघ्र ही यज्ञ मंडप और वेदी बनाई गई, तभी वास्तु विद्या के ज्ञाता थवई सूत ने आकर कहा—महाराज! जिस समय और जिस स्थान पर यज्ञवेदी बनी है, उससे प्रतीत

होता है कि यज्ञ को पूर्ण होने से पूर्व ही कोई ब्राह्मण उसे रुकवा देगा। किन्तु उसकी बात पर अधिक ध्यान न देकर यज्ञ का प्रारंभ हो गया। काले वस्त्र पहिने हुए ऋत्विज और आचार्य कार्य में लग गये। तब विवश हुए छोटे बड़े सर्प चीखते-चिल्लाते हुए आ आकर उस यज्ञाग्नि में गिर कर भस्म होने लगे। उनकी मेद आदि से नदी-सी प्रवाहित हो उठी। तक्षक इन्द्र को शरण में पहुँच कर प्राण-रक्षा की प्रार्थना करने लगा और इन्द्रसे आश्वासन पाकर इन्द्रलोक में ठहर गया। उस यज्ञ में अधिकांश सर्पों का संहार हुआ, थोड़ी सख्या में ही सर्प शेष रहे तभी वासुकि ने अपनी बहन से कहा—बहन ! हमारी रक्षा का यही समय हैं। इस लिए अपने विद्वान पुत्र को इसके लिए प्रेरित करो। यह सुन कर जरत्कारु ने सर्पों को बचाने के लिए अपने पुत्र आस्तीक से कहा। तो उन्होंने वासुकि को अभय प्रदान करते हुए कहा कि आप कुछ चिन्ता न करें, मैं इस यज्ञ को शीघ्र रुकवाये देता हूँ।

तदनन्तर आस्तीक राजा जनमेजय के पास चले। किन्तु द्वारपालों ने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। तब वे वहीं से राजा, ऋत्विज, सदस्य, यज्ञ और अग्नि की स्तुति करने लगे। उनके वचनों से सभी प्रसन्न होगए। संतुष्ट राजा ने आस्तीक से कहा—वर माँगो। तभी होता ने कहा कि हे राजन् ! पहिले तक्षक को भस्म कर देने दीजिए। किन्तु ऋत्विजों ने कहा कि महाराज ! तक्षक इन्द्र की शरण में जाकर उनसे अभय प्राप्त कर चुका है। इसलिए उसका आना कठिन है। तभी होता तक्षक को बुलाने के लिए आहुति देने को थे कि इन्द्र आकाश में आगये। महाराज जनमेजय ने कहा कि यदि इन्द्र ने तक्षक को छिपा रखा है तो इन्द्र के सहित उसकी आहुति दे दो। यह सुन कर होता ने आहुति दी, तभी इन्द्र के सहित तक्षक आकाश में दिखाई दिया। इन्द्र भय के कारण उसे वहीं छोड़ कर अपने लोक को भाग गये, इधर अचेत तक्षक अग्नि की लपटों की ओर बढ़ने लगा। तब

ऋत्विजों ने कहा कि तक्षक तो आ ही रहा है, अब आप आस्तीक को वर दे सकते हैं। यह सुन कर राजा ने आस्तीक से वर माँगने को कहा तो वे बोले—महाराज ! मैं यही वर माँगता हूँ कि आप इस सर्प यज्ञ को तुरन्त रोक दें, अब कोई सर्प इसमें भस्म न हो। तब अनिच्छापूर्वक राजा आस्तीक को इच्छित वर प्रदान करने लगे।

सूतजी बोले—हे शौनक ! जब राजा जनमेजय आस्तीक को वर प्रदान करने लगे, तभी एक विचित्र घटना घटी। तक्षक को अकेला छोड़ कर जब इन्द्र चले गए, तब तक्षक अग्नि में नहीं आगिरा, वरन् जैसे ही वह गिरने लगा, वैसे ही आस्तीक ने तिष्ठ-तिष्ठ अर्थात् 'ठहरो' यह शब्द तीन बार कहा, इसलिए वह अन्तरिक्ष में ही ठहरा रहा। तभी सब के बार-बार कहने पर राजा ने कहा—अच्छा, यज्ञ को बन्द कर दो। आस्तीक प्रसन्न और सर्प निर्भय होजाँय। इस प्रकार राजा जनमेजय का सर्पयज्ञ समाप्त हो गया। तब राजा ने सब विप्रो, ऋत्विजों आदि को बहुत-सा धन सम्मान देकर विदा किया और आस्तीक से कहा कि ब्रह्मन् ! मैं अश्वमेध यज्ञ करूँ तब आप अवश्य पधारें। राजा का निवेदन स्वीकार कर प्रसन्न हुए आस्तीक ने अपनी माता और मामा आदि को सब वृत्तान्त सुनाया, तब सब नाग बहुत प्रसन्न हुए और आस्तीक को उन्होंने वर दिया कि जो कोई तुम्हारा नाम भी लेगा,उसे कोई सर्प कभी नहीं काटेगा, यदि काटेगा तो उसके सिर के सौ खण्ड हो जाँयगें। तब आस्तीक वहाँ से अपने इच्छित स्थान को चले गए। यह सुन कर शौनक ने कहा कि हे सूतजी ! अब वेदव्यासजी का कहा हुआ वही महाभारत इतिहास सुनाइये। सूतजी कहने लगे—हे शौनक ! महर्षि व्यासजी पराशर के पुत्र थे, उनकी उत्पत्ति यमुना द्वीप में कुमारी सत्यवती से हुई थी। वही पाण्डवों के पूर्व पुरुष थे।

राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ की दीक्षा ली, सुन कर वे अपने शिष्यों के साथ राजसभा में पधारे, राजा ने आगे बढ़कर उनका पूजन श्रेष्ठ आसन पर दिया। फिर राजा ने कौरव-पाण्डव विषयक पूर्ण इतिहास जानने की जिज्ञासा की तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य वैशम्पायन को महाभारत सुनाने की आज्ञा दी, तब वैशम्पायन वह पुरातन इतिहास सुनाने लगे।

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज! आप में महाभारत इतिहास सुनने की क्षमता है और फिर स्वयं गुरुजी ने सुनाने का आदेश दिया है, इसलिए अत्यन्त उत्साहित मन से मैं वह कथा सुनाता हूँ। राजा पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् पाँचों पाण्डव वन से घर आये और शीघ्र ही वेद, वेदांग तथा धनुर्विद्या आदि में पारंगत होगए। उनके उत्साह को देखकर नगर निवासी उनका बड़ा आदर सम्मान करते थे, वह बात दुर्योधन को सहन नहीं थी। वह अपने साथी कर्ण और शकुनि से मिल कर उन्हें राज्य से निकालने का षड्यन्त्र रचने लगा। उसने भीम को विष दे दिया, जिसे वे पंचा गये, फिर सोते हुए भीम को हाथ पाँव बाँध कर गंगा में डलवा दिया तो भी निकल आये। फिर एक दिन सोते हुए भीम को भयंकर विष वाले सर्प से कटवाया गया, तब भी उनका कुछ न बिगड़ा। विदुर पाण्डवों के हितैषी थे, वे उन्हें बचाने की सदा चेष्टा किया करते। तब उन्हें मारने के लिए लाक्षागृह में रखा गया और उसमें आग लगवा दी गई। वहाँ से भी सुरंग द्वारा सुरक्षित निकल गए। उसमें दुर्योधन का दुष्ट मंत्री पुरोचन ही जल मरा। जब पाँचों पाण्डव रातोंरात भाग रहे थे, तब हिडिम्बा राक्षसी भीम को मिली, जिसके गर्भ से घटोत्कच उत्पन्न हुआ। फिर वे एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के घर रहे और भूखे वक राक्षस का वध करके भीम ने नगर-वासियों को प्रसन्न किया। वहीं पता लगा कि पांचाल देश में

द्रौपदी-स्वयंवर होगा तो वे वहाँ पहुँचे और द्रौपदी को प्राप्त कर लिया। तब एक वर्ष वहाँ रह कर प्रकट हुए पाण्डव द्रौपदी सहित हस्तिनापुर आगये। उस समय धृतराष्ट्र ने उन्हें खाण्डव-वन में रहने का आदेश दिया तो वे बहुत दिनों तक वहाँ रह कर बड़े-बड़े राजाओं को जीतने और दुष्टों का निग्रह करने लगे।

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर युधिष्ठिर ने किसी कारण वश अपने प्रिय भाई अर्जुन को वनवास की आज्ञा दी तो वह तेरह मास वन में रहे और फिर कृष्ण के पास द्वारका गये। वहाँ उन्होंने कृष्ण की छोटी बहन सुभद्रा को देखा तो दोनों ही परस्पर प्रीति की डोर में बँध गये। फिर कृष्ण के साथ अर्जुन ने जाकर खाण्डववन भस्म कर अग्नि को तृप्त किया तो अग्नि प्रसन्न होकर अर्जुन को गाण्डीव धनुष, अक्षय बाण, दो तरकस और हनुमान की ध्वजा वाला रथ दिया। मय दानव को अग्नि से बचाने के कारण उसने भी एक अत्यन्त सुशोभित एवं मणि-रत्न खचित सभा भवन प्रदान किया, जिसे देख कर, लेने की इच्छा से दुर्योधन ने शकुनि द्वारा कपट पाँसे रखवा कर द्यूत में युधिष्ठिर को जीता और पाण्डवों को एक वर्ष के अज्ञात वास और बारह वर्षों के वनवास में भेज दिया। तदनन्तर तेरह वर्ष व्यतीत होने पर पाण्डवों ने वनवास से लौटकर अपना भाग माँगा और दुर्योधन के अस्वीकार करने पर युद्ध होने लगा। उसमें अनेकानेक क्षत्रिय राजे और अपने सभी भाइयों सहित दुर्योधन आदि मारे गये। तब पाण्डवों को नष्ट हुए राज्य की प्राप्ति हुई।

हे राजन्! पुरुवंश में उपरिचर नामक एक राजा हुए थे, उन्हें वसु भी कहा जाता था। इन्द्र के कहने से उन्होंने चेदि देश पर विजय प्राप्त की। कुछ कालोपरान्त वे आश्रम में जाकर घोर तप करने लगे। इन्द्र को शंका हुई कि कहीं यह इन्द्रपद की प्राप्ति के लिए तो तप नहीं कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने अपने

अनुयायियों सहित आकर राजा को तप से निवृत्त कराते हुए कहा--हे महाराज ! आप मेरे मित्र हैं । मैं आपको एक आकाश-गामी वायुयान, कभी न मुर्झाने वाली कमलमाल और शिष्ट पुरुषों का पालन करने वाली यह लाठी प्रदान करता हूँ । यह अद्वितीय वस्तुएँ आपके उत्कर्ष को बढ़ाने वाली होंगी । इसलिए आप तपस्या को छोड़ कर राज्य-पालन में लगिये । फिर एक वर्ष व्यतीत होने पर राजा ने उस लाठी को भूमि में गाढ़ दिया और इन्द्र के पूजन में तत्पर हुए । तभी से राजागण इन्द्र पूजन के समय पृथिवी में इन्द्र की ध्वजा गाढ़ा करते हैं । राजा उप-रिचर के पूजन से इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए । इस प्रकार राजा उपरिचर चेदि देश में रह कर राज्य करने लगे । उनके पाँच पुत्र थे—वृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुशाम्ब, मावेल्ल और अपराजित यदु । इन पाँचों ने अपने-अपने नाम से नगर और देश बसा दिये तथा पृथक्-पृथक् वंश चलाये ।

हे राजन् ! उपरिचर के राज्य समीप शुक्तिमती नदी प्रवाहित थी । एक दिन कामातुर हुए कोलाहल पर्वत ने उस नदी को घेरा तब क्रुध हुए राजा ने उस पर्वत में लात मारी, जिससे वहाँ छिद्र हो गया । उस नदी के एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन हुई । यह दोनों उसने राजा को दे दिये । उस बालक को राजा ने अपना सेनापत्ति और बालिका को रानी बनाया । एक दिन पितरों ने राजा को मृगों का शिकार करने की आज्ञा दी । उधर ऋतुस्नाता रानी ने अपनी अभिलाषा प्रकट की । किन्तु राजा अपने निश्चित्त कार्यक्रम के अनुसार वन को चले गए । वहाँ उन्हें लक्ष्मी स्वरूपा गिरिका की याद आती रही । बसन्त ऋतु थी, उसने राजा को कामार्त्त कर दिया, जिससे उसका वीर्य निकल गया । राजा ने एक पत्ते के दोने में रख कर उसे अपनी रानी के पास भेजने की इच्छा की और एक बाज पक्षी से निवेदन किया कि इसे मेरे अन्तपुरः में पहुँचा दो । वह बाज

उस दोने को लेकर उड़ चला, मार्ग में एक अन्य बाज ने उसका पीछा किया और तब दोनों लड़ने लगे तब उसके पंजे से दोना छूटकर यमुना में जा पड़ा, जिसे ब्रह्मशाप से मछली बनी अद्रिका नाम की अप्सरा ने निगल लिया। उस मछली को लुब्धक ने जाल में फांसा और उदर चीरा तो उसमें एक-एक बालक-बालिका देखे। लुब्धक ने राजा उपरिचर को वे दोनों शिशु भेंट किये। हे राजन्! राजा ने बालक तो अपने पास रखा और बालिका मछुए को लौटा दी। वही बालक मत्स्य नामक परम सत्यवादी राजा हुआ था।

मछुए को लौटाई हुई कन्या का नाम सत्यवती हुआ। मछली जैसी गन्ध वाली होने के कारण वह मत्स्यगन्धा भी कही जाती थी। वह मछुए की आज्ञा से यात्रियों को नाव पर बैठा कर पार उतारा करती। एक दिन महर्षि पराशर उसकी नाव पर बैठ कर पार जाने लगे। वे उस कन्या पर अत्यन्त मोहित हो गए और कुहरा से अँधेरा उत्पन्न करके उन्होंने उसके साथ समागम किया। उन्होंने उसकी प्रार्थना पर शरीर की मछली जैसी गन्ध दूर करके सुगन्ध प्रदान की। तब उसका नाम योजनगन्धा हुआ। मुनि के सहवास से उसी समय उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जो तत्काल बड़ा होकर वन को चला गया। वही महर्षि वेदव्यास थे, जिन्हें द्वैपायन भी कहते हैं। उधर वासुओं के अंश और गंगा के गर्भ से शान्तनु के पुत्र भीष्म पितामह की उत्पत्ति हुई।

पूर्वकाल में महर्षि अणीमाण्डव को चोर न होते हुए भी शूली का दण्ड सुनाया गया। उन्होंने धर्म से कहा कि मुझ निरपराध को शूली का दण्ड दिला कर तुम ब्रह्महत्या जैसा भयंकर पाप करा रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें शूद्र-योनि में उत्पन्न होने का शाप देता हूँ। तब उस शाप के कारण ही धर्म शूद्रा दासी से उत्पन्न विदुर हुए।। गवल्गण के संजय सूत हुए।

कुमारी कुन्ती के सूर्य के अंश से कर्ण उत्पन्न हुए। भगवान् नारायण वसुदेव के अंश से देवकी के पुत्र हुए।

हे राजन्—एक बार तपस्वी भरद्वाज का वीर्य पात होगया तो उसे उन्होंने एक दोने में रख दिया, उसी से द्रोणाचार्य का जन्म हुआ। गौतम ऋषि के पतित वीर्यसे कृपी और कृपाचार्य हुए। कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी बनी, जिससे अश्वत्थामा उत्पन्न हुए। राजा द्रुपद के अग्निकुण्ड से धृष्टद्युम्न और द्रौपदी का जन्म हुआ। तदनन्तर प्रह्लाद के शिष्य नग्नजित् और सुबल हुए। वेदव्यास ने विचित्रवीर्य की रानियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु तथा दासी से विदुर को उत्पन्न किया। राजा पाण्डु की दो रानियाँ थीं—कुन्ती और माद्री। धर्म के अंश से युधिष्ठिर, वायु के अंश से भीम, इन्द्र के अंश से अर्जुन, यह तीनों कुन्ती द्वारा और अश्विनी कुमारों के अंश से नकुलसहदेव माद्री द्वारा हुए। राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में दुर्योधन, दुःशासन, दुःसह, दुर्मर्षण, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशत, जय, सत्यव्रत, पुरुमित्र और युयुत्स—यह ग्यारहों महारथी थे। अर्जुन के सुभद्रा से अभिमन्यु हुए जो कृष्ण के भानजे थे। द्रौपदी के पाँचों पाण्डवों द्वारा पाँच पुत्र हुए। उनमें युधिष्ठिर के प्रतिविन्ध्य, भीम के सुतसोम, अर्जुन के श्रुतकीर्ति, नकुल के शतानीक और सहदेव के श्रुतसेन हुए। भीमसेन का हिडिम्बा से उत्पन्न पुत्र घटोत्कच हुआ। द्रुपद-कन्या शिखण्डी को स्थूण नामक यक्ष ने प्रसन्न होकर पुरुष बना दिया। महाभारत युद्ध में हजारों राजाओं ने भाग लिया था, उन सब की गणना नहीं की जा सकती।

प्राणियों की उत्पत्ति और अंशावतार वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज ! जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन किया और फिर महेन्द्र पर्वत पर तप करने लगे। इसी मध्य क्षत्रियों की ऋतुस्नाता

स्त्रियों के अनुरोध पर व्रतधारी ब्राह्मणों ने उनकी अभिलाषा पूर्ण की, जिससे हजारों क्षत्राणियाँ गर्भवती हुईं और उन्होंने यथा समय पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न कीं। तदनन्तर क्षत्रिय-वंश पुनः बढ़ने लगा और सर्वत्र धर्म-राज्य की स्थापना हो गई। सभी वर्ण अपने अपने धर्म में तत्पर रहने लगे। किन्तु, तभी राजाओं के यहाँ अनेक असुर पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके कारण पृथिवी दुःखित और व्याकुल रहने लगी। जब वह घोर पाप को सहन न कर सकी तो ब्रह्माजी की शरण में गई, जिन्होंने उसे शीघ्र कष्ट से छुड़ाने का आश्वासन दिया। फिर उन्होंने सब देवताओं गन्धर्वों और अप्सराओं आदि को आज्ञा दी कि भूभार हरण करने के लिए मर्त्यलोक में जाकर जन्म लो। तब उन सब ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार प्रतिज्ञा करके भगवान् नारायण के पास प्रस्थान किया उन्होंने प्रार्थना की कि प्रभो! आप भी भूभार हरण करने के लिए अपने अंश सहित अवतार लीजिए। भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यह सुन कर जनमेजय ने कहा—भगवन्! उन देवता, दैत्य, गन्धर्व, अप्सरा आदि का पूर्ण वृत्तान्त मेरे प्रति कहने की कृपा करें।

वैशम्पायनजी बोले–हे राजन्! ब्रह्मा के मन से प्रथम मरीचि आदि छः पुत्र हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप से इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति की तेरह पुत्रियों से असंख्य पुत्र, पुत्री, पोते आदि हुए। अदिति के गर्भ से द्वादश आदित्य और दिति का हिरण्यकशिपु हुआ। हिरण्यकशिपु के प्रह्लादादि पाँच पुत्र हुए। प्रह्लाद के विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ हुए। विरोचन का पुत्र बलि और बलि का पुत्र बाणासुर हुआ। शुक्राचार्य दैत्यों के गुरु थे। उनके चार तेजस्वी पुत्र हुए तथा त्वष्टाधर और अत्रि नामक दो पुत्रऔर भी थे, जो अत्यन्त रौद्रकर्मा हुए। इन सब दैत्यादि के असंख्य पुत्र-पौत्रादि हुए।

हे राजन् ! मरीचि आदि छः पुत्रों के अतिरिक्त ब्रह्माजी के एक पुत्र स्थाणु नामक और थे, जिनसे मृगव्याध, साँप, निर्ऋति, अजैकपात, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भग संज्ञक ग्यारह रुद्र हुए। ब्रह्माजी के अंगिरा नामक मानस पुत्र के बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त नामक तीन प्रसिद्ध पुत्र हुए। अत्रि के भी अनेक तपस्वी पुत्र थे। पुलस्त्य ऋषि के वंश में राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष तथा पुलह के शरभ, सिंह, किंपुरुष, सिंह, रीछ आदि हुए। क्रतू के साठ हजार बाल-खिल्य ऋषि तथा ब्रह्मा के दाँये हाथ के अँगूठे से दक्ष और बाँये हाथ के अँगूठे से कन्या हुई। यह दोनों परिणय सूत्र में बँध गये। दक्ष के अनेक पुत्र हुए, जो नारद के बहकाने से विरक्त हो गये। दक्ष की पचास कन्याएँ थीं, जिनमें से दस धर्म को सत्ताईस चन्द्रमा को और तेरह कश्यप को ब्याही गईं। दक्ष की वसु नाम्नी एक और कन्या थी, वह भी धर्म की पत्नी बनी उसके आठ वसु हुए। ब्रह्मा के मनु, मनु के प्रजापति, प्रजापति के धर, ध्रुव, सोम, अनिल, अहः, अनल, प्रभाता और प्रभास, यह आठ पुत्र आठ पत्नियों से हुए।

धर के द्रविण, और हुतहव्यवह, ध्रुव के काल, सोम वर्चा, शिशिर, रमण, और प्राण हुए। अहः के ज्योति आदि चार, अनल (अग्नि) के कुमार अर्थात् कार्तिकेय, शाख, विशाख, नैगमेय, अनिल के मनोजव और अविज्ञात, प्रत्यूष के देवल और देवल के क्षमावान और मनीषी हुए। बृहस्पति की बहन के गर्भ से प्रभास द्वारा विश्वकर्मा और ब्रह्मा के वृक्ष से धर्म हुए। उनके पुत्र शम, काम और हर्ष थे। शम की पत्नी प्राप्ति, काम की रति और हर्ष की नन्दा हुई। त्वष्टा-पुत्री अश्विनी से सूर्य द्वारा अश्विद्वय हुए। ब्रह्मा के हृदय से भृगु और भृगु के पुत्र दैत्यगुरु शुक्राचार्य और च्यवन हुए। च्यवन के मनु-पुत्री से और्व, और्व

के ऋचीक, ऋचीक के जमदग्नि और जमदग्नि के चार पुत्र हुए, जिनमें सब से छोटे परशुराम थे। ब्रह्मा के दो पुत्र धाता, विधाता और हुए, जिनकी बहिन लक्ष्मी के आकाशचारी अश्व मानस पुत्र हैं। शुक्र की पुत्री वरुण को विवाही गई, उससे बल नामक पुत्र और सुरा नामककी पुत्री हुई।

तदनन्तर, क्षुधा से व्याकुल हुई प्रजा एक-दूसरे को खाने लगी तो उससे अधर्म उत्पन्न हुआ, उसकी पत्नी निर्ऋति से राक्षस तथा भय, महाभय और मृत्यु की उत्पत्ति हुई। मृत्यु के स्त्री,पुत्र कुछ नहीं है। कश्यप की पत्नी ताम्रा से काकी आदि पाँच पुत्रियाँ हुईं, जिनसे उलूक, बाज, कुक्कुट, गिद्ध, हंस, तोते आदि हुए। कश्यप की पत्नी क्रोधा से मृगी आदि नौ कन्याएँ हुईं, जिनसे मृग, हाथी, वानर, लंगूर, सिंह आदि हुए। उन पाँचों में से सुरभि से रोहिणी आदि चार पुत्रियाँ हुईं, जिनसे गौएँ, घोड़े, खर्जूर, ताल, सुपारी, नारियल आदि के वृक्ष हुए। कश्यप की पत्नी विनता से अरुण और गरुड़ तथा कद्रू से सर्प हुए। अरुण के दो पुत्र थे सम्पति और जटायु। हे राजन्! यह सब प्राणियों का उत्पत्ति-वृत्त है। अब अंशाव तारों का वर्णन सुनो—विप्रचित्ति दैत्य जरासन्ध नामक राजा हुआ। हिरण्यक शिपु शिशुपाल और संह्लाद शल्य हुआ। अनुह्लाद धृष्टकेतु, शिवि द्रुम, वाष्कल भगदत्त, अयःशिरा, अश्वशिरा, अयःशंक, गगनमूर्द्धा और वेगवान यह पाँचों दैत्य केकय देश के प्रमुख-प्रमुख राजा हुए। अश्वग्रीव रोचमान, सूक्ष्मासुर वृहद्रथ, तुहुण्ड सेनाविन्दु, मयूरासुर विश्व, वृत्रासुर मणिमान, क्रथनासुर सूर्याक्ष और कालनेमि कंस हुआ।

हे राजन्! द्रोणाचार्य वृहस्पति के अंश से और इनके पुत्र अश्वत्थामा शिव, यम, काम और क्रोध के अंश से हुए। वशिष्ठ के शाप से आठों वसु गंगा के गर्भ से शान्तनु के पुत्र हुए, इनमें

आठवें भीष्म थे। इन भीष्म पितामह ने परशुराम से युद्ध किया था। कृपाचार्य रुद्रों के अंश से, शकुनि द्वापर के अंश से, सात्यकि द्रुपद और पाण्डु मरुद्गण के अंश से, व्यासपुत्र धृतराष्ट्र हंस नामक गंधर्वराज के अंश से, विदुर अत्रि के अंश से और दुर्योधन कलियुग के अंश से उत्पन्न हुए थे। धृतराष्ट्र ने अपने सौ पुत्रों का विवाह श्रेष्ठ क्षत्रिय राजाओं की कन्याओं से करके अपनी पुत्री दुःशला का विवाह सिन्धु-नरेश जयद्रथ के साथ कर दिया। सोम के प्रतापी पुत्र वर्चा अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु हुए। अग्नि के अंश से धृष्टद्युम्न, राक्षस के अंश से शिखण्डी, विश्वेदेवाओं के अंश से द्रौपदी के पाँचों पुत्र हुए। वसुदेव के पिता शूरसेन की पुत्री कुन्ती राजा कुन्तिभोज के पास पुत्रीवत् रहती थी, क्योंकि कुन्तिभोज निःसंतान थे, इसलिए शूरसेन ने अपनी प्रथम सन्तान उन्हें देने का वचन दिया था। एक बार राजा कुन्तिभोज के यहाँ दुर्वासा ऋषि आये। उन्होंने कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर एक मंत्र देते हुए कहा कि इसके द्वारा तुम जिस देवता का आवाहन करोगे, वह तुम्हें पुत्र देगा। दुर्वासा के चले जाने पर कुन्ती ने कौतूहलवश सूर्य का आवाहन किया तो सूर्य भगवान् तुरन्त आये और कुन्ती में गर्भ धारण कर चले गए वही गर्भ महा तेजस्वी, कवच, कुण्डल धारण किये हुए कर्ण नाम से उत्पन्न हुआ। भयवश कुन्ती ने उसे नदी में फेंक दिया तो उस बहते हुए बालक को अधिरथ नामक सूत ने निकाल लिया। उसकी पत्नी राधा ने उस बालक का पालन करते हुए वसुषेण नाम रखा। उसने शीघ्र ही सब वेद वेदांग, धनुर्विद्या और शस्त्र विद्या सीखली। तब इन्द्र ने उसे प्रबल जान कर अपने पुत्र अर्जुन के हितार्थ ब्राह्मण वेश रख कर उससे वे दिव्य कवच और कुण्डल माँग लिये। और फिर प्रसन्न होकर एक शक्ति प्रदान करते हुए कहा कि वत्स! युद्ध में तुम सहज में न जीते जा सकोगे। यह महाप्रतापी कर्ण दुर्योधन के परम प्रिय मन्त्री हुए।

हे राजन् ! भगवान् नारायण के अंशावतार श्रीकृष्ण हुए। बलरामजी शेषनाग के अंश और प्रद्युम्न सनत्कुमार के अंश थे। श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियाँ अप्सराओं के अंश से उत्पन्न थीं। लक्ष्मी के अंश से रुक्मिणी, इन्द्राणी के अंश से द्रौपदी, सिद्धि और धृति देवियों के अंश से कुन्ती और माद्री तथा मति के अंश से सुबलपुत्री गान्धारी हुई, जो राजा धृतराष्ट्र की पति-व्रता पत्नी थी।

देवयानी ययाति का विवाह वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! प्राचीन बर्हि के दस पुत्र हुए, उन्होंने मुख से अग्नि प्रकट कर सब वृक्षों और वनस्पतियों को भस्म कर दिया। उनके पुत्र दक्ष से ही सम्पूर्ण प्रजा उत्पन्न हुई। उन्होंने एक सहस्र पुत्रों को जन्म दिया, जिन्हें नारद ने ज्ञान देकर विरक्त बना दिया। तब दक्ष ने पचास कन्याएँ उत्पन्न की, जिन्हें पुत्रिका धर्म के अनुसार विवाह दिया। कश्यप ने इन्हीं दक्ष की कन्या से इन्द्रादि देवता तथा सूर्य को जन्म दिया। सूर्य के पुत्र मनु और यम हुए। मनु वंश ही मानव कहा जाता है। वैवस्वत मनु के वेन, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारूष, शर्याति, पृषध्र और नाभारिष्ट नामक नौ पुत्र और इला नाम की एक कन्या हुई। यही इला बाद में पुरुष होगई। इला के गर्भ से बुध के पुत्र पुरूरवा हुए, जिन्होंने मद के कारण ब्राह्मणों पर अत्याचार किये और उनके शाप से नष्ट होगए। पुरूरवा के उर्वशी से आयु आदि छः पुत्र हुए। आयु के ज्येष्ठ पुत्र नहुष बड़े प्रतापी और धर्मज्ञ राजा हुए। इन्होंने दस्युओं का दमन कर उनसे ऋषियों को 'कर' दिलाया। एक बार इन्होंने ऋषियों से सवारी उठाने का कार्य भी लिया। नहुष के छः पुत्र हुए यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव। इनमें से यति ब्रह्मस्वरूप मुनि और ययाति राजा हुए। इनकी पत्नी देवयानी और शर्मिष्ठा

थीं। देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पूरु हुए। ययाति ने अपनी वृद्धावस्था देख कर अपने पुत्रों से युवावस्था माँगी, किन्तु चार ने तो इंकार कर दिया और सब से छोटे पुत्र ने स्वीकार कर लिया। तदनन्तर बहुत काल तक भोगरत रह कर राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और पूरु को युवावस्था लौटा कर और उससे वृद्धावस्था लेकर तथा पूरु को ही राज्य देकर ययाति भृगुतुंग पर्वत पर तप करने चले गए और पूरु का वंश पौरव नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यह सुन कर जनमेजय बोले—भगवन्! मैं ययाति का चरित्र विस्तार से सुनना चाहता हूँ। तब वैशम्पायनजी ने कहा—एक समय देव-दानव में देवताओं ने वृहस्पति को और दैत्यों ने शुक्राचार्य को अपना-अपना पुरोहित बनाया। मरे हुए दैत्यों को शुक्राचार्य अपने मंत्र से जीवित कर देते, जबकि मृत देवताओं को बृहस्पति जीवित नहीं कर सकते थे। इससे भयभीत हुए देवता बृहस्पति के पुत्र कच के पास जाकर बोले–हे कच! हमारी रक्षा करो। शुक्राचार्य के पास जाकर मृत-संजीवनी विद्या सीखो, जिसके द्वारा हमारी रक्षा हो सके। हम तुम्हें भी यज्ञभाग देंगे। तब कचने शुक्राचार्य के पास पहुँच कर उनसे अपना शिष्य बनाने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य ने प्रसन्नता पूर्वक उस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और कच को दीक्षा दी। तब कच शुक्राचार्य और उनकी पुत्री देवयानी की मनोयोग पूर्वक सेवा करने लगे। एक दिन कच वन में गौएँ चराने गये, उन्हें दैत्यों ने मार कर खण्ड-खण्ड किया और हिंसक जीवों को खिला दिया। सायंकाल जब गौएँ लौट आईं तब कच को न लौटा देख कर देवयानी ने पिता से कहा कि कच अभी तक नहीं लौटा, लगता है कि किसी ने उसकी हत्या कर दी। यह सुन कर शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या का प्रयोग करते हुए उसे पुकारा तो वह तुरंत जीवित होकर आ गया। कुछ काल के पश्चात् देवयानी ने उसे पुष्प लेने

के लिए वन में भेजा तब दैत्यों ने उसके शरीर को चूर्ण करके समुद्र में डाल दिया। उसे लौटता न देख कर देवयानी ने पुनः शुक्राचार्य जी पर अपनी शंका प्रकट की और उन्होंने अपनी विद्या के बल से पुनः जीवित कर उपस्थित कर दिया।

तदनन्तर दैत्यों ने उसे फिर पकड़ कर भस्म कर दिया और उस भस्म को मदिरा में घोल कर शुक्राचार्य जी को पिला दिया। कच को न आया देख देवयानी ने पिता से पुनः उसे बुलाने का निवेदन किया तो वे बोले—बेटी ! जब उसकी मृत्यु ही आगई है तो कब तक बचाया जा सकता है ? किन्तु देवयानी ने अधिक हठ की तो उन्होंने पुनः विद्या-बल का प्रयोग कर कच को पुकारा तो वे उन्ही के उदर में से बोले। शुक्राचार्य ने आश्चर्य से पूछा- तुम कहाँ से बोलते हो ? उसने कहा आपके उदर में से। दैत्यों ने मुझे जला कर मेरी भस्म मदिरा में मिला कर आपको पिला दी थी। अब शुक्राचार्यजी सोचने लगे कि यह बाहर कैसे निकले ? यदि कोख फाड़ कर निकाला जाय तो मेरी मृत्यु हो जायगी। फिर उन्होंने कच से कहा—कच ! तुम्हें देवयानी बहुत चाहती है, इसलिए मैं तुम्हें पुत्र के समान मान कर मृतसंजीवनी विद्या प्रदान करता हूँ। किन्तु, देखो शिष्य धर्म से विपरीत आचरण न करना। मेरे देह से बाहर आकर मुझे जीवित कर देना।

हे राजन् ! गुरु से मृत संजीवनी विद्या प्राप्त कर कच गुरु की कोख फाड़ कर बाहर निकले और उसी विद्या के प्रभाव से उन्हें जीवित कर दिया। फिर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त गुरु के समीप रहने के पश्चात स्वर्ग लोक के लिए चलने लगे, तब देवयानी ने उनसे प्रणय निवेदन किया। कच ने कहा—देवयानी ! तुम गुरु पुत्री हो, इस लिए मेरी धर्म की बहिन और पूजनीया हो। मैं तुम्हारे साथ विवाह कदापि नहीं कर सकता। इस पर देवयानी क्रुद्ध हो गई, उसने शाप दिया—कच ! तुमने मेरे उपकारों पर

ध्यान न देकर मुझे ठुकरा दिया है, इसलिए तुम्हें यह संजीवनी विद्या सिद्ध नहीं होगी। यह सुन कर कच ने भी शाप दे दिया कि तुम्हारा विवाह किसी ऋषिकुमार से न होगा। मैं यह विद्या किसी अन्य को देकर उसे सिद्ध करा दूँगा। यह कह कर कच स्वर्ग जा पहुँचे और उन्होंने वह विद्या सब देवताओं को सिखा दी। तब देवताओं ने दैत्यों पर जोरदार आक्रमण कर दिया।

हे राजन् ! मार्ग में इन्द्र ने एक सरोवर में घुस कर जल-विहार करती हुई कुछ कन्याओं को देखा, जिनके वस्त्र तट पर रखे थे। इन्द्र ने वायु बन कर उन वस्त्रों को एकत्र कर दिया और जब कन्याएँ बाहर निकलीं तब शीघ्रता में जिसे जो वस्त्र मिला उसने वही पहिन लिया। इस प्रकार देवयानी के वस्त्र शर्मिष्ठा ने और शर्मिष्ठा के वस्त्र देवयानी ने पहिन लिये। तब दोनों में भारी झगड़ा हुआ। देवयानी ने कहा—तू मेरे पिता के शिष्य की पुत्री है, मेरे कपड़े कैसे पहिन लिये ? शर्मिष्ठा बोली–तेरे पिता मेरे पिता के समक्ष वन्दीजनों के समान गुणगान किया करते हैं, तू दरिद्र की कन्या मेरा क्या कर सकती है। कहाँ मैं राजकुमारी और कहाँ तू भिक्षुकी ? यह कह कर शर्मिष्ठा ने देवयानी को एक सूखे कुएँ में धकेल दिया। तभी राजा ययाति उस कुए पर जल पीने की इच्छा से पहुँच कर झाँक कर देखने लगे कि जल है या नहीं, तो उन्हें तेजस्विनी कन्या देवयानी दिखाई दी। उन्होंने परिचय पूछा और उसके रूप की प्रशंसा करने लगे। देवयानी ने सब वृत्तान्त यथावत कह दिया। तब राजा ने उसका दाँया हाथ पकड़ कर कुएँ से निकाल लिया और फिर उसे विप्रकन्या जान कर वहीं बैठी छोड़ कर चले गये। उधर शुक्राचार्य की दासी उसे खोजती हुई वहाँ आ पहुँची तो उसने कहा कि मैं वृषपर्वा के नगर में पाँव भी नहीं रखना चाहती, तू पिताजी को यह बात बता दे।

दासी से समाचार प्राप्त कर शुक्राचार्य शीघ्र ही उसके पास गये और देवयानी को अनेक प्रकार से समझाने लगे। किन्तु पुत्री ने कहा कि पिताजी ! कुलीनता का अनादर करने वालों के मध्य कभी नहीं रहना चाहिए शर्मिष्ठा के वचन-बाणों से मेरा तो हृदय दग्ध हो चुका है। यह सुन कर शुक्राचार्य वृषपर्वा के पास जाकर बोले—दैत्यराज ! अधर्म का फल धीरे-धीरे ही प्रकट होता है। दैत्यों ने मेरे घर रहते हुए कच को कई बार मार दिया। आज तुम्हारी पुत्री ने मेरी पुत्री का मार दिया होता। अब इस राज्य में रहने में हमें अपनी कुशल नहीं दिखाई देती। यह सुन कर वृषपर्वा ने शुक्राचार्य की बहुत अनुनय-विनय की, तब वे बोले—राजन् ! तुम देवयानी को प्रसन्न कर लो, तभी मैं यहाँ रह सकता हूँ। यह कह कर वृषपर्वा तुरन्त देवयानी के पास जाकर उसे मनाने लगा, तब वह बोली—दैत्यराज ! मैं जहाँ विवाही जाऊँ, वहाँ शर्मिष्ठा भी सहस्र सेविकाओं के साथ मेरी दासी होकर रहे तो मैं आपकी बात मान सकती हूँ।

वृषपर्वा ने शर्मिष्ठा को बुला कर देवयानी की माँग बताई तो शर्मिष्ठा ने कहा—मेरे दोष से शुक्राचार्यजी यहाँ से न जाँय, मैं देवयानी की इच्छा पूर्ण करने को तत्पर हूँ। यह सुन देवयानी नगर में प्रविष्ट हुई। फिर एक दिन देवयानी के साथ शर्मिष्ठा और उसकी सहस्र दासियाँ उसी वन में गईं। दैवयोग से राजा ययाति भी शिकार खेलते हुए वहाँ पहुँच गए। उन्होंने उन सब को देखकर परिचय पूछा तो देवयानी ने कहा—हे राजन् ! मैं शुक्रपुत्री देवयानी हूँ और यह मेरी सखी एवं दासी शर्मिष्ठा दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री है। अब आप बताइये कि कौन हैं ? ययाति बोले—मैं राजा ययाति हूँ। मृगया के लिये वन में आया था और अब जल की खोज में भटक रहा हूँ। तब देवयानी ने उनसे प्रणय निवेदन करते हुए कहा कि मैं अपनी दासी शर्मिष्ठा के सहित आपकी होना चाहती हूँ। उस दिन कुएँ से निकालते

समय आप मेरा हाथ भी पकड़ चुके हैं, इसलिए क्षत्रिय-ब्राह्मण का विचार छोड़ कर मुझे अपनाइये। तब राजा ने कहा कि तुम्हारे पिता तुम्हें मुझे देंगे तो मैं स्वीकार कर लूँगा।

तब देवयानी ने अपने पिता को वहीं बुला लिया। उन्होंने देवयानी की बात का अनुमोदन कर उसे ययाति को सौंपते हुए कहा—राजन् ! तुम इसके साथ प्रसन्नता से विवाह करो, तुम सुखी होगे। देखो, शर्मिष्ठा का भी निरादर न करना, पर इसे पर्यंकभागिनी मत बनाना। इस प्रकार देवयानी के साथ राजा ययाति का विधिवत् विवाह हुआ और वह सहस्र कन्याओं के सहित दासी शर्मिष्ठा एवं बहुत-से धन के साथ विदा की गई।

राजा ययाति का वृत्तान्त

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! राजा ययाति ने देवयानी को अन्त:पुर स्थित अत्यन्त वैभवशाली भवन में और शर्मिष्ठा को वन के निकट एक भवन में दासियों के सहित रखा। देवयानी के एक पुत्र होगया, यह देख कर एक दिन ऋतुस्नाता शर्मिष्ठा ने भी अशोक वन के एकान्त में घूमते हुए राजा से गर्भाधान की याचना की। तब राजा उसकी इच्छा पूर्ण करके चले गये। इससे शर्मिष्ठा ने भी सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। जब यह बात देवयानी को ज्ञात हुई तब वह सोचने लगी कि शर्मिष्ठा ने यह पाप-कर्म कैसे कर डाला। हे महाराज ! ययाति के देवयानी से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्र हुए। अन्त में देवयानी को यह ज्ञात हो गया कि शर्मिष्ठा के यह तीनों पुत्र राजा ययाति से ही उत्पन्न हुए हैं, तब उसने राजा से कहा कि तुमने मेरा बहुत अप्रिय और निरादर किया है, अब मैं यहाँ नहीं रह सकती। यह कह कर रोती हुई देवयानी ने पिता के पास जाकर सब बात कही, जिससे कुपित हुए शुक्राचार्य ने ययाति को शीघ्र ही वृद्ध

होने का शाप दिया। तो ययाति ने कहा कि भगवन् ! ऋतुस्नाता स्त्री का निरादर भ्रूणहत्या से कम नहीं है, इसलिए धर्म समझ कर ही मैंने उसकी इच्छा पूर्ण की थी। इसलिए आप प्रसन्न होकर ऐसा उपाय कीजिए कि मैं वृद्ध न होऊँ। शुक्राचार्य बोले—राजन् ! तुम चाहो तो किसी से युवावस्था लेकर सुख भोग कर सकते हो।

यह सुन कर ययाति ने अपने पुत्रों से युवावस्था माँगी तो उनमें से पूरु ने राजा की बात स्वीकार कर वृद्धावस्था ले ली। राजा ययाति दीर्घकाल तक विषय भोगों में लगे रहे, तब एक दिन अकस्मात् उनमें वैराग्य-भावना उदय हुई और वे पूरु को युवावस्था और राज्य देकर तथा अपना बुढ़ापा उससे लेकर वन में चले गए। वहां उन्होंने एक हजार वर्ष तक तपस्या कर स्वर्ग-लोक को गमन किया। किन्तु वहाँ का सुख बहुत काल तक नहीं भोग सके। एक दिन इन्द्र भवन में बैठे हुए ययाति इन्द्र से बातें कर रहे थे। तभी इन्द्र ने उनसे पूछा—हे महाराज ! तुमने किस के समान तप किया था ? ययाति बोले—देव, मनुष्य, गन्धर्व, महर्षि आदि में कोई भी तो ऐसा नहीं दिखाई देता, जिसने मेरे समान तप किया हो। इन्द्र ने कहा—तुमने बिना जाने दूसरे लोगों का अपमान किया है, इससे पुण्य क्षीण होने के कारण तुम अभी देवलोक से गिर जाओगे। ययाति ने कहा–यदि गिरना ही है तो साधु-मण्डली में ही गिरूँ, ऐसी कृपा करिये। इन्द्र बोले—हाँ, तुम साधु-मण्डली में ही गिरोगे।

वैशम्पायनजी बोले–हे राजन् ! राजर्षि अष्टक ने ययाति को स्वर्ग से गिरता देखा तो पूछने लगे कि तुम इन्द्र के समान तेजस्वी कौन हो ? किसके पुत्र हो ? देवलोक में क्यों गये थे ? अब तुम साधु-मण्डली में स्थित हो जाओ। ययाति ने उन्हें अपना परिचय दिया तो अष्टक बोले—राजन् ! आप किस-किस लोक में

कितने-कितने समय तक रहे, यह बताओ। ययाति ने बताया कि मैं एक हजार वर्ष इन्द्रपुरी में, एक हजार वर्ष ब्रह्मलोक में और कुछ काल तक कैलास पर रहा। फिर दस हजार शतियों तक नन्दन कानन में अप्सराओं से विहार करता रहा। तभी गिरो, गिरो, गिरो, का शब्द सुनाई दिया और मैं वहाँ से गिरने लगा। अब जब तक आप लोगों का वार्तालाप चल रहा है, तभी तक यहाँ ठहरा हूँ, फिर मुझे पृथिवी पर जाना होगा। अष्टक बोले—आप नीचे न गिरें। यदि मेरे द्वारा उपार्जित पुण्यलोक हों उन्हें मैं आपके लिए देता हूँ। ययाति ने कहा—मैं क्षत्रिय हूँ, दान नहीं लिया करता। तब प्रतर्दन, वसुमान, शिवि आदि राजाओं ने अपने पुण्य लोक देने का प्रस्ताव किया तो ययाति ने उन्हें भी स्वीकार नहीं किया। तब अष्टक बोले—राजन् ! आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं ? यदि आप हमारे द्वारा प्रदत्त पुण्य लोकों को नहीं लेना चाहते तो हम सब अपना पुण्य आपको देकर भौम नरक में चले जाँयगे।

ययाति बोले–हे अष्टक ! मैं नहुष का पुत्र ययाति तुम्हारा नाना हूँ। अब हम सभी ने निष्पाप होकर स्वर्ग को जीत लिया है, इसलिए साथ-साथ ही वहाँ चलेंगे। इस प्रकार उन सब के साथ राजा ययाति भी स्वर्ग में पुनः पहुँच गये।

दुष्यन्त और शकुन्तला का वृत्तान्त

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! पूरु वंश में राजा दुष्यन्त अत्यन्त प्रतापी हुए। उनके राज्य में प्रजा बड़ी सुखी थी। राज्य में सर्वत्र धर्म ही धर्म दिखाई देता था। एक दिन वे शिकार खेलने के लिए वन में गए और मृगों का पीछा करते हुए तपोवन में जा पहुँचे। वहीं महर्षि कण्व का आश्रम दिखाई दिया। राजा ने अपने साथियों को बाहर ही छोड़ कर आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ ऋषि नहीं थे, किन्तु एक अत्यन्त सुन्दरी

कन्या ने बाहर आकर राजा का स्वागत-सत्कार किया। राजा उस कन्या पर मोहित होकर पूछने लगे—महर्षि तो ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं, तुम उनकी कौन हो? शकुन्तला बोली—महाराज! एक ऋषि द्वारा प्रश्न करने पर मेरे पिता कण्व ने उत्तर दिया था कि मेनका नामक अप्सरा के गर्भ से विश्वामित्र द्वारा इस कन्या की उत्पत्ति हुई है। एक बार विश्वामित्र के घोर तप से डर कर इन्द्र ने मेनका को उनके पास भेजा था, तब मुनि का ध्यान भंग होने पर मुनि कामार्त हो उठे और मेनका उनके पास रहने लगी।

दुष्यन्त बोले—मैं पहले ही समझ गया था कि ब्राह्मण की पुत्री नहीं हो। इसलिए हम-तुम गंधर्व-विवाह कर लें। शकुन्तला बोली—मैं इसे तो स्वीकार कर लूँगी, किन्तु आपको यह वचन देना होगा कि मेरे गर्भ से आपका जो पुत्र होगा, वही राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। राजा ने उसकी बात मान कर गन्धर्व-विवाह विधि से उसे अपनाया और शीघ्र बुलाने का वचन देकर चले गए। फिर जब कण्व आये तो शकुन्तला लज्जावश उनके सामने न आ सकी। तब महर्षि ने अपने दिव्य ज्ञान से सब वृत्तान्त जान कर उसके गन्धर्व-विवाह का अनुमोदन किया। समय आने पर शकुन्तला ने एक साधारण तेजस्वी बालक को जन्म दिया। महर्षि ने उसका जातकर्म संस्कार किया और वह सिंहों को वश में कर लेता था इसलिए उसका सर्वदमन नाम रखा।

तदनन्तर महर्षि कण्व ने शिष्यों को आज्ञा दी कि विवाहिता स्त्रियों को बहुत काल तक पिता के घर नहीं रहना चाहिए इसलिए पुत्री को उसके घर पहुँचाना उचित है। यह सुन कर शिष्य गण, शकुन्तला और उसके बालक को लेकर हस्तिनापुर पहुँचे। उन्होंने राजा से कहा कि यह आपकी स्त्री और पुत्र हैं।

महर्षि कण्व ने उन्हें भेजा है। राजा ने अनजान बन कर कहा--कैसी स्त्री, कैसा बालक? मुझे तो कुछ भी याद नहीं है। इस लिए मैं न तो तुझे जाने को कहता हूँ, न रोकता हूँ। यह सुनकर शकुन्तला अत्यन्त अधीर और अचेत-सी हो गई, उसके नेत्र लाल होगए, अधर पकड़ने लगे, वह तीक्ष्ण दृष्टि से राजा को ताकने लगी। फिर क्रोध और क्षोभ मिश्रित वाणी में बोली—महाराज! आपको सब याद है, फिर भी आप ऐसा कह रहे हैं। आप अपने आत्मा को मिथ्यात्व के पंक में मत डालिये। देखिये, मुझ पतिव्रता का तिरस्कार आपको शोभा नहीं देता। यदि आप मेरे वचनों पर ध्यान न देंगे तो आपके शिर के सौ खण्ड हो जाँयगे। इस पुत्र को देखिये, बिल्कुल आपका ही रूप है। आपने कण्व आश्रम में मुझ से गान्धर्व विवाह किया था। यदि आप मुझे नहीं रखना चाहते तो अपने इस प्रतापी पुत्र को तो रख लीजिए।

हे राजन्! यह कह कर शकुन्तला पुत्र को छोड़ कर चलने को हुई, तभी आकाशवाणी ने कहा--महाराज! शकुन्तला का निरादर न करिये। यह आपकी पतिव्रता पत्नी है तथा यह पुत्र भी आपका ही है। यह बालक 'भरत' नाम से प्रसिद्ध होगा, तब दुष्यन्त ने प्रसन्न होकर मन्त्रियों से कहा—आप आकाशवाणी को सुन चुके हैं। मैं इस बालक को अपना पुत्र जानता हूँ, किन्तु शकुन्तला के कथन मात्र से रख लेने से लोक-निन्दा हो सकती थी। यह कह कर राजा ने पुत्र को गोद में उठा लिया और शकुन्तला को आदर पूर्वक रनिवास में रखा।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! दुष्यन्त के पुत्र भरत अत्यन्त प्रतापी राजा हुए। उन्होंने दिग्विजय कर धर्म पूर्वक राज्य चलाया और बड़े-बड़े यज्ञ किये। उनके तीन रानियों से तीन-तीन पुत्र हुए किन्तु कोई भी उनके समान नहीं था। राजा को असंतुष्ट देखकर रानियों ने स्वयं ही उन बालकों को मार

डाला। फिर भरद्वाज की कृपा से भुमन्यु नामक एक पुत्र की प्राप्ति हुई। भुमन्यु की पत्नी पुष्करिणी के छः पुत्र हुए उनमें ज्येष्ठ पुत्र सुहोत्र राजा हुआ। सुहोत्र ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये। उनके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र अजमाढ़ को राज्य मिला। उनके वंश के सभी राजा अजमीढ़ कहलाने लगे।

शान्तनु का गंगा और सत्यवती को पत्नी बनाना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इक्ष्वाकु वंश में महाभिषक् नामक सत्यवादी राजा हुए थे। उन्होंने ब्रह्माजी को राजसूय यज्ञ द्वारा प्रसन्न किया और अन्त में स्वर्ग में गये। एक बार ब्रह्माजी की सभा में सब देवता, राजर्षि और महाभिषक् भी बैठे थे, तभी सुन्दरी स्त्री के रूप में गंगाजी वहाँ आईं, जिनकी ओर महाभिषक् निर्निमेष नेत्रों से देखते रहे। ब्रह्माजी ने उनकी अशिष्टता देख कर क्रोध पूर्वक कहा कि पृथिवी पर जाओ, कुछ दिन बाद यहाँ आना। यह गंगा तुम्हारा अप्रिय करेगी, तब तुम शाप-मुक्त होगे। यह सुन कर महाभिषक ने प्रार्थना की कि पृथिवी पर जाकर मैं राजा प्रतीप का पुत्र बनूँ।

तभी गंगा ने देखा कि आठों वसु स्वर्ग से गिर रहे हैं। कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि हम वसिष्ठ को प्रणाम किये बिना ही आगे से जा रहे थे कि उन्होंने हमको मनुष्य-योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। इसलिए तुम मानवी बन कर हमें जन्म दो। गंगा ने यह स्वीकार कर लिया। इधर महाराज प्रतीप गंगा तट पर घोर तप कर रहे थे, तभी लुभावने रूप में गंगाजी उनकी दाँयीं जाँघ पर जा बैठीं और प्रणय निवेदन करने लगीं। तब प्रतीप ने कहा—सुन्दरी! मैं परनारी को नहीं स्वीकार कर सकता। फिर तुम तो मेरी दाँयी जाँघ पर आ बैठी हो। यह स्थान पत्नी के बैठने का नहीं, वरन् बहू-बेटियों के बैठने का है। इसलिए तुम्हें पुत्रवधु बनाना उचित हो सकता है।

गंगाजी बोलीं—आप धर्मज्ञ की आज्ञानुसार मैं आपकी पुत्रवधु होना स्वीकार करती हूँ। किन्तु हे महाराज! आपका पुत्र मेरे किसी कार्य में पूछताँछ करने का अधिकारी नहीं होगा। यह कह कर गंगाजी अन्तर्धान होगईं।

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! राजा प्रतीप निःसंतान थे, वे पुत्र होने की प्रतीक्षा में तपस्या करते रहे, तब उनके बुढ़ापे में महाभिषक् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम शान्तनु भी था। राजा ने उसके वयस्क होने पर कहा—पुत्र! तुम्हारे जन्म से पहिले ही एक देवांगना मेरी पुत्रवधु होने के उद्देश्य से यहाँ आई थी, उसकी यह शर्त है कि वह जो भी कार्य करे, उसके विषय में उससे कुछ पूछताँछ न की जाय। तदनन्तर राजा अपने पुत्र को राज्य सोंप कर वन में गये। राजा शान्तनु एक दिन गंगातट के समीपस्थ वन में विचर रहे थे, तभी उन्हें एक अति सुन्दरी दिव्य युवती वहाँ दिखाई दी। उसने राजा से कहा—महाराज! मैं आपकी आज्ञाकारिणी रानी रहूँगी। पर आप मेरे किसी प्रिय या अप्रिय कार्य में हस्तक्षेप न करेंगे, अन्यथा मैं चली जाऊँगी। राजा ने उसकी बातें मान लीं और उसके साथ इच्छित विहार करने लगे। उसके आठ पुत्र हुए, किन्तु वह प्रत्येक प्रसव के पश्चात् बालक गंगा में बहा देती। राजा ने छोड़ कर चली जाने के डर से उससे कुछ भी न कहा। पर, जब वह आठवें पुत्र को बहाने लगी, तभी राजा बोले—इस पुत्र को मत मारो। तुम क्यों अपने बालकों की इस प्रकार हत्या कर देती हो, तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो?

गंगा बोली—महाराज! इस पुत्र को नहीं मारूँगी। इसे आप अपने पास रखें। अब तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग होगई, इसलिए मैं जारही हूँ। देखो, तुम्हारे यह पुत्र आठ वसु थे, जो आपव ऋषि के शाप से मनुष्य योनि में उत्पन्न हो गये थे। एक बार उनकी नन्दिनी नाम की कामधेनु को अपनी पत्नी की प्रार्थना पर

द्यु नामक वसु ने हरण कर लिया था, यह बात ऋषि ने दिव्य दृष्टि से जान ली और वसुओं को शाप दे दिया। उनमें से सात वसु तो अपने लोक को चले गए, किन्तु यह द्यौ नामक वसु बहुत समय तक पृथिवी पर रहेंगे। यह कह कर गंगा अन्तर्धान होगई।

तदनन्तर एक दिन राजा शान्तनु एक मृग का पीछा करते हुए गंगातट पर जा पहुँचे, वहाँ उन्हें एक बालक गंगाजी के प्रवाह को अपने बाणों से रोकता हुआ दिखाई दिया। फिर वह कुमार वहीं अन्तर्धान हो गया। तब उन्होंने गंगाजी से पूछा– देवि ! यह बालक किस का था ? यह सुन कर गंगा सुन्दर स्त्री के रूप में बालक का हाथ पकड़े हुए आकर बोली—राजन् ! यह मेरे गर्भ से उत्पन्न वही आठवाँ बालक है। यह अब वेद-वेदांग और अस्त्र-शस्त्र विद्या में पूर्ण पारंगत हो चुका है। अब इसे आप सँभालिये। यह कह कर गंगा अन्तर्धान होगई और शान्तनु अपने पुत्र को घर ले आये। उन्होंने उसे युवराज बना दिया।

फिर एक दिन राजा यमुना तट पर पहुँचे, जहाँ अद्भुत और दिव्य सुगंध का उन्हें आभास हुआ। वह उसी सुगन्ध की ओर बढ़े तो वहाँ उन्हें एक सुन्दर कन्या दिखाई दी। राजा के पूछने पर उसने बताया कि मैं दाशराज की पुत्री हूँ। उनके आदेश से यात्रियों को पार पहुँचाया करती हूँ। यह सुन कर राजा उस पर मोहित होगए और उन्होंने निषादराज से उसकी याचना की, जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। किन्तु, एक शर्त रखी कि इसका पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी हो। राजा इस शर्त को न मान कर अपने घर लौट आये।

एक दिन युवराज ने उन्हें अत्यन्त उदास देख कर, उनकी चिन्ता का कारण पूछा, किन्तु उन्होंने उसे ठीक उत्तर न दिया। तब उसने पिता के वृद्ध मंत्री के पास जाकर पिता की चिन्ता के विषय में कहा। तब मंत्री ने राजा का सत्यवती पर मोहित

होना और उसके पिता का शर्त रखना आदि वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया। तब युवराज देवव्रत स्वयं दाशराज के पास गये और उससे अपने पिता के लिए सत्यवती को माँगते हुए कहा—दाश-राज ! पिता जी की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। तब दाशराज ने कहा कि आपका पुत्र आपकी इस प्रतिज्ञा का पालन करेगा, इसमें मुझे अत्यंत सन्देह है। इस पर देवव्रत ने कहा—दाशराज ! मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। इस प्रतिज्ञा को सुन कर सभी रोमांचित हो उठे और देवव्रत सत्यवती को रथ पर चढ़ा कर हस्तिनापुर ले आये। तभी से देवव्रत का नाम भीष्म हो गया।

राजा शान्तनु सत्यवती को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। कुछ कालोपरान्त उससे चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। उन्हें बालक छोड़ कर ही राजा चल बसे। भीष्म ने चित्रां-गद को राजगद्दी पर बैठाया। वह चित्रांगद मायावी चित्रांगद नामक गन्धर्व राज के हाथ से मारे गए। तब विचित्रवीर्य राजा बने। उस समय राजा के अवयस्क होने के कारण राज्य की बागडोर भीष्म को सँभालनी पड़ी। तभी उन्होंने सुना कि काशि-राज की तीन कन्याओं का स्वयंवर होगा तो वे वहाँ जाकर तीनों कन्याओं को बल पूर्वक उठा लाये। तब सब राजा उनके पीछे दौड़ पड़े और भीष्म को घेर कर घोर युद्ध करने लगे। किन्तु किसी का कुछ वश न चला। तब महाबली राजा शाल्व उन्हें ललकारने लगा और उनके रुकते ही उसने हजारों बाण चला दिये। किन्तु भीष्म ने निर्भय भाव से वरुणास्त्र चला कर उसे परास्त कर दिया। अब, जब कोई वीर उनके सामने न रहा तो वे राजकुमारियों को लेकर हस्तिनापुर लौट आये।

वहाँ आने पर सब से बड़ी कन्या अम्बा ने भीष्म से कहा—हे धर्मज्ञ ! मैं महाराज शाल्व को अपना पति मानती हूँ और वे

भी मुझे चाहते हैं। अब आप जैसा उचित समझें करे। तब भीष्म ने उस कन्या को स्वतंत्र कर दिया, वह चली गई। फिर अम्बिका और अम्बालिका दोनों के साथ विचित्रवीर्य का विवाह कराया। उन अत्यन्त सुन्दरी कोमलांगियों के भोग में रत रहने के कारण विचित्रवीर्य सात वर्ष में ही क्षीण होकर मृत्यु को प्राप्त हुए। इससे भीष्म भारी शोक में डूब गये और फिर विचित्रवीर्य का अन्तिम संस्कार कराया। उसकी मृत्यु से सत्यवती को और दोनों रानियों को भी बड़ा सन्ताप हुआ।

फिर एक दिन सत्यवती ने भीष्म से कहा—पुत्र ! तुम धर्मावतार हो, इसलिए तुम्हीं इस वंश की डूबती हुई नाव को बचा सकते हो। देखो, काशिराज की यह दोनों पुत्रियाँ पुत्र की कामना करती हैं, तुम भरतवंश की रक्षा के लिए इनके पुत्र उत्पन्न करके धर्म का पालन करो, अथवा अपना विवाह करके ही वंश वृद्धि करो। अन्यथा तुम्हारे अस्त होते ही यह वंश भी समाप्त हो जायगा। हे राजन्। सत्यवती के प्रस्ताव का सभी बन्धु-बान्धवों ने अनुमोदन किया। भीष्म बोले—माता ! यद्यपि आपने धर्म-संगत वचन कहे हैं, किन्तु पुत्र-उत्पन्न न करने या विवाह न करने विषयक जो प्रतिज्ञा मैंने आपके पिता के समक्ष की थी, उसे भूल नहीं सकता। फिर भी मैं आपको क्षत्रिय धर्म विषयक आचरण कहता हूँ।

भीष्म बोले—हे माता ! जब परशुराम ने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन किया, तब ऋतुस्नाता हजारों क्षत्राणियों ने वेद विज्ञ ब्राह्मणों से सन्तान उत्पन्न कराई। वह सन्तान ब्राह्मणों की नहीं, वरन् उन क्षत्रियों की ही मानी गई जिनकी वे पत्नियाँ थीं। एक बार बृहस्पति ने कामवश अपने भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी से रमण किया तो गर्भस्थ बालक ने गर्भ मार्ग में पाँव अड़ा दिये, इससे रुष्ट हुए बृहस्पति ने उसे अंधे होने का शाप दिया। वह बालक दीर्घतमा नामक अंध ऋषि

हुए, जिनके पत्नी पुत्रादि ने हाथ पाँव बाँध कर गंगा में डाल दिया। एक स्थान पर एक धर्मज्ञ राजा बलि स्नान कर रहे थे, उन्होंने ऋषि को निकाल कर पुत्र देने की प्रार्थना की। उन्होंने रानी सुदेष्णा से अंग, वंग, कलिंग, पौण्ड्र और सुह्य नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम पर पाँच देश प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार, हे माता! किसी गुणी ब्राह्मण के द्वारा पुत्र उत्पन्न कराना उचित है।

यह सुन कर सत्यवती ने अपने पुत्र व्यासजी को बुला कर विचित्रवीर्य की रानियों में पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा दी, जिसे स्वीकार कर उन्होंने अम्बिका से धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु और दासी से विदुर को उत्पन्न किया। हे राजन्! अम्बिका ने ऋषि को देख कर नेत्र बन्द कर लिये थे, इसलिए धृतराष्ट्र अन्धे हुए और अम्बालिका भय से पीली होगई थी, इसलिए उसके पुत्र का वर्ण पाण्डु हुआ। पुत्र प्रसव के पश्चात् रानी अम्बिका जब पुनः ऋतुस्नाता हुई, तब सत्यवती ने एक सुन्दर और सब प्रकार से स्वस्थ बालक की इच्छा से उसे पुनः गर्भाधान कराने के लिए प्रेरित किया, जिसे स्वीकार करके भी उसने अपनी दासी को श्रेष्ठ वस्त्रालंकार पहना कर भेज दिया, जिससे परम ज्ञानी और धर्मात्मा पुत्र विदुर की उत्पत्ति हुई थी।

धृतराष्ट्र आदि का जन्म और विवाह

वैशम्पायन बोले—हे महाराज! माण्डव्य नामक विप्र मौन व्रत धारण पूर्वक तप कर रहे थे। एक दिन कुछ चोर राजपुरुषों के भय से चोरी के धन को उनके पास डालकर छिप गये। राजपुरुषों ने उस धन के सहित ऋषि को पकड़ कर राजा के सामने उपस्थित किया। राजा ने उन्हें शूली पर चढ़वा दिया, किन्तु ऋषि की मृत्यु न हुई। यह देख कर राजा ने उन्हें चोर न

जानकर शूली से उतरवाया तो शूली की नोक ऋषि के शरीर में घुसी रह गई। तब एक दिन वे ऋषि धर्मराज के पास जाकर बोले—तुमने मुझ निरपराध को दण्डित कराया था, इसलिए तुम शूद्र-योनि को प्राप्त होगे। इसी शाप के कारण धर्मराज को विदुर के रूप में अवतार लेना पड़ा। हे राजन्! धृतराष्ट्र अन्धे थे, इसलिए पाण्डु राजगद्दी पर बैठ कर धर्मपूर्वक राज्य चलाने लगे।

तत्पश्चात् भीष्म ने राजा सुबल से उनकी पुत्री गान्धारी धृतराष्ट्र के लिए माँगी। गान्धारी ने शिवजी को प्रसन्न कर सौ पुत्रों का वर प्राप्त किया था। उसे ज्ञात हुआ कि मेरा होने वाला पति नेत्रहीन है तो उसने तुरन्त अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। पति परायण गान्धारी पति के यहाँ आकर सबको प्रसन्न रखने लगीं।

हे राजन्! यदुवंश के राजा शूरसेन की कन्या कुन्ती, उनके बुआ के पुत्र राजा कुन्तिभोज के पास पुत्री के रूप में रहती थी। एक दिन दुर्वासा की सेवा करने पर उसे एक श्रेष्ठ मंत्र की प्राप्ति हुई। उसने उस मंत्र से सूर्य का आवाहन किया तो सूर्य से उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। जिसे उसने सन्दूक में बन्द करके बहा दिया। वह सन्दूक सूतपुत्र अधिरथ ने पकड़ ली और उससे निकले हुए बालक वसुषेण का लाड़-चाव से लालन पालन करने लगे। वही बालक कर्ण नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उसी कुन्ती का स्वयंवर रचा गया। राजा पाण्डु भी उस समय वहाँ पहुँचे। कुन्ती ने मोहित होकर उनके कण्ठ में जयमाल डाल दी। कुन्तिभोज ने सानन्द उसका विवाह राजा पाण्डु के साथ कर दिया। फिर भीष्म ने मद्रराज की बहन माद्री के रूप गुण की प्रशंसा सुन कर उसे भी राजा पाण्डु के लिए प्राप्त कर लिया। राजा पाण्डु कुन्ती और माद्री के साथ इच्छित विहार

करने लगे। फिर उन्होंने दिग्विजय का विचार कर देश-विदेश के राजाओं को जीत कर अपने आधीन कर लिया और असीमित धनराशि के सहित अपने नगर में लौट आये। तत्पश्चात् पाण्डु की सहायता से धृतराष्ट्र ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये।

महाराज देवक की दासी से उत्पन्न एक अत्यन्त गुणवती कन्या थी। भीष्म ने उसे विदुर के लिए प्राप्त कर उनका विवाह करा दिया, जिससे उनके कई धर्मात्मा पुत्र हुए। धृतराष्ट्र के गान्धारी से सौ पुत्र और एक वैश्य जाति की पत्नी से एक पुत्र, इस प्रकार एक सौ एक पुत्र हुए। गान्धारी के गर्भ से एक मांस का लोथड़ा-सा उत्पन्न हुआ था, उसने उसे फेंकना चाहा, तभी व्यासजी ने आकर परामर्श दिया कि घृत से परिपूर्ण सौ घड़े मंगा कर रखो और इस मांस-पिण्ड पर ठण्डा पानी छिड़कती रहो। गान्धारी ने वैसा ही किया तो कुछ दिनों में उसके सौ खण्ड पृथक्-पृथक् हो गए। तब एक-एक खण्ड प्रत्येक घड़े में डलवा दिया। दो वर्ष बाद सबसे पहले दुर्योधन और फिर अन्यान्य उत्पन्न हो गए।

हे राजन्! कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर दुर्योधन से बड़े थे। भीम और दुर्योधन एक ही दिन पैदा हुए। दुर्योधन के जन्म के समय बड़े अमंगल सूचक शकुन होने लगे। पन्डितों ने धृतराष्ट्र से कहा कि राजन्! आपका यह पुत्र वंश-नाश का कारण बनेगा। हे जनमेजय गान्धारी एक कन्या भी चाहती थी, इसलिए मांस पिण्ड के सौ खण्ड से एक खण्ड और बच गया था, व्यासजी की कृपा से वह खण्ड कन्या रूप हो गया। इस प्रकार दुःशला की उत्पत्ति हुई।

पाण्डु का अन्त, भीम को विष दिया जाना

वैशम्पायनजी बोले—एक दिन राजा पाण्डु मृगया के लिए बन में घूम रहे थे, तभी उनकी दृष्टि विहाररत मृग-मृगी के जोड़े

पर पड़ी। राजा ने उन पर बाण चलाये, जिनसे मृग रूपी किन्दम ऋषि आहत हो गए। उन्होंने अपना परिचय देने के बाद कहा कि राजन्! तुमने यह अनुचित कार्य किया है, इसलिए जब तुम स्त्रीभोग में तत्पर होगे, तभी मर जाओगे। यह कह कर मृग ने प्राण त्याग दिये, इससे राजा बहुत दुःखित हुए। तत्पश्चात् उन्होंने वन में तप करने का निश्चय किया और अनेक पवित्र पर्वतों पर होते हुए शतश्रृंग पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने घोर तप प्रारम्भ किया।

फिर एक दिन उन्हें ध्यान आया कि मैं पुत्रहीन हूँ मेरी गति कैसे होगी? तब उन्होंने कुन्ती से कहा - प्रिये! तुम आपद्धर्म के अनुसार पुत्रोत्पत्ति के लिए प्रयत्न करो। तुम जानती हो कि मुझे समागम-काल में मृत्यु होने का शाप लगा हुआ है। यह सुन कर कुन्ती ने उनसे कहा—महाराज! महर्षि दुर्वासा ने मुझे एक मंत्र दिया था कि तुम जिस देवता का इसके द्वारा आवाहन करोगी, वह तुम्हें पुत्र देगा। अब आप आज्ञा कीजिए कि मैं किस देवता का आवाहन करूँ। पाण्डु बोले—त्रिलोकी में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्हीं को बुलाओ। तब कुन्ती ने धर्म से युधिष्ठिर को उत्पन्न किया। इसके बाद पाण्डु की आज्ञा से उसने वायु का आवाहन किया, जिससे महाबली भीम की और इन्द्र से अर्जुन की उत्पत्ति हुई।

तदोपरान्त पाण्डु ने कुन्ती से कहा कि प्रिये माद्री के भी सन्तान होनी चाहिए, तब कुन्ती ने माद्री से कहा कि किसी इच्छित देवता का ध्यान करो। माद्री ने अश्विनीकुमारों का ध्यान किया और कुन्ती ने मन्त्र का प्रयोग किया, तभी अश्विनी-कुमार प्रकट हो गए। उनसे माद्री के नकुल और सहदेव ने जन्म लिया।

हे राजन् ! पाण्डु की आयु पूर्ण हो रही थी, इसलिए वे सहसा कामवश होकर माद्री को बुलाने लगे और माद्री के रोकने पर भी राजा समागम में तत्पर हो गए। तभी तत्काल उनकी मृत्यु हो गई। माद्री चीख पड़ी। कुन्ती और पाँचों बालक दौड़े आये। माद्री ने कुन्ती से कहा—बहन ! नकुल-सहदेव की रक्षा का भार तुम्हें सौंपकर मैं पति के साथ जा रही हूँ। यह कह कर माद्री ने भी प्राण त्याग दिये।

कुन्ती उन पाँचों बालकों को साथ लेकर हस्तिनापुर पहुँची। उसे पहुँचाने के लिए हजारों तपस्वी भी साथ आये। उन्होंने आकर कहा कि यह महारानी कुन्ती और महाराज पाण्डु के पाँचों पुत्र हैं। इनका पालन-पोषण तुम्हारा कर्त्तव्य है। हम लोग राजा और माद्री के शव भी साथ ले आये हैं, इनके क्रिया-कर्म की व्यवस्था करो। यह कह कर सभी ऋषिगण अन्तर्धान होगए, इससे सभी को अत्यन्त अचरज हुआ।

तब महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर ने भीष्म के साथ जाकर उनकी अन्त्येष्ठी की। राजभवन, राजसभा और नगर भर में शोक छागया। तदनन्तर व्यासजी ने आकर सत्यवती से कहा—हे माता ! अब सुख के दिन समाप्त होगए, संकट ही संकट दिखाई दे रहा है। पाप की वृद्धि हो रही है। इसलिए आप वन में जाकर तपस्या करो। यह सुनकर सत्यवती ने भीष्म की सम्मति ली और अम्बा, अम्बालिका को भी साथ लेकर वन में प्रस्थान किया।

हे जनमेजय ! पाँचों पाण्डव दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे। उनके बल-कौशल को देखकर दुर्योधन ईर्ष्या करने लगा। उसने भीमसेन को मारने के लिए एक जाल रचा। जल के किनारे बड़े-बड़े तम्बू गढ़वा कर जलविहार की तैयारी की गई। उसमें पांडवों को भी बुलाया गया। वहाँ मीठी-मीठी

बातें करते हुए दुर्योधन ने विषमिश्रित भोजन करा दिया। फिर अधिक विहार के कारण थके और विष से अचेत हुए भीम के हाथ-पाँव बाँध कर गंगा के प्रवाह में धकेल दिया। तब बहते हुए भीम नागलोक में सर्पों के ऊपर जा गिरे। सर्प उनसे लिपट कर काटने लगे, जिससे खिलाया हुआ विष नष्ट होगया। इससे भीम को चेत होगया और उन्होंने हाथ-पाँव फेंककर बन्धन खोल डाले। तभी वहाँ शूरसेन का नाना आर्यक नामक सर्पराज आ गया। वह अपने नाती भीमसेन को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। तब भीमसेन को हजारों हाथियों का बल प्रदान करने वाले कुण्ड का रस पिलाकर बलिष्ठ कर दिया। फिर नागों की प्रसन्नता प्राप्त करके भीम अपनी माता के पास लौट आये और दुर्योधन के कुकर्म की बात बताकर नागलोक का पूर्ण वृत्तान्त कहा।

हे राजन्! महर्षि गौतम के पुत्र शरद्वान् ने तपस्या द्वारा शस्त्रास्त्रों की प्राप्ति की। उनके तप से भयभीत इन्द्र ने जानपदी नाम की अप्सरा उनके पास भेजी। उसे देखकर वे स्खलित हो गए और उनके वीर्य के दो भागों से एक कन्या तथा एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उसी समय राजा शान्तनु उन बालकों को देख कर घर ले आये। उन्होंने बालिका का नाम कृपी और बालक का कृप रखा। इधर शरद्वान् ने तपोबल से उन बालकों का राजा के पास होना जान कर अपना गोत्र आदि उन्हें बता दिया। वेद-वेदांग और शस्त्रास्त्र विद्या में पूर्ण पारंगत वही बालक कृपाचार्य हुए।

हे राजन्! महर्षि भरद्वाज का मन घृताची अप्सरा पर मोहित हो गया और उन्होंने अपने स्खलित हुए वीर्य को द्रोण कलश में रख दिया। उससे द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए। उन्होंने शरद्वान् की कन्या कृपी से विवाह किया। वही द्रोणाचार्य कौरव-पाण्डवों को अस्त्र विद्या सिखाने वाले गुरु हुए। उनके पुत्र

अश्वत्थामा ने जन्म के समय घोड़े जैसा शब्द करके रुदन किया था, इसलिए उसका नाम अश्वत्थामा हुआ।

हे जनमेजय ! द्रोणाचार्यजी हस्तिनापुर में कृपाचार्य के घर गुप्त रीति से रहते थे। उन्होंने बड़े अद्भुत-अद्भुत करिश्मे दिखाये, जिनसे उनकी ख्याति भीष्म तक पहुँची तो वे उन्हें स्वयं जाकर घर लिवा लाये। तब द्रोणाचार्य ने उन्हें बताया कि मैंने और द्रुपद ने एक ही गुरु से शिक्षा पाई है। उस समय द्रुपद कहा करते थे कि तुम मेरे परम मित्र हो, जब मैं राजा हो जाऊँगा तब तुम्हें आनन्द पूर्वक अपने साथ रखूँगा। अब जब कि द्रुपद राजा होगए हैं, तब कहते हैं कि मेरी तुम्हारी मित्रता कैसी ? तब उसकी ओर से निराश होकर ही मैं इस राज्य में आया हूँ। यह सुन कर भीष्म ने द्रोणाचार्य का पूजन किया और उनसे निवेदन किया कि यहाँ रहकर राजकुमारों को धनुर्वेद और दिव्य शास्त्रास्त्रों की शिक्षा दें।

कौरव-पाण्डवों को शस्त्रास्त्र की शिक्षा देना

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! महात्मा द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों को अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। जब वे धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे, तब शिष्यों को एक-एक कमण्डलु और अपने पुत्र अश्वत्थामा को बडा कलश देकर जल लेने भेजते। उनमें अश्वत्थामा ही सबसे पहिले जल लेकर लौटते और अन्य शिष्य देर से आपाते। इसी बीच द्रोणाचार्य अश्वत्थामा को धनुष के उच्च प्रयोग सिखा देते। अर्जुन इस रहस्य को ताड़ गये और वारुणास्त्र के द्वारा शीघ्र कमण्डलु भर कर लौटने लगे। इसलिए वे गुरु पुत्र अश्वत्थामा से किसी बात में कम नहीं रहे।

एक दिन कौरव-पाण्डव राजकुमार वन में मृगया के लिए गये। आगे-आगे उनका कुत्ता चला। उसी वन में काला कुरूप

एकलव्य भी था, जिसे देख कर कुत्ता भोंकने लगा, जिससे रुष्ट हुए एकलव्य ने उसका मुख बाणों से भर दिया। तब वह कुत्ता पाण्डवों के पास भाग आया। उसकी दशा देख कर सब लोग एकलव्य के पास पहुँचे जो कि विकृत वेश में बाण ताने हुए खड़ा था। पाण्डवों के पूछने पर उसने बताया कि मैं निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र और द्रोणाचार्यजी का शिष्य एकलव्य हूँ। पाण्डवों ने वहाँ से लौट कर द्रोणाचार्यजी से सब वृत्तान्त कहा तो वे अर्जुन को साथ लेकर उसके पास पहुँचे। एकलव्य ने उन का पूजन कर कहा—गुरुजी! मै आपका शिष्य एकलव्य हूँ। द्रोण बोले—यदि तुम मेरे शिष्य हो तो मुझे गुरु दक्षिणा दो, उसमें तुम्हारे दाँयें हाथ का अँगूठा मांगता हूँ। यह सुन कर उसने तुरन्त वैसा ही किया, तब उसके बाण-चलाने में वैसी कुशलता न रही।

भीमसेन और दुर्योधन गदा-युद्ध में अत्यन्त निपुण हुए। अस्त्र-विद्या के रहस्य में सबसे अधिक अश्वत्थामा थे। नकुल-सहदेव तलवार चलाने में, युधिष्ठिर रथ-युद्ध में और अर्जुन सभी में निपुण थे। द्रोणाचार्य ने एक दिन उनकी परीक्षा ली। एक नकली गिद्ध वृक्षों पर रख कर उसे निशाना बनाने का निश्चय किया और युधिष्ठिर, दुर्योधन आदि से उसके लक्ष्यवेध के लिए कहा। किन्तु प्रश्नोत्तर में वे आचार्य को सन्तुष्ट न कर सके तो उन्होंने अर्जुन से प्रश्न किया—अर्जुन! तुम गिद्ध को और मुझे देख रहे हो? उसने कहा—मैं केवल गिद्ध का सिर देख रहा हूँ। फिर गुरु का संकेत पाकर अर्जुन ने गिद्ध को बींध दिया। आचार्य बड़े प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि राजा द्रुपद को अर्जुन ही परास्त करेगा।

फिर एक दिन द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के सहित गंगास्नान करने गये, वहाँ एक मत्स्य ने उनकी जाँघ पकड़ ली। अर्जुन ने यह देखा तो तुरन्त उस मत्स्य को बींध दिया। निशाना ठीक

लगा देख कर गुरुजी ने प्रसन्न होकर उन्हें ब्रह्मशिर नामक दिव्यास्त्र प्रदान किया और बोले-यह सम्पूर्ण विश्व को भस्म करने की शक्ति रखता है, इसे मनुष्यों पर कदापि प्रयोग न करना।

तदुपरान्त द्रोणाचार्यजी ने धृतराष्ट्र से कहा—राजन् ! आपके पुत्रों ने पूर्ण विद्या प्राप्त करली है, अब जब आप चाहें तब उनका कौशल देख लें। इस पर धृतराष्ट्र ने कहा—यह आपने अत्यन्त उपकार किया है। हे विदुर ! आचार्य की आज्ञा-नुसार उनका कौशल देखने की व्यवस्था करो। विदुर ने एक समतम भूमि पर रंगमंच तैयार कराया। वह विविध प्रकार सजाया गया। सब ओर यथा योग्य मंच, झरोखे आदि बनाये गये। अन्तःपुर सभी महिलाएँ, राजा और राज पुरुष, आचार्य, मन्त्री, प्रजाजन सभी उस कौशल को देखने के लिए पहुँचे। सभी कुमार अपने-अपने कौशल दिखाने लगे। उनके करतब देख कर सम्पूर्ण सभासद और दर्शक वाहवाह कर उठे।

तदनन्तर भीमसेन और दुर्योधन हाथ में गदा लेकर अपना करतब दिखाने के लिए रंगभूमि में उतरे। उस समय लोग दो पक्ष में होकर कभी दुर्योधन की जय बोलते, कभी भीम की। सब तो वे दोनों अत्यन्त फुर्ती से प्रलय काल के समान झपटने लगे। यह देख कर द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा को आज्ञा दी—पुत्र ! इन दोनों का गदा-कौशल भले प्रकार देख लिया गया, अब आगे कोई बात न बढ़े, इसलिए इन दोनों को तुरन्त रोक दो। तब अश्वत्थामा ने मध्य में खड़े होकर उन्हें रोक दिया।

फिर अर्जुन की बारी आई। उन्होंने अपने अस्त्रों से कभी अग्नि उत्पन्न की, कभी बुझा दी, कभी हवा चलाई, कभी बादल प्रकट किये, कभी लक्ष्यवेध के कौतुक दिखाये। उपस्थित जन समूह उनका जयघोष करने लगा। अर्जुन की सर्वत्र प्रशंसा होती सुन कर दुर्योधन उसे सहन नहीं कर सका। वह अपने भाइयों के सहित आकर ताल ठोंकने लगा, किन्तु द्रोणाचार्य ने

उसे रोक दिया। तभी रंगभूमि में कर्ण आगया। उसने कहा—अर्जुन ! मैं तुमसे भी बढ़ कर कौशल दिखा सकता हूँ। यह कह कर उसने अर्जुन जैसे सभी कार्य कर दिखाये। तब तो दुर्योधन ने उसे गले लगा कर कहा—महाबाहो ! तुम्हारा स्वागत है। इस कुरुराज्य को अपना ही समझ कर उपभोग करो।

तभी अर्जुन बोले—हे कर्ण ! तुम मेरे हाथ से मर कर बिना बुलाये आने वालों के लोकों में जाओगे। तब कर्ण बोला-अर्जुन ! वाद विवाद से क्या लाभ? बाणों से वार्तालाप करो। मैं तुम्हें अभी मारे देता हूँ। ऐसी बातों के बाद दोनों वीर सामने आ गये। यह देख कर कुन्ती बहुत व्याकुल और अचेत होगई। तभी कृपाचार्य बोले—कर्ण ! अर्जुन महाराज पाण्डु के पुत्र हैं, तुम किसके पुत्र हो यह जानने के बाद ही अर्जुन तुम से युद्ध कर सकेंगे। क्योंकि अज्ञात कुल-शील के व्यक्तियों से युद्ध करना अवैध है।

यह सुन कर कर्ण ने शिर नीचा कर लिया, किन्तु दुर्योधन बोला—आचार्य ! यदि अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए राजा ही होना चाहिए तो मैं कर्ण को अंगदेश का राज्य देता हूँ। तभी कर्ण का राज्याभिषेक कर दिया गया। इस समय सारथी अधिरथ वहाँ आया, जिसे देख कर कर्ण ने अपना शिर उसके चरणों में रख कर प्रणाम किया। उसने भी उसे पुत्र कह कर कण्ठ से लगा लिया। इससे भीम जान गये कि कर्ण सूत-पुत्र है। उन्होंने कर्ण से कहा—तुम सूतपुत्र होने के कारण अर्जुन के हाथ से मरण योग्य भी नहीं हो। यह सुन कर दुर्योधन ने कहा—भीम ! यह वचन कहने योग्य नहीं हैं। वीरों और नदियों में जन्म के वृत्तान्त कोई नहीं जानता, वरन् बल और वेग का ही आदर होता है। राजा दुर्योधन यह कह ही रहे थे कि सूर्य अस्त हो गए और सब अपने-अपने घर गये। कर्ण को मित्ररूप में पाकर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई।

पाण्डवों के अभ्युदय से धृतराष्ट्र का चिन्तित होना

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय ! कौरव-पाण्डवों से द्रोणाचार्य जी ने गुरु दक्षिणा माँगी। सभी राजकुमार उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। आचार्य ने कहा—पांचाल राज द्रुपद को पकड़ कर मेरे पास खड़ा कर दो, बस यही गुरु दक्षिणा चाहता हूँ। द्रोणाचार्य जी की आज्ञा सुन कर सभी वीर सुसज्जित रथों पर चढ़ कर चल दिये। द्रोणाचार्य भी उनके साथ थे। अर्जुन ने गुरु से कहा कि पहिले कौरवों को अपने करतब दिखा लेने दीजिए, तत्पश्चात् हम उसे पकड़ लायेंगे। आचार्य ने यह बात मान ली। कौरव-सेना ने द्रुपद की राजधानी घेर ली। द्रुपद भी अपनी सेना सहित आकर लड़ने लने। उनके रण-कौशल के सामने कौरवों की एक न चली और उनकी सेना का बुरी तरह संहार होने लगा। दुर्योधनादि सभी कुमार मात खा गये और जब वे भाग खड़े हुए तब पाण्डव आगे बढ़े। उनकी वीरता के सामने द्रुपद की सेना न टिक सकी। अन्त में अर्जुन ने द्रुपद को पकड़ कर द्रोणाचार्य के सामने उपस्थित किया। तब द्रोण बोले—द्रुपद ! तुम्हारा राज्य छिन गया, अब तुम मेरे अधीन हो। हम-तुम साथ-साथ खेले हैं, इसका ध्यान रखते हुए मैं तुम्हें उस राज्य का आधा भाग लौटाता हूँ। गंगा के दक्षिण तट पर तुम्हारा और उत्तरतट पर मेरा राज्य रहेगा। अब तुम चाहो तो मुझे अपना मित्र मान सकते हो।

यह कह कर द्रोणाचार्य ने द्रुपद को बन्धन मुक्त कर दिया। इस अपमान से दुःखित हुए द्रुपद गंगातट स्थित काम्पिल्य नगर में रहने लगे। इस प्रकार द्रुपद को हरा कर अर्जुन ने अहिच्छत्र राज्य द्रोणाचार्य जी को अर्पण कर दिया। इसके बाद सौवीर देश के अजेय राजा का अर्जुन ने वध किया। महाबली सौवीरराज भी अर्जुन के हाथ से ही मारा गया। भीम को साथ

लेकर अकेले अर्जुन ने पूर्व देश के दश सहस्र महारथियों पर विजय प्राप्त कर ली। पाण्डवों के इस उत्कर्ष को सुन धृतराष्ट्र भी चिन्तित होउठे, उनका हृदय दूषित होगया।

धृतराष्ट्र का एक मंत्री कणिक अत्यन्त राजनीतिज्ञ था। उन्होंने उसे एकान्त में बुलाकर कहा कि कणिक! पाण्डु पुत्र दिनों दिन बढ़ते जारहे हैं, इसलिए मुझे उनके प्रति ईर्ष्या और शंका होरही है। तुम निश्चय करके कहो कि उनसे मेल रखा जाय या विग्रह? यह सुन कर कणिक बोला महाराज! राजनीति यही है कि अपने ऊपर चोट करने का अवसर किसी को न दे और दूसरों पर चोट करने का अवसर खोजता रहे। जो काँटा है, उसे निकाल देना ही ठीक है, अन्यथा वह घाव कर देगा। जैसे तीक्ष्म छुरा छुपा पड़ा रहता है और समय पर काम आता है, वैसे ही तीक्ष्ण रहता हुआ राजा समय मिलते ही शत्रु-नाश में तत्पर हो जाता है। इसलिए हे महाराज! आप इसी न्याय से कार्य लीजिए। पाण्डवों से अपनी और अपने ऐश्वर्य की रक्षा करना आपका प्रमुख कर्त्तव्य है। क्योंकि पाण्डव अत्यन्त वली होगए हैं।

लाक्षागृह-दाह

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! शकुनि, दुर्योधन कर्ण और दुःशासन ने मिल कर पाण्डवों को भस्म करने की योजना बना कर धृतराष्ट्र के समक्ष रखी और किसी प्रकार उन्हें राजी करके वारणावत नगर को अत्यन्त रमणीक और ऐश्वर्य-सम्पन्न करके वहाँ लाख से एक बहुत सुन्दर भवन बनवाया। उसकी देख-रेख और निर्माण का कार्य दुर्योधन ने अपने विश्वस्त मंत्री पुरोचन को सोंपा।

तब कुन्ती सहित पाण्डवों को वारणावत नगर में रहने के लिए राजी किया गया। उस नगर के वैभव और रमणीकता

की बड़ी प्रशंसा की गई। अन्त में विवश होकर वे लोग वारणावत नगर के लाक्षा भवन में पहुँचे। किन्तु विदुरजी ने कौरवों के षड्यन्त्र से उन्हें अवगत और सतर्क कर दिया तथा छुप कर एक सुदृढ़ नौका भी तैयार कर दी थी। विदुर ने कुन्ती से कहा— तुम अपने पुत्रों सहित नौका द्वारा यहाँ से चली जाना। देखो, कृष्णपक्ष चतुर्दशी के दिन इस घर में आग लगाई जायगी।

जब पाण्डव उस भवन में रहने लगे, तभी विदुरजी के एक विश्वासी मित्र ने मोरी साफ करने के बहाने ऐसी सुरंग खोद डाली, जिससे वे सब उसके द्वारा निकल जाँय। इन बातों की पुरोचन को खबर न लग सके इसके लिए सतर्कता बरती गई। फिर जिस दिन आग लगाई जाने वाली थी। उस दिन द्रौपदी ने उत्सव के बहाने से ब्राह्मण-भोजनादि किया। उसमें नगर की अनेक स्त्रियाँ सम्मिलित हुई थीं, वे चली गईं। एक निषादी ने भी अपने पाँच पुत्रों के सहित आकर भोजन माँगा और खा-पीकर रात को वहीं सोगई। जब रात अधिक बढ़ गई तब भीमसेन ने पुरोचन वाले भाग में स्वयं आग लगा दी और फिर द्वार तथा घर के सब ओर। जब आग तीव्र होगई तब सब पाण्डव अपनी माता सहित सुरंग मार्ग से निकल गये। फिर तो सम्पूर्ण लाक्षा भवन धाँय-धाँय कर जलने लगा। दुष्ट पुरोचन तो भस्म हुआ ही, साथ ही निरपराध निषादी और उसके पुत्र भी जल गए। पुरवासी समझ गये कि पाण्डवों को इसमें जलाने के लिए ही आग लगाई गई है। वे कौरवों को धिक्कारने लगे। इधर पाण्डवों के लिए नाव तैयार थी। विदुरजी के विश्वासी मल्लाह ने उन्हें उस नाव पर बैठाकर गंगा से पार कर दिया। तब वे उससे उतर कर वन पथ में शीघ्रता से घुस गये।

उधर पुरवासियों ने धृतराष्ट के पास कुन्ती सहित पाण्डवों के भस्म होने का समाचार भेजा; जिसे सुनकर धृतराष्ट्र विलाप करने लगे। तब तो हस्तिनापुर में शोक छागया। इधर वनपथ

से भागते हुए पाण्डवों के पाँव फूल गए तब भीमसेन चारों भाइयों और माता को लाद कर तेजी से चलते हुए एक भयंकर वन में जा पहुँचे।

उस समय तक सब बुरी तरह थक गए थे, नींद के कारण व्याकुलता बढ़ रही थी, प्यास सता रही थी। भीमसेन ने उन्हें लादकर वटवृक्ष के नीचे उतारा और विश्राम करने को कहा तथा स्वयं जल की खोज में चल दिये। तभी उन्हें एक जलाशय दिखाई दिया। उसमें स्नान कर और जल पीकर भीमसेन ने अपना दुपट्टा भिगो लिया और लौट कर देखा तो वे सब अचेत सोरहे थे। उनकी दशा देख कर भीम को रोना आगया। फिर वे जागते रहकर उनकी रक्षा करने लगे।

भीम का हिडिम्बा राक्षसी से विवाह

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज! जिस वृक्ष के नीचे पाण्डव थे, उससे कुछ दूर ही एक वृक्ष पर हिडिम्ब नामक एक क्रूर राक्षस बैठा था। उसे जैसे ही मानवगन्ध आई, वैसे ही वह जम्भाई लेता हुआ, अपनी बहिन हिडिम्बा से बोला—देख, वहाँ वे मनुष्य आये हुए हैं। मैं उनका मांस खाने के लिए लालायित हो रहा हूँ, तू उन्हें मारकर शीघ्र यहाँ ले आ। यह सुनकर राक्षसी वहाँ पहुँची और भीमसेन को देख कर मोहित होगई। तब वह सुन्दर रूप बनाकर उनके पास आई। उसने कहा—आप कौन हैं? यह स्त्री कौन है? मैं हिडिम्ब राक्षस की बहन हूँ। वह आप सब को मारकर खाना चाहता है। पर, मैं आपको अपना पति बनाना चाहती हूँ। यदि तुम मेरा कहा मानो तो मैं हर प्रकार आप सब की रक्षा करने में समर्थ हूँ। मैं आकाश मार्ग में भी विचरण कर सकती हूँ। इसलिए मेरे साथ इच्छित स्थान पर चलकर विहार कीजिए।

भीम बोले—सुन्दरी! सुख-भोग के लिए क्या मैं अपने भाइयों और माता को छोड़ दूँ? मैं तेरे भाई से नहीं डरता, तू

उसे यहाँ भेज दे। भीम यह कह ही रहे थे कि वह भयंकर राक्षस, हिडिम्बा को देर हुई देख कर, झपटता हुआ आया, तभी हिडिम्बा बोली—हे वीर ! वह नरमांस भक्षी राक्षस इधर ही आ रहा है। आप अपने भाइयों और माता को जगा कर मेरे ऊपर चढ़ जाइये। मैं आप सब को आकाश में ले चलूँगी। भीम ने कहा—मैं इसे अभी मारे देता हूँ। तुम चिन्ता न करो। मैं साधारण मनुष्य नहीं हूँ।

हिडिम्ब ने अपनी बहिन और भीमसेन की बात कुछ-कुछ सुन ली थी इसलिए वह और भी क्रुद्ध हुआ। उसने तू बड़ी कुलटा है जो मेरा अप्रिय करना चाहती है। मैं इन लोगों के साथ तुझे भी मारे देता हूँ। यह कह कर वह पाण्डवों को मारने के लिए वढ़ा, तब भीमसेन ने उसके दोनों हाथ पकड़े और बहुत दूर तक घसीटा, तब वह जोर से चिल्लाने लगा। इससे चारों भाई और माता भी जाग गई। युधिष्ठिर आदि सभी तुरन्त भीमसेन के पास पहुँचे। उस समय अर्जुन ने कहा—इसे मारने में विलम्ब न कीजिए अन्यथा यह अब माया-बल का सहारा लेने के लिए तत्पर प्रतीत होता है यह सुनकर भीमसेन ने उसे उठा कर पछाड़ा और ऊपर चढ़ कर बुरी तरह पीस दिया और फिर सब भाई माता सहित वहाँ से चल दिये। उनके साथ हिडिम्बा भी चल दी।

मार्ग में भीम ने हिडिम्बा से कहा—राक्षस कभी द्वेष को नहीं भूलते, वरन् अवसर पाकर बदला लेते हैं। इसलिए उचित तो यही है कि तुझे भी यमलोक भेज दिया जाय। भीम का विचार सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—भीम ! स्त्री की हत्या धर्म नहीं है। यह बेचारी अबला तुम्हारा कुछ नही बिगाड़ेगी। तभी हिडिम्बा ने युधिष्ठिर और कुन्ती को प्रणाम कर निवेदन किया–पूज्यवर ! मैंने इन्हें अपना पति मान लिया है, यदि यह मुझे

स्वीकार न करेंगे तो मैं स्वयं प्राण दे दूँगी। आप मुझ पर विश्वास करें, मैं इन्हें इच्छित स्थानों पर विहार करने के बाद ही स्वयं ही आपके पास ले आऊँगी।

युधिष्ठिर बोले—ठीक है, अपनी प्रतिज्ञा का धर्मपूर्वक पालन करना। स्नानादि से निवृत्त होने के पश्चात् इन्हें लिवा ले जाना और सांयकाल होने पर स्वयं ही पहुँचा देना। इस प्रकार युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर भीमसेन ने राक्षसी की याचना स्वीकार कर ली। उस राक्षसी से भीमसेन का जो पुत्र हुआ, वह महाबली, मायावी, अत्यन्त वेगवान तथा भयंकर था। उसके बाल ऊपर को उठे हुए और मुख घड़े के समान था। उसका नाम घटोत्कच रखा गया। वह पाण्डवों की आज्ञा-पालन करने में तत्पर था।

धृष्टद्युम्न और द्रौपदी की उत्पत्ति

वैशम्पायन ने कहा—राजन्! उसके बाद पाण्डवों ने तपस्वियों का वेश बनाकर वनों में घूमना आरम्भ किया एक दिन उन्हें वेदव्यासजी के दर्शन हुए। उन्होंने पाण्डवों को बड़ी सान्त्वना दी और एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के यहाँ उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया। वे वहाँ भिक्षा माँग कर खाते। एक दिन उस ब्राह्मण के घर में रुदन होने लगा। भीमसेन और कुन्ती ने भीतर जाकर देखा तो ब्राह्मण को अपने पुत्र, पुत्री और पत्नी के साथ विलाप करता हुआ पाया। उन्हें ऐसा व्याकुल देख कर कुन्ती ने उसका कारण पूछा तो ब्राह्मण बोला—हे तापसी! वक नामक एक राक्षस इस नगर के पास ही रहता है। वह अन्य राज्य या अन्य प्राणियों से हमारी रक्षा करने के कारण अपने भोजन के लिए एक छकड़ा अन्न, दो भैंस और एक मनुष्य हमसे नित्यप्रति वसूल करता है। यह संकट बारी-बारी से प्रत्येक गृहस्थ पर आता है। आज हमारी बारी है। मैं निर्धन होने के कारण

कहीं से कोई मनुष्य क्रय करके भी उसे नहीं दे सकता, इसलिए उसके हाथ से बचने का कोई भी उपाय दिखाई नहीं दे रहा है।

कुन्ती बोली—विप्रवर ! आप घबराइये मत। मेरे पाँच पुत्र हैं, उनमें से किसी एक को आहार-सामग्री लेकर उसके पास भेज दूँगी। ब्राह्मण बोला–अधर्मी पुरुष भी अतिथि के प्राणों को नष्ट नहीं होने देगा। यद्यपि यह मेरे लिए आपत्काल है, किन्तु इसमें भी मैं कोई निन्दनीय कर्म नहीं करूँगा। कुन्ती ने कहा—ब्राह्मण देव ! आपकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। फिर वह राक्षस मेरे किसी पुत्र को मार भी नहीं सकता। उन्होंने बड़े-बड़े राक्षसों को मारा है। यह सुन कर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और कुन्ती के अनुरोध पर भीमसेन रात्रि व्यतीत होने पर आहार की सामग्री लेकर राक्षस के पास गये और सामग्री को स्वयं खाते हुए,उस राक्षस को पुकारने लगे। इससे कुपित हुआ राक्षस तुरन्त आकर भीमसेन को मारने के लिए झपटा और वृक्ष उखाड़ कर उन पर चलाया, जिसे उन्होंने अपने बाँए हाथ में थाम लिया। फिर तो दोनों में घोर युद्ध होने लगा और अन्त में उन्होंने उसके दो खण्ड कर दिये। उसका चीत्कार सुनकर उसके परिवारीजन दौड़े आये। किन्तु वकासुर की दशा देख कर स्तंभित खड़े रहे। भीमसेन ने उनसे प्रतिज्ञा करा ली कि भविष्य में किसी मनुष्य की हत्या नहीं करेंगे। उस राक्षस के मरने से सभी नगर-निवासी बड़े प्रसन्न हुए।

एक दिन उस ब्राह्मण के घर एकअन्य अतिथि ब्राह्मण आया। उसने अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए पांचाल देश में द्रौपदी स्वयंवर, धृष्टद्युम्न शिखंडी और द्रौपदी के जन्म की भी चर्चा। उसी प्रसंग में उन्होंने कहा कि द्रोणाचार्य से हार कर द्रुपद उस अपमान का बदला लेने के लिए कश्यप गोत्रीय उप-याज की बड़ी सेवा की तो उन्होंने राजा को अपने भाई याज के

पास भेज दिया। याज ने द्रोणाचार्य को मारने वाला पुत्र देना स्वीकार कर राजा को यज्ञ की दीक्षा दी और यज्ञ पूर्ण होने पर रानी को अभिमंत्रित हवि देकर कहा—इससे तुम्हें एक पुत्री और एक पुत्र की प्राप्ति होगी। रानी ने कहा—भगवन् ! मैं स्नान करके आती हूँ। तब तक आप रुकें। याज बोले—मैं इसे अग्नि में छोड़ता हूँ, यह यजमान की इच्छा अवश्य पूर्ण करेगी। तभी एक तेजस्वी कुमार दिव्य वस्त्रालंकार और अस्त्रशस्त्र धारण किये अग्नि से प्रकट हुआ और रथ पर चढ़ कर इधर-उधर घूमने लगा। तभी आकाशवाणी हुई कि यह कुमार पांचाल के राजवंश की यशवृद्धि करेगा और द्रोणाचार्य की मृत्यु का कारण बनेगा। तत्पश्चात् उसी वेदी से एक सर्वांग सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई। आकाशवाणी ने कहा कि यह देवताओं का कार्य सिद्ध करने वाली और कौरवों के लिए भयदायिनी सिद्ध होगी। उस कुमार का नाम धृष्टद्युम्न और कुमारी का नाम कृष्णा रखा गया। उसी धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्यजी ने अपने पास रख कर अस्त्रविद्या सिखा दी।

अर्जुन-गन्धर्व युद्ध और मैत्री

उक्त समाचार सुन कर पाण्डव अत्यन्त उत्कंठित हुए और परस्पर परामर्श करके पांचाल देश को चलने के लिए हुए तभी व्यासजी वहाँ आकर इतिहास-चर्चा करने लगे। उसी प्रसंग में उन्होंने कहा–एक तपोवनवासिनी कन्या को कोई वर न मिला तो उसने शिवजी की आराधना की। तब शिवजी ने प्रकट होकर वर मांगने के लिए कहा। वह बोली—पति प्रदान कीजिए। शिवजी बोले—अगले जन्म में तुम्हें पाँच पति मिलेंगे। क्योंकि तुमने पाँच बार पति माँगा है। हे पाण्डुपुत्रो ! वही कन्या द्रौपदी तुम्हारी पत्नी होगी। इसलिए, अब तुम पांचाल देश में जाकर रहो। यह सुन कर सब उधर ही चल दिये। मार्ग में एक गंधर्व-

राज जल विहार कर रहा था, वह पाँवों की ध्वनि सुनकर क्रोध पूर्वक धनुष चढ़ाता हुआ बोला—सूर्यास्त की संध्या के अस्सी पल बाद यक्ष, गन्धर्व, राक्षसादि के विहार का समय होता है। तुम लोग फिर भी इधर चले आ रहे हो।

यह सुन कर अर्जुन ने कहा—समुद्र, हिमशिखर और गंगा पर किसी का एकाधिकार नहीं है। हर व्यक्ति हर समय वहाँ जा-आ सकता है। फिर तू कौन है जो हमें आगे बढ़ने से रोकता है? अर्जुन के वचनों से क्रुद्ध हुए अंगार्पण गन्धर्व ने विषाक्त और पैने बाण चलाये, किन्तु अर्जुन ने उन सब को रोक कर निष्फल कर दिया और अग्नेयास्त्र चलाकर उसका रथ नष्ट कर दिया तथा उसे केश पकड़ कर घसीटते हुए युधिष्ठिर के पास ले चले। यह देखकर उसकी पत्नी क्षमा-याचना करने लगी। तब युधिष्ठिर ने उसे छुड़ा दिया। फिर गन्धर्व ने अर्जुन को गन्धर्वों की माया तथा दिव्य अश्व प्रदान किये और कहने लगा—हे तापत्य! मैं तुम्हें अपना मित्र बनाता हूँ। अर्जुन ने कहा—हे गन्धर्व! तुमने मुझे तापत्य अर्थात् तपती की सन्तान कैसे कहा?

गन्धर्व बोला—हे अर्जुन! तुम्हारे पूर्व पुरुषों में राजा ऋक्ष के पुत्र संवरण हुए थे। वे सूर्यदेव की पूजा किया करते थे। सूर्य की कन्या तपती युवती हो गई थी, उसके लिए कोई योग्य वर नहीं मिला था। सूर्य ने सोचा कि राजा संवरण उसके लिए योग्य वर हो सकते हैं। उसके बाद एक दिन वन में घूमते हुए राजा को तपती दिखाई दी। वे उस पर अनुरक्त होकर प्रणय याचना करने लगे। तपती ने कहा—राजन्! यदि आप मुझे चाहते हैं तो मेरे पिता सूर्य नारायण से मुझे माँगिये। यह कह कर तपती अदृश्य हो गई।

तब तो राजा विह्वल चित्त से सूर्य की उपासना करने लगे।

इसी मध्य वसिष्ठ जी ने आकर राजा से कहा कि मैं तुम्हारा प्रिय करने को तत्पर हूँ। यह कह कर वसिष्ठजी सूर्य नारायण के पास गये और राजा संवरण के लिए उनकी कन्या को माँगने लगे। सूर्य तो पहिले ही यह विचार कर चुके थे, इसलिए उन्होंने वह कन्या प्रदान कर दी। इस प्रकार राजा संवरण को तपती प्राप्त हो गई। तपती के गर्भ से ही महाराज कुरु की उत्पत्ति हुई थी, उसी वंश में उत्पन्न होने के कारण तुम्हें तापत्य कहना अनुचित नहीं है।

अर्जुन ने पूछा—गन्धर्व ! वसिष्ठजी कौन थे, यह मुझे बताओ। गन्धर्व बोला—वसिष्ठजी ब्रह्मा के मानसपुत्र थे। उनकी पत्नी अरुन्धती थी। इन्द्रियों को वश में करने के कारण ही वे वसिष्ठ कहलाये। उन्होंने इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं को बड़े-बड़े यज्ञ कराये थे। कान्यकुब्ज देश के राजा गाधि परम प्रतापी थे। उनके पुत्र विश्वामित्र मृगया के बड़े शौकीन थे। वे एक दिन वसिष्ठजी के आश्रम में जा पहुँचे, जिन्होंने उनका बड़ा सत्कार किया। वसिष्ठ के पास एक कामधेनु थी जो सभी इच्छित वस्तुएँ प्रदान करती थी। राजा विश्वामित्र उसके द्वारा इच्छित भोग वस्तुओं को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और ऋषि से बोले—मुनिवर ! यह नन्दिनी धेनु मुझे दे दीजिए, इसके लिए मैं दस करोड़ गौएँ अथवा अपना सम्पूर्ण राज्य भी दे सकता हूँ।

वसिष्ठ बोले—निष्पाप ! यह गौ तो देव, पितृ, अतिथि और यज्ञ कार्य के लिए है, इसे मैं कैसे भी नहीं दे सकता। विश्वामित्र ने कहा—यदि आप मेरे कहे अनुसार यह धेनु नहीं देंगे तो मैं बलात् ले जाऊँगा। इतना कहने पर भी वसिष्ठ ने गौ न दी तो विश्वामित्र उस गौ को बाँधकर मारते हुए ले चले और गौ चीत्कार करने लगी। जब वसिष्ठ उसे रोकने में असमर्थ प्रतीत हुए तो उसकी पूँछ, थन, योनि,गोबर, मूत्र आदि से अनेक म्लेच्छ

जातियाँ उत्पन्न हुईं, जिन्होंने राजा और उसकी सेना के छक्के छुड़ा दिये। अन्त में ब्रह्मबल के आगे क्षत्रबल की एक न चली। विश्वामित्र परास्त होकर लौटे और तपस्या के बल को सबसे अधिक शक्तिशाली मान कर उन्होंने राज-पाट, ऐश्वर्य सब कुछ त्याग दिया और तप करने लगे। अब वे क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये थे।

हे अर्जुन ! इक्ष्वाकु वंश में कल्माषपाद राजा हुए थे। ऋषि विश्वामित्र ने राजा को यजमान बनाने की इच्छा की उस दिन राजा शिकार खेलकर थके हुए लौट रहे थे। उन्हें भूख-प्यास सता रही थी। जिधर राजा जारहे थे उधर से वसिष्ठ पुत्र शक्ति आ रहे थे। राजा ने उनसे कहा कि मैं इधर से जा रहा हूँ, इसलिए तुम उधर मत जाओ। शक्ति बोले—मैं ब्राह्मण हूँ, मुझे अपने मार्ग पर जाने दीजिये। यह सुन कर क्रोधित हुए राजा ने उनके एक कोड़ा मार दिया और शक्ति ने शाप दिया कि तू राक्षस होकर मानव-मांस खाता फिरेगा। विश्वामित्र को इस शाप से बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने राजा के शरीर में राक्षस घुसा दिया उसके कुछ दिनों बाद राजा वन में मदहोश घूम रहे थे कि तभी उन्हें शक्ति मिल गए। राजा ने कहा—विप्र ! तूने मुझे शाप दिया है, उससे मैं पहले तुझे ही खाता हूँ। यह कह कर उन्होंने शक्ति को मार खाया। इस समाचार को सुन कर वसिष्ठ बहुत दुःखी हुए।

एक दिन महर्षि वसिष्ठ उद्विग्न हुए चले जारहे थे, तभी पीछे से उनकी विधवा पुत्रवधु अदृश्यवन्ती आगई। उसके उदर में जो बालक था, वह वेद-पाठ कर रहा था। उसी समय राक्षस बने हुए राजा कल्माषपाद आगये। वे इन दोनों को खाने के लिए बढ़े, तभी महर्षि ने अपने कमण्डलु से जल के छींटे दिये और राजा को शापमुक्त कर दिया। तत्पश्चात् वसिष्ठजी के द्वारा ही

नियोग विधि से रानी मदयन्ती के गर्भाधान कराया गया। जब वह गर्भ दो वर्ष तक भी उत्पन्न न हुआ तो रानी ने अपने उदर पर पत्थर दे मारा, जिससे राजा अश्मक का जन्म हुआ।

शक्ति से अदृश्यन्ती के पुत्र पराशर हुए। वे अपने पितामह वसिष्ठ को पिता कहा करते थे। एक दिन उन्हें पता चला कि उनके पिता को राजा ने मार खाया था तो वे सब लोकों को नष्ट करने के लिए तत्पर हुए। वसिष्ठ ने उन्हें शान्त करते हुए कहा—पुत्र! एक बार क्षत्रियों ने भृगुवंशी ब्राह्मणों पर कोप किया तो उन ब्राह्मणों में से जो बच रहे थे, वे भाग गये। क्षत्रिय लोग गर्भस्थ भ्रूण को भी न छोड़ते थे, इसलिए एक ब्राह्मणी अपने गर्भ को ऊरु प्रदेश में रखे रही। क्षत्रियों को पता लगा तो वे उसे मारने को दौड़े। तभी वह बालक ऊरु फोड़ कर स्वयं बाहर निकल आया और उसके तेज से सभी क्षत्रिय अन्धे होगए, तब उन सब ने उस बालक और्व की प्रार्थना कर अपने नेत्र प्राप्त किये। फिर और्व ने भृगुवंशियों के नाश का बदला लेने के लिए विश्व-नाश का निश्चय किया, जिसे पितरों ने निवृत्त कर दिया। क्योंकि सब लोकों के नाश से तप और तेज भी नष्ट होजायगा। तब पराशर ने सब लोकों के नाश का विचार छोड़ कर राक्षस-नाश के लिए राक्षसयज्ञ का प्रारम्भ किया। किन्तु महर्षि पुलस्त्य ने आकर उस यज्ञ को रुकवा दिया।

द्रौपदी-स्वयंवर और पाण्डवों से विवाह

अर्जुन बोले—गन्धर्व! तुम्हारे ज्ञान को देखकर ही मैं पूछता हूँ कि हम किस ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनावें। गंधर्व ने कहा—हे अर्जुन! देवल के लघुभ्राता धौम्य उत्कोचक तीर्थ में तप कर रहे हैं, उन्हें पुरोहित बनाना ठाक रहेगा। यह सुन कर पाण्डव अपने गन्तव्य स्थान पर चल दिये। उत्कोचक तीर्थ में पहुँच कर धौम्य ऋषि को उन्होंने पुरोहित बनाया और

फिर उन्हें भी साथ लेकर पाँचाल देश को चले। वहाँ वे एक कुंभकार के घर में ठहरे।

राजा द्रुपद ने न झुकने वाला दृढ़ धनुष और चक्र के समान घूमता हुआ एक यंत्र बनवाया। उसके ऊपर एक कृत्रिम मत्स्य रख कर घोषणा की कि इस धनुष पर प्रत्यंचा और बाण चढ़ा कर घूमते हुए चक्र के भीतर से मत्स्यवेध करने वाला व्यक्ति ही मेरी पुत्री को प्राप्त कर सकेगा।

इस समाचार को पाकर देश-विदेश के अनेकानेक राजा आने लगे। दुर्योधनादि कौरव, कर्ण तथा उनके पक्ष के अन्यान्य राजा, यादवगण, ऋषि, ब्राह्मण, प्रजाजन आदि सभी स्वयंवर भूमि में पहुँच कर यथास्थान बैठ गये। इसी समय बाजे बजने लगे, ब्राह्मणों ने स्वस्त्ययन पाठ किया और तदुपरान्त धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी के साथ आकर महाराज द्रुपद की प्रतिज्ञा सुनाई और फिर अपनी बहन को एकत्रित राजाओं में से प्रत्येक का नाम, गोत्र आदि बताना प्रारम्भ किया।

तब सब उपस्थित राजा द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु धनुष के झटके से गिर गिर कर लौट आते। जब अनेकानेक राजा असफल रहे, तब चेदि नरेश के महाबली पुत्र शिशुपाल और फिर जरासन्ध भी घुटनों के बल गिर-गिर कर उपहास के पात्र बने। यह देख कर अर्जुन उस ब्राह्मण-मण्डली में से उठ कर धनुष के पास गये और उसकी परिक्रमा करके शिवजी को प्रणाम किया, फिर भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करके धनुष को उठाया और प्रत्यंचा चढ़ा कर मत्स्य वेध कर दिया। यह देखकर हर्षध्वनि, कोलाहल और पुष्पवृष्टि होने लगी। द्रुपद की प्रसन्नता का ठिकाना न था। द्रौपदी ने तुरन्त ही अर्जुन के कंठ में जयमाल डाल दी।

हे राजन् ! ब्राह्मण को कन्या प्रदान करते हुए देखकर दुर्योधन आदि राजागण क्रोधित हो उठे। वे द्रुपद को मारने के लिए तत्पर हुए तभी अर्जुन और भीम शस्त्र लेकर खड़े होगए। तभी कर्ण ने अर्जुन पर बाण प्रहार किया, किन्तु अर्जुन के सामने उसकी एक भी न चली। तब कर्ण अर्जुन को ब्राह्मण समझ कर पीछे हट गया। उधर शल्य और भीमसेन का युद्ध ठन गया। भीम ने उसे उठाकर पृथिवी पर डाल दिया। उन दोनों का ऐसा पराक्रम देख कर कृष्ण समझ गए कि यह अवश्य ही अर्जुन और भीम हैं। किन्तु सब उपस्थित जनसमूह यही समझता रहा कि द्रोपदी को ब्राह्मण ने प्राप्त किया है, इसलिए सब ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न थे।

द्रौपदी को साथ लेकर पाँचों पाण्डव कुम्भकार के घर पहुँच कर माता से बोले—हे माता ! हम भिक्षा ले आये हैं। कुन्ती ने भीतर से, बिना देखे ही कहा—पुत्रो ! सब मिल बाँटकर खा लो। फिर बाहर आकर द्रौपदी को देखा तो वे सन्न रह गईं, बोलीं—मैंने बिना देखे यह क्या कह दिया ? उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—बेटा ! अब मैं क्या करूँ। युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—अर्जुन ! इसे तुमने अपने ही उद्योग से प्राप्त किया है, इसलिए तुम्हीं इसका पाणिग्रहण करो। अर्जुन बोले—बड़े के पत्नी-रहित होते हुए छोटा विवाह करे, यह क्या उचित होगा। इसलिए पहिले आप, फिर भीमसेन, फिर मैं, फिर नकुल और फिर सहदेव इसका पाणिग्रहण करें, तभी माता के वचन की रक्षा होगी।

यह सुन कर सब द्रौपदी की ओर देखने लगे, उसने भी मौन स्वीकृत दे दी। तब पाँचों भाइयों ने क्रम से उसका पाणिग्रहण किया। तभी बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण भी वहाँ आ गये। पाण्डवगण उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार अपने सुहृदों से मिल कर कृष्ण-बलराम चले गए।

हे राजन् ! जब पाण्डव द्रौपदी को लेकर चले तब गुप्त रूप से धृष्टद्युम्न ने भी उनका पीछा किया और कुम्भकार के घर उन्हें ठहरा देख कर छिपे हुए उनकी बातें सुनने लगे। प्रातः काल होने पर उन्होंने वे सब बातें बता कर द्रुपद से कहा—पिताजी ! वे लोग ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र में से कोई भी प्रतीत नहीं होते। वे तो रात भर युद्ध की बातें ही करते रहे, इससे प्रतीत होता है कि अवश्य ही क्षत्रिय हैं। यह सुन कर राजा ने पाण्डवों से कहलाया कि महाराज द्रुपद के राजभवन में ज्यौनार की तैयारी होरही है, आप सब शीघ्र ही द्रौपदी सहित वहाँ चलें। तब सब भाई, द्रौपदी, कुन्ती रथों पर चढ़ कर वहाँ पहुँचे। उन्हें श्रेष्ठ आसन और भोजन दिये गए। उनके रंग ढंग को देख कर राजा द्रुपद भी समझ गए कि यह निश्चय ही पाण्डव हैं।

तत्पश्चात् राजा द्रुपद ने उत्कंठा से पूछा—आप अपना परिचय दीजिए। चारों वर्णों में से आप किस वर्ण के हैं, अथवा देव, असुर, गन्धर्व, किन्नर आदि में से कोई हैं। हे निष्पाप ! श्रेष्ठ पुरुष कभी मिथ्या नहीं कहते, इसलिए आप भी यथार्थ कहने की कृपा कीजिए। युधिष्ठिर बोले—महाराज ! आप चिन्ता न कीजिए। आपकी इच्छा पूर्ण हो गई। हम पाँचों महाराज पाण्डु के पुत्र हैं। यह कह कर उन्होंने वारणावत नगर में रहने और लाक्षागृह से निकल भागने आदि का पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया। तब द्रुपद ने उन्हें उनका राज्य दिला देने की प्रतिज्ञा की। फिर उनके रहने की व्यवस्था एक भव्य भवन में की और युधिष्ठिर से बोले—राजन् ! अर्जुन के साथ द्रौपदी के पाणिग्रहण की तैयारी की जा रही है। तब युधिष्ठिर ने बता दिया कि उसका पाणिग्रहण हम पाँचों ही करेंगे।

यह सुन कर चकित हुए द्रुपद बोले—युधिष्ठिर ! एक पुरुष की अनेक स्त्रियाँ तो होती हैं, किन्तु एक स्त्री के अनेक

पति होते कहीं नहीं सुने। आपकी अधर्म में प्रवृत्ति कैसे हो गई है? युधिष्ठिर ने कहा—राजन्! धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है! हम कभी मिथ्या नहीं कहते। मेरी माता की और मेरी स्वयं की भी यही सम्मति है। यह सुन कर द्रुपद बड़े चक्कर में पड़े और सोचने लगे कि अब क्या किया जाय? इतने में ही वेदव्यासजी वहां आ गये। उन्होंने द्रुपद की शंका का समाधान करते हुए कहा—राजन्! एक समय यमराज ने यज्ञ की दीक्षा ली थी, इससे पृथिवी पर मृत्यु होना रुक गया। तब सब देवता ब्रह्माजी की सभा में गये, तब उन्होंने बताया कि तुम्हारे वीर्य से यमराज का शरीर बढ़ कर विभक्त होगा, उससे मनुष्यों की मृत्यु होने लगेगी।

व्यासजी बोले—हे राजन्! उसके पश्चात् एक दिन इन्द्र ने गंगा की धार में स्वर्ण-कमल बहता देखा तो उस का वृत्त जानने के लिए ऊपर को चले। गंगा के उद्गम स्थान पर पहुँच कर उन्होंने देखा कि एक तेजस्विनी स्त्री रो रही है और उसके आंसू की बूँद स्वर्ण-कमल बन जाती है। इन्द्र ने उससे रोने का कारण पूछा तो वह उन्हें हिमालय के शिखर पर ले गई। वहाँ भगवान् शंकर और पार्वती चौसर खेल रहे थे। इन्द्र उन्हें वेश-परिवर्तन के कारण पहिचान न सके और बोले—युवक! इस भुवन का स्वामी और ईश्वर मैं हूँ। तभी शंकर बोले—इन्द्र! मैं शंकर हूँ। तुम इस शिला की कन्दरा में जा घुसो, वहाँ तुम जैसे अन्य इन्द्र भी मौजूद हैं। इन्द्र ने क्षमा-याचना की तो शंकर बोले—उन चार इन्द्रों ने भी मेरा इसी प्रकार अपमान किया था। तुम्हें उनके साथ मनुष्य-योनी में जाना होगा। वहाँ यह स्त्री तुम्हारी पत्नी होगी। उसके पश्चात् तुम्हें देवताओं के अनेक कार्य करने होंगे।

व्यासजी बोले—हे द्रुपद! यह वही पांचों इन्द्र और वह स्त्री ही द्रौपदी है। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, स्वयं इनके पूर्व

वृत्त को देख लो। तब दिव्य दृष्टि पाकर राजा द्रुपद ने पाण्डवों के पूर्व ऐश्वर्य को देखा। इस दिव्य माया को देखकर द्रुपद समझ गये कि विधि-विधान यही है। तब शुभ दिन देख कर उन्होंने पाँचों पांडवों को द्रौपदी का हाथ पकड़ा दिया और अपार सम्पत्ति देकर उन्हें अपने ही नगर में रखा।

हस्तिनापुर का निर्माण, अर्जुन का बनवास

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! अपने-अपने गुप्तचरों के द्वारा सब राजाओं को पता लग गया कि द्रौपदी का विवाह पाण्डवों के साथ ही हुआ है। इस समाचार को सुन कर दुर्योधन को बड़ी चिन्ता और बौखलाहट हुई। वे उन्हें नष्ट करने का उपाय सोचने लगे। कर्ण ने परामर्श दिया कि पाण्डवों का अधिक बल बढ़ने से पहिले ही हमें द्रुपद के राज्य पर आक्रमण कर देना चाहिए। धृतराष्ट्र भी इससे सहमत हो गए, किन्तु भीष्म ने उन्हें समझाया कि ऐसा करना नितान्त अनुचित है। इस गृहकलह को मिटाने के लिए पाण्डवों को आधा राज्य दिया जाना चाहिए। द्रोणाचार्यजी ने भी भीष्म के वचनों का अनुमोदन किया। किन्तु कर्ण उनसे सहमत न हुआ और अन्त में उसका द्रोणाचार्य से विवाद होगया। तब विदुर ने धृतराष्ट्र को समझाया—राजन् ! इस गृह कलह के कारण आपका वंश और राज्य सभी कुछ नष्ट हो जायगा। तब धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर ! पितामह, द्रोणाचार्यजी और तुम्हारे वचन यथार्थ हैं। जैसे मेरे पुत्र इस राज्य के अधिकारी हैं, वैसे ही पाण्डव भी हैं। इसलिए तुम पांचाल देश में जाकर पाण्डु पुत्रों को कुन्ती और द्रौपदी सहित सम्मान पूर्वक यहाँ लिवा लाओ।

हे राजन् ! धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुरजी रथ पर चढ़ कर द्रुपद की राजधानी में पहुँचे और धृतराष्ट्र द्वारा भेजे गए

उपहार देकर धृतराष्ट्र की इच्छा कह सुनाई। द्रुपद और श्री कृष्ण से भी वहाँ भेंट होगई। तब उन्होंने द्रुपद से कहा—महाराज! आपके यहाँ विवाह-सम्बंध होने से सभी अत्यन्त प्रसन्न हैं और राजा तथा परिवारी जन पाण्डु पुत्रों के साथ द्रौपदी और कुन्ती को देखने के लिए भी बहुत व्यग्र हो रहे हैं। इसलिए आप इन सब को शीघ्र ही विदा कर दीजिए। द्रुपद बोले—यदि पाण्डवों का कृष्ण-बलराम का और महारानी कुन्ती आदि का विचार हो तो मैं वैसा करने को तत्पर हूँ। तब राजा द्रुपद से आज्ञा लेकर पाण्डवगण, कृष्ण, विदुर, कुन्ती, द्रौपदी सभी वहाँ से चल दिये और जैसे ही हस्तिनापुर पहुँचे, वैसे ही उनके दर्शनों को भीड़ उमड़ पड़ी।

तदनन्तर पाण्डवगण ने धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य आदि के चरणों में प्रणाम किया। तब धृतराष्ट्र ने कहा—युधिष्ठिर! मैं चाहता हूँ कि तुम और दुर्योधनादि तुम्हारे भाई सब मिल कर रहें। तुम खाण्डवप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाओ। मैं तुम्हें आधा राज्य देता हूँ। तदनन्तर पाण्डवों ने खाण्डवप्रस्थ को स्वर्गपुरी के समान वैभवशाली और सुसज्जित बनाया। उस का नाम इन्द्रप्रस्थ रखा गया। पाण्डवगण वहाँ रह कर राज्य-पालन करने लगे।

एक दिन नारदजी वहाँ आये। पाण्डवों से सत्कार पाकर उन्होंने कहा—युधिष्ठिर! एक द्रौपदी तुम पाँचों की पत्नी है, इसलिए ऐसा नियम बनाओ जिसमें तुममें ही परस्पर कलह न हो जाय। पूर्व समय में सुन्द, उपसुन्द नामक दो असुर भाई थे। उनमें बड़ा प्रेम था, साथ खाते, साथ सोते, किन्तु एक ही स्त्री तिलोत्तमा पर आसक्त होने के कारण दोनों ही एक दूसरे के शत्रु बन बैठे। हे राजन्! तिलोत्तमा को ब्रह्माजी ने इसीलिए उत्पन्न किया था, कि उसके कारण दोनों भाइयों में फूट पड़ जाय और

देवता, ऋषि, मनुष्यादि निर्भय हो जाँय। यह सुन कर पाण्डवों ने निश्चय किया जब एक भाई द्रौपदी के पास एकान्त में बैठा होगा तब अन्य कोई भाई वहाँ न जायगा।

तदनन्तर एक दिन चोरों ने किसी ब्राह्मण की गौएँ चुरा लीं। ब्राह्मण राजद्वार पर आकर रोने लगा। अर्जुन ने आश्वासन दिया कि मैं अभी तुम्हारा प्रिय करता हूँ। किन्तु अर्जुन के पास उस समय शस्त्रास्त्र नहीं थे, जिस घर में थे उसमें महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ एकान्तालाप कर रहे थे। यदि वहाँ जाँय तो प्रतिज्ञा भंग का दोष और न जाँय तो ब्राह्मण की रक्षा न करने का पाप। अन्त में रक्षा करना अधिक आवश्यक समझ कर उन्होंने घर में प्रवेश किया और राजा की अनुमति से धनुष लेकर चोरों के पीछे दौड़े। जब चोर काबू में आगये तब गौएँ ब्राह्मण को लौटा कर युधिष्ठिर के पास जाकर बोले—राजन्! आज मैंने प्रतिज्ञा-भंग का जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित स्वरूप मैं बारह वर्ष के वनवास के लिए जारहा हूँ। यह कह कर अर्जुन चल दिये, यद्यपि महाराज युधिष्ठिर ने उन्हें बहुत रोका, तो भी न माने।

अर्जुन के साथ अनेक ब्राह्मण भी चल पड़े। वे उन्हें मनोहर कथाएँ सुनाते जाते थे। एक दिन हरिद्वार में वे स्नानार्थ गंगा में घुसे, तभी नागकन्या उलूपी ने उन्हें कामवश जल के भीतर खींच लिया। वहाँ कौरव्य नाग यज्ञ कर रहे थे। उलूपी उन्हीं की कन्या थी। उसने अपना परिचय देकर प्रणय निवेदन किया और अर्जुन ने उसे स्वीकार कर उसके पास रात्रिवास किया तथा प्रातःकाल हरिद्वार में लौट आये।

हे राजन्! अनेक तीर्थों और पर्वतों पर भ्रमण करते-करते अर्जुन मणिपुर गये। वहाँ उन्होंने चितांगदा नाम की राजकन्या को देखा तो मोहित होगए और वहाँ के राजा चित्रवाहन से उस

कन्या को मांगा। राजा बोले—हे पार्थ ! मेरे कोई पुत्र नहीं है, इसलिए इस कन्या का जो प्रथम पुत्र होगा, उसे मैं ही रखूँगा। इस शर्त पर मैं इसे दे सकता हूँ। अर्जुन ने यह बात मान ली और चित्रांगदा से विवाह करके तीन वर्ष तक वहीं रहे। फिर राजा से आज्ञा लेकर अन्यत्र चल दिये।

हे राजन् ! दक्षिण समुद्र के तट पर पाँच तीर्थ थे। उनमें ग्राहों का निवास होने के कारण कोई मनुष्य स्नान नहीं करता था। अर्जुन उन तीर्थों के दर्शनार्थ चले और प्रथम सुभद्र तीर्थ में स्नान करने लगे तभी एक भयंकर ग्राह ने उनका पाँव पकड़ लिया। वे उसे जल से खींच कर ऊपर निकाल लाये, तभी वह ग्राह एक परम सुन्दरी स्त्री बन गया। उसने बताया कि मैं वर्गा नाम की अप्सरा हूँ। मैं अपनी चार सखियों के साथ जारही थी कि मार्ग में एक तपस्वी ब्राह्मण को छेड़ बैठीं। तब उन ब्राह्मण ने हमें शाप दे दिया कि तुम सौ वर्ष तक ग्राह बन कर जल में रहोगी। फिर तुम जिस मनुष्य को पकड़ लोगी, उसके द्वारा निकाली जाने पर अपने रूप को प्राप्त होगी। इस प्रकार मेरा तो उद्धार होगया। अब आप मेरी सखियों का भी उद्धार कीजिए।

यह सुन कर अर्जुन ने उन चारों अप्सराओं का भी उद्धार कर दिया और वहाँ से पुनः मणिपुर लौट आये। वहां चित्रांगदा से बभ्रुवाहन की उत्पत्ति हुई, जो कि बाद में मणिपुर का राजा हुआ। अर्जुन वहाँ से शंकर के आदि स्थान गोकर्ण क्षेत्र में पहुँचे और फिर उत्तर भाग के सब तीर्थों में भ्रमण करते हुए प्रभास क्षेत्र में गये। समाचार मिलते ही कृष्ण भी वहाँ आगए। तब दोनों मित्र रैवतक पर्वत पर रहने लगे। फिर एक दिन श्रीकृष्ण के साथ रथ में बैठ कर द्वारिकापुरी में पहुँचे और कुछ दिन वहाँ रह कर रैवतक पर्वत पर आगये।

तदनन्तर यादवों ने रैवतक पर्वत पर एक महोत्सव किया। उसमें सभी स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया। वासुदेव-पुत्री सुभद्रा भी वहाँ गई थीं। अर्जुन ने उसे देखा तो मोहित होगए। कृष्ण भी इसमें सहमत थे कि सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हो। इसलिए उनकी सम्मति से अर्जुन ने सुभद्रा का बलपूर्वक हरण कर लिया इस पर सब यादव क्रोधित हो उठे। बलरामजी ने कहा कि अर्जुन की यह धृष्टता अक्षम्य है। तब कृष्ण ने उन सब को समझाते हुए कहा—अर्जुन ने हमारा कोई अपमान नही किया, वरन् राजाओं की प्रथा का ही पालन किया है। वे महाराज शान्तनु के वंशज तथा कुन्तिभोज के नाती हैं उन महावीर के साथ संबंध होने के लिए कौन लालायित नहीं होगा? यह सब ठन्डे हृदय से विचार कर सुभद्रा का विवाह उनके साथ कर देना अनुचित नहीं है। यह सुन कर यादवों ने सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ प्रसन्नता पूर्वक कर दिया।

इस प्रकार अर्जुन एक वर्ष तक द्वारकापुरी में रह कर शेष अवधि तक पुष्कर में रहे और फिर हस्तिनापुर जा पहुँचे। वहाँ उन्हें देख कर सभी बहुत प्रसन्न हुए। सुभद्रा राजभवन में पहुँचाई गई। वहाँ उसका अत्यन्त स्वागत-सत्कार हुआ। तभी बलरामजी सहित श्रीकृष्ण भी वहाँ आगये। उन्होंने सुभद्रा के विवाहोपलक्ष्य में बहुत-सा दहेज उपस्थित किया। फिर कुछ दिन वहाँ रह कर यादवों सहित बलराम जी द्वारकापुरी चले गए। किन्तु कृष्ण को अर्जुन ने कुछ समय के लिए रोक लिया। फिर सुभद्रा को गर्भ रह गया और समय पर सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम अभिमन्यु रखा गया। द्रौपदी के भी पाँचों पाण्डवों से पाँच पुत्र हुए, जो क्रमशः प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन नामक थे।

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! एक दिन वन विहार की इच्छा से अर्जुन के साथ कृष्ण और सभी राजरानियाँ आदि

यमुनातट पर जाकर विहार करने लगे। तभी वहाँ विप्र वेश में अग्निदेव प्रकट होकर बोले—हे वीरश्रेष्ठ ! मुझे आहार देकर सन्तुष्ट कीजिए। इस खाण्डव वन की रक्षा इन्द्र करते हैं और वे वर्षा करके मेरे तेज को शान्त कर देते हैं। इसलिए मैं इसे इच्छा रहते हुए भी भस्म नहीं कर पाता। आप दोनों नर-नारायण के अवतार हैं, मेरी इस इच्छा को आप ही पूरा कर सकते हैं।

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! खाण्डववन को भस्म करने की अग्नि ने क्यों इच्छा की यह बताइये ? वैशम्पायन बोले—प्राचीन समय में राजा श्वेतकि हुए थे। वे आये दिन यज्ञ कराया करते थे। इससे उनके पुरोहित भी ऊब गये और उन्होंने आगे कोई यज्ञ करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। राजा ने जब बहुत कहा, तब उन्होंने कहा भगवान् रुद्र के पास जाओ, वे तुम्हारा यज्ञ करायेंगे। तब राजा ने शिवजी को प्रसन्न कर उनसे यज्ञ कराने का निवेदन किया। शिवजी बोले—हे राजन् ! बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी रह कर अखण्ड घृतधारा से अग्नि को तृप्त करो तो मैं यज्ञ करा सकूँगा। यह सुन कर राजा ने बारह वर्ष तक अग्नि को तृप्त किया और फिर शिवजी से यज्ञ कराने की प्रार्थना की। शिवजी ने कहा—महाराज ! हम देवता यज्ञ नहीं करा सकते। आप मेरे अंशावतार दुर्वासा ऋषि से यज्ञ कराओ, तब शिवजी की आज्ञा से महर्षि दुर्वासा ने सौ वर्ष तक यज्ञ कराया और फिर समापन होने पर इच्छित दक्षिणादि लेकर चले गये।

हे जनमेजय ! राजा के यज्ञों में घृत पीते-पीते अग्नि को अजीर्ण होगया, जिससे वे बहुत व्याकुल हुए। ब्रह्माजी ने उन्हें परामर्श दिया कि तुम खाण्डववन को भस्म करके प्राणियों के मांस-मेद से पुनः स्वस्थ हो सकते हो। यह सुनकर अग्नि खाण्डव वन को जलाने लगे किन्तु इन्द्र ने वैसा नहीं करने दिया। तब वह पुनः ब्रह्माजी के पास गये तो उन्होंने कहा—अर्जुन और

कृष्ण के नाम से नर-नारायण ने पृथिवी पर अवतार लिया है। वे तुम्हारे कार्य में सहायता करेंगे। यह सुन कर अग्निदेव उनके पास जाकर जो कहा वह तुम्हें बता चुका हूँ। उसके उत्तर में इन्द्र ने कहा कि भगवन्! इस समय मेरे पास दिव्य अस्त्रादि नहीं है और कृष्ण के पास भी ऐसा कोई साधन नहीं है, जिससे आवश्यकता हो तो इन्द्र से भी युद्ध किया जा सके।

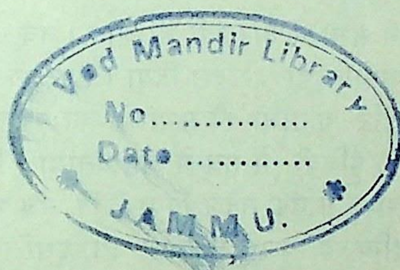
यह सुन कर अग्नि ने वरुण का स्मरण किया और उनसे प्रकट होने पर बोले—राजा सोम प्रदत्त अक्षय तर्कस, दिव्य धनुष, वानरध्वज वाला रथ तथा चक्र लाकर इन्हें दीजिये। तब वरुण ने वह सब ला दिये। ब्रह्माजी द्वारा निर्मित दिव्य गाण्डीव धनुष पाकर अर्जुन बहुत आनन्दित हुए। दिव्य चक्र और आग्नेयास्त्र लेकर कृष्ण ने भी सहायता करना स्वीकार कर लिया। तभी वरुण ने कौमोदकी नामक गदा भी कृष्ण को भेंट की।

तभी अग्नि ने खाण्डववन भस्म करना प्रारंभ किया, अर्जुन और कृष्ण उस समय असुरों और पिशाचों को नष्ट करने लगे। असंख्य प्राणी जलते हुए आर्तनाद करने लगे। भीष्म गर्मी से देवता व्याकुल होकर इन्द्र की शरण में गये, तब इन्द्र ने मोटी जलधाराएँ बरसानी प्रारम्भ कीं। तभी अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्रों के प्रभाव से वर्षा को रोक दिया तब तो इन्द्र और अर्जुन का युद्ध होने लगा। उस समय श्रीकृष्ण का भी चक्र चल रहा था। उससे अंसख्य प्राणी कट गये। तभी आकाशवाणी हुई—हे इन्द्र! इस वन में रहने वाला तुम्हारा मित्र तक्षक नाग भस्म नहीं हुआ है। इसलिए तुम्हें यह युद्ध तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। यह निश्चय है कि कृष्ण और अर्जुन अजेय हैं। खाण्डव वन के भस्म होने का कार्य तो विधि-विधान से ही हुआ है। यह सुन कर देवताओं सहित इन्द्र स्वर्ग के लिये चले गए। तब खाण्डववन का दाह-कार्य तेजी से होने लगा।

तभी तक्षक के स्थान से निकल कर मय दानव भागने लगा। कृष्ण उसे जैसे ही मारने को हुए वैसे ही उसने अर्जुन से रक्षा-प्रार्थना की तब अर्जुन ने उसे बचा दिया। इस प्रकार पन्द्रह दिनों तक वह वन निरन्तर जलता रहा। तदनन्तर सब प्रकार से तृप्त हुए अग्निदेव उन दोनों को सर्वत्र गति वाले होने का वर देकर अन्तर्धान होगए। उस समय कृष्ण, अर्जुन और मय दानव यह तीनों ही यमुनातट पर रह गये।

॥ आदि पर्व समाप्त ॥





सभा पर्व

जरासन्ध-वध वर्णन

वैशम्पायनजी बोले– हे राजन् ! मय दानव ने श्रीकृष्ण और अर्जुन का बहुत सत्कार किया और हाथ जोड़ कर बोला—हे अर्जुन ! तुमने मेरे प्राण बचाये हैं, मैं तुम्हें एक ऐसी सभा बना कर देना चाहता हूँ जो अद्वितीय होगी। अर्जुन ने यह स्वीकार कर लिया और मय दानव को हस्तिनापुर लेगए। जहाँ उसने सभा स्थान नापा और मैनाक पर्वत से सामग्री लाकर सभा बनाने लगा, जो कि चौदह मास में बन कर पूर्ण हुई। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने उस सभा में प्रवेश किया। उस समय भारी उत्सव मनाया गया।

उस सभा में नारदजी भी आये। तब उन्होंने राजा युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश दिया। फिर उन्होंने इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर और ब्रह्माजी की सभाओं का पृथक्-पृथक् वर्णन कर इस सभा को पृथिवी में सब से श्रेष्ठ बताया। फिर कहा कि तुम्हारे पिता पाण्डु ने एक संदेश दिया है कि सब भाइयों की सहायता से तुम दिग्विजय करने में समर्थ हो, इसलिए राजसूय यज्ञ करो। इससे मैं परम सुखी और कृतार्थ हो जाऊँगा। यह सन्देश देकर नारदजी चले गए।

नारदजी के वचन सुन कर युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के विषय में सोचने लगे। उन्होंने अपने भाइयों और मन्त्रियों से बारम्बार परामर्श किया। तब सभी ने एकमत होकर राजसूय यज्ञ करने के विचार का समर्थन किया। तब उन्होंने श्रीकृष्ण का परामर्श लेने के विचार से उनके पास दूत भेजा। उसने श्रीकृष्ण से हस्तिनापुर चलने का अनुरोध किया तो वे उसी समय चल पड़े और युधिष्ठिरादि से मिल कर यथा स्थान बैठ गए।

युधिष्ठिर उनसे परामर्श करने लगे। अनेक अड़चनें बता कर शंकाएँ व्यक्त कीं। कृष्ण बोले—राजसूय यज्ञ कोई सरल कार्य नहीं है। यदि उसे करना ही है तो पहिले दुर्जय जरासन्ध का वध करके उसके बन्धन में पड़े राजाओं को छुड़ाना होगा। यदि यह किया जासके तो राजसूय यज्ञ अवश्य करना चाहिए।

युधिष्ठिर बोले–हे कृष्ण ! जरासंध तुम से भी प्रबल हो गया. यह बड़े आश्चर्य की बात है। कृष्ण ने कहा—महाराज ! यह भी बताता हूँ। वृहद्रथ को काशिराज की दो पुत्रियाँ ब्याही थीं। विषय भोग में फँसे राजा की युवावस्था व्यतीत होगई तब भी कोई सन्तान न हुई। और विरक्त हुए राजा वन में जाने लगे, तभी चण्ड-कौशिक नामक एक महा तपस्वी ने उन्हें आम का एक फल देकर कहा—इसे अपनी रानियों को खिलादे, अवश्य पुत्र होगा। राजा ने वह फल आधा-आधा बाँट कर दोनों को खिला दिया, तो दस महीने बाद दोनों के गर्भ से आधा-आधा बालक उत्पन्न हुआ। उन्होंने दासी से कहा कि इन दोनों टुकड़ों को चुपचाप कहीं फेंक दे। दासी ने वैसा ही किया।

राजन् ! तभी जरा नाम की एक राक्षसी उधर से निकली। उसने उन दोनों टुकड़ों को उठा कर मिलाया तो वह सुन्दर बालक हो गया। इससे राक्षसी भी आश्चर्य करने लगी। अब वह बालक इतना भारी हो गया कि राक्षसी के उठाने से भी न उठा और मेघ गर्जन जैसे स्वरों में रोने लगा। तब तो राजा, रानी तथा अन्यान्य लोग वहाँ दौड़े आये। और बालक को देख कर रानियाँ भी बहुत प्रसन्न हुईं। कुछ कालोपरान्त चण्डकौशिक मुनि पुनः वहाँ आये। राजा ने जरासन्ध को उनके चरणों में डाल दिया। मुनि बोले—महाराज ! तुम्हारा यह पुत्र बड़ा पराक्रमी होगा।

श्रीकृष्ण बोले–हे धर्मराज ! इसके बल-पराक्रम को हम स्वयं देख चुके हैं। इसलिए इसका सामना करना उचित न समझ

कर हम मौन बैठ गए। किन्तु अब वे परिस्थियाँ बदल गई हैं। उसे मारने में नीति से कार्य लेना होगा। भीम, अर्जुन और मैं, तीनों ही मिल कर यह कार्य कर लेंगे। उससे एकान्त में जाकर युद्ध माँगेंगे और अपने कार्य में सफल हो जाँयगे। यदि आप मुझ पर भरोसा करते हैं तो ऐसा करने की आज्ञा दीजिए।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर तीनों ही मगध की राजधानी गिरिव्रज में जा पहुँचे। वे स्नातक ब्रह्मचारी के वेश में जरासन्ध के पास गये। वह इनके वेश को देख कर चौंक गया। उसने कहा-तुम अपने को ब्राह्मण कह चुके हो, किन्तु तुम्हारे हाथों धनुष की प्रत्यंचा के चिन्ह और मुख पर क्षत्रियों का तेज स्पष्ट दिखाई दे रहा है। इसलिए सत्य बताओ कि तुम कौन हो ? कृष्ण बोले—मगधराज ! सत्य पूछते हो तो सुनो, यह भीम और अर्जुन पाण्डु पुत्र तथा मैं तुम्हारा पूर्व परिचित शत्रु कृष्ण हूँ। हम युद्ध के लिए आये हैं या तो तुम अपने वन्दी राजाओं को छोड़ दो, अन्यथा हमसे युद्ध करो।

जरासन्ध ने कहा—युद्ध के भय से मैं बन्दी राजाओं को कदापि नहीं छोड़ सकता। मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ। चाहे सेना लेकर या एक-एक करके लड़ लो अथवा तीनों ही मिल कर आ जाओ। यह कह कर उसने अपने पुत्र सहदेव को राज्य पर बिठाया और अपने सेनापति कौशिक और चित्रसेन को याद किया। कृष्ण बोले—हम तीनों में से किससे युद्ध करोगे। जरासन्ध ने कहा—तुम सब में भीम ही सबल है, वही मुझसे युद्ध करे।

इस प्रकार भीम से जरासन्ध का मल्लयुद्ध छिड़ गया। असंख्य दर्शक उस युद्ध को देखने के लिए इकट्ठे होगए। यह युद्ध दिन रात चलता रहा, चौदहवीं रात्रि में जरासन्ध थक गया तो भीमसेन ने उस पर वेग पूर्वक आक्रमण किया और कृष्ण से

उत्साहित होकर, उसे उठा कर सौ बार घुमा कर पृथिवी पर दे मारा और खूब रगड़ कर उसकी हड्डी तोड़ डाली। इस प्रकार अजेय जरासन्ध को मार कर तीनों वीर बन्दी राजाओं के पास जा पहुँचे और उन्हें बन्धन मुक्त कर दिया। तत्पश्चात् उनकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर और जरासन्ध के पुत्र सहदेव को अभय प्रदान कर गिरिव्रज से चल दिये। इसके बाद इन्द्र-प्रस्थ पहुँच कर युधिष्ठिर से पूर्ण वृत्तान्त कहा। इस प्रकार पाण्डवों का प्रिय करके श्रीकृष्ण अपनी द्वारकापुरी को गये।

युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ, शिशुपाल वध

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! फिर धर्मराज से आज्ञा लेकर चारों भाइयों ने अपने-अपने लक्ष्य में राजाओं को जीतकर 'कर' वसूल किया और सभी दिशाओं में विजय प्राप्त की। इससे इन्द्रप्रस्थ राज्य का कोषागार धन-रत्न आदि सामग्रियों से परिपूर्ण हो गया। यह जानकर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की दीक्षा लेने में अब कोई बाधा नहीं देखी और अपने भाइयों और मन्त्रियों को उसकी तैयारी करने का आदेश दिया। तभी असंख्य धन-रत्नादि की भेंट लेकर श्रीकृष्ण भी यादवों के सहित वहाँ आ गए।

हे राजन्! युधिष्ठिर के उस यज्ञ में व्यासजी ब्रह्मा, धनंजय गोत्रीय सुसामा सामवेद के उद्गाता, याज्ञवल्क्य अध्वर्यु, पैल और धौम्य ऋषि होता हुए। स्वस्ति वाचनादि कर्म के पश्चात् देवताओं और यज्ञभूमि का पूजन आरम्भ हुआ। यज्ञमण्डप की अद्भुत शोभा थी। तभी शीघ्रगामी अश्वारोहियों द्वारा निमंत्रण पत्र भेजे गए। भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृप और दुर्यो-धनादि को नकुल द्वारा सादर बुलावा भेजा गया। फिर देश-देशान्तर से समागत ब्राह्मण विज्ञों ने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ की दीक्षा दी।

हे जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर के उस यज्ञ में भीष्म, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, उसके सौ भाई, शकुनि, कर्ण, सुबल, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि प्रसन्नता पूर्वक आये। अनेक देशों के राजे, महाराजे और ऋषि, महर्षि, तपस्वी आदि भी सम्मिलित हुए। सभी महारथी यादव तथा मध्यदेश, उत्तराखण्ड आदि के नरेशगण ने भी भाग लिया। चारों वर्ण के प्रजाजन, राजपुरुष, राजसेवक आदि के कारण भारी भीड़ बढ़ गई थी। सबके लिए ठहरने की सुन्दर समुचित व्यवस्था थी। महाराज युधिष्ठिर ने सब स्वजनों के लिए उन-उन के योग्य कार्य सोंप दिये। खाने-पीने की व्यवस्था दुःशासन को, विप्र-सत्कार की अश्वत्थामा को, राजाओं के स्वागत-सत्कार की व्यवस्था संजय को, सभी कार्यों के पूरी देख-रेख भीष्म और द्रोणाचार्य को, धनादि दक्षिणा देने का कार्य कृपाचार्य को, करदाता राजाओं की भेंट की वस्तुओं को संभाल कर रखने का कार्य दुर्योधन को और ब्राह्मणों के चरण पखारने का कार्य श्रीकृष्ण को सौंपा गया।

हे राजन्! यज्ञ के अन्त में अभिषेक वाले दिन राजा युधिष्ठिर अन्तर्वेदी संज्ञक सभा मण्डप में बैठे थे तब भीष्म पितामह ने उनसे कहा—युधिष्ठिर ! अब इन राजाओं का यथा योग्य पूजन करो। आचार्य ऋत्विज्, स्नातक, सम्बंधी, सुहृद और राजा अर्घ्य-प्राप्ति के अधिकारी होते हैं। अनेक राजागण बहुत दिनों से हमारे साथ रह रहे हैं, इन्हें भी अर्घ्य दिया जाना चाहिए। अब प्रश्न यह है कि सर्व प्रथम अर्घ्य का अधिकारी कौन श्रेष्ठ पुरुष है ? मेरे विचार में तो तदुकुलावतंश कृष्ण ही सर्व श्रेष्ठ और योग्य हैं।

यह कह कर भीष्म पितामह ने सहदेव को आदेश दिया कि प्रधान अर्घ्य लाकर श्रीकृष्ण को अर्पण करो। सहदेव ने तुरन्त आदेश पालन किया। श्रीकृष्ण ने उस प्रमुख अर्घ्य को शास्त्रोक्त

विधि से ग्रहण किया, तभी चेदि नरेश शिशुपाल ने उठकर कहा —युधिष्ठिर ! कृष्ण इसका कदापि अधिकारी नहीं है। भीष्म ने धर्म का उल्लंघन करके मूर्खता का ही परिचय दिया है। प्रथम तो कृष्ण राजा है ही नहीं, दूसरे वसुदेवजी के रहते हुए उसकी पूजा कैसे की जासकती है? यदि आचार्य मानकर पूजन किया हो तो द्रोणाचार्य के आगे उसका क्या महत्व है ? यदि यही करना था तो इन बड़े-बड़े राजाओं और पूजनीय विद्वानों, ऋषि-महर्षियों को बुलाने की आवश्यकता ही क्या थी ? हे कृष्ण ! तू ने अयोग्य होकर भी इस सम्मान को प्राप्त करने की चेष्टा की है, किन्तु यह वैसा ही हुआ जैसे नपुंसक का विवाह करना होता है हे राजागण ! सब एक होकर इन मूर्ख पाण्डवों और यादवों को नष्ट कर डालो। मैं तुम सब की सेनाओं की बागडोर सँभालने के लिए तैयार हूँ।

हे राजन् ! शिशुपाल के जोशीले वचन सुन कर उसके पक्ष के राजागण युद्ध करने के लिए तैयार होगए। तब युधिष्ठिर ने आशंका वश भीष्म पितामह से कहा—पितामह ! यह सेनाएँ समुद्र के समान उमड़ रही हैं। अब मुझे क्या करना चाहिए ? पितामह बोले–चिन्ता न करो, मैंने पहिले से ही कर्त्तव्य निश्चित कर रखा है। शिशुपाल के साथ इन सबकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।

भीष्म के वचन सुन कर शिशुपाल क्रोध में आपे से बाहर हो गया। उसने उनकी निन्दा करते हुए अनेक अपशब्दों का प्रयोग किया। शिशुपाल की ऐसी धृष्ठता देख कर भीमसेन से न रहा गया। वे दाँत पीसते हुए, जैसे ही उस पर झपटने के लिए तैयार हुए वैसे ही भीष्म पितामह ने उन्हें पकड़ लिया और समझा कर शान्त करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने कहा— भीम ! शिशुपाल के यह अपशब्द इसकी अपनी बुद्धि से नहीं,

वरन् जगत्पति कृष्ण की प्रेरणा से ही निकल रहे हैं। काल के वश हुए बिना कोई ऐसी बकवास नहीं कर सकता। इसमें विष्णु का जो तेज है उसे भगवान् वासुदेव अपने में समेट लेना चाहते हैं।

भीष्म के यह मर्म वचन सुन कर शिशुपाल और भी बौखलाया। उसने कहा—जनार्दन! आगे आओ। मैं आज तुम्हें पाण्डवों सहित समाप्त करके सब झंझट मिटाये देता हूँ। इस प्रकार शिशुपाल कृष्ण के प्रति अनुचित्त और कठोर शब्द कहने लगा। श्रीकृष्ण चुपचाप सुनते रहे और कुछ देर बाद सहसा बोल उठे—राजागण! इसकी माता मेरी बुआ है, मैं उसे इसके एक सौ अपराधों को क्षमा करने का वचन दे चुका था। अब इसके अपराध सौ से भी अधिक होचुके हैं। इसलिए इसे क्षमा करना अब मेरे वश की बात नहीं।

हे राजन्! इतना कह कर उन्होंने सुदर्शन चक्र को प्रेरित किया, जिसने तीव्र गति से शिशुपाल का शिर काट डाला। उसके शरीर से निकला हुआ तेज श्रीकृष्ण में समा गया। तभी कुछ अनिष्ट सूचक शकुन होने लगे। शिशुपाल पक्ष के राजे दांत पीसने लगे। सभा में भारी कोलाहल मच गया। साधु राजा कृष्ण की स्तुति करने लगे। युधिष्ठिर ने चेदि राज्य के सिंहासन पर शिशुपाल के पुत्र का अभिषेक कर दिया। तत्पश्चात् यज्ञ का शेष कार्य पूरा किया गया। जब तक यज्ञ-कार्य पूर्ण नहीं हो गया, तब तक श्रीकृष्ण सतर्क रह कर उसकी रक्षा करते रहे। तत्पश्चात् सब राजेमहाराजे, ऋषि-महर्षि प्रजाजन आदि युधिष्ठिर से विदा ले-लेकर अपने-अपने स्थान को गये। भगवान् कृष्ण भी सब यादवों के साथ द्वारकापुरी के लिए चल दिये। किन्तु दुर्योधन और शकुनि कुछ दिन के लिए वहाँ ठहर गये।

युधिष्ठिर का जुए में सर्वस्व हारना

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! वहाँ रह कर दुर्योधन मया-सुर निर्मित सभा की विचित्रता देखने लगा। वह एक दिन वहाँ घूम रहा था तभी सुन्दर फर्श पर उसे जल का भ्रम हुआ और उसने भीगने की आशंका से अपने वस्त्र ऊँचे कर लिये और जल समझ कर बचने लगा तो स्थल पर गिर गया। आगे बढ़ा तो उसे जल का हौज मिला, जो उसे स्थल जैसा दिखाई दिया। दुर्योधन जैसे ही आगे बढ़ा, वैसे ही उसमें गिर गया। उसके वस्त्र भीग गये। उपस्थित सेवकगण भी उस दृश्य को देख कर हँसी न रोक सके। भीमसेन ने ठहाका लगाया, साथ ही अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि सभी हँस पड़े। युधिष्ठिर ने तुरन्त सूखे वस्त्र मँगाये, जिन्हें पहन कर आगे बढ़ा। एक भित्ती को द्वार समझ कर घुसने को हुआ तो जोर की टक्कर लगी और द्वार पर को भित्ती समझ कर उसमें जा पड़ा। इस प्रकार बारम्बार भ्रमित होने के कारण दुर्योधन बहुत पीड़ित और लज्जित हुआ। सभा का अवलोकन उसके लिए इतना कष्टकारी हुआ कि वह शकुनि के साथ तुरन्त हस्तिनापुर से चला गया।

हे जनमेजय ! दुर्योधन बहुत ही उद्विग्न हो उठा। वह पाण्डवों की वृद्धि को सहन न कर, उनके विनाश की बात सोचने लगा। शकुनि ने उसे बहुत समझाया—दुर्योधन ! पाण्डवों से द्वेष करना उचित प्रतीत नहीं होता। उनकी वृद्धि का कारण बाहुबल ही है। देखो, अर्जुन ने कैसे-कैसे कार्य किये हैं ! उनसे ईर्ष्या करने की अपेक्षा तो तुम भी ऐसा प्रयत्न करो कि सम्पूर्ण पृथिवी को जीत लो। दुर्योधन बोला—पाण्डवों को ही जीतने का प्रयत्न क्यों न किया जाय ? तब तो यह अद्भुत सभा भी मेरे अधिकार में आजायगी। शकुनि ने कहा—बाहुबल से उन्हें जीत लेना संभव नहीं है। इससे तो उन्हें पाँसों के खेल में हराने से कार्य बन

सकता। युधिष्ठिर द्यूत के शौकीन हैं, वे अनाड़ी होते हुए भी तुरन्त राजी हो जाँयगे ! यदि वे मेरे साथ खेलने लगें तो मैं उन्हें बात की बात में हरा दूँगा।

शकुनि की उक्त सम्मति दुर्योधन को बहुत पसन्द आई। उसने धृतराष्ट्र से अनुमति लेने की चेष्टा की। तब पुत्र-स्नेह के कारण धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाया। सब हाल सुन कर विदुर बोले कि महाराज ! जुआ बहुत बुरी चीज है, यह अपनों में ही द्वेष उत्पन्न कर देता है, इसलिए यह कार्य आपके लिए शोभा नहीं देगा। दुर्योधन बोला—पिताजी ! यह बेचारे विदुर लोकाचार की बात को क्या जानें ? हमें अपने स्वार्थ को देखना है, न कि द्यूत की बुराई-भलाई को। इनकी बात मानना कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं है।

हे राजन् ! धृतराष्ट्र झुक गए, उन्होंने कोस भर के घेरे में सहस्र स्तंभ और शत द्वार का श्रेष्ठ भवन बनाने की आज्ञा देकर विदुर को आदेश दिया कि तुम युधिष्ठिर को शीघ्र यहाँ ले आओ। वे यहाँ हमारे श्रेष्ठ सभा-भवन को देखें और द्यूत क्रीड़ा करें। यह सुन कर विदुर अनिच्छा पूर्वक चल दिये और इन्द्रप्रस्थ पहुँच कर युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र का निमंत्रण दिया। युधिष्ठिर बोले—चाचाजी ! यद्यपि जुआ बहुत बुरी वस्तु है, फिर भी मुझे बुलाया गया है तो अवश्य चलूँगा।

यह कह कर अपने भाइयों के सहित रथ पर चढ़ कर हस्तिनापुर को चल दिये। आगे-आगे ब्राह्मण, पुरोहित आदि चले। एक रथ में द्रौपदी भी साथ गई। सब लोग परस्पर मिल भेंट कर वार्तालाप करने लगे। द्रौपदी ने गान्धारी के चरण स्पर्श किये। दूसरे दिन प्रातः काल स्नानादि से निवृत्त होकर सब लोग धृतराष्ट्र की सभा में गये। वहाँ धृतराष्ट्र आदि वृद्ध पुरुषों के चरण स्पर्श करके श्रेष्ठ आसनों पर बैठे। तभी शकुनि ने कहा—

महाराज युधिष्ठिर ! सभी आगत जन चौसर के खेल की प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिए आप बाजी लगा कर द्यूत का आरंभ करें। युधिष्ठिर बोले—राजन् ! यह तो बड़ा निन्दित कर्म है, मैं इसके लिए तैयार नहीं हूँ।

शकुनि बोला–महाराज ! यह कर्म कभी निन्दित नहीं रहा। इसे खेलने वाला अवश्य ही बड़ा बुद्धिमान माना जाता है। इस लिए विलम्ब न करके पांसे फेंकिये। युधिष्ठिर ने कहा—यह मेरा व्रत है कि यदि कोई किसी कार्य में मुझे चुनौती दे तो मैं पीछे नहीं हटता। अच्छा, यह बताओ कि मेरे साथ कौन खेलेगा ? दुर्योधन ने कहा—मेरी ओर से मामा शकुनि क्रीड़ा में आपका साथ देंगे। लीजिए, मैं यह श्रेष्ठ मणि जटित हार दाँव पर लगा रहा हूं। आप भी बताइये—क्या लगा रहे हैं ?

युधिष्ठिर बोले—मैं असंख्य मणि-रत्न और अतुल धन को लगाता हूँ। तब शकुनि ने पाँसे फेंककर अपनी जीत की घोषणा की। तब युधिष्ठिर ने सम्पत्ति से परिपूर्ण कोष की बाजी लगाई। उसे भी शकुनि ने छल पूर्वक जीत लिया। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने अपना रथ, एक लाख दासियां, एक लाख दास, हजारों श्रेष्ठ गजराज, उनसे अठगुनी हथिनियाँ, रथ-रथी अश्व, वाहन, लोहे-तांबे के सन्दूक, स्वर्ण-राशि आदि क्रमशः दाव पर रखीं और शकुनि ने छल पूर्वक उन-उन को भी जीत लिया।

तदनन्तर विदुर ने उठ कर धृतराष्ट्र को समझाया कि राजन् ! अब इस क्रीड़ा को बन्द करा दीजिए। यह द्यूत कलह की जड़ है, इससे कुरुवंश का नाश हो सकता है। इस पर दुर्योधन ने कहा—विदुर ! हम जान गये हैं कि तुम सदैव पाण्डवों का पक्ष लेकर हमारा निरादर करते रहते हो। मै तुम्हें सावधान करता हूँ अब हमारे बीच में पड़ने का प्रयत्न न करना।

अब शकुनि ने कहा—राजन् ! अब आपके पास और कुछ हो तो दाँव पर लगाइये। युधिष्ठिर बोले—शकुनि ! मेरे पास असंख्य धन शेष है, उस सब को दाँव पर लगाता हूँ। शकुनि ने कपट पाँसे फेंक कर उसे भी जीत लिया। तब उन्होंने अपने सब गांव, नगर, जनपद, राजधानी, सब पाण्डवकुमार, नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीमसेन को दाँव पर लगा कर खो दिये और फिर स्वयं को भी हार गये। शकुनि ने फिर कहा—अब क्या द्रौपदी को दाँव पर लगायेंगे ? युधिष्ठिर बोले—यद्यपि मेरा यह कार्य अनुचित होगा, फिर भी मैं द्रौपदी को लगाये देता हूँ।

हे जनमेजय ! युधिष्ठिर के यह वचन सुन कर सभी सभासद 'धिक्कार है, धिक्कार है' कहने लगे। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर आदि व्याकुल हो गए। इतने में ही शकुनि ने कहा—द्रौपदी भी जीत ली गई। तभी दुर्योधन ने विदुर से कहा—विदुर ! तुम अभी द्रौपदी को यहाँ उपस्थित करो, उससे दासी का कार्य लिया जायगा। विदुर बोले—अरे मूर्ख ! यह कुवाक्य कोई भी मनुष्य नहीं कह सकता। अरे क्षुद्र ! सिंहों को क्रोधित न कर। युधिष्ठिर ने स्वयं को हार कर द्रौपदी को दाँव पर लगाया है, जिसका उन्हें अधिकार नहीं था।

तब दुर्योधन ने अपने सारथी प्रातिकामी को आज्ञा दी। वह तुरन्त द्रौपदी के पास जाकर बोला—युधिष्ठिर आपको जुए में हार गए है, अब आपको दुर्योधन की दासी का कार्य करने के लिए चलना है। द्रौपदी बोली—यह पूछ कर आ कि महाराज ने पहले स्वयं को हारा या मुझे ? प्रातिकामी ने दुर्योधन से द्रौपदी की बात कही तो उसने कहा—द्रौपदी को जो कुछ पूछना हो सभा में आकर पूछे। तब अनिच्छा पूर्वक प्रातिकामी पुनः गया और इस बार भी द्रौपदी को न ला सका तो दुर्योधन ने दुःशासन को उसे बलपूर्वक ले आने की आज्ञा दी।

दुःशासन तुरन्त द्रौपदी के पास पहुँचा और केश पकड़ कर घसीटता हुआ सभा में ले पहुँचा। द्रौपदी ने उससे वहाँ न ले चलने का बहुत अनुरोध किया, किन्तु वह न माना। तब सभा में पहुँच कर वह बोली—अरे नीच ! मैं रजस्वला हूँ, मेरे शरीर पर एक ही साड़ी है, उसे खींच कर तू मुझे नग्न न कर। देख, यहाँ बड़े-बड़े धर्मज्ञ, शास्त्र पारंगत, प्रतापी और महाबली गुरुजन विराजमान हैं। अरे, तेरे इस कुकर्म की कोई भी सभाजन निन्दा नहीं करता, यह कैसे आश्चर्य की बात है। तेरा यह आचरण कौरव-वंश की मर्यादा के भी विरुद्ध है।

हे जनमेजय ! इस प्रकार कहते हुई द्रौपदी पाण्डवों की ओर क्रोध दृष्टि से देखने लगी। तभी दुःशासन अट्टहास करता हुआ उसकी साड़ी को और भी जोर से खींचने लगा। तब द्रौपदी रोने लगी और धैर्य-धारण में असमर्थ भीमसेन युधिष्ठिर की ओर देखने लगे। किन्तु युधिष्ठिर ने उन्हें शान्त कर दिया !

इधर धृतराष्ट्र-पुत्र विकर्ण को भी यह बात ठीक नहीं लगी। उसने कहा कि यह अन्याय रोका जाना चाहिए तब कर्ण ने उसे समझा-बुझा कर शान्त किया और दुःशासन से कहा—विकर्ण की बुद्धि अभी कच्ची है। तुम द्रौपदी के ही नहीं, पाण्डवों के भी वस्त्र उतार लो। यह सुन कर पांडवों ने अपने-अपने वस्त्र स्वयं उतार फेंके। दुःशासन द्रौपदी को बलात् नंगी करने लगा तो वह भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी। हे जनमेजय ! तब तो उसका वस्त्र स्वयं ही बढ़ने लगा। वह जितना ही उसे खींचता, उतना ही चीर बढ़ता जाता। यह देख कर सभी सभासद् विस्मित होगए। दुःशासन थक कर एक ओर जा बैठा इसी समय भीम ने कहा—क्षत्रियो ! यदि इस पापी दुःशासन का हृदय चीर कर रक्त पान न करूँ तो मुझे पूर्व पुरुषों की गति न मिले। यदि यशस्वी धर्म राज हमारे स्वामी न होते तो

हम इन अत्याचारों को कभी भी सहन न करते। यदि यह आज्ञा दें तो मैं इन धृतराष्ट्र पुत्रों को अभी पीस सकता हूँ।

दुर्योधन बोला—हे धर्मराज ! आप ही बताइये कि द्रौपदी हारी हुई है या नहीं ? यह कह कर उसने अपनी जाँघ का वस्त्र हटा कर द्रौपदी की ओर घृणित संकेत किया। यह देख कर क्रोधित हुए भीम ने उच्च स्वर से कहा—दुर्योधन ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्ध में तेरी इसी जाँघ को तोड़ डालूँगा।

तदनन्तर दुर्योधन ने कहा—द्रौपदी ! मैं भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पर ही छोड़ता हूँ यदि यह कह दें युधिष्ठिर प्रभु नहीं हैं तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा। अर्जुन बोले—जब धर्मराज ने हम को दाँव पर लगाया था, तब तक वे हारे नहीं थे, इसलिए हमारे स्वामी थे। जब वे स्वयं को हार गये, तब फिर किसी को दाँव पर कैसे लगा सकते हैं। इस पर सभी कुरुवंशी विचार कर लें।

तभी धृतराष्ट्र के अग्नि होत्र भवन में घुस कर शृगाल रोने लगे और अन्यान्य अशुभ कुशकुन होने लगे। तब सब लोग अनिष्ट की आशंका से काँप उठे। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को फटकार कर एक ओर बैठने को कहा और द्रौपदी से बोले—बेटी ! तुम हमारी पुत्रवधुओं में सर्वश्रेष्ठ हो, तुम पर मैं प्रसन्न होकर वर देना चाहता हूँ, जो चाहो सो माँग लो।

द्रौपदी बोली—यदि आप प्रसन्न हैं तो यही वर दें कि धर्मराज युधिष्ठिर और मेरा पुत्र प्रतिविन्ध्य दास्यभाव से मुक्त हो जाँय। धृतराष्ट्र बोले—यही होगा। अब मैं तुम्हें एक वर और देना चाहता हूँ। द्रौपदी बोली—महाराज ! दूसरा वर यह माँगती हूँ कि भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव भी अपने धनुष-बाण-रथ आदि के सहित दास्यभाव से छूट जाँय। धृतराष्ट्र बोले—यह भी दिया। अब तुम्हारी धर्मपरायणा देख कर एक वर और देना चाहता हूँ। इस लिए जो इच्छा हो माँग लो। द्रौपदी ने

कहा—महाराज लोभ से धर्म नष्ट होजाता है। शास्त्र के अनुसार वैश्य को एक, क्षत्रिय की स्त्री को दो और ब्राह्मण को सौ वर माँगने का ही अधिकार है। इसलिए अब और वर नहीं माँगती।

पाण्डवों का वनगमन

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! इसी बीच क्रोधित भीमसेन को अर्जुन और युधिष्ठिर ने बहुत समझा बुझा कर शान्त करने की चेष्टा की। तभी धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—युधिष्ठिर ! अब तुम जाकर पूर्ववत राज्य करो। तुम बहुत ही बुद्धिमान हो। पुत्र ! तुम अपने क्षमा-भाव को सदा अपनाये रहना। दुर्योधनादि के कठोर वचनों को भी भूल जाना। मैं यही चाहता हूँ कि तुम सब भाइयों में मेल बना रहे। यह सुन कर द्रौपदी सहित सभी भाई इन्द्रप्रस्थ को चले। उनके इस प्रकार पुनः वैभववन्त होने पर दुर्योधनादि को बहुत दुःख हुआ। वे सब धृतराष्ट्र के पास जाकर बोले—महाराज ! यह तो बहुत बुरा हुआ कि आया हुआ धन निकल गया। अब वे कुपित हुए पाण्डव हमसे बदला लिये बिना न रहेंगे। संभव है वे शीघ्र ही सेना लेकर हम पर आक्रमण कर दें। इसलिए हम चाहते हैं कि अब की बार वनवास की बाजी लगा कर उन्हें हराया जाय। इस बार उन्हें बारह वर्ष का वनवास और फिर एक वर्ष का अज्ञातवास मिलेगा। इस इस प्रकार उनके बाहर रहने से हमारा राज्य सुदृढ़ होजायगा।

धृतराष्ट्र ने यह बात मान ली। किन्तु द्रोणाचार्य कृपाचार्य, भीष्म, विदुर, अश्वत्थामा, विकर्ण आदि ने इसका बहुत विरोध किया। किन्तु धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की बात रखने के लिए पाण्डवों के पास दूत भेजा। इसी बीच गान्धारी ने भी धृतराष्ट्र को बहुत समझाया, किन्तु भवितव्यता के वश होकर उन्होंने उसकी भी न सुनी।

सूतपुत्र प्रतिकामी ने युधिष्ठिर के पास पहुँच कर कहा--महाराज ने आपको पुनः जुआ खेलने के लिए याद किया है, वहाँ पुनः सभा एकत्रित हो रही है। युधिष्ठिर बोले-यदि महाराज धृतराष्ट्र ने पुनः चौसर खेलने की आज्ञा दी है तो मैं उसे कैसे अमान्य कर सकता हूँ।

यह कह कर युधिष्ठिर पुनः अपने भाइयों के सहित उस सभा में जा पहुँचे। शकुनि ने कहा—महाराज ! इस बार हम विचित्र बाजी लगाना चाहते हैं। यदि हारेंगे तो बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष अज्ञात वास में रहेंगे। यदि बीच में हमारा पता चल गया तो वह समय उसमें नहीं जोड़ा जायगा। यह नियम द्रौपदी सहित आप पाँचों भाइयों पर भी लागू होगा।

शकुनि की बात सुन कर सभी सभासद धिक्कार देने लगे, किन्तु युधिष्ठिर क्षत्रिय-धर्म रखने के लिए तैयार होगए। शकुनि ने पाँसे फेंक कर कपट-पूर्वक कहा—लीजिए, हम जीत गये। तत्पश्चात् पाण्डवों ने राजसी पोशाक छोड़ कर मृगछाला धारण कर ली और वनवास के लिए जाने लगे। तभी दुःशासन बोला—आज से महाराज दुर्योधन इस सम्पूर्ण पृथिवी के सम्राट् होगए। इस प्रकार मदोन्मत्त हुए कौरव विभिन्न प्रकार के व्यंग कसने लगे। भीमसेन को क्रोध आया, किन्तु धर्मराज के वचनों के कारण वे कुछ कर न सके।

वन जाने के लिए तत्पर युधिष्ठिर से विदुर ने कहा-धर्मराज! कुन्ती सदैव सुख में रही हैं, वनवास के दुःख उनसे सहन नहीं होंगे। इसलिए वे सादर मेरे घर में निवास करें। पाण्डवों ने इसे स्वीकार कर लिया। रोती हुई कुन्ती ने हृदय को कठोर करके पाण्डवों के साथ द्रौपदी को विदा किया। पर बाद में नेत्रों से अश्रु-प्रवाह फूट पड़ा। विदुर उन्हें समझा-बुझा कर अपने घर लिवा लेगए।

तत्पश्चात् विदुरजी राजा धृतराष्ट्र के पास राजसभा में पहुँचे तो उन्होंने पूछा—विदुर ! पाण्डवों के वन-गमन का ढँग क्या है ? विदुर बोले—सब की मुद्रा पृथक्-पृथक् है। युधिष्ठिर अपने मुख को वस्त्र से ढँके हुए आगे चल रहे हैं। यदि वे वस्त्र को नेत्रों से हटा लें तो उनकी क्रोधाग्नि में सभी कौरव तुरन्त भस्म हो सकते हैं। राजन् ! प्रजाजन कह रहे हैं कि पाण्डवों के साथ कपट करके पापी कोरवों ने अच्छा नहीं किया। देखिये,यह भयंकर उत्पात कौरव-नाश की सूचना दे रहे हैं।

हे जनमेजय ! विदुरजी यह कह ही रहे थे कि ऋषि मण्डली सहित नारदजी आकर बोले—आज से चौदहवें वर्ष दुर्योधन के दोष से कौरव वंश नष्ट होजायगा। यह कह कर नारदजी तुरन्त चले गए। तब कर्ण और शकुनि सहित दुर्योधन अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसने द्रोणाचार्य को कौरव वंश का रक्षक समझ कर अपनी और राज्य की रक्षा का भार सोंप दिया।

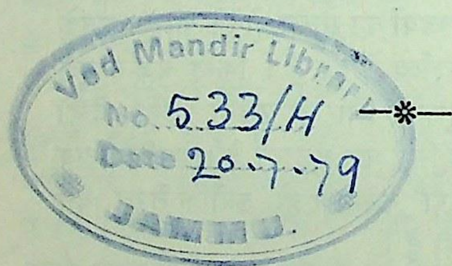
द्रोणाचार्य बोले—दुर्योधन ! यद्यपि मैं पाण्डवों को अवध्य जानता हूँ, फिर भी राजभक्ति से विमुख नहीं हो सकता। यद्यपि मुझे मारने वाला धृष्टद्युम्न पाण्डवों का साला होनेके कारण उनके पक्ष में रहेगा। फिर भी मैं कर्त्तव्य में दृढ़ हूँ। किन्तु अर्जुन मुझे प्राणों से भी प्रिय है, उससे तुम्हारे लिए ही लड़ना पड़ेगा। देखो तुमने स्वयं विपरीत काल को सिर पर बुलाया है। इसलिए अब वह कार्य करो, जिससे तुम्हारा कल्याण हो क्योंकि तेरह वर्ष बाद तुम्हारा नाश अवश्यंभावी है।

धृतराष्ट्र बोले—विदुर ! आचार्य ठीक कहते हैं। तुम पाण्डवों को शीघ्र लौटा लाओ। वे न लौटें तो उन्हें सम्पूर्ण सुविधाओं के साथ, हाथी, अश्व, सेना, धन आदि देकर ऐसा

प्रयत्न करो कि उन्हें कष्ट न उठाना पड़े। किन्तु, विदुर ने यह सब उनका प्रलाप मात्र समझा।

तदनन्तर एकान्त में विचारमग्न बैठे हुए धृतराष्ट्र के पास आकर संजय ने पूछा—महाराज ! अब तो आप सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी हो चुके हैं, फिर क्यों उदास होरहे हैं। धृतराष्ट्र बोले-संजय ! पाण्डवों के साथ शत्रुता होने पर निश्चिन्तता कहाँ रह सकती है ? संजय बोला—राजन् ! इस शत्रुता का उत्तरदायित्व आप पर ही है। आपके पुत्र ऐसे-ऐसे दुष्टता पूर्ण कार्य करते रहे और आपने कुछ भी न कहा। देखिये पाण्डवों के रक्षक भगवान् वासुदेव जब सामने आजाँयगे, तब उनके वेग को रोकने में कोई भी समर्थ न होगा। इसलिए आप कौरव-पाण्डवों में मेल करा दीजिए, इसी में भलाई है। धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुम सत्य कहते हो। विदुर ने भी मुझे बहुत बार समझाया, किन्तु पुत्रों के मोह में मैंने कुछ नहीं सुना। अब, बात बहुत बढ़ गई तो क्या किया जाय, किस प्रकार मेल हो, यह समझ में नहीं आता है।

॥ सभापर्व समाप्त ॥



—*—

वन पर्व

विदुर का निष्कासन

जनमेजय बोले—हे भगवन् ! पाण्डवगण ने वन में विचरण किस प्रकार किया ? उनके साथ कौन-कौन गया ? द्रौपदी ने वनवास के दुःख कैसे सहे ? यह सब मुझे सुनाने की कृपा करिये। वैशम्पायनजी ने कहा—पाण्डवगण द्रौपदी को साथ लेकर उत्तर की ओर चले। उनके इन्द्रसेन आदि चौदह सेवक थे, वे भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ उनके पीछे चल दिये। फिर इन्द्रप्रस्थ की शोकाकुल प्रजा उनके वियोग में दुःखित होती हुई आई। उसे महाराज युधिष्ठिर ने समझा कर शान्त किया। जब सब प्रजाजन लौट गए तब रथों पर चढ़ प्रमाणवट नामक महा वट की ओर चले। गंगातट पर रात्रि-निवास करके जब चलने को हुए, तब उनके साथ अनेकानेक ब्राह्मण भी चलने लगे। तब युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मर्षिगण ! मेरे पास कुछ भी नहीं है, भोजन की भी कोई व्यवस्था नहीं, तो आपको हमारे साथ चलने में बड़ा कष्ट होगा।

ब्राह्मणों ने कहा—धर्मराज ! हम भी उन कष्टों को सह सकते हैं। हम अपनी जीविका का स्वयं उपार्जन करेंगे और आपको समय-समय पर उपाख्यानादि सुनाते रहेंगे। इसलिए हमें छोड़ना आपके लिए उचित नहीं है। यह सुन कर युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित से कहा—भगवन् ! यह परम विद्वान् तपस्वी ब्राह्मण लौटना नहीं चाहते और मेरे पास इसके भरण-पोषण के लिए कुछ भी नहीं है। फिर मुझे क्या करना चाहिए ?

पुरोहित धौम्य बोले—राजन् ! सब जीवों के भरण करने वाले सूर्य भगवान् हैं, तुम उनकी आराधना करके इनके भरण-पोषण में समर्थ होगे। यह सुन कर युधिष्ठिर ने समाधि लगा कर

सूर्य की प्रसन्नता के लिए तप करने लगे। उनकी स्तुति आदि से सूर्य ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये और बोले—धर्मराज ! तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। मैं तुम्हें बारह वर्ष तक नित्य अन्न देता रहूँगा। जब तक ताम्रपात्र लेकर द्रौपदी अन्न का वितरण करती रहेगी, तब तक वह पात्र खाली नहीं होगा। तेरह वर्ष व्यतीत होने पर तुम्हें पुनः राज्य की प्राप्ति होगी। यह कह कर सूर्य अन्तर्धान होगए।

धर्मराज का तप पूर्ण होगया। द्रौपदी ने रसोई बनाई और परोसने लगी, तो अन्न बढ़ता ही चला गया। इस प्रकार जितने ब्राह्मण साथ चले, वे सब तृप्त होजाते थे। सबको भोजन करा कर पाँचों भाई भोजन करते और अन्त में जब द्रौपदी भोजन कर लेती तब कुछ भी अन्न शेष न रहता।

इधर विदुर ने धृतराष्ट्र को समझाने की चेष्टा की। किन्तु धृतराष्ट्र की समझ में कुछ न आया। दुर्योधन के विरुद्ध विदुर के वाक्य उन्हें अच्छे नहीं लगे। उन्होंने कहा—विदुर ! तुम सदा पाण्डवों का पक्ष लेकर हमारे अनिष्ट के उपाय में तत्पर रहते हो, इसलिए तुम यदि चाहो तो कहीं अन्यत्र जाकर रह सकते हो। यह सुन कर विदुर वहाँ से पाण्डवों के पास चल दिये।

पाण्डवों ने विदुरजी को आते देखा तो आदर पूर्वक उठ खड़े हुए। उनके आने का कारण जानने के लिए सभी उत्कंठित थे, तभी विदुर बोले—धर्मराज ! मुझे धृतराष्ट्र ने अपने यहाँ से निकाल दिया है। यह सुन कर सब एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

मैत्रेयजी का दुर्योधन को शाप देना

वैशम्पायनजी बोले–हे राजन् ! विदुरजी के चले जाने पर धृतराष्ट्र पछताने लगे। उन्होंने सोचा कि अब विदुर की सहायता से पाण्डवों की और भी वृद्धि होगी। उन्होंने संजय को बुला कर

कहा—संजय ! मैंने प्रिय भाई विदुर को त्याग कर बहुत बुरा किया है। अब मुझसे उनका वियोग सहन नहीं होता। तुम किसी प्रकार भी विदुर को यहाँ लौटा लाओ।

संजय तुरन्त चल दिये और पाण्डवों का पता लगाते हुए पहुँच गये। उन्होंने पाँचों भाइयों को प्रणाम कर विदुरजी से निवेदन किया—आपको महाराज धृतराष्ट्र याद करते हैं। वे आपके विना बेचैन हैं, इसलिए तुरन्त चल कर उनके प्राण बचाइये।

यह सुन कर विदुर ने पाण्डवों से आज्ञा ली और संजय के साथ हस्तिनापुर जा पहुँचे। धृतराष्ट्र ने विदुर को आया जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा कि हे अनघ ! मेरे कटु वचनों को भूल कर मुझे क्षमा करो। इस प्रकार राजा स्वरूप भाई से मिल कर विदुर भी अपना अपमान भूल गए।

विदुर को लौटा देख कर दुर्योधन को प्रसन्नता न हुई और कर्ण से बोला—कर्ण ! कहीं विदुर से पाण्डवों को लौटा लाने का परामर्श पाकर पिताजी ऐसा ही न कर बैठें। पाण्डवों के लौटने से पहले ही हमें अपने हित के लिए कुछ निर्णय लेना है। कर्ण बोला—हम सब अभी चल कर उन्हें वनवास में ही मार कर सब झंझट समाप्त क्यों न कर दें ? इस समय सहायहीन होने के कारण वे शीघ्र ही वश में आजाँयगे।

कर्ण की यह बात सब ने ठीक मानी और शीघ्र शस्त्रास्त्र, सेना आदि लेकर पाण्डवों की ओर चल दिये तभी वेदव्यासजी ने मार्ग में ही समझा-बुझाकर उन्हें लौटा दिया और धृतराष्ट्र से जाकर कहा—राजन् ! पाण्डवों को वनवास देने की बात सुन कर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ है। अब भी यह दुर्बुद्धि दुर्योधन उन्हें मार देने के प्रयत्न में तत्पर है। किन्तु ध्यान रखो कि यह उन्हें मारने के लिए जाकर स्वयं ही मारा जायगा इसलिए यातो

इस पापी को भी वन में उनके साथ रह कर स्नेह उत्पन्न करना चाहिए, अन्यथा उपाय करना उचित है, जिससे कुछ अनिष्ट न हो पावे।

धृतराष्ट्र बोले—भगवन् ! आप ही दुर्योधन को समझाने की कृपा कीजिए। व्यासजी ने कहा—मैत्रेयजी यहाँ आने वाले हैं, वे ही कुरुवंश की भलाई के लिए उपदेश करेंगे। तुम सब का वही कर्त्तव्य होगा। यह कह कर व्यासजी चले गये और मैत्रेय जी का शुभागमन हुआ। वे बोले—राजन् ! तीर्थयात्रा करते हुए मुझे काम्यक वन में धर्मराज मिल गये। उन्हें देखने के लिए बहुत-से तपस्वी भी वहाँ आये हुए थे। वहीं मुझे तुम्हारे जुए से सम्बंधित अन्याय का पता लगा। हे दुर्योधन ! पाण्डव अजेय हैं, उन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया है। पर्वत के समान अचल किर्मीर राक्षस को भीम ने बात की बात में मार दिया। मेरी राय है कि उनसे वैर करने की अपेक्षा मेल कर लेना ही श्रेयस्कर है।

मैत्रेयजी के वचन सुन कर अभिमानी दुर्योधन अपनी जाँघ पर हाथ मार कर धरती खोदने लगा। ऋषि ने उसका यह उपेक्षा भाव देखा तो क्रोध में भर कर शाप दे बैठे—दुष्ट ! तू अपने अहंकार में मेरा अपमान करता है। जा, भीम तेरी इसी जाँघ को गदा से तोड़ देगा।

शाप को सुन कर धृतराष्ट्र बहुत व्याकुल हुए। उन्होंने महर्षि को मनाने का प्रयत्न किया तो वे बोले—यदि यह वैर को दूर करेगा तो शाप से बच जायगा। धृतराष्ट्र ने पूछा–भगवन् ! भीम ने किर्मीर को कैसे मारा ? मैत्रेयजी बोले—विदुर इस घटना को जानते हैं, यही सब बता देंगे। यह कह कर मैत्रेयजी चले गए।

तब धृतराष्ट्र ने किर्मीर वध की घटना सुनाने के लिए विदुर से कहा। विदुर बोले—महाराज ! जब पाण्डवगण काम्यक वन में प्रविष्ट होने लगे, तब वह अत्यंत भयानक राक्षस उनका मार्ग रोक कर खड़ा होगया और बोला—तुम कौन हो, मैं तुम्हारा भक्षण करूँगा। धर्मराज ने अपना परिचय दिया तो वह अट्ट-हास करने लगा। उसने कहा—तुम्हारे साथ जो भीम है, उसने मेरे भाई बकासुर को मारा था। मैं इसे बहुत दिनों से खोजता फिर रहा था, आज यह स्वयं ही अपने काल के पास आगया है। यह कह कर उसने भीमसेन पर आक्रमण करने का विचार किया तभी भीम ने एक विशालवृक्ष को उखाड़ कर उसके शिर पर दे मारा। किन्तु राक्षस तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अब तो भीम का राक्षस से घोर युद्ध होने लगा। उसने जो माया फैलाई उसे धौम्य ऋषि ने वेदमन्त्रों से दूर कर दिया। अन्त में भीम की विजय हुई और गला दबाये जाने से उसकी आँखें निकल आईं। जब वह राक्षस मारा गया, तब सब लोग वन में आगे बढ़े।

शाल्व-वध वर्णन

वैशम्पायनजी ने कहा—हे जनमेयजय ! पाण्डवों के वनवास का समाचार पाकर सब प्रमुख यादवों सहित कृष्ण, चेदिनरेश धृष्टकेतु, केकय नरेश, धृतद्युम्न आदि उनके पास पहुँचे। वे सब कौरवों की निन्दा कर रहे थे। उस समय कृष्ण भी अधीर हो रहे थे। तभी अर्जुन ने कहा—हे जनार्दन! आपके बड़े-बड़े परा-क्रम हैं, जो-जो- कार्य आपने किये, वे बड़े-बड़े प्रतापी देवता-असुर भी नहीं कर सकते तो मनुष्य की गिनती ही क्या ? व्यास जी कहते हैं कि लोकों के संचालन के एक मात्र कारण आप ही हैं।

तभी द्रौपदी ने कहा—हे कृष्ण ! असितदेवल ऋषि आपको त्रिलोक स्रष्टा बताते हैं। कोई आपको विष्णु, यज्ञस्वरूप और सत्यरूप कहते हैं। आप सनातन पुरुष हैं। किन्तु आपके होते हुए भी दुःशासन ने मेरे केश पकड़ अपमानित किया था, क्या यह कोई अच्छी बात हुई ? कृष्ण बोले—द्रौपदी ! जिन पर तुम्हारा क्रोध है, उनकी स्त्रियाँ भी अपने-अपने पतियों को प्राणहीन हुआ देखेंगी। इसलिए अब तुम्हें धैर्य धारण करना चाहिए। यदि मैं उस समय द्वारका में होता तो तुम्हें इस विपत्ति को न देखना पड़ता। या तो द्यूत की बाजी ही नहीं होती अथवा दुर्योधन ही समाप्त हो गया होता। जब मैं प्रमाण दे देकर जुए की बुराइयाँ गिनाता, तब धृतराष्ट्र को द्युत बन्द कर देने के अतिरिक्त कोई मार्ग ही न रह जाता।

युधिष्ठिर बोले—केशव ! आप कहाँ चले गए थे ? कृष्ण ने कहा–मैं शाल्व को मारने और उसकी सौभ नगरी को नष्ट करने के उद्देश्य से गया हुआ था। उसने मेरी अनुपस्थिति का सुयोग पाकर द्वारका पर चढ़ाई कर दी और अनेक यादव-बालकों को मार डाला। भवन और उपवन नष्ट भ्रष्ट कर डाले और पूछने लगा कि मेरे भाई शिशुपाल को मारने वाला पापी वासुदेव कहाँ है ? जब मेरा कहीं पता न लगा तब अपशब्द कहता हुआ चला गया। मैंने अपने आनर्त्त देश पर हुए घोर अत्याचार की बातें सुनीं तो विह्वल हो कर शाल्व को मारने को चल दिया।

मेरी अनुपस्थिति में प्रद्युम्नादि कुमारों ने भी कम वीरता से काम नहीं लिया। उन्होंने उसके पक्ष के लोगों के छक्के छुड़ा दिये। तभी प्रद्युम्न उस युद्ध में अचेत हो गए तो सारथी युद्ध भूमि से हटा लाया, फिर जैसे ही प्रद्युम्न को होश आया, वैसे ही वह पुनः युद्धस्थल में जा पहुँचे। इस बार शाल्व प्रद्युम्न से हार कर पृथिवी पर गिर पड़ा तो प्रद्युम्न ने उसे मारने की इच्छा से अमोघ बाण निकाल कर धनुष पर चढ़ाया।

उस बाण को चढ़ा देख कर त्रिलोकी में हाहाकार मच गया। आकाशचारी देवताओं ने नारद से कहा—भगवन् ! इसे रोकिये। नारदजी प्रद्युम्न के पास आकर बोले—वत्स ! यद्यपि यह बाण अमोघ है, किन्तु शाल्व की मृत्यु वासुदेव के हाथ से होगी। इसलिए विधि-विधान के मिथ्या होने से बहुत अनर्थ होगा। तुम इस बाण को तुरंत उतार लो। यह सुन कर प्रद्युम्न ने बाण उतार लिया। चेत आने पर सौभ भी आकाश मार्ग से अपने नगर को चला गया। इधर मैं राजसूय यज्ञ से लौट कर द्वारका गया तो उसे इस प्रकार बर्बाद हुआ पाया और पूछने पर कृतवर्मा ने बताया कि शाल्व ने आकर यह दुर्दशा की है।

तब सब को मैंने सान्त्वना दी और भगवान् रुद्र को प्रणाम कर रथ पर सवार हुआ मार्तिकावत नगर पहुँचने पर पता लगा कि शाल्व समुद्र के पास गया है। मैं इधर ही चला तो उसने मुझे देख कर ललकारा। तब तो मैंने उस पर असंख्य बाणों की वर्षा कर डाली। इसके पश्चात् घोर युद्ध हुआ और वह अनेक प्रकार की माया के आश्रय लड़ाई लड़ने लगा। इधर मेरा सारथी दारुक बुरी तरह घायल होगया था। तभी महाराज उग्रसेन का एक सेवक तीव्र गति से आता दिखाई दिया। उसने दूर से ही कहा—केशव ! उग्रसेनजी ने सन्देश भेजा है कि आपकी अनुपस्थिति का सुयोग देख कर शाल्व ने आपके पिता वसुदेवजी को मार डाला है, इसलिए तुरन्त युद्ध बन्द कर दीजिए।

हे कुरुनन्दन ! उस समाचार को सुन कर मैं हतप्रभ होगया। मैंने समझा कि यदि पिताजी मारे गए तो बलराम, सात्यकि, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, साम्ब आदि भी मारे गए होंगे। इसके बाद मैं युद्ध से पीछे न हटा। तभी मैंने वसुदेवजी को सौभ विमान से नीचे गिरते देखा, उस समय मेरी दशा बड़ी बुरी होगई और मैं हाहाकार कर उठा। उसी समय शत्रुपक्ष के लोग वसुदेवजी पर

शूल-पट्टिश आदि से प्रहार करने लगे। तभी मेरी मूर्च्छा दूर हो गई और मैं समझ गया कि यह सब मायाजाल ही है। तब मैं अपना शार्ङ्ग धनुष लेकर बढ़ चला। शत्रु एक दम छिप गया। दानवगण उत्पन्न होकर चीत्कार करते हुए सामने आये। मैंने शब्दवेधी बाण से उन्हें समाप्त किया। तभी सारथी ने विमान पर शाल्व को दिखाते हुए कहा– केशव! इसे तुरन्त नष्ट कर दीजिये।

मैंने सारथी को सान्त्वना देकर सुदर्शन चक्र को आदेश दिया—चक्र! सौभ विमान और उसके निवासियों को तत्काल नष्ट कर दो। आज्ञा पाते ही चक्र विमान की ओर तेजी से बढ़ा। उसने उसके तेज को नष्ट करके दो खण्ड कर दिये। फिर चक्र ने शाल्व के भी दो टुकड़े कर दिये। उसके साथी दैत्य हाहाकार करते हुए भाग गये। फिर मैंने अपना शंख बजाया, जिसकी ध्वनि सुन कर सब आनन्द विभोर हो गए। हे धर्मराज! मेरी अनुपस्थिति का यही कारण था।

इस प्रकार वार्तालाप करने के पश्चात् सब पाण्डवों से आज्ञा लेकर कृष्ण चलने को हुए तो द्रौपदी रोने लगी। उन्होंने उसे आश्वासन दिया। फिर धृष्टद्युम्न भी द्रौपदी के पुत्रों को साथ लेकर पांचाल देश को लौट गए। तत्पश्चात् केकय नरेश और चेदि नरेश भी अपने-अपने नगर को चल दिए।

अर्जुन का तपस्या करने जाना

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् पाडण्वगण द्वैतवन में पहुँचे। उनके साथ पुरोहित धौम्य और सिद्ध तपस्वी व्रतधारी ब्राह्मण भी थे। वहां उन सब ने सरस्वती के तट पर निवास किया। एक दिन वहाँ महर्षि मार्कण्डेयजी ने उन्हें उपदेश देते हुए अन्त में कहा—युधिष्ठिर! तुम्हारे द्वारा ही कौरवों के हाथ में पड़ी राज्यलक्ष्मी का उद्धार होगा। यह कह कर मार्कण्डेयजी चले गए।

एक दिन सन्ध्या के समय द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा—धर्मराज ! उस पापी नराधम दुर्योधन को हमारे प्रति कुछ भी खेद नहीं हुआ। उसने आपको भी मृगछाला पहनवा दी। उस समय शकुनि, कर्ण, दुर्योधन और दुःशासन ही ऐसे थे जो हमारी दशा देख कर हँस रहे थे। देखो, रत्नजटित सिंहासन पर बैठने वाले आप आज कुशासन पर बैठे हैं। हे राजन् ! शत्रुओं के प्रति क्षमा का व्यवहार अब आपके लिए उचित नहीं है। जो क्षमा के समय क्षमा न करे, वह सब का अप्रिय होता है। अब मैं आपको बलि-प्रह्लाद का इतिहास बताती हूँ। एक समय प्रह्लाद ने दैत्यराज बलि से प्रश्न किया—हे तात क्षमा और तेज दोनों में श्रेष्ट कौन है ? यह मुझे बताइये।

बलि बोले—हे वत्स ! सदा क्रोध दिखाना या सदा क्षमा करना, दोनों ही ठीक नहीं है। क्योंकि सदैव क्षमा से कार्य लेने वाले का बहुत कुछ अनिष्ट हो सकता है। शत्रु तो क्या, सेवक और स्वजन भी उससे किंचित नहीं दबते, वरन् क्षमाशील व्यक्ति को तुच्छ समझते हैं। शासक, यदि क्षमाशील होने के कारण दण्ड नहीं देता तो दुष्ट लोग उद्दण्ड होकर अत्याचार करने लगते हैं।

अब क्रोधी के विषय में कहता हूँ—वह मोह के वशीभूत होकर दण्डनीय, अदण्डनीय दोनों को ही दण्ड दे डालता है। क्रोध का आचरण करने वाले व्यक्ति के मित्र भी विरोधी हो जाते हैं तथा स्वजन भी उसका साथ छोड़ देते हैं। किन्तु इसके विपरीत क्षमा के समय क्षमा और क्रोध के समय क्रोध का प्रयोग करने वाला व्यक्ति इहलोक और परलोक के सुख भोगता हुआ सदा आनन्दित रहता है।

जिसने पहिले कभी कोई उपकार किया हो, वह अवश्य ही क्षमा करने के योग्य है। मूर्खता के कारण अपराध करे वह भी

क्षमतव्य है। किन्तु जो बुद्धिमान जान बूझ कर अपराध करे, अथवा अपराधी प्रवृत्ति का हो वह क्षमा के योग्य कदापि नहीं हो सकता। प्रथम बार के दोष में अपराधी को क्षमा किया जा सकता है। इसीलिए अवसर देख कर क्षमा या दण्ड का निर्णय किया जाना चाहिए।

युधिष्ठिर बोले—पांचाली ! क्रोध ही मनुष्य के नाश और वृद्धि का कारण है। क्योंकि सभी शुभाशुभ घटनाएँ क्रोध से होती हैं। किन्तु क्रोध के वेग को रोकने वाले का ही भला हो सकता है। क्रोध के वेग को रोकने में जो समर्थ नहीं, उसे उसका क्रोध ही नष्ट कर देता है। कभी-कभी क्रोध के वेग को न रोक सकने के कारण आत्म हत्या या हत्याएँ तक हो जाती हैं। इस प्रकार, क्रोधी पुरुष के इहलोक या परलोक दोनों ही नष्ट होजाते हैं। महात्मा काश्यप ने कहा है कि क्षमा ही धर्म, यज्ञ, वेद-शास्त्र, सत्य, तप एवं शौचादि है। उसी ने इस संसार को धारण कर रखा है। ज्ञानी पुरुषों को क्षमा के कारण ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

द्रौपदी बोली—हे प्रभो ! राज्य-पालन के विषय में तो कर्म ही प्रधान है। उसी से विभिन्न लोकों की प्राप्ति होती है। कर्म से ही मोक्ष मिलता है। कर्म न करके, केवल दया, धर्म, क्षमा, सरलता में तत्पर तथा लोकापवाद से भयभीत रहने वाला व्यक्ति कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकता। इन्हीं के कारण आप भी इस दुर्दशा को प्राप्त हुए हैं।

युधिष्ठिर बोले—द्रौपदी ! मैं तुम्हारे कर्म-फल वाले सिद्धान्त को अमान्य नहीं करता, किन्तु फल का उदय हुआ न देख कर देवता और धर्म के प्रति अश्रद्धा करना भी उचित नहीं है। यज्ञादि अनुष्ठान तथा अन्यान्य कर्म भी द्वेष और हिंसा की प्रवृत्ति का त्याग करने से ही सुफल हो सकते हैं।

तभी भीमसेन बोल उठे—महाराज ! धर्म संगत राजपद धारण करने में कोई दोष नहीं होना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम से रहित रह कर हम इस वन में रहते हुए क्या करेंगे ? दुष्ट दुर्योधन ने हमारा राज्य धर्म-पूवक नहीं लिया है, वरन् कपट पाँसों से धोखा देकर ही ले लिया। फिर हम साधारण धर्म की रक्षा के नाम पर ही धर्म-काम में सहायक राज्य रूप अर्थ को त्याग कर ऐसे कष्टकारी दुःखों को भोग रहे हैं। इसलिए, हे महाबाहो ! आप चतुरता पूर्वक शत्रु के नाश में तत्पर हो जाइये। हमें विश्वास है कि हम युद्ध करके शत्रु से अपना राज्य छीन लेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—भीमसेन ! तुम्हारे वचनों से मुझे दुःख होरहा है, फिर भी मैं तुम्हें दोष नहीं दे सकता। क्योंकि मेरे ही कार्य से तुम्हें यह सब दुःख भोगने पड़ रहे हैं। किन्तु, हे भैया ! कृषक जैसे बीज बोकर फल प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा करता है, वैसे ही हमें भी अपने अभ्युदय और सुख के लिए प्रतीक्षा करनी होगी। जो छल करने वाले को हर प्रकार से पुष्ट देख कर नष्ट करता है, उसी के पौरुष की प्रशंसा होती है। हे वीर ! मैं सत्य को ही प्रिय मानता हूँ, इसलिए मेरी प्रतिज्ञा भी सत्य ही होगी। राज्य, धन, पुत्र, यश आदि अपने आप में महान होकर भी सत्य और धर्म के एक अंश की भी समानता नहीं कर सकते।

दोनों भाइयों में इस प्रकार विचार चल रहा था, तभी महर्षि व्यासजी ने वहाँ आकर कहा—धर्मराज ! भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा और दुःशासन को वश में करने का उपाय करने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रति-स्मृति नाम की विद्या को ग्रहण करो। इसको पाकर अर्जुन द्वारा शत्रुओं का संहार हो जायगा। देखो, अर्जुन प्राचीन ऋषि, 'नर' हैं और कृष्णरूप नारायण इनके सहायक। इन्हें कोई जीत नहीं

सकेगा। अब तुम कहीं अन्यत्र जाकर रहो, क्योंकि यहाँ तुम्हें बहुत दिन हो गए हैं। तुम्हारे यहाँ अधिक दिन रहने से शान्त तपस्वियों की तपस्या में बाधा उपस्थित होगी। यह कह कर व्यासजी चले गए।

तब युधिष्ठिर ने व्यास जी से प्राप्त वह विद्या अर्जुन को दे दी और व्यासजी द्वारा बताई हुई विधि को कह कर उन्हें तपस्या करने जाने की आज्ञा दी। तब अर्जुन ने हवन कर, स्वस्तिवाचन कराया और धृतराष्ट्र-पुत्रों को मारने का संकल्प लिया तथा पुरोहित धौम्य की प्रदक्षिणा कर, भाइयों और द्रौपदी से मिल भेंट कर चल दिये। उन्होंने हिमालय और गन्धमादन पर्वत को पार कर इन्द्रकील पर्वत पर 'ठहरो' शब्द सुना। जब उन्होंने इधर-उधर देखा, तभी ब्राह्मणवेश में इन्द्र उसके पास आये। उन्होंने कहा—वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं इन्द्र हूँ,मुझसे चाहो वह वर माँग लो। अर्जुन ने कहा—भगवन्। मैं शत्रुओं से बदला लेने के निमित्त अस्त्र विद्या सीखना चाहता हूँ। इन्द्र बोले—पुत्र ! तुम शिवजी को प्रसन्न करने का उपाय करो जब उनके दर्शन होंगे, तब मैं तुम्हें दिव्य अस्त्र प्रदान करूँगा।

शिवार्जुन-युद्ध वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! अर्जुन ने भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तप किया। उसे देख कर सब महर्षियों ने शिवजी के पास जाकर अर्जुन के तप करने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—ऋषिगण ! अर्जुन के तप का कारण शत्रु-नाश ही है। इसलिए तुम किसी बात की शंका न करो। तब ऋषिगण अपने-अपने आश्रम को गए और इधर भगवान शंकर ने किरात-राज का वेश धारण किया। उन्हीं के समान वेश में भगवती उमा और भूतगण तथा उनकी स्त्रियाँ भी उनके साथ हो लीं। उन्होंने मूक नामक दैत्य को वराह रूप में

अर्जुन की ओर बढ़ता देख कर शर-सन्धान किया तभी अर्जुन ने भी उसे देख लिया और जैसे ही बाण चलाने को उद्यत हुआ वैसे ही शंकर ने उन्हें रोकते हुए कहा—मुने ! मैं इसके प्रति पहिले ही शर-सन्धान कर चुका हूँ।

अर्जुन ने शिवजी के वचनों पर ध्यान न देकर दैत्य पर बाण चलाया तो शिवजी ने भी एक वाण चला दिया। जब उस से कार्य न चला तो दोनों ने ही पुनः अनेक बाण चला कर उसे मार दिया। फिर अर्जुन ने किरात से कहा—तुम कौन हो ? इन कोमलांगियों के साथ एकाकी वन में विचरण करते हुए क्या तुम्हें भय नहीं लगता ? इस वराह को मैंने लक्ष्य बनाया, फिर भी तुमने बाण चला कर मृगया का नियम तोड़ा है। इसके लिए मैं तुम्हारे जीवन का अन्त कर दूँगा।

शिवजी ने हँस कर कहा—मैं इस वन के पास रहता हूँ, यहाँ अकेले रहने में हमें कुछ भी भय नहीं है। किन्तु तुम सुकुमार होकर इस दुर्गम वन में किसलिए घूमते हो ? इस वराह को मारने के लिए मैंने ही पहिले बाण चढ़ाया था, फिर भी तुमने बाण छोड़ दिया। यदि तुम्हें अपने ऊपर इतना घमण्ड है तो अपनी शक्ति का प्रयोग करके देख लो।

यह सुन कर अर्जुन बाण चलाने लगा। किरात वेशधारी शंकर अडिग खड़े हुए उसके बाणों को सहते रहे। 'और बाण चला, और चला' कह कर उन्होंने बार-बार अर्जुन को उत्साहित किया। अर्जुन भी कुपित होकर धुँआँधार बाणवर्षा करने लगे। किन्तु अपने भयंकर बाणों को इस प्रकार निष्फल होते देखकर सोचने लगे-यह कौन है जो मेरे सभी प्रहारों को व्यर्थ किये देरहा है। मेरे तीक्ष्ण बाणों के लगने से इसके शरीर पर खरोंच का भी निशान नहीं। तब अर्जुन ने किरात को पकड़ कर मुष्ठिका प्रहार किया, किन्तु शिवज़ी ने उसका गाण्डीव छीन लिया। यह देख

कर तलवार का वार किया तो तलवार टूट गई. शिलाएँ उखाड़ उखाड़ कर फेंकी तो वे चकनाचूर होगईं। तब तो भगवान् शंकर अट्टहास करने लगे और अर्जुन ने घूँसे मारे तो उन्होंने भी घूँसों से उत्तर दिया ; तथा अर्जुन को पकड़ कर जोर से दबाया, जिससे वे अचेत होगए।

हे जनमेजय ! होश आने पर अर्जुन भगवान् शंकर का ध्यान करने लगे। उन्होंने पूजन कर पाषाण प्रतिमा पर जो माला चढ़ाई, वह किरात के कण्ठ में पहुँची हुई दिखाई दी। अब तो अर्जुन समझ गये कि यह किरात नहीं, साक्षात् भगवान् शिव हैं। तब वे तुरन्त उनके चरणों में गिर कर बोले—प्रभो ! मुझ अज्ञानी को क्षमा कीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ, आप ही सब जीवों के कल्याण-कारण हैं। मेरी रक्षा करिये नाथ !

अर्जुन की भक्तिभाव युक्त विनय सुन कर भगवान् शंकर प्रसन्न होगए। उन्होंने कहा—पार्थ ! तुम पूर्व जन्म में 'नर' नामक ऋषि थे। तुमने नारायण के साथ रह कर घोर तप किया है। लो, अपना यह गांडीव, तुम्हारे यह दोनों तरकस अक्षय हो जाँयगे। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, जो चाहो वह वर माँग लो।

अर्जुन बोले—प्रभो ! आप प्रसन्न हैं तो ब्रह्मशिरा नामक पाशुपत अस्त्र प्रदान कीजिए, जिसके प्रभाव से मैं कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि को हरा सकूँ। यह सुन कर भगवान शंकर ने उन्हें पाशुपतास्त्र देकर उसके प्रयोग की शिक्षा दी और स्वर्ग जाने का आदेश दिया। और स्वयं आकाशमार्ग से अन्तर्धान होगए।

हे जनमेजय ! उसके पश्चात् वहाँ सभी लोकपाल, पितरगण यक्ष, किन्नर, यम तथा देवताओं सहित इन्द्र आये और उन सब ने अर्जुन को आशीर्वाद दिया—हे महाबाहो ! तुम सरलता पूर्वक अपने कार्य को पूर्ण करोगे। इसके लिए हम तुम्हें दिव्यास्त्र

प्रदान करते हैं। यह कह कर उन्होंने अनेक अस्त्र अर्जुन को दिये। फिर इन्द्र ने कहा—हे अर्जुन! देवकार्य की सिद्धि के लिए तुम्हें स्वर्गलोक पहुँचना है। मातलि द्वारा लाये गये रथ पर आजाना, वहाँ अनेक दिव्यास्त्र तुम्हें प्रदान करूँगा।

यह कह कर अन्य सब के साथ इन्द्र भी चले गये, तब मातलि रथ लेकर आया जिस पर चढ़ कर अर्जुन स्वर्ग में जा पहुँचे। वहाँ गन्धर्व और अप्सरादि उनकी स्तुति करने लगे स्वर्ग में रह कर उन्होंने महान् अस्त्रों की प्रयोग विधि सीखी और इन्द्र से प्रमुख-प्रमुख अस्त्र प्राप्त किये। फिर चित्रसेन गंधर्व ने उन्हें नृत्यगान की कला सिखाई। फिर वे संगीत विद्या में भी कुछ-कुछ जानकर होगए। तभी एक दिन उर्वशी ने उनसे प्रणय निवेदन किया। अर्जुन ने कहा—मैं आपको अपनी गुरुपत्नी के समान परम पूज्या समझता हूँ इसलिए क्षमा करें। यह सुन कर उर्वशी ने शाप दे दिया—अर्जुन! स्त्रियों में तुम पुंसत्वहीन कहे जाओगे और उनके मध्य तुम्हें नृत्य भी करना होगा।

उर्वशी के शाप की बात इन्द्र को मालूम हुई तो वे बोले—वत्स! इस शाप से डरो मत, इसमें तो तुम्हारी भलाई ही निहित है। जब तुम तेरहवें वर्ष अज्ञातवास में रहोगे, तब स्त्रियों के मध्य उन्हीं के वेश में नाचो-गाओगे, तत्पश्चात् नपुंसक दोष से मुक्त होजाओगे।

एक बार लोमश ऋषि स्वर्गलोक में पहुँचे तो उन्होंने अर्जुन को इन्द्र के साथ एक आसन पर बैठे देखा। उन्होंने सोचा कि अर्जुन ने यह स्थान कैसे प्राप्त कर लिया? तभी उनके मनोभाव को ताड़ कर इन्द्र ने कहा—ब्रह्मन्! अर्जुन कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न मेरे ही पुत्र हैं। यह पहले 'नर' ऋषि थे। इनका महान् प्रभाव है। पातालवासी निवातकवच नामक दैत्य ब्रह्मा के वरदान से बहुत उत्पात किया करता है, उसका वध किया

जाना आवश्यक है किन्तु इस साधारण कार्य के लिए भगवान् नारायण को जगाना उचित प्रतीत नहीं होता। इसलिए वह अर्जुन से लिया जायगा। इसलिए आप कृपया काम्यक वन में जाकर युधिष्ठिर आदि से कह दीजिए कि वे अर्जुन की चिन्ता न करें। यह शीघ्र ही उनके पास पहुँचेंगे। यह सुन कर लोमश ऋषि काम्यकवन के लिए चल पड़े।

दमयन्ती स्वयंवर

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! अर्जुन के तपस्यार्थ चले जाने पर चारों पाण्डव द्रौपदी आदि के साथ काम्यकवन में रह कर समय व्यतीत करने लगे। जब उन्हें गये हुए बहुत दिन हो गए तब सब लोग बैठ कर चिन्ता करने लगे। तभी महर्षि वृहदश्व का आगमन हुआ उनका पूजनादि करके राजा ने निवेदन किया—भगवन्! दिनोंदिन मेरे कष्ट बढ़ रहे हैं। राज्य गया, वनवास मिला और अब हमारा भाई अर्जुन भी हमसे बिछड़ गया। क्या मेरे समान अभागा कोई और भी इस पृथिवी पर देखा-सुना गया है? वृहदश्व बोले–आपसे भी अधिक कष्ट उठाने वाले राजा इस पृथिवी पर हो चुके हैं। इस विषयक एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, उसे सुनो—

निषधदेश में राजा वीरसेन हुए हैं। उनके पुत्र नल को पुष्कर ने छल पूर्वक जीत कर स्त्री के सहित वन में भेज दिया। विदर्भ देश के महाराज भीम की पुत्री दमयन्ती उनकी रानी थी। सत्यदमन नामक ऋषि के वर से राजा भीम के यह दमयन्ती नाम की कन्या और तीन पुत्र दम, दान्त और दमन नामक हुए थे। दमयन्ती जितनी रूपवती थी, उतने ही सुन्दर राजा नल थे। लोगों से एक-दूसरे के रूप-गुण की प्रशंसा सुन कर ही वे परस्पर अनुरक्त हो गए। एक दिन नल के उपवन में विचरने

वाले हंसों ने दमयन्ती के आगे राजा नल के रूप का बखान किया तो दमयन्ती बोली—हे हंस ! जैसे तुमने राजानल के रूप की यहाँ प्रशंसा की है, वैसे ही उनके पास जाकर मेरी प्रशंसा करो।यह सुन कर हंसों ने राजा नल के पास आकर दमयन्ती की बात सुनाई ।

महाराज भीम ने दमयन्ती के स्वयंवर का आयोजन किया । उसमें बड़े-बड़े राजागण पहुँचे। देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, लोक-पाल आदि भी मनुष्य रूप में रंगभूमि में जा बैठे । राजा नल ने भी विदर्भ देश के लिए प्रस्थान किया । तभी उनसे देवताओं ने कहा—हे नल ! तुम सत्यव्रत वाले हो, हमारे दूत बनकर एक कार्य करो ।

नल ने पूछा—क्या करना है प्रभो ! इन्द्र बोले—मैं इन्द्र हूँ। दमयन्ती से जाकर कहो कि इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम तुम्हें प्राप्त करना चाहते है, इनमें से जिसे चाहो, उसे वरुण कर सकती हो । नल बोले—भगवन् ! मैं दमयन्ती की इच्छा करता हूँ तो आपका दौत्यकर्म कैसे करूँ । इन्द्र ने कहा-स्वीकार करके इंकार करना तुम्हें शोभा नहीं देता महाराज !

तब दौत्यकर्म के लिए चलते हुए राजा नल दमयन्ती के भवन में जा पहुँचे । द्वार पर खड़े द्वारपालों ने भी उन्हें नहीं रोका । राजा उसे देखते ही व्यथित हो गए और यही हाल दमयन्ती का हुआ । उसने पूछा—आप कौन हैं ? राजा बोले—मैं निषध-नरेश नल हूँ । इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम तुम्हें प्राप्त करना चाहते हैं, उनमें से जिसे भी तुम चाहो, उसे वरण कर लो । दमयन्ती बोली—हे प्रिय ! हंसों के मुख से आपकी प्रशंसा सुन कर मैं आपको अपना पति मान चुकी हूँ । मैं देवताओं को नमस्कार कर के सत्य कहती हूँ कि आपके अतिरिक्त अन्य किसी को वरण नहीं कर सकती ।

राजा नल लौट कर उन देवताओं के पास गये और दमयन्ती ने जो कुछ कहा था, वह सब उन्हें जा सुनाया। इसके बाद राजा भीम ने सब आगत राजाओं से स्वयंवर भूमि में आने की प्रार्थना की। जब सब लोग यथा स्थान बैठ गए तब दमयन्ती ने रंगभूमि में प्रवेश किया। महाराज की आज्ञा से सभी राजाओं का परिचय दिया जाने लगा। आगे बढ़ने पर उसने देखा कि राजा नल जैसे रूप, आकृति और वेशभूषा के पाँच पुरुष सभा में बैठे हैं। अब वह सोचने लगी कि इनमें राजा नल कौन-से हैं, यह कैसे ज्ञात हो। अन्त में निश्चय न कर सकी तो देवताओं की प्रार्थना करने लगी कि मैं राजा नल को अपना पति मान चुकी हूँ, इसलिए आप उन्हें अपने से पृथक कर दीजिए।

दमयन्ती की प्रार्थना से इन्द्रादि देवता द्रवित होगए उन्होंने अपना देवरूप प्रत्यक्ष कर लिया, तब दमयन्ती ने प्रसन्न होकर नल के कण्ठ में जयमाल डाल दी। तदनन्तर नल-दमयन्ती ने देवताओं को प्रणाम किया। इन्द्र बोले—नल ! तुम प्रत्यक्ष देखोगे और अन्त में मोक्ष प्राप्त करोगे ! अग्नि ने कहा—तुम मुझे जहाँ स्मरण करोगे वहीं पहुँच कर इच्छित फल प्रदान करूँगा। वरुण बोले—तुम्हारे आह्वान पर मैं तुरन्त तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। यम ने कहा—दमयन्ती ! तुम्हारे द्वारा बनाई हुई रसोई अत्यन्त सुस्वादु होगी और धर्म में तुम्हारी महती निष्ठा होगी।

महाराज भीम ने उनका विधिवत विवाह किया। उनकेइन्द्रसेन और इन्द्रसेना नामक पुत्र पुत्री उत्पन्न हुए। इस प्रकार नल-दमयन्ती के दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे। किन्तु उनका सुख कलियुग और द्वापर से न देखा गया। कलियुग चाहता था कि दमयन्ती मुझे वरण करे, किन्तु प्रथम तो वह स्वयंवर के समय पहुँचा ही नहीं, दूसरे दमयन्ती नल के अतिरिक्त किसी अन्य को

चाहती ही नहीं थी। यह सोच कर कलियुग ने प्रतिज्ञा की कि मैं इन्हें चैन से नहीं रहने दूँगा। इस कार्य के लिए उसने पाँसों के खेल में द्वापर से सहायता माँगी।

राजा नल का सर्वस्व हरण

बृहदश्व बोले—धर्मराज ! द्वापर को साथ लेकर कलियुग नल के भवन में रहता हुआ अवसर की प्रतीक्षा करता था। इस प्रकार ग्यारह वर्ष व्यतीत होगए तब एक दिन राजा ने लघु शंका के पश्चात् बिना पाँव धोये, केवल हाथ धोकर ही संध्योपासन करने लगे तभी अपवित्रता का यह अवसर पाकर वह राजा नल के देह में प्रविष्ट हो गया। तत्पश्चात् वह नल के भाई पुष्कर के पास जाकर उसे नल के साथ जुआ खेलने के लिए प्रेरित करने लगा। उसके कारण पुष्कर ने सोचा कि यदि राजा नल को जीत लिया जाय तो निषधदेश का निष्कंटक राज्य मिल सकता है। तब वह नल के पास पहुँच कर बोला—राजन् ! आज तो पाँसों का खेल होना चाहिए। राजा नल ने भी उसकी बात मान ली और कलियुग ने स्वयं ही पाँसों का रूप धारण कर लिया।

हे युधिष्ठिर ! अब तो खेल प्रारम्भ हो गया। अमूल्य मणि-रत्नों के ढेर, स्वर्ण-राशि, रथ-वाहन, गाय-भैंस इत्यादि जो-जो भी नल ने दाँव पर रखा, वह-वह सभी कलियुगी पाँसों के प्रभाव से पुष्कर ने जीत लिया। यह सुन कर मंत्रियों, मित्रों, पुरोहितों, ऋषियों, पुरवासियों आदि ने आ-आकर राजा को जुए की बुराइयाँ बताईं और खेल बन्द करने का अनुरोध किया। दमयन्ती भी व्याकुल होकर उन्हें रोकने लगी, पर राजा ने किसी की भी न सुनी।

तब दमयन्ती ने सारथी वार्ष्णेय को बुला कर उसके साथ अपने बालकों को नाना के यहाँ भेज दिया। तभी सहसा उसे

ज्ञात हुआ कि राजा नल अपना राज-पाट आदि सर्वस्व हार गये हैं। तभी पुष्कर ने एक चोट और की—क्या अभी और कुछ लगाना है? अब तो दमयन्ती ही शेष रह गई है, चाहें तो उसे भी लगा दीजिए।

पुष्कर के यह वचन राजा के हृदय में पार होगए, किन्तु वे बोले कुछ नहीं। उन्होंने तुरन्त ही अपने मूल्यवान वस्त्राभूषण उतार कर केवल एक वस्त्र धारण किया और राजभवन से चल पड़े। उनके पीछे-पीछे दमयन्ती भी केवल एक साड़ी ही पहन कर चल दी। इस प्रकार राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट हुए नल-दमयन्ती ने केवल जल पीकर ही नगर के बाहर तीन रात्रि तक निवास किया। तत्पश्चात् कन्दमूल फल खाते हुए एक सरोवर के तट पर पहुँचे। वहाँ सोने के पङ्ख वाले बहुत-से पक्षी इधर-उधर घूम रहे थे। नल ने समझा कि आज तो भोजन और धन दोनों ही मिल रहे हैं। इसलिए उन्होंने अपनी धोती खोल पक्षियों पर फेंकी तो वे उस धोती को ही ले उड़े। उन्होंने नंगे खड़े हुए से कहा—अरे मूर्ख! हम तुम्हें वस्त्र धारण किये नहीं देख सकते, इसलिए हमने तुम्हारी धोती ले ली है। हम वही पाँसे हैं, जिन्होंने तुम्हारी यह दशा की है।

यह सुन कर राजा नल ने दमयन्ती से कहा—प्रियतमे! आज इन पक्षियों ने मुझे बिल्कुल ही नंगा कर दिया। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है, इसलिए तुम्हारी रक्षा के लिए विचार करना आवश्यक है। देखो, यह मार्ग विदर्भ नगर की ओर जाता है। दमयन्ती ने कहा—महाराज! मैं आपको ऐसी दुर्दशा के समय कैसे छोड़ कर जा सकती हूँ। दुःख में पत्नी साथ हो तो उससे कुछ सान्त्वना मिल सकती है। यदि मैं न रहूँगी तो इस संकट काल में कौन आपको धैर्य बँधावेगा? यदि आप चाहते हैं कि मैं पिता के घर जाकर रहूँ तो आप भी साथ चलिए। वहाँ

सम्मान और सुख पूर्वक रह सकेंगे। यह कह कर उसने अपनी आधी धोती फाड़ कर नल को दे दी।

नल बोले—प्रिय ! मुझे इस अवस्था में देख कर मेरा उतना सम्मान नहीं होगा, जिससे तुम्हारे मन पर भी चोट लगेगी। इसलिए मैं वहाँ नहीं चलूँगा। यह कह कर नल चुप हो गए और फिर भूख-प्यास से व्याकुल हुए दोनों इधर-उधर फिरते रहे और रात्रि होने पर उसी वन में पड़ कर सो गए। तभी सहसा नल की नींद खुली। उन्होंने सोचा—मेरे कारण इसे कितना कष्ट सहना पड़ रहा है। यदि इस समय इसे सोती हुई छोड़ कर चल दूँ तो यह अपने पिता के घर चली जायगी। यह पतिव्रता और तेजस्विनी है, इसलिए इसके सतीत्व पर आँच नहीं आ सकती।

यह सोच कर नल उसे सोती छोड़ कर चल दिये। स्नेहवश वे बार-बार उसके पास लौटते और कलियुग के प्रभाव से फिर चल देते। अन्त में सन्तप्त हृदय के साथ नल वहाँ से चले गए, तभी सहसा दमयन्ती जाग उठी। उसे राजा न दिखाई दिये तो घबरा कर रोने लगी। उसने इधर-उधर दौड़ कर नल को खोजने का बहुत प्रयत्न किया। इसी समय एक बहुत बड़ा अजगर उसे निगल लेने के उद्देश्य से उसकी ओर बढ़ा यह देखकर दमयन्ती चीत्कार कर उठी। उस चीख और रुदन को सुन कर एक व्याध वहाँ आया और उसने तुरन्त अपने तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र से अजगर का मुख चीर दिया। इस प्रकार अजगर को मार कर व्याध ने पूछा—सुन्दरी ! तुम कौन हो ? इस दशा में अकेली यहाँ कैसे घूम रही हो ? यह सुन कर दमयन्ती ने अपना पूर्ण वृत्तान्त उसे सुना दिया। उसे अर्धनग्न अवस्था में देख कर व्याध मोहित हो गया। तभी उसकी कुचेष्टा देख कर दमयन्ती ने शाप दिया—दुष्ट ! तू इसी समय मरण को प्राप्त हो उसके यह कहते ही व्याध की मृत्यु हो गई।

दमयन्ती का चेदि राज्य में पहुँचना

वृहदश्व बोले—पाण्डुनन्दन ! व्याध को नष्ट करने के पश्चात् दमयन्ती वन-वन घूमती हुई विलाप करने लगी। तभी उसने एक भयंकर सिंह को मुख फैलाये हुए अपनी ओर आते देखा। वियोग में उन्मत्त हुई दमयन्ती उसी के पास जाकर राजा नल का पता पूछने लगी। किन्तु सिंह उसे छोड़कर आगे बढ़ गया, तब उसने सामने खड़े विशाल पर्वत से प्रश्न किया—पर्वतराज ! तुम्हीं बतादो कि महाराज नल इस समय कहाँ हैं ? तुम इतने ऊँचे हो, इसलिए तुम्हें वे अवश्य दिखाई दे रहे होंगे। जब पर्वत से भी कुछ उत्तर न मिला तो आगे बढ़ने पर उसे एक तपोवन मिला। वहाँ तपस्वी ऋषियों के आश्रम थे। उन ऋषियों ने, आई हुई दमयन्ती को आसन देकर परिचय पूछा तो उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार पूर्वक सुना दिया। ऋषि बोले—शुभे ! तुम्हें सुख की प्राप्ति होगी और शीघ्र ही स्वामी से मिलन होगा, उनका छिना हुआ राज्य पुनः मिल जायगा।

हे युधिष्ठिर ! यह कह कर वे ऋषिगण आश्रम सहित अदृश्य हो गए। दमयन्ती सोचने लगी कि यह क्या हुआ ? ऋषिगण और आश्रम कहां गये ? क्या यह सब स्वप्न था ? ऐसा सोचती हुई दमयन्ती पुनः उद्विग्न हो उठी। आगे चलने पर उसे कुछ पथिक दिखाई दिये। पूछने पर उन्होंने कहा कि नल नाम का कोई मनुष्य हमें नहीं मिला। रानी ने पूछा—तुम लोग किधर जारहे हो ? उन्होंने कहा—हम चेदिराज के राज्य में जारहे हैं। यह सुन कर दमयन्ती भी उनके साथ हो ली।

मार्ग चलते पथिकों ने एक सरोवर के तट पर डेरा डाला। आधी रात व्यतीत होने पर हाथियों का एक समूह जल पीने के लिए वहाँ आया और पथिकों के पालतू हाथियों को देख कर

उनसे भिड़ गया। हाथियों की उस टक्कर में बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ कर गिर गये, जिससे दल के बहुत-से व्यक्ति रुँद-खुँद कर मारे गये। यह देख कर बचे-खुचे पथिक कहने लगे—देखो कैसा विनाश हुआ है ? संभव है यह उस मायाविनी स्त्री का ही कार्य हो जो हमारे दल के साथ लग गई थी। उसलिए उसे पत्थर मार-मार कर नष्ट कर देना चाहिए। यह सुन कर दमयन्ती बहुत भयभीत हुई और भाग कर वन में जा छिपी। उसे पछ-तावा हुआ कि देखो मुझ अभागिनी के सिर पर यह कलंक भी लगना था।

शोक में व्याकुल हुए पथिकगण, दमयन्ती को न देख कर चुपचाप वहाँ से चल दिये। उनमें कुछ वेदपाठी ब्राह्मण भी थे। दमयन्ती कुछ अन्तर पर उनके पीछे-पीछे चलती हुई चेदिनरेश के राज्य में जा पहुँची। उसे अर्द्ध नग्न अवस्था में देखकर पागल जान कर अनेक बालक पीछे लग गये। राजभवन के पास पहुँ-चने पर राजमाता ने उसे इस दशा में देखा तो दासी के द्वारा अपने पास बुला कर उसके विषय में पूछताछ की। दमयन्ती ने उन्हें अपना वृत्तान्त बताया तो दयावश राजमाता ने अपनी पुत्री सुनन्दा को बुला कर कहा—बेटी ! इसे अपनी सहेली समझ कर सुख-पूर्वक पास रखो।

राजा नल को नाग का डसाना

बृहदश्व बोले—हे युधिष्ठिर ! दमयन्ती को सोती हुई छोड़ कर नल एक घोर वन में घुसे तो वह दावानल से भस्म होता हुआ दिखाई दिया। तभी उन्हें पुकार सुनाई दी—महाराज नल! शीघ्र आओ। तब तो नल दावाग्नि के भीतर जा घुसे। वहाँ एक अजगर पड़ा था। उसने कहा—महाराज। मैं कार्कोटक नामक नाग हूँ। एक बार मेरे मिथ्या भाषण से कुपित हुए नारद

कहा भये माला पहिरे तें, का दिये तिलक लिलारा।
कहा भये व्रत अन्नहिं त्यागे, का किये दूध-अहारा॥
कहा भये पंचअगिन के तापे, कहा लगाये छारा।
कहा उर्धमुख धूमहिं घोंटें, कहा लोन किये न्यारा॥
कहा भये बैठे ठाढ़े तें, का मौनी किहे अमारा।
का पंडिताई का बकताई, का बहु ज्ञान पुकारा॥
गृहिनी त्यागि कहा बनबासा, का भये तन मन मारा॥
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु, भूला सब संसारा॥
मंदिल रहै कहूँ नहिं धावै, अजपा जपै अधारा।
गगन-मंडल मनि बरै देखि छवि, सोहै सबतें न्यारा॥
जेहि विस्वास तहाँ लै लागिय, तेहि तस काम सँवारा।
जगजीवन गुरुचरन सीस धरि, छूटि भरम कै जारा॥३॥

भेद का अंग

रँगि-रँगि चन्दन चढ़ावहु सांईं के लिलार रे॥
मन तें पुहुप माल गूँथिकै, सो लैकै पहिरावहु रे।
बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे॥
दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे।
जगजीवन बिनती करि माँगै, कबहुँ नहीं बिसरावहु रे॥१॥

सखि, बाँसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो॥
घर की गैल बिसरिगै मोहितें, अंग न बस्त्र सँभारो।
चलत पाँव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत पतवारो॥

---

३. निस्तारा=छुटकारा। अचारा=कर्मकाण्ड के अनुसार आचार। लिलारा=ललाट, माथा। छारा=भस्म। लोन किये न्यारा=नमक खाना छोड़ दिया। विहूनि=बिना। हीन=तुच्छ, व्यर्थ। मन्दिल=घर। मनि=मणि, ब्रह्मज्योति से तात्पर्य है। जारा=जाल।

भेद का अंग

१. रँगि-रँगि=रुचि से रच-रचकर। पुहुप=पुष्प, फूल। मंगल=स्वागत-गीत।

घर आँगन मोहिं नीक न लागै, सब्द-बान हिये मारो।
लागि लगन में मगन वाहिसों, लोक-लाज कुल-कानि बिसारो ॥
सुरति दिखाय मोर मन लीन्हों, मैं तौ चहों होय नहिं न्यारो।
जगजीवन छवि बिसरत नाहीं, तुमसे कहों सो इहै पुकारो ॥२॥

साध-महिमा

गऊ निकसि बन जाहीं। बाछा उनका घर ही माहीं ॥
तृन चरहिं चित्त सुत पासा। गहि जुक्ति साध जग-बासा ॥
साध तें बड़ा न कोई। कहि राम सुनावत सोई।
राम कहीं, हम साधा। रस एकमता औराधा ॥
हम साध, साध हम माहीं। कोउ दूसर जानै नाहीं ॥
जिन दूसर करि जाना। तेहिं होइहि नरक निदाना ॥
जगजीवन चरन चित लावै। सो कहिके राम समुझावै ॥१॥

साध कै गति को गावै। जो अन्तर ध्यान लगावै।
चरन रहे लपटाई। काहू गति नाहीं पाई ॥
अन्तर राखै ध्याना। कोइ विरला करै पहिचाना ॥
जगत किहो एहि बासा। पै रहैं चरन के पासा ॥
जगत कहै हम माहीं। वै लिप्त काहु माँ नाहीं ॥
जस गृह तस उदयाना। वै सदा अहैं निरबाना ॥
ज्यों जल कमल कै बासा। वै वैसे रहत निरासा ॥
जैसे कुरम जल माहीं। वाकी स्रुति अंडन माहीं ॥
भवसागर यह संसारा। वै रहैं जुक्ति तें न्यारा ॥
जगजीवन ऐसें ठहराना। सो साध भया निरबाना ॥२॥

---

२ बाँसुरी=भँवर-गुफा के शब्द से तात्पर्य है। कानि=मर्यादा। सुरति=सूरत, रूप।

साध-महिमा

१. औराधा=आराधन किया। एकमता=अनन्य भाव से।

२. गति=भेद। उदयाना=वन। निरबाना=मुक्त। निरासा=अलिप्त। कुरम=कूर्म्म, कछवा। स्रुति=सुरति, ध्यान। जुक्ति=सावधानी।

छिलका, फलश्रुति है गुठली और रस है उसका वास्तविक तात्पर्य । मैं इसे थोड़ा और स्पष्ट कर दूँ । छिलके की आड़ में ही रस रहता है । इसी प्रकार जब धर्म की व्याख्या की जावेगी तो शब्द का आश्रय लेना ही पड़ेगा । हम छिलके के आश्रय से रस लेते हैं पर छिलका रस नहीं है । इसी प्रकार शब्द ही धर्म नहीं है । शब्द में धर्म है । अधिकांश लोग शब्द को ही धर्म मानते हैं, शब्द में धर्म नहीं मानते । वास्तव में शब्द के पीछे जो धर्म छिपा हुआ है उसे लेना है, शब्द को नहीं पकड़ना है। थोड़ी और गहराई से देखें तो पता चलेगा अयोध्या में शब्द को पकड़ लेने से ही सारा अनर्थ हुआ । जहाँ पर व्यक्ति ने शब्द को पकड़ा, उसने मानो छिलके को पकड़ लिया । यह ठीक है कि कोई व्यक्ति जब व्याख्यान देगा या धर्म के बारे में कुछ कहेगा तो शब्द के द्वारा ही कहेगा । पर यदि आप उसके शब्द को तो पकड़ लें पर उसके तात्पर्य को न समझें तब तो आपने शब्द का दुरुपयोग ही किया । मैं इसे यों कहना चाहूँगा कि आप शब्द को घर तो बनाइये, पर उसे कारागार मत बनाइये । कारागार और घर दोनों सीमेंट, पत्थर और ईंट से बनते हैं घर पर और कारागार में एक अंतर है । घर में रहने वाला व्यक्ति घर में रहते हुए भी स्वतंत्र है। वह खिड़की रखता है; दरवाजे रखता है उन्हें बन्द करता है, खोलता है । उसे सभी तरह का स्वातंत्र्य है । घर में बाहर और भीतर दोनों ओर चिटकनी रहती है, पर कारागार में केवल बाहर ही चिटकनी रहती है, भीतर नहीं । इसका तात्पर्य यह है कि उसमें रहने वाला कैदी भीतर से चिटकनी लगाने के लिये स्वतंत्र नहीं, न ही वह स्वयं दरवाजे को खोल सकता है। वह तो बाहर से बन्द कर दिया जाता है तथा बाध्य है कि जब निकाला जाये तब निकले और जब न निकाला जाये तो उसमें बन्द रहे । तो, शब्द को ऐसा कारागार मत बना दीजिये कि धर्म कैदी की तरह ताले में बन्द रहे । धर्म तो गृहपति है और शब्द उसका गृह । इस गृह को सुन्दर से सुन्दर बनाइये पर ध्यान रखिये कि इसका गृहपति धर्म है । धर्म कारागार का कैदी नहीं । अधिकांश लोग शब्द को घर नहीं रहने देते, जेलखाना बना देते हैं । शब्द को पकड़कर कहते हैं—ऐसा शब्द लिखा हुआ है; गीता में, रामायण में, वेद में ऐसा लिखा हुआ है । वे यह नहीं देखते कि वह लिखा किस अर्थ में गया है । जब शब्द को व्यक्ति पकड़ लेता है तो उसके परिणाम के संबंध में रामायण के उत्तरकांड में कहा गया है—

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ।।
७।११६।६

—शास्त्रों और पुराणों में मनुष्य को छूटने के जितने उपाय बताये गये, मनुष्य उन उपायों के द्वारा छूटने के बदले और बँधता गया । शब्द को पकड़ लेने के कारण ही बँधता चला गया । एक दृष्टांत आपको मालूम ही है । समुद्र के किनारे जब बंदर निराश हो गये तो सम्पाति के रूप में उन्हें सद्‌गुरु प्राप्त होता है, जो उनको निराशा को दूर करता है । वानर यह समझ रहे हैं कि सामने तो समुद्र है, अत: सीता हमें प्राप्त नहीं हो सकतीं और हमारी मृत्यु अब निश्चित है । सम्पाति ने उन्हें बताया कि ऐसी बात नहीं; जो समुद्र तुम देख रहे हो, उसके मध्य में सुमेर शैल है, उस पर लंका है और उस लंका में अशोक वाटिका है जिसमें सीताजी बैठी दिखाई दे रही हैं । बन्दरों ने कहा कि हमें तो यह सब नहीं दिखाई दे रहा है । इस पर सम्पाति ने व्यंग्य किया कि अगर खुद न देख सको तो आँख वाले पर तो विश्वास करो । दो ही उपाय हैं जीवन में—या तो आपकी आँख इतनी पैनी हो कि आप सत्य को देख लें, या यदि आँख इतनी पैनी न हो तो कम से कम कान इतने अच्छे हों कि दूसरे महापुरुषों की वाणी पर विश्वास कर लें । तो, सम्पाति ने कहा—**मैं देखउँ तुम नाहीं गीधहि दृष्टि अपार** (४।२८)—हमारे पास जो आँख है, वह तुम्हारे पास नहीं । पर बन्दर तो मानो यह कहना चाहते थे कि महाराज जब आपकी आँख पैनी है तो आप सीताजी का पता भी लगा दीजिये, उनकी खोज-खबर भी ले आइये । लोग ऐसे गुरुओं की खोज में बहुत रहते हैं जो सब कुछ कर दें और स्वयं को करना-धरना कुछ न पड़े । पर सम्पाति चतुर निकले । उन्होंने कहा—**बूढ़ भयउ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ।।** (४।२८)—अब हम बूढ़े हो गये, हमसे कुछ होगा नहीं करना तो तुम्हे ही पड़ेगा । हम बता देते हैं कि भक्ति देवी कहाँ हैं । श्री सीता मूर्तिमती भक्ति हैं जो लंका के देहनगर में मोह के द्वारा बंदिनी बना ली गई हैं । सम्पाति के रूप में आचार्य ने भक्ति की प्राप्ति का उपाय बता दिया । बन्दर तो सुनकर घबरा गये कि समुद्र चार सौ कोस का है । सम्पाति ने कहा कि—

मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा । राम कृपाँ कस भयउ सरीरा ।।
४।२८।२

जी ने शाप दिया था कि तू अचल होकर यहीं पड़ा रह, राजा नल तुझे यहाँ से हटावेंगे, तब तेरा उद्धार होगा इसलिए आप मुझे शीघ्र यहाँ से हटाइये, मैं अभी अपना शरीर संकुचित किये लेता हूँ। इस उपकार से मैं आपका मित्र हो जाऊँगा।

यह कह कर बहुत छोटा और हलका होगया, राजा नल ने उसे उठा कर अन्यत्र रख दिया तो वह बोला - अभी न रखो, वरन् मुझे लेकर चलते हुए पगों को गिनते रहो। तब राजा पग गिनते हुए चले और जैसे ही उन्होंने दश कहा, वैसे ही कर्कोटक ने उन्हें डस लिया, इससे नल का रूप परिवर्तित हो गया। नाग बोला—आपका रूप बदलने के लिए ही मैंने काटा है। आपके शरीर में घुस कर कष्ट देने वाला कलियुग भी मेरे विष के प्रभाव से संतप्त होता रहेगा। राजन्! अब आप अयोध्या में जाकर महाराज ऋतुपर्ण के सारथी का कार्य कीजिए। उन्हें अपना नाम बाहुक बताना और उन्हें अश्व विद्या सिखा देना। तब वे तुम्हें पाँसे खेलने की विद्या में पूर्ण पारंगत कर देंगे। तब आपको राज्य, पुत्र, पुत्री और पत्नी सभी की प्राप्ति हो जायगी। इन दो वस्त्रों को पहन लो। जब मुझे याद करोगे, तभी तुम्हें अपने पूर्व रूप की प्राप्ति हो जायगी।

यह कह कर नाग अन्तर्धान हो गया। नल ने अयोध्या पहुँच कर ऋतुपर्ण से भेंट की और बोले-महाराज! मेरा नाम बाहुक है। मैं अश्वविद्या, वित्त व्यवस्था, रसोईदारी तथा अन्याय शिल्प कार्यों में पारंगत हूँ, आप मुझे सेवा का अवसर दीजिए। ऋतुपर्ण बोले—मैं तुम्हें अस्तबल का अध्यक्ष बनाता हूँ। दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ प्रति मास तुम्हें मिलती रहेंगी। यह सुन कर बाहुक नामधारी राजा नल सम्मान पूर्वक वहाँ रहने लगे।

ऋतुपर्ण का नल को अक्षविद्या सिखाना

बृहदश्व बोले—हे धर्मराज ! उधर विदर्भ नरेश भीम को पता लगा कि जुए में सर्वस्व देकर राजा नल और दमयन्ती कहीं चले गये हैं। उनका कहीं कुछ पता नहीं है ,तो उन्होंने ब्राह्मणों को उनका पता लगाने के लिए विभिन्न दिशाओं में भेजा। उनमें से एक सुदेव नामक ब्राह्मण चेदि नरेश के राजभवन में गया और वहाँ उसे दमयन्ती दिखाई दी। वह तुरंत उसे पहिचान कर मिला और अपना परिचय देकर दमयन्ती से विदर्भ नगर में चलने के लिए कहा। दमयन्ती उसे पहिचान कर रोने लगी, तभी सुनन्दा राजमाता को वहाँ लिवा लाई। उसे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यह मेरी बहिन की पुत्री दमयन्ती है। तब उन्होंने अपने पुत्र से कह कर बहुत-से धन, सेना, के साथ दमयन्ती को वहाँ से भेजा।

राजा भीम और उनकी रानी अपनी पुत्री को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हों ने राजा नल की खोज में अनेक ब्राह्मण दूत भेजे, जिन्हें दमयन्ती ने बताया कि जिस राजा की सभा में जाओ, उसमें बार-बार यह कहना कि जिसकी आधी धोती फाड़ कर वन में सोती छोड़ जो चला आया है, उसकी प्रतीक्षा आज तक उसी दशा में कर रही है। इसलिए अब वह क्या करे, यह बताओ।

यह सुन कर ब्राह्मणों ने वैसा ही किया। वे स्थान-स्थान पर नल की खोज करते हुए उसी प्रश्न को दुहराते। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होने पर एक दिन पर्णाद नामक ब्राह्मण ने दमयन्ती को आकर बताया कि मैं राजा ऋतुपर्ण की राजसभा में गया और तुम्हारे प्रश्न को बार-बार दुहराने लगा। इसका उत्तर किसी ने भी नहीं दिया। किन्तु राजा का सारथी बाहुक मेरे पास एकान्त में आकर उच्छ्वास छोड़ता हुआ बोला—विप्रवर ! श्रेष्ठ

स्त्रियाँ घोर दुर्दशा में भी आत्मरक्षा करतीं और कुमार्ग में कदम नहीं रखती हैं। यदि विपत्ति में पड़ कर दमयन्ती को विवश हो कर छोड़ आये हैं, तो उसे उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए। क्योंकि उससमय नल बहुत अधीर थे और अबभी दारुणमानसिक कष्ट भोग रहे हैं। फिर भी राज्य लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र-पुत्री आदि से पृथक् होकर किसी प्रकार जीवित हैं। हे राजकुमारी ! बाहुक यह कह कर आँसू पोंछता हुआ तुरन्त चला गया। किन्तु वह बहुत ही कुरूप व्यक्ति अश्व विद्या और पाक विद्या में अत्यंत कुशल है।

तब दमयन्ती ने माता से परामर्श कर ब्राह्मण सुदेव को बुला कर बोली—आप यथा शीघ्र अयोध्या जाकर राजा ऋतु-पर्ण को सूचना दीजिए कि कल सूर्योदय होने पर दमयन्ती का स्वयंवर होगा। वह दूसरे पति का वरण करेगी। क्योंकि नल के जीवित होने का कुछ पता नहीं चलता है। यह सुन कर ब्राह्मण सुदेव ने राजा ऋतुपर्ण को उक्त समाचार सुना दिया।

तब ऋतुपर्ण ने बाहुक को बुला कर कहा—दमयन्ती का कल दुबारा स्वयंवर होने को है, इसलिए मुझे आज ही विदर्भ नगर में पहुँचना है। बाहुक ने कहा—राजन् ! आज ही वहाँ पहुँचा दूँगा। यह कह कर बाहुक रथ तैयार करने गया। किन्तु उसके हृदय में उथल-पुथल होरही थी कि यह क्या होने को है ? क्या यह बहाना है अथवा सत्य ? जो कुछ भी हो, वहाँ चलने पर ही पता लगेगा।

ऐसा विचार कर बाहुक ने चार घोड़े छाँट कर रथ में जोड़े और महाराज के बैठने पर वेग से छोड़ दिये। उस समय सारथि वार्ष्णेय भी एक किनारे बैठा हुआ था। रथ की चाल देख कर ऋतुपर्ण और वार्ष्णेय दोनों ही आश्चर्य में भर गये। तभी राजा ने कहा—बाहुक मैं वृक्ष के पत्तों और फलों को गिनने में बहुत

दक्ष हूँ। गणना और पाँसों की विद्या यह दो अमूल्य शक्तियाँ मेरे पास हैं। बाहुक बोला—प्रभो ! इन्हें मुझे भी सिखा दीजिए। मैं इसके एवज में अश्वविद्या सिखा दूँगा। ऋतुपर्ण ने दोनों विद्याएँ सिखा दीं और कहा कि मैं अश्वविद्या बाद में सीख लूँगा।

अक्षविद्या सीखते ही नल के शरीर में बैठा हुआ कलियुग कर्कोटक के तीक्ष्ण विष को उगलता हुआ बाहर निकला। उसे देख कर क्रोधित हुए नल जब शाप देने को हुए, तब वह हाथ जोड़ता हुआ बोला—महाराज ! दमयन्ती मुझे पहले ही शाप दे चुकी थीं, उसी के कारण मैं नाग के विष की यन्त्रणा सहता हुआ भी आपके देह में रह रहा था। आज मैं उस शाप से छूट सका हूँ। इसलिए अब आप मुझे शाप न दीजिए। तब नल ने उसे शाप नहीं दिया।

नलोपाख्यान का समापन

वृहदश्व बोले—हे राजन् ! महाराज ऋतुपर्ण का रथ सायंकाल के समय विदर्भ नगर में जा पहुँचा। राजा भीम ने उनका बहुत स्वागत सत्कार कर आगमन का कारण पूछा। वहाँ स्वयंवर का कोई रंग-ढंग न देख, और अन्य किसी राजा को वहाँ न आया जान कर ऋतुपर्ण का यह कहने का साहस ही नहीं हुआ कि दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार पाकर आया हूँ।

दमयन्ती ने अपनी दासी केशिनी को बाहुक के पास भेजा। उसने वहाँ जाकर पूछा—आप कौन हैं ? किस उद्देश्य से आये हैं ? क्या आपको या आपके साथी को महाराज नल के विषय में कुछ जानकारी है ? बाहुक ने कहा—भद्रे ! यद्यपि मेरा साथी पहले महाराज नल का सारथी था, किन्तु महाराज नल के जाने से पहिले ही उनके बालकों को लेकर यहाँ चला आया और बाद

में उसने अयोध्या नरेश के यहाँ नौकरी कर ली। यह कहते-कहते नल का हृदय दु:खित हो गया और नेत्रों में आँसू आगए । तब दासी वहाँ से दमयन्ती के पास लौट गई ।

इसके बाद केशनी उनके बालकों को लेकर पहुँची बाहुक ने उन्हें देख कर गोदी में उठा लिया । उनके नेत्रों से स्नेह के आँसू निकलने लगे । तब उन्होंने चटपट बालकों को गोद से उतार कर कहा—मेरे भी ऐसे ही बालक हैं, इन्हें देख कर उनकी याद आगई थी । अब तुम इन्हें ले जाओ और बार-बार मेरे पास न आना, अन्यथा लोगों को व्यर्थ सन्देह होने लगेगा ।

बाहुक की यह सब बातें केशिनी ने दमयन्ती को सुनाई । तब उसने स्वयं अपनी माता की अनुमति लेकर बाहुक को डयोंढ़ी में बुलाया । बाहुक उसे देख कर रोने लगे । दमयन्ती समझ गई कि वेश बदले हुए यही राजा नल हैं । परस्पर की बातचीतों से भी यह सिद्ध हो गया । तभी नल ने कहा—दमयन्ती ! मैं तुम्हारे दुबारा स्वयंवर की चर्चा सुन कर ही यहाँ आया हूँ । यह समाचार सर्वत्र फैल गया है कि दमयन्ती कुलटा स्त्रियों के समान पुनर्विवाह करना चाहती है ।

यह सुन कर दमयन्ती रोती हुई बोली—आपका पता लगाने के लिए ही मुझे ऐसा समाचार भेजना पड़ा था । मैं सौगन्ध खाती हूँ कि मैंने कभी स्वप्न में भी वैसी बात नहीं सोची । दमयन्ती यह कह ही रही थी कि वायु देवता ने आकाशवाणी के रूप में कहा - पुण्यश्लोक नल ! दमयन्ती परम साध्वी पतिव्रता है । यह सत्य कह रही है । सौभाग्य से अब तुम दोनों मिल गए हो और तुम्हारे अभ्युदय का समय प्रारम्भ हो गया है ।

आकाशवाणी सुन कर नल ने कर्कोटक नाग के दिये हुए बस्त्र धारण कर उसका स्मरण किया, तभी राजा नल का रंग

रूप पहिले जैसा हो गया। तब दमयन्ती उनके हृदय से लग गई। यह समाचार मिलते ही राजा भीम वहाँ आकर हर्ष प्रकट करने लगे। अयोध्या-नरेश ऋतुपर्ण भी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने महाराज नल को बधाई दी। और उनसे अश्वविद्या सीख कर अयोध्या चले गए।

कुछ दिन विदर्भ राज्य में सुख पूर्वक रह कर राजा नल अपने देश में पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने भाई पुष्कर से कहा कि इस बार मैं बहुत सारा धन लेकर जुआ खेलने आया हूँ। पुष्कर बोला—तो आइये, मैं तैयार हूँ। जुआ खेला गया, उसमें पुष्कर की हार हुई। नल बोले—पुष्कर ! यद्यपि तुझे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए था, किन्तु मैं तुझे क्षमा करके तेरा राज्य भी तुझी को दिये देता हूँ। अपने राज्य में जाकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन कर।

पुष्कर हाथ जोड़ कर चला गया। नल को पुनः अपना राजा हुआ देख कर प्रजा में हर्षोल्लास छा गया। रानी दमयन्ती और उसके पुत्र-पुत्री भी विदर्भ नगर से आ गये। सर्वत्र उत्सव मनाये जाने लगे। इस प्रकार राजा नल पूरे जम्बूद्वीप पर राज्य करते रहे।

वृहदश्व बोले—हे युधिष्ठिर ! जैसे राजा नल के संकट गये, वैसे ही तुम्हारे भी कट जाँयगे। तुम तो द्रौपदी और सब भाइयों के साथ वन में निवास करते हुए धर्म-कर्म करने में लगे हुए हो, तुम्हारे हताश होने का कोई कारण नहीं है। मैं तुम्हें अक्षविद्या और अश्वविद्या दोनों ही देता हूँ। फिर भी द्यूत का अवसर आने पर कोई संकट उपस्थित हो जाय तो मुझे स्मरण करना, मैं सहायता करूँगा।

पाण्डवों का काम्यकवन-त्याग

वैशम्पायनजी ने कहा—हे जनमेजय। यह कह कर वृहदश्व ऋषि चले गए। तभी हिमालय पर्वत से आये हुए कुछ ऋषियों ने धृतराष्ट्र को बताया कि अर्जुन हिमालय में घोर तप कर रहे हैं। यह सुन कर द्रौपदी सहित सभी पाण्डव अर्जुन के विषय में चिन्ता करते हुए उनकी याद करने लगे। तभी नारदजी ने वहाँ आकर उन्हें धीरज बँधाया। तभी युधिष्ठिर ने उनसे कहा—ब्रह्मन्। तीर्थयात्रा के उद्देश्य से पृथिवी पर भ्रमण करने वाले को क्या फल मिलता है ? नारदजी बोले—यही प्रश्न महात्मा भीष्म ने महर्षि पुलस्त्य से पूछा था। तब पुलस्त्य ने कहा—वत्स ! जिसके हाथ, पाँव, मन, विद्या, तप, यश आदि सुसयत हैं वही तीर्थयात्रा का फल प्राप्त कर सकता है। उसे दान ग्रहण और दम्भ आदि का त्याग कर, जितेन्द्रिय अक्रोधी, सत्य वादी और दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिए। जो लोग अर्थाभाव आदि कारणों से यज्ञ नहीं कर पाते, उनके लिए तीर्थयात्रा यज्ञों से भी श्रेष्ठ मानी गई है। बड़े-बड़े अग्निष्टोम आदि यज्ञों से भी वह फल नहीं होता जो तीर्थयात्रा से सहज ही प्राप्त हो जाता है।

पुलस्त्य बोले—हे कुरुश्रेष्ठ ! प्रसिद्ध पुष्कर तीर्थ में दश करोड़ तीर्थों का सदा निवास रहता है। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा आदि सभी वहाँ रहते हैं। संयम पूर्वक बारह दिन वहाँ रह कर जम्बूमार्ग तीर्थ में जाय। वहाँ से तन्दुलिकाश्रम, कण्व-आश्रम, नर्मदा नदी, दक्षिण सागर, चर्मण्वती नदी, अर्बुद तीर्थ, वशिष्ठ ऋषि आश्रम, पिंग तीर्थ आदि विभिन्न पुण्य तीर्थों में होते हुए रुद्रकोटि में जाना चाहिए। वहाँ एक बार एक कोटि (करोड़) मुनि शिवजी के दर्शन की इच्छा से एकत्र हुए थे।

तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र, धर्मतीर्थ, शाकम्भरी देवी के स्थान, धूमावती, कपिलावट, अरुन्धती वट, नैमिषतीर्थ, बाहुदा तीर्थ, गोमती-संगम, उद्यन्त पर्वत, मणिनाग तीर्थ, विनशन तीर्थ, वामन तीर्थ, निर्वीर तीर्थ आदि में होते हुए गौरी शिखर के द्वारा स्तन-कुण्ड में जाय। उद्दालक तीर्थ स्नान करने से सब पाप कटते हैं और चम्पातीर्थ में भागी-रथी में स्नान कर दण्डार्त तीर्थ में जाने से गोदान का फल मिलता है।

हे कुरुश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् पुलस्त्यजी ने संवेद्य आदि तीर्थों की महिमा का वर्णन किया और फिर बोले—भीष्म ! तुमने अपने चरित्र और धर्म से सब देवताओं और ऋषियों को सन्तुष्ट किया है। इसलिए तुम्हें वसुलोक की प्राप्ति होगी, यह कह कर महर्षि पुलस्त्य वहीं अन्तर्धान होगए। हे युधिष्ठिर ! तुम भी इन तीर्थों में यात्रा के प्रभाव से महान यश प्राप्त करोगे। वाल्मीकि, कश्यप आत्रेय, उद्दालक, शौनक आदि अनेक तपस्वी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तुम उनके साथ उक्त तीर्थों में विचरण करो। यह कह कर देवर्षि नारद चले गए।

तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने धौम्य ऋषि से कहा—ब्रह्मन् ! अर्जुन के बिना अब इस काम्यक वन में मन नहीं लगता, इसलिए आप ऐसा कोई अन्नफल युक्त, पवित्र एवं रमणीक वन बताइये, जहाँ ठहर कर हम अर्जुन की प्रतीक्षा करें। तब पुरोहित धौम्य ने उनसे पूव, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर चारों दिशाओं के तीर्थों का वर्णन किया और उनके माहात्म्य बतलाये। तभी महर्षि लोमश आगये। सब ने उनका पूजन किया और तब श्रेष्ठ आसन पर बैठ कर लोमशजी बोले—हे युधिष्ठिर ! मैं स्वर्गलोक गया था। वहाँ इन्द्र के साथ अर्जुन भी बैठे थे। वहाँ उन्होंने अनेक विद्याएँ सीख ली हैं; वे देवताओं का दुःसाध्य कार्य करके शीघ्र लौटेंगे। अब आप तप कीजिए, क्योंकि तप से महान् फल की प्राप्ति होती है। अर्जुन ने भी कहा कि द्रौपदी सहित मेरे भाइयों

को तीर्थ यात्रा करनी चाहिए इसके लिए संगी-साथियों की संख्या कम कर दीजिए। जो लोग अधिक कष्ट नहीं सह सकते या सुस्वादु भोजनों का त्याग नहीं कर सकते, वे साथ न चलें तो यात्रा में सुविधा रहेगी।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने कष्ट सहने में दृढ़, क्षुधापिपास से व्यग्र न होने वाले श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य सब को धृतराष्ट्र के राज्य में लौटने की विनती करते हुए निवेदन किया कि उन्हें यदि धृतराष्ट्र वृत्ति न दें तो पाँचालराज द्रुपद से वृत्ति प्राप्त होती रहेगी। तब वैसे बहुत-से ब्राह्मण चले गए और थोड़े से तपस्वी ब्राह्मण उनके साथ चलने के लिए रहे।

उनके काम्यकवन से प्रस्थान के समय, वहाँ के रहने वाले ऋषि महर्षियों ने भी साथ ले चलने की प्रार्थना की तो युधिष्ठिर ने उनकी बात मान ली। तभी महर्षि नारद,पर्वत और व्यासदेव जी वहाँ आगये। उन्होंने पाण्डवों से पूजन प्राप्त कर स्वस्त्यन पाठ किया तब द्रौपदी सहित सभी पाण्डव उन्हें प्रणाम कर पूर्व दिशा में चल दिये। उनके साथ ऋषिगण, ब्राह्मण, धौम्य, लोमश आदि भी चले।

तदनन्तर वे सब अनेक तीर्थो में होते हुए महीधर तीर्थ में गयशिर नामक पर्वत पर गये, वहाँ महानदी प्रवाहित है और वहीं धरणीधर नामक पवित्र ब्रह्मसर तीर्थ है, जहाँ अगस्त्य को वैवस्वत लोक मिला था। यहाँ शिवजी सदा निवास करते हैं। यहीं राजर्षि गय ने बहुत से बड़े-बड़े भारी यज्ञ किये थे। तथा देवता-ब्राह्मणों को पूर्णतः तृप्त किया था।

आगस्त्य द्वारा वातापि दैत्य का नाश

वैशम्पायन जी बोले—जनमेजय ! वहाँ युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि महर्षि अगस्त्य ने वातापि नामक दैत्य को क्यों मारा था ? लोमशजी ने कहा--वातापि दानव इल्वल का छोटा भाई था

इल्वल ने किसी तपस्वी से इन्द्र के समान पुत्र की प्रार्थना की। किन्तु, ब्राह्मण ने वैसा वर न दिया तो उसने क्रोध करके ब्राह्मणों को मारने का एक उपाय निकाला, जिसके अनुसार वह वातापि को बकरा बनाता और निमंत्रित ब्राह्मण को उसका मांस खिला कर अपने भाई को पुकारता। तब उसका भाई वरदान के कारण ब्राह्मण का उदर चीर कर बाहर निकल आता, जिससे ब्राह्मण की मृत्यु होजाती थी

एक दिन अगस्त्यजी ने अपने पूर्व पुरुषों को एक गर्त में औंधे मुँह लटके हुए देखा तो कारण पूछने पर उन्होंने बताया—वत्स सन्तान उत्पन्न करके हमें इस नरक से छुड़ाओ। अगस्त्य ने कहा—मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। तभी उनकी कृपा से विदर्भनरेश के एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम लोपा-मुद्रा रखा गया। महर्षि ने उसे अपने लिए मांग लिया और विवाह करके उसे आज्ञा दी कि राजसी वस्त्रालंकार छोड़ कर तपस्विनी बनो। लोपामुद्रा ने वैसा ही किया और तन-मन से पति-सेवा करने लगी।

लोपामुद्रा ने ऋतु स्नाता होने पर ऋषि से कहा—भगवन्! पुत्र की इच्छा से मैं वल्कलादि के वेश में आपके पास नहीं आ सकती। आप सर्व समर्थ हैं, पिता के घर जैसे ही साज-समानों से सुसज्जित घर में वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँगी। आप मेरी यह इच्छा पूरी कीजिए।

'यही करूँगा' कहते हुए ऋषि वहाँ से उठ कर राजर्षि श्रुतर्वा से धन माँगने गये तो उन्होंने अपने आय-व्यय का लेखा उनके समक्ष प्रस्तुत कर कहा—आप जो उचित समझें, इसमें से ले लें। ऋषि ने सोचा—इससे तो राज्य प्रबंध और प्रजापालन में व्यवधान उपस्थित हो जायगा। इसलिए श्रुतर्वा को साथ राजा ब्रध्नश्व के पास गये। उसने भी आय-व्यय का चिट्ठा सामने

रख दिया। जिसके अनुसार आय-व्यय बराबर था तब वे श्रुतर्वा और ब्रघ्नश्व दोनों को साथ लेकर महाधनी त्रसदस्यु के पास गये किन्तु आय-व्यय उनका भी बराबर था। तब तीनों राजाओं ने विचार कर बताया—ब्रह्मन्! इल्वल नामक दानव के पास विशाल धनराशि है, उसके पास चल कर धन माँगना उचित होगा। यह सुन कर महर्षि अगस्त्य उन तीनों राजाओं को साथ लेकर इल्वल के पास गये।

इल्वल ने उन चारों का पूजन कर बकरे रूपी वातापि को मार कर भोजन बनाया। यह देख कर तीनों राजा बड़े चिन्तित हुए तब अगस्त्य ने कहा—चिन्ता न करो। मैं इस राक्षस को तुरन्त पचा लूँगा तो यह कैसे निकल आवेगा? यह कह कर अगस्त्य ने सब मांस खालिया तब इल्वल कहने लगा—वातापि! निकल, जल्दी निकल। ऋषि बोले—वातापि अब कैसे निकल सकता है, वह तो मेरे उदर में जाकर पच गया। इस प्रकार वातापि के पच कर नष्ट होजाने से इल्वल को बड़ा दु:ख हुआ। किन्तु सँभल कर बोला—आप लोग किस लिये पधारे हैं? जो आज्ञा दें, वही करूँ! अगस्त्य बोले—असुरराज! तुम बहुत धनवान हो, हमें यथाशक्ति धन प्रदान करो। तब इल्वल ने ऋषि के से भी अधिक धन तीनों राजाओं को और दुगुना धन अगस्त्यजी को प्रदान किया, जिसमें हजारों गायें, सोना, रथादि थे।

इस प्रकार लोपामुद्रा की इच्छा पूर्ण होगई और वह प्रसन्न होकर ऋषि की सेवा में उपस्थित हुई। ऋषि ने पूछा—तुम कितने पुत्र चाहती हो—एक हजार, एक सौ अथवा एक? वह बोली—मैं तो एक हजार के बराबर गुण वाला एक ही पुत्र माँगती हूँ। 'एवमस्तु' कह कर ऋषि ने गर्भाधान किया और फिर वन में चले गए। वह गर्भ सात वर्ष के पश्चात् उत्पन्न हुआ। वे अत्यन्त तेजस्वी महाकवि दृढस्यु हुए। वे मन ही मन

सामवेद का पाठ कर रहे थे। इस प्रकार श्रेष्ठ संतान उत्पन्न कर के अगस्त्य ऋषि ने अपने पूर्व पुरुषों को श्रेष्ठ लोक प्राप्त करा दिये।

लोमश बोले—हे भरत श्रेष्ठ! वह महर्षि भृगु का श्रेष्ठ आश्रम है। भगवान् राम द्वारा हरण किये गये अपने तेज को परशुरामजी ने यहीं प्राप्त किया था। एक बार उन्होंने राम से कहा था कि मेरे इस धनुष ने सम्पूर्ण क्षत्रिय वंश को नष्ट कर डाला था, यदि तुममें शक्ति है तो इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर दिखाओ। तब उन्होंने धनुष लेकर तुरन्त प्रत्यंचा चढ़ा दी। बस तभी परशुरामजी का तेज नष्ट हो गया था। बेचारे लज्जित परशुराम तभी से महेन्द्राचल पर रहने लगे।

अगस्त्य का समुद्र को पी जाना

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्! अगस्त्यजी के महान् कार्यों को मुझे विस्तार से सुनाइये। लोमश बोले—राजन्! एक बार वृत्रासुर-संहार के लिए व्यग्र इन्द्र से ब्रह्माजी ने कहा कि तुम राजर्षि दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाकर वृत्रासुर को मारो तो वह अवश्य मर जायगा। यह सुन कर इन्द्र तपोधन दधीचि के आश्रम में जाकर वर माँगने लगे। दधीचि ने कहा—आप जो माँगेंगे, वही दूँगा। इन्द्र ने उनकी अस्थियाँ माँगीं तो उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर प्राण त्याग दिये। तब विश्वकर्मा ने उन अस्थियों से भीषण वज्र बना दिया। तदनन्तर घोर संघर्ष के पश्चात् वृत्र मारा गया। यह देख कर उसके साथी कालकेय असुर धार्मिकों और तपस्वियों को सताने लगे। अनेक ऋषियों और सज्जन पुरुषों का वध कर दिया। यज्ञादि शुभ कर्म बन्द होगए। तब सब देवता भगवान् विष्णु को पुनः पुकारने लगे।

विष्णु ने प्रकट होकर कहा--डरो मत। वे दैत्य अथाह समुद्र में जा छिपे हैं, इसलिए जल का सुखाना आवश्यक है। इस कार्य

को महर्षि अगस्त्यजी के पास जाकर उनकी स्तुति करने लगे—हे ऋषिवर ! हम सब आपकी शरण में आये हैं। सूर्य की गति रोकने वाला विंध्याचल आपकी आज्ञा से अभी तक पड़ा हुआ है इस समय हमारी गति भी आप ही हैं।

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन् ! विंध्याचल को आज्ञा देने वाला चरित्र भी कहिये।लोमश बोले-सूर्य नित्य प्रति सुमेरु कीप्रदक्षिणा करते हैं। विंध्याचल ने कहा—कि मेरी भी प्रदक्षिणा किया करो। तो सूर्य बोले—मैं निश्चित मार्ग में ही घूम सकता हूँ यह सुन कर क्रोधित हुए विंध्याचल सहसा ऊपर उठने लगा, जिससे कि सूर्य-चन्द्र की गति रुक जाय। तब सब देवताओं ने अगस्त्य से ही उस संकट का निवारण करने की प्रार्थना की थी।

अगस्त्य ने विंध्याचल के पास जाकर कहा- मुझे दक्षिण दिशा में जाने का मार्ग दो और जब तक लौट कर न आऊँ, यथावत पड़े रहना। यह कह कर अगस्त्यजी दक्षिण की ओर जाकर उस मार्ग से कभी नहीं लौटे। तब से पर्वत भी वैसे का वैसा ही पड़ा हुआ है।

अब कालकेय असुरों के विनाश का वृत्तान्त सुनो। देवताओं ने अगस्त्य मुनि से समुद्र का सम्पूर्ण जल पी लेने की प्रार्थना की, जिसे उन्होंने मान लिया और उनके साथ समुद्र तट पर पहुँच कर उसका सम्पूर्ण जल पी लिया। तब देवताओं के आक्रमण को रोकने में असफल कालकेय संज्ञक दैत्य बुरी तरह हारे और जो मरने से बचे, वे इधर-उधर भाग गये। अब देवताओं ने अगस्त्य जी से पुनः प्रार्थना की कि ब्रह्मन् ! आपने जिस जल को पी लिया था, उसे छोड़ कर समुद्र को पुनः भर दीजिए। अगस्त्य जी बोले—समुद्र का वह जल तो सम्पूर्ण पच गया। अब इसे भरने का कोई अन्य उपाय करो। यह सुन कर देवता अत्यंत विस्मित होकर ब्रह्माजी के पास गये तब ब्रह्माजी ने कहा—देवगण ! चिन्ता न करो। जब राजा भगीरथ गंगाजी को पृथिवी

पर लायेंगे तब समुद्र भर जायगा। यह सुन कर सब देवता अपने-अपने स्थान को गये।

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन्! भगीरथ ने किस प्रकार गंगाजी को लाकर समुद्र को भरा, सो कहने की कृपा करें। लोमशजी ने कहा—इक्ष्वाकु वंश में राजा सगर हुए हैं। उन्होंने अपनी वैदर्भी और शैव्या नाम की दोनों रानियों के सहित तप करके एक रानी से साठ हज़ार और दूसरी से एक पुत्र उत्पन्न होने का वर प्राप्त किया। वैदर्भी के एक तूम्बी से साठ हजार पुत्र हुए और शैव्या के एक सुन्दर पुत्र हुआ। जब वे सब योग्य हो गए तब राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। उनके अश्व की रक्षा में नियुक्त राजकुमार पृथ्वी पर विचरण कर रहे थे, तभी एक अश्व शुष्क समुद्र में अदृश्य हो गया। तब वे उस समुद्र को खोदने लगे। बहुत देर बाद वह घोड़ा महर्षि कपिल के पास खड़ा हुआ मिला। उन्होंने कपिल को चोर जान कर उनसे बहुत अपशब्द कहे, तब कपिलजी ने क्रोध पूर्वक उनकी ओर देखा, जिससे वे सब तुरन्त भस्म हो गए।

नारदजी ने यह समाचार राजा सगर को सुनाया। उनके साठ हजार पुत्र नष्ट होगए और असमंजस नामक एक पुत्र उन्होंने प्रजा को पीड़ित करने के कारण राज्य से निकाल दिया। अब क्या करें? यह सोचते हुए राजा ने असमंजस के पुत्र अंशुमान को अश्व लेने के लिए भेजा। उसने वहाँ जाकर महर्षि कपिल के चरणों में प्रणाम कर सब वृत्तान्त कहा। कपिलजी ने प्रसन्न होकर कहा—वत्स! तुम घोड़े को ले जाओ। तुम्हारे पौत्र भगीरथ के प्रयत्न से तुम्हारे यह चाचा भी तर जाँयगे। यह सुन कर अंशुमान घोड़ा सहित महाराज के समक्ष पहुँच गये। तब उन्होंने अपने यज्ञ को पूर्ण किया।

सगर के पश्चात् अंशुमान और उनके पश्चात् दिलीप राजा हुए। गंगा को लाने के लिए उन्होंने भी बहुत प्रयत्न किये, पर सफलता नहीं मिली। अन्त में वे भी अपने पुत्र भगीरथ को राज्य देकर वन में चले गए। तदनन्तर भगीरथ ने गंगाजी को लाने के लिए घोर तप किया। अन्त में गंगाजी ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। तो भगीरथ ने अपने पूर्व पुरुषों को तारने का उनसे निवेदन किया।

गंगाजी बोलीं—महाबाहो ! शंकर को प्रसन्न करो क्योंकि वे ही मेरे वेग को रोकने में समर्थ हैं, अन्यथा मैं पाताल में चली जाऊँगी। यह सुनकर भगीरथ ने शिवजी की उपासना कर गंगाजी के वेग को रोकने का वर प्राप्त कर लिया।

तब गंगाजी से पृथिवी पर उतरने की प्रार्थना की। वे बड़े वेग से आकाश से उतरीं। शिवजी ने उन्हें मुक्तामाल के समान मस्तक पर धारण कर लिया। अब वे गिर कर तीन धाराओं में प्रवाहित होने लगीं। तभी उन्होंने भगीरथ से कहा—राजन् ! मैं किस मार्ग में कहाँ चलूँ, इस विषय में मार्ग-दर्शन करो। तब महाराज भगीरथ आगे-आगे चले। पीछे-पीछे गंगाजी थीं। गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर गंगाजी ने भागीरथ के पूर्व पुरूषों को तार दिया। इस प्रकार सूखा हुआ समुद्र भी पूर्ववत् जल से परिपूर्ण हो गया।

परशुराम-चरित्र वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! वहाँ से चल कर युधिष्ठिर नन्दा-अपरनन्दा नाम की नदियों से होते हुए हेमकूट पर्वत पर गये। उस पर्वत पर हर कोई नहीं चढ़ सकता, सदा वर्षा होती रहती और वेदपाठ की ध्वनि गूँजती रहती है। उसके पास कौशिकी नदी है उससे थोड़ी दूर पर ही विश्वामित्र जी

का आश्रम है। वहीं काश्यपजी का निवास है। इनके पुत्र ऋष्य-श्रृंग के प्रभाववश इन्द्र ने अनावृष्टि के समय वर्षा की थी। युधिष्ठिर ने पूछा—ऋष्यश्रृंग तो मृगी के गर्भ से पैदा हुए थे, फिर वे तप के अधिकारी कैसे हुए ? लोमपाद के राज्य में इन्द्र ने वृष्टि क्यों नहीं की. इत्यादि बातें कहने का कष्ट करें।

लोमशजी बोले—हे युधिष्ठिर ! कश्यप-पुत्र विभाण्डक कठोर तब करते थे तब उन्हें उर्वशी दिखाई दी, जिससे कामवश उनका वीर्यपात होगया। उस वीर्य को मृगी पी गई, जिससे उसे गर्भ रह गया। वह मृगी देवकन्या थी, जो उस योनि से छूट कर अपने स्वरूप को प्राप्त हुई। वही गर्भ ऋष्यश्रृंग ऋषि हुए, उनके शिर पर एक सींग था। उसी काल में अंगदेश के राजा लोमपाद ने पुरोहित पर अत्याचार किया, इसरे ब्राह्मणों द्वारा राजा का त्याग होने के कारण इन्द्र ने भी वर्षा बन्द कर दी। तब राजा लोमपाद ने ब्राह्मणों को प्रसन्न कर ऋष्यश्रृंग ऋषि को लाने का निश्चय किया। ऋषि को लाने के लिए चालाक वेश्याएँ नियुक्त की गईं तब प्रमुख वेश्या की लड़की उनके पास ऋषिकुमार के रूप में गई, जिसने उन्हें विभिन्न स्वादिष्ट वस्तुएँ खिलाईं और फिर विविध हाव-भाव दिखाकर ऋष्यश्रृंग के मन में वासना जगा दी। इसी समय विभाण्डक ऋषि ने आकर कहा—पुत्र ! तुम आज अभी तक समिधा आदि क्यों नहीं लाये ? अग्निहोत्र अभी तक क्यों नहीं हुआ ? तुम तो किसी चिन्ता में मग्न प्रतीत होते हो। ऋष्य-श्रृंग बोले—यहाँ एक देवकुमार के समान तेजस्वी ब्रह्मचारी आये थे, उन्होंने मुझे उत्तम स्वादिष्ट वस्तुएें खाने को और मधुर सुगन्धित रस पीने को दिया था। मैं उनके पास जाना चाहता हूँ, अथवा वे ही यहाँ आकर रहने लगें। विभाण्डक ने कहा—पुत्र ! तपस्या में विघ्न डालने के लिए बड़े-बड़े मायावी असुर घूमा करते हैं। वे सुन्दर रूप दिखा

कर मुनियों के पुण्य लोकों को नष्ट कर डालते हैं। इसलिए उसके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।

तदनन्तर ऋषि की अनुपस्थिति में वह वेश्यापुत्री पुनः ऋष्य-श्रृंग के पास आई और मोहित हुए ऋषि कुमार उसके साथ चल दिये। तब वे सब वेश्याएँ बहाना बना कर उन्हें महाराज लोमपाद के पास लेगईं। उनके राजभवन में प्रवेश करते ही इन्द्र ने खूब जल वर्षा की। तब राजा ने अपनी शान्ता नामक पुत्री का विवाह ऋष्यश्रृंग के साथ कर दिया।

हे जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर ने उस तपोवन के सभी तीर्थों में भ्रमण किया। फिर गंगासागर शादि में होते हुए कलिंग देश में जा पहुँचे। फिर उन्होंने वैतरणी नदी में स्नान और महेन्द्र पर्वत पर जाकर रात्रि विश्राम किया। वहाँ के निवासी ऋषियों का सत्कार कर युधिष्ठिर ने परशुराम के अनुचर महर्षि अकृतव्रण से पूछा—भगवन् ! परशुरामजी के दर्शन किस समय हो सकते हैं। अकृतव्रण ने कहा—वे अष्टमी और चतुर्दशी को दर्शन देते हैं। कल ही चतुर्दशी है।

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आप मुझे परशुरामजी के चरित्र सुनाने की कृपा कीजिए। अकृतव्रण ने कहा—धर्मराज ! कान्य-कुब्ज देश के राजा की सुन्दरी कन्या सत्यवती को भृगुपुत्र ऋचीक ने माँगा। राजा बोले कि हमारे कुल में एक सहस्रश्वेत अश्व पण के रूप में लिये जाते हैं। यह सुन कर ऋचीक ने वरुण से घोड़े लाकर राजा को दे दिये। तब राजा ने सत्यवती का विवाह उनके साथ कर दिया।

एक दिन महर्षि भृगु अपने पुत्र-पुत्रवधू को देखने के लिए आये, तब ऋचीक दम्पति ने उन्हें पूजन कर सन्तुष्ट किया। महर्षि भृगु ने पुत्रवधू से कहा—पुत्री मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, मुझसे जो चाहो वर माँग लो। सत्यवती बोली—प्रभो ! मुझे

और मेरी माता को भी पुत्र की प्राप्ति हो। भृगु ने कहा-पुसं-वन के लिए ऋतुस्नान करो तब तुम गूलर के वृक्ष से लिपट जाना और तुम्हारी माता पीपल के वृक्ष से लिपटें। मैंने पृथक्-पृथक् दो चरु बनाये हैं, उनमें से अपना-अपना चरु खालेना। यह कह कर ऋषि चले गए और सत्यवती तथा उसकी माता ने ऋषि के बताये हुए विधान के बिल्कुल विपरीत किया।

कुछ काल बाद महर्षि भृगु पुनः आये। उन्होंने कहा—भद्रे! तुमने माता का और माता ने तुम्हारा चरु खा लिया। गूलर-पीपल से लिपटने के कार्य में विपरीतता हुई है। इसलिए तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय वृत्ति वाला और तुम्हारी माता का पुत्र ब्राह्मण वृत्ति वाला होगा। सत्यवती ने घबरा कर विनय की कि यदि ऐसा ही होना है तो क्षत्रिय वृत्ति वाला मेरा पुत्र न होकर पौत्र हो। 'एवमस्तु' कह कर ऋषि चले गए। फिर समय प्राप्त कर उससे जमदग्नि उत्पन्न हुए।

जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की पुत्री रेणुका से विवाह किया। उसने पाँच पुत्र प्रसव किये, उनमें परशुरामजी सब से छोटे थे। एक दिन रेणुका नदी में स्नान करने गई, वहाँ राजा चित्ररथ जल-विहार कर रहा था। रेणुका का चित्त उसे देखकर चंचल होगया, किन्तु तुरन्त सँभल कर वह भयभीत सी आश्रम में लौटी। उसके मानसिक व्यभिचार की बात जान कर क्रोधित हुए जमदग्नि ने अपने पुत्रों को उसका वध करने की आज्ञा दी। अन्य पुत्र तो चुप होगए, किन्तु परशुरामजी ने माता का सिर काट डाला। जमदग्नि ने प्रसन्न होकर उनसे कहा—पुत्र! वर माँग लो। परशुराम ने कहा—मेरी माता जीवित होजाँय, उन्हें इस घटना का स्मरण न रहे और मुझे मातृहत्या का दोष न लगे। जमदग्नि ने वर दे दिया और रेणका जीवित होगई।

एक दिन राजा कार्त्तवीर्य वहाँ आये। उन्होंने आश्रम की गाय का बछड़ा खोल लिया और क्रोध दिखाते हुए चले गये। परशुरामजी ने आकर गाय को रोते देखा तो सब हाल जान कर कार्त्तवीर्य को जाकर ललकारने लगे। उन्होंने उसके हजार हाथ काट कर मार डाला। तदनन्तर एक दिन उसके पुत्रों ने आश्रम पर हमला बोला और जमदग्नि का सिर काट कर चले गये। जब परशुरामजी ने आश्रम में आकर यह घटना हुई देखी तो तुरन्त ही कार्त्तवीर्य की राजधानी में गये और वहाँ जो भी क्षत्रिय मिला, उसे मार डाला। अब वे क्षत्रियों के नाश पर उतारू होगए, किन्तु ऋचीक ऋषि ने दर्शन देकर क्षत्रियों की हत्या करने से उन्हें निवारण किया। फिर परशुरामजी ने यज्ञ द्वारा इन्द्र को सन्तुष्ट किया। कश्यपजी को चालीस हाथ चौड़ी और छत्तीस हाथ लम्बी स्वर्ण-वेदी बनाकर दी। हे राजन् ! परशुरामजी का ऐसा पराक्रम है। यह सुन कर युधिष्ठिर ने परशुरामजी के दर्शन किये और दक्षिण दिशा को चल दिये।

च्यवन-सुकन्या-विवाह वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हुए पाण्डवगण प्रभासक्षेत्र में गये। बलराम कृष्ण ने सुना तो वे उनसे भेंट करने आये। उस समय मिल भेंट कर सब एक स्थान पर बैठे और दुर्योधनादि कृत अत्याचारों की चर्चा करने लगे। तत्पश्चात् यादवगण द्वारकापुरी को गये और पाण्डवण विदर्भ देश होते हुए पयोष्णी नदी पर पहुँचे। लोमशजी ने कहा-राजन् ! यहाँ राजा नृग ने यज्ञ द्वारा इन्द्र को तृप्त किया था। राजा गय ने भी यहीं सात अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसलिए यहाँ स्नान कीजिये।

सब ने पयोष्णी में स्नान किया और वैदूर्य गिरि एवं नर्मदा के लिये चल पड़े। वहाँ पहुँच कर लोमशजी बोले—इस पर्वत

के दर्शन और नर्मदा में स्नान करने वालों को राजर्षियों की गति मिलती है। यहीं च्यवन ऋषि ने सुकन्या को प्राप्त किया था। युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन्! च्यवन ऋषि का पूरा वृत्तान्त सुनाइये।

लोमशजी ने कहा—भृगु के पुत्र च्यवन वीर आसन से मिट्टी के ढेर के समान एक ही स्थान पर बहुत काल तक बैठे रहे। एक बार राजा शर्याति अपनी पत्नी, पुत्री और सेना आदि के साथ उसी स्थान पर आये। उस समय राजपुत्री सुकन्या रमणीक पुष्पों से सुशोभित डालियों को तोड़ने लगी। उसे मिट्टी के ढेर में दो चमकती हुई वस्तु दिखाई दीं तो उसने उसमें काँटा घुसा दिया। जिससे उनकी आँखों से रक्त बहने लगा और उन्होंने क्रोधित होकर राजा की सेना का मल मूत्र बन्द कर दिया इससे सब लोग बड़े पीडित और चिन्तित हुए। राजा ने कहा कि किसी ने अवश्य ही महर्षि च्यवन का कुछ अपराध किया होगा। जिससे ऐसा कुछ हुआ हो वह मुझे स्पष्ट बता दे। तब सुकन्या ने आँखों में काँटा घुसाने की बात कह दी।

राजा तुरन्त महर्षि के पास जाकर प्रार्थना करने और कन्या के अपराध की क्षमा माँगने लगे। तब च्यवन ने उनसे सुकन्या को माँगा। राजा ने बहुत सोच-बिचार के बाद अपनी पुत्री का विवाह उनके साथ किया और सैन्य सहित अपने नगर को चले गए। सुकन्या भी महर्षि की सेवा तन-मन से करने लगी।

एक दिन स्नान करके निकलती हुई सुकन्या को अश्विनीकुमारों ने देख लिया। तब तो वे उसे प्रलोभन देने लगे कि इस कुरूप वृद्ध च्यवन को छोड़ कर हममें से किसी को स्वीकार कर लो। सुकन्या ने कहा—मैं पतिव्रता हूँ, फिर ऐसी बात जुबान पर भी न लाना। तब अश्विनीकुमार बोले—हम अश्विद्वय हैं, अपने प्रभाव से तुम्हारे पति को रूपवान युवक बना देंगे। फिर

तुम यह निर्णय करना कि हम तीनों में से किसे पति बनाना है ? तुम अपने पति से परामर्श करके उन्हें यहीं बुला लाओ।

सुकन्या ने च्यवन ऋषि से अश्विद्वय की बात कही। च्यवन ने कहा कि उनसे 'हाँ' कह दो। तब अश्विद्वय के साथ च्यवन ऋषि उस सरोवर में स्नानार्थ घुमे और जब स्नान करके बाहर आये तब वे तीनों समान रूप, वय वाले थे। उन तीनों ने ही कहा कि तुम जिसे चाहो उसे पति बना लो। यह सुन कर सुकन्या ने सूक्ष्म अन्वेक्षण करके अपने पति को पहिचान कर पति मानना स्वीकार किया। इससे अश्विद्वय भी प्रसन्न हुए और च्यवन ने भी उनसे कहा कि पत्नी की प्राप्ति के उपलक्ष्य में तुम्हें यज्ञ में सोमपान कराऊँगा।

राजा मान्धाता का वृत्तान्त

लोमशजी बोले—राजन् ! च्यवन ऋषि को युवावस्था प्राप्त हुई सुन कर प्रसन्न हुए राजा-रानी उनसे मिलने के लिए आये। तब च्यवन ने कहा—मैं आपके द्वारा एक यज्ञ करना चाहता हूँ। राजा ने प्रसन्न होकर यज्ञ की दीक्षा ली और च्यवन ऋषि ने आश्विद्वय को देने के निमित्त जैसे ही सोम-पान उठाया वैसे ही इन्द्र ने उन्हें रोकते हुए कहा—अश्विद्वय हमारे वैद्य हैं, उन्हें सोम-भाग पाने का अधिकार नहीं है। यह सुन कर भी च्यवन उन्हें सोम-भाग देने लगे तो इन्द्र ने क्रोध पूर्वक कहा—यदि ऐसा करोगे तो मैं तुम्हें नष्ट कर दूँगा। फिर भी च्यवन ने इन्द्र की उपेक्षा की तो इन्द्र ने उन्हें मारने को जैसे ही हाथ उठाया, वैसे ही उन्होंने इन्द्र के दोनों हाथ स्तंभित कर दिये। इसके बाद मन्त्र पढ़ कर आहुतियाँ देने। तभी ऋषि के तपोबल से मद नामक असुर उत्पन्न होकर इन्द्र को भक्षण करने के लिए दौड़ा। तब इन्द्र ने भयाकुल होकर ऋषि से प्रार्थना की—क्षमा कीजिए।

आज मे अश्विद्वय को सोम-पान का अधिकारी मानता हूँ। अब आप प्रसन्न हों। यह सुन कर च्यवन ऋषि शान्त हो गए।

यह कथा कह कर लोमशजी अन्यान्य स्थानों को दिखाते हुए यमुना नदी पर पहुँच कर पाण्डवों से बोले—यह पापनाशिनी यमुना है। यहाँ राजा मान्धाता, सृंजय के पौत्र और सोमक ने यज्ञ किया था। युधिष्ठिर बोले—भगवन्! अमित पराक्रमी राजा मान्धाता का चरित्र सुनाने की कृपा कीजिये। लोमशजी बोले—इक्ष्वाकु वंश में राजा युवनाश्व हुए, उन्होंने एक सहस्र अश्वमेध किये थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए वन में जाकर तपस्या करने लगे। महर्षि भृगु के पुत्र ने उनको पुत्र प्राप्त होने के लिए एक अनुष्ठान किया और यज्ञ से पूर्व मन्त्र पूरित जल से युक्त कलश वेदी पर स्थापित किया। उसे पीकर रानी इन्द्र के समान पुत्र उत्पन्न करती। किन्तु रात्रि के समय राजा को जोर की प्यास लगी तथा अन्य कोई उपाय न देख, उस कलश का जल पीकर शेष जल फेंक दिया। प्रातःकाल उठ कर मुनियों ने कलश में जल नहीं देखा तो पूछा कि जल किसने पी लिया। राजा ने बता दिया कि मैंने पी लिया था। तब मुनि ने कहा—आपके एक महा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होने के लिए यह अभिमंत्रित जल रखा था, जिसे आपने पी लिया। अब आप स्वयं ही पुत्र उत्पन्न करेंगे। हम ऐसी दृष्टि किये देते हैं, जिससे कि आपको गर्भधारण का कष्ट न उठाना पड़े।

लोमशजी बोले—हे राजन्! सौ वर्ष व्यतीत होने पर राजा युवनाश्व की बाँई कोख फाड़कर जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वही राजा मान्धाता हुए। उन्होंने ब्राह्मणों को दस हजार पद्म गोदान किये और बारह वर्ष तक इन्द्र ने वृष्टि नहीं की तो उन्होंने स्वयं वर्षा की थी।

यह कह कर चुप होने पर लोमशजी से युधिष्ठिर ने सोमक राजा का चरित्र पूछा तो उन्होंने बताया—राजा सोमक की सौ रानियां थीं, उनके सन्तान नहीं हुई। अन्त मे एक रानी के जन्तु नामक पुत्र हुआ। जिसे चींटी ने काट खाया तो उसका उपचार किया गया। फिर राजा बोले—एक पुत्र वाले का भी जीवन धिक्कार है, उसे बड़ा लाड़ चाव करना पड़ता है, फिर भी डर रहता है कि कुछ हो न जाय। क्या कोई ऐसा अनुष्ठान है, जिससे सौ पुत्र उत्पन्न हो सकें।

पुरोहित बोले—अनुष्ठान तो है, पर बहुत ही दुष्कर। यदि अपने पुत्र का मेदा हवन कर सकें तो सौ पुत्र हो सकते हैं, और यह पुत्र भी पुनः अपनी ही माता के गर्भ से उत्पन्न होगा, तथा उसके बाँई ओर स्वर्णिम चिन्ह रहेगा। यह सुन कर राजा ने स्वीकार कर लिया। अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ जब पुत्र के बलिदान की तैयारी होने लगी, तब रानियों ने स्नेह-वश उसे पकड़ लिया। अन्त में पुरोहित ने उसे अपनी ओर बलपूर्वक खींचा और उसके मेदा से हवन करने लगे। तब पुत्र की मेदा की गन्ध सूँघने से उन सब रानियों को एक-एक पुत्र की उत्पत्ति हुई, किन्तु जन्तु नामक वह बलिदानी पुत्र उसी माता के गर्भ से सब से पहिले उत्पन्न हुआ, उसके बाँई ओर स्वर्णिम चिन्ह भी था।

फिर कुछ कालोपरान्त पुरोहित और राजा दोनों की ही मृत्यु हो गई। अपने पुरोहित को नरक में पड़ा देख कर राजा ने पूछा—आपने ऐसा कौन पाप किया है, जिससे नरक मिला? पुरोहित ने कहा—आपका घोर यज्ञ कराने का ही यह फल भोग रहा हूँ। यह सुन कर राजा ने धर्मराज से कहा—भगवन्? मेरे पुरोहित को नरक से निकाल कर मुझे डाल दीजिए। धर्मराज बोले—एक के कर्म का फल दूसरा नहीं भोगा करता।

आपके लिए तो वे शुभ लोक हैं। राजा ने कहा—इनके बिना मैं किसी शुभ लोक की कामना नहीं करता। मेरा-इनका कर्म यहफल समान है तो साथ ही रहेंगे। धर्मराज बोले-ऐसा है तो दोनों मिलकर नरक भोग लो, फिर सद्गति प्राप्त कर लेना। सुन कर राजा सोमक अपने पुरोहित के साथ नरक में रह कर अन्त में उन्हीं के साथ शुभ लोकों में चले गए।

अष्टावक्र का वृत्तान्त वर्णन

लोमशजी बोले—हे राजन्! इसी स्थान पर प्रजापति ने सहस्र वर्षों में पूर्ण होने वाला यज्ञ किया था। अम्बरीष ने भी यहीं यज्ञ करके दस पद्म गौओं के दान किये थे। राजेन्द्र! आप इस तीर्थ में स्नान करें। तब युधिष्ठिर ने द्रोपदी और भाइयों के साथ स्नान किया। फिर कुरुक्षेत्र पहुँचे और विभिन्न पुण्य नदियों में स्नान और तीर्थों में भ्रमण करते हुए, कश्मीर पहुँचे। लोमशजी ने आगे बढ़ कर बताया—सामने कुशवान नामक सरोवर है, इधर रुक्मिणी आश्रम और वह भृगुतुंग पर्वत है। यह सब पापों को दूर करने वाली वितस्ता नदी बह रही है। यह जला और उपजला नामकी नदियाँ हैं। यहीं राजा उशीनर ने यज्ञ द्वारा इन्द्र से भी अधिक यश प्राप्त किया था। बाज के भय से कपोत का रूप रख कर व्याकुलता दिखाते हुए अग्नि राजा की शरण में आये थे। तभी इन्द्र ने बाज के रूप में आकर कहा था—राजन्! यह मेरा आहार है, इसे मुझे न लेने देंगे तो अधर्म होगा। राजा ने कहा— जब यह मेरी शरण में आ गया है, तब इसे छोड़ देना भी अधर्म होगा।

बाज रूप इन्द्र ने कहा—राजन्! सब जीवों का प्राण आहार ही है, यदि भोजन न मिलेगा तो मैं अपने अपत्यादि का और अपना पेट कैसे भरूँगा? परस्पर विरुद्ध धर्म के उपस्थित होने पर उसके छोटे-बड़े होने के अनुसार निर्णय करना होता

है। राजा बोले—इसके बदले में जो कुछ माँगो वही दे सकता हूँ, पर शरणागत को कदापि नहीं छोड़ सकता।

बाज ने कहा—यदि ऐसा है तो अपने शरीर का मांस काट कर कबूतर के भार के समान तौल कर दे दीजिए। राजा ने तुरन्त इसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने तुला मँगा कर एक पलड़े पर कबूतर रखा और दूसरे पर अपना मांस काट-काट कर रखने लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण माँस काट कर चढ़ाने पर भी पूर्ति नहीं हुई तो राजा स्वयं उस पलड़े पर चढ़ गये। यह देख कर इन्द्र और अग्नि ने प्रकट होकर कहा—राजन्! हम तो आपकी परीक्षा ले रहे थे। धर्म में ऐसी दृढ़ता से आपको अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति हो चुकी है।

लोमशजी बोले—धर्मराज! वह उद्दालक-पुत्र श्वेतकेतु का आश्रम है। उद्दालक अपने शिष्य कहोड की सेवा से बहुत प्रसन्न हुए और अपनी पुत्री सुजाता का विवाह उसके साथ कर दिया। उसके गर्भ में स्थित हुए बालक ने गर्भ के भीतर से ही कहा—पिताजी! आप रात भर वेदपाठ करते हैं किन्तु वह शुद्ध नहीं होता। यह सुन कर, अपने को अपमानित समझे हुए ऋषि ने क्रोधित होकर कहा—तू गर्भ में से ही टेढ़ी बातें कर रहा है, इसलिए आठ स्थान से टेढ़ा होगा। इस प्रकार उनका नाम अष्टावक्र हुआ। एक दिन कहोड मुनि राजा जनक की सभा में पण्डित श्रेष्ठ वन्दी से शास्त्रार्थ में हार गये, तब वन्दी ने उन्हें जल में डवो दिया। वर्षों बाद अष्टावक्रजी अपने मामा श्वेतकेतु के साथ जनकपुर में पहुँच कर यज्ञ मण्डय में घुसने लगे, तभी द्वारपाल ने उन्हें रोक कर कहा—बालक! इस यज्ञ में वृद्ध और चतुर बालक ही घुस सकते हैं। अष्टावक्र बोले—शिर के बाल श्वेत होने से ही कोई वृद्ध नहीं हो जाता। ज्ञानी बालक को भी देवताओं ने वृद्ध ही माना है।

यह सुनकर द्वारपाल ने उन्हें भीतर जाने दिया। अष्टावक्र ने राजा जनक से इच्छा प्रकट की कि हम वन्दी से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो राजा बोले—बालक ! वन्दी का विद्या-बल प्रबल है, तुम उनसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकते। अष्टावक्र ने कहा-उन्होंने हमारे जैसे व्यक्ति से कभी शास्त्रार्थ न किया होगा। यह सुन कर राजा ने उनसे स्वयं अनेक प्रश्न किये और अन्त में सन्तुष्ट होकर शास्त्रार्थ की आज्ञा दे दी।

अष्टावक्र ने वन्दी को शास्त्रार्थ में हरा दिया और माँग की कि यह हारे हुए लोगों को जल में डुबा चुका है। इसलिए इसे भी जल में डुबा दिया जाय। यह सुन कर वन्दी ने अष्टावक्र का पूजन करते हुए कहा—मैं वरुण का पुत्र हूँ, वे बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ कर रहे हैं, इसीलिए ब्राह्मणों को जलमार्ग से मैंने वहाँ भेजा है। वे यज्ञ पूर्ण होने पर लौट आवेंगे। यह कह कर वन्दी समुद्र में घुस गया और पहिले हारे हुए ब्राह्मणों के साथ कहोड मुनि और भी तेजस्वी होकर जल से निकल आये। एक दिन उन्होंने अष्टावक्र से इसी समंगा नदी में स्नान करने के लिए कहा, जिसमें स्नान करते ही अष्टावक्र का कुबड़ापन मिट गया।

भीमसेन-हनुमान सम्वाद

लोमश जी बोले—युधिष्ठिर ! यह वही पुण्य सलिला समगा है, जिसमें स्नान करने से इन्द्र वृत्रासुर की हत्या के पाप से मुक्त हुए थे। यह रैभ्य का आश्रम है, जहाँ यवक्रीत की मृत्यु हुई थी। भरद्वाज और रैभ्य दोनों मित्र थे। रैभ्य के पुत्र अर्वावसु और परावसु तथा भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत हुए थे। यवक्रीत ने घोर तप द्वारा इन्द्र को व्यग्र कर दिया, तब इन्द्र ने उन्हें वर दिया कि तुम पिता पुत्र दोनों को सम्पूर्ण वेद-विद्या सिद्ध होकर अन्य सब इच्छाएँ भी पूर्ण होंगी। यह वर पाकर यवक्रीत ने अपने

पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त सुनाया। भरद्वाज बोले—पुत्र! तुम्हें वर तो अवश्य मिला है, किन्तु इससे जो अभिमान उत्पन्न होगा, उसके कारण तुम नष्ट हो जाओगे। देखो, रैभ्य और उनके पुत्र बड़े प्रतापी हैं, उनके पास कभी मत जाना। किन्तु यवक्रीत एक दिन रैभ्य के आश्रम में जा पहुँचे।

उस सुन्दर आश्रम में भ्यरै की पुत्र वधु विचरण कर रही थी। उसकी सुन्दरता देख कर यवक्रीत मोहित होगए और अवसर पाकर उन्होंने उसके साथ वासना-पूर्ति की और चले गए। तभी रैभ्य ने आश्रम में आकर उसे रोती हुई देखा। कारण पूछने पर उसने सब बात उन्हें बता दी। इससे क्रोधित हुए रैभ्य ने कृत्या द्वारा यवक्रीत को मार दिया। भरद्वाज ने सुना तो पुत्रशोक में विलाप करते हुए अपने प्राण त्याग दिये।

रैभ्य के दोनों पुत्र वृहद्युम्न के यज्ञ में आचार्य हुए थे। एक दि । परावसु अपने आश्रम में रात्रि के समय आये और रैभ्य को वनमृग समझ कर मार दिया। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह तो मृग नहीं, पिता थे तो उनका संस्कार कर यज्ञ भूमि में लौट कर अपने भाई से बोले कि यह मुझसे मृग के धोखे में पिता की हत्या हो गई है, इसलिए ब्रह्मघ्न व्रत करना आवश्यक है। आप मेरे बदले में व्रत कर लें, मैं यज्ञ का कार्य सँभाले लेता हूँ। यह सुन कर अर्वावसु व्रत करने के लिए गए और जब लोटे तो परावसु ने राजा से कह दिया—इन ब्रह्मघाती को आप भीतर न आने देता। राजा ने अर्वावसु को न आने दिया तो उन्होंने सब बात सत्य-सत्य बताते हुए कहा कि ब्रह्महत्या इसी ने की, मैंने तो इसके एवज में व्रत किया था। सब देवताओं ने अर्वावसु की बात का अनुमोदन कर वर माँगने को कहा तो अर्वावसु बोले—मेते पिता रैभ्य, भरद्वाज और यवक्रीत जीवित हो जाँय। देवताओं ने वैसा ही किया।

वैशम्पायनजी ने कहा—जनमेजय ! इस प्रकार तीर्थयात्रा में उज्वल चरित्रों को सुनते हुए पाण्डवादि सब लोग हिमालय के समीप सुबाहु के राज्य में पहुँचे । जहाँ अपने रसोइये आदि सब अनुचरों को छोड़ कर द्रौपदी के सहित पैदल ही हिमालय की ओर बढ़े । वहाँ दूर से कैलास पर्वत दिखाई दिया । लोमशजी बोले—धर्मराज ! यह पर्वत नरकासुर की अस्थियों का ढेर है । उस नरकासुर के बल विक्रम से इन्द्र भयभीत हो उठे थे । भगवान् विष्णृ ने नरकासुर को थप्पड़ों की चोट से ही मार डाला । उन्हीं विष्णु ने वराह रूप धारण कर पाताल-तल से पृथिवी को ऊपर उठा लिया था ।

हे युधिष्ठिर ! धीरे-धीरे बढ़ते हुए पाण्डवगण गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे । वहाँ जाते ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी । उससे भयभीत होकर वृक्षों, और ऊँचे स्थानों को पकड़ कर खड़े होगए। द्रौपदी का शरीर काँपने लगा और वह धरती पर गिर गई । युधिष्ठिर ने उसे सँभाला । उसके दु:ख से सभी दु:खकातर हो गए । तब भीम का पुत्र घटोत्कच याद करते ही अपने अनुचरों सहित आगया । उसने आज्ञा पाकर द्रौपदी को कन्धे पर बैठाया तथा अन्य अनुचर राक्षसों ने पाण्डवादि को कंधों पर लाद लिया। वे सब नर-नारायण के स्थान पर पहुँच कर उतर गये ।

वहाँ छः रात्रियाँ व्यतीत होने पर पूर्व-उत्तर कोण से उड़ता हुआ एक दिव्य पुष्प द्रौपदी के पास गिरा वह पुष्प उसने भीमसेन और युधिष्ठिर को दिखाया । द्रौपदी की इच्छानुसार भीमसेन उसी दिशा में चल दिये, जिधर से वह पुष्प आया था । धीरे धीरे वे सुन्दर वन में घुस गये । उन्हें देख कर वराह, मृग, सिंह हाथी आदि प्राणी भयंकर शब्द करने लगे । तब उन्होंने क्रोध में भर कर किसी को थप्पड़ मारे, किसी को लात लगाई । जल से भीगे हुए पर वाले पक्षियों को देख कर भीमसेन समझ गए कि

निकट में ही कोई जलाशय हैं। तभी उन्हें घोर गर्जन का शब्द सुनाई दिया। उस ओर बढ़ने पर भीम ने देखा कि कपिराज हनुमानजी मार्ग में लेटे हुए हैं। उन्होंने कहा—मैं अस्वस्थ हूँ। तुमने मुझे सोते से जगा दिया। यह देवलोक का मार्ग है, बिना सिद्धि प्राप्त किये उस पर कोई नहीं जा सकता। मेरी राय है कि तुम यहाँ से लौट जाओ और यदि नहीं मानते तो मुझे लाँघ कर निकल जाओ।

भीम बोले—सब शरीरों में निर्गुण ब्रह्म, विद्यमान है, अन्यथा हनुमान द्वारा समुद्र लाँघने के समान मैं भी तुम्हें लाँघ जाता। हनुमान जी बोले—अच्छा, ऐसा है तो तुम मेरी पूँछ हटा कर निकल जाओ। यह सुन कर भीमसेन ने बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु वे उनकी पूँछ को जरा भी न हिला सके। यह देख कर भीमसेन अत्यन्त लज्जित होकर बोले—वानरराज ! आप कौन हैं ? मुझे क्षमा करके अपना परिचय दीजिए। हनुमानजी बोले—मैं हनुमान हूँ, मैंने ही समुद्र को लाँघ कर लंका जलाई थी। यह कह कर हनुमानजी ने रामायण की पूरी कथा संक्षेप में सुनाई और भीमसेन के कहने पर अपना विशाल रूप दिखाया। फिर बोले—यह देवमार्ग है,यहाँ मनुष्य का अधिकार नहीं है। कोई तुम्हें शाप न दे दे, इस कारण मैं तुम्हारा मार्ग रोक कर यहाँ लेटा था। अब तुम अपने स्थान को लौट जाओ। यदि सरोवर पर जाना चाहते हो तो इस मार्ग से पहुँच सकते हो।

भीम का यक्ष, राक्षसों से युद्ध

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! हनुमानजी से विदा हो कर भीमसेन उनके बताये हुए मार्ग से कुबेर के सरोवर के निकट पहुँचे। उसकी रक्षा में बहुत से राक्षस तैनात थे उन्होंने भीमसेन को आगे बढ़ने से रोका और जब वे न रुके तो उन्होंने उन पर

आक्रमण कर दिया। किन्तु भीमसेन के वेग को रोकना कोई सरल कार्य नहीं था। वे पिट कर कैलास पर्वत की ओर भागे। इधर भीमसेन ने सरोवर में जाकर कमल के पुष्प तोड़े और जल पीकर स्वस्थ होगये। उधर राक्षसों से भीम के आने की बात सुन कर कुबेर ने आज्ञा दी कि उन्हें इच्छित पुष्प तोड़ लेने दो।

इधर भीमसेन को न लौटता देख कर युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने घटोत्कच आदि को आज्ञा दी कि हम सब को भीमसेन के पास ले चलो। तब राक्षसों के साथ घटोत्कच सब को लाद कर सरोवर पर लेगया। वहाँ वे अर्जुन के लौटने की प्रतीक्षा करते हुए कुछ दिन ठहरे रहे। फिर उन्होंने कुबेर के भवन में जाने का विचार किया तो आकाशवाणी ने कहा— राजन् ! आप लोग वहाँ नहीं पहुँच सकते। जिस मार्ग से आये हो उसी से बदरिकाश्रम को लौटो। वहाँ से वृषपर्वा के आश्रम से होते हुए आर्ष्टिषेण के आश्रम में जाकर टिक जाना।

यह सुन कर सब बदरिकाश्रम के निकट आकर रहने लगे। घटोत्कच आदि राक्षस उनसे विदा होकर चले गये तब एक दिन, एक भयंकर राक्षस भीमसेन की अनुपस्थिति में सब शस्त्रों तीनों पाण्डवों और द्रौपदी को उठा कर चल दिया। तब सहदेव भीमसेन को पुकारने लगे और युधिष्ठिर ने अपने शरीर को बहुत भारी कर लिया जिससे वह उन्हें उठा कर चलने में अशक्त हो गया। तभी भीमसेन गदा लिये हुए वहाँ आगये। भीमसेन के ललकारने पर जटासुर भी लड़ने को तैयार हुआ। घनघोर युद्ध के बाद वह राक्षस भीमसेन के हाथ से मारा गया।

तत्पश्चात् वे सब वृषपर्वा के आश्रम पर गये और महर्षि से अनुमति लेकर उत्तर दिशा में गये। फिर अनेक पर्वतादि को पार करते हुए गन्धमादन पर्वत पर जा पहुँचे। इसके बाद महर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम में जाकर उन्होंने अपना नाम कह कर ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि ने उनका सत्कार कर सब को बैठने

की आज्ञा दी और बोले—धर्मराज ! जब तक अर्जुन न लौटें तब तक तुम फल-मूल आदि खाते हुए यहीं निवास करो। अन्त में तुम्हारी विजय निश्चत है।

वहाँ रहते हुए उन्हें कुछ दिन ही बीते थे कि एक दिन गरुड़ ने आकर एक कुण्ड में रहते हुए विशाल नाम को पकड़ लिया। गरुड़ के वेग से पर्वत काँप उठा और विशाल वृक्ष भी टूट कर गिरने लगे। वह दृश्य द्रौपदी सहित पाण्डवों ने भी देखा। उस समय उन वृक्षों से पंचरंगे पुष्प झड़ने लगे, जिन्हें देख कर द्रौपदी ने भीमसेन से कहा कि आपके भाई अर्जुन ने बड़े-बड़े मायावियों का संहार किया था। आप भी ऐसा कीजिए कि यह पर्वत भी यक्ष, राक्षसों के भय से मुक्त होजाय।

यह न कर भीमसेन धनुष, तलवार, गदा आदि शस्त्र लेकर चल दिये। धीरे-धीरे तंग घाटी आदि को पार करते हुए कुबेर की अलकापुरी में जा पहुँचे। वहाँ एक बहुत भव्य और वैभवपूर्ण भवन था, जिसकी रक्षा में यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि खड़े हुए थे। उन्होंने भीमसेन को देखते ही आक्रमण कर दिया। तब भीमसेन ने भी मार-काट कर उन्हें भगा दिया।

इधर भीमसेन को न लौटा देख कर पाण्डवों को बड़ी चिन्ता हुई और वे द्रौपदी को आश्रम में ही छोड़ कर पर्वत-शिखर पर चढ़े और भीमसेन के पास जा पहुँचे। वहाँ यक्षों को मरे हुए देख कर युधिष्ठिर बोले—भीमसेन ! यह कार्य अच्छा नहीं हुआ। राजा से वैर करना अनुचित है। उधर यक्ष, राक्षसों ने कुबेर के पास जाकर पुकार मचाई। अपने बहुत से वीरों के मरने के समाचार से वे बहुत क्रुद्ध हुए। वे रथ पर चढ़ कर जैसे ही पाण्डवों के पास पहुँचे, वैसे ही पाण्डवों ने उन्हें प्रणाम किया। किन्तु भीमसेन उस समय भी वैसे ही खड़े रहे। तब कुबेर बोले—भीमसेन ! यह यक्ष, याक्षस काल के द्वारा पहिले से हा मारे हुए

हैं, इसलिए इनके मरने का मुझे खेद नहीं है। अगस्त्यजी ने मुझे जो शाप दिया था, उसी के फल स्वरूप यह कष्ट भोगने पड़े हैं।

तत्पश्चात् कुबेर की कृपा प्राप्त कर पाण्डव कुछ दिन वहीं रहे, फिर लौट कर आर्ष्टिषेण के आश्रम में अर्जुन की प्रतीक्षा करने लगे। तभी सहसा उन्होंने आकाश-मार्ग से उतरते हुए एक रथ को देखा। उससे उतर कर अर्जुन ने सब पूजनीयों को प्रणाम किया और नकुल, सहदेव आदि से भेंट की तथा द्रौपदी को दिव्य आभूषण प्रदान किये।

अजगर द्वारा भीमसेन का जकड़ा जाना

दूसरे दिन पाण्डवों के पास देवराज इन्द्र स्वयं पधारे और युधिष्ठिर के पूजन को स्वीकार कर बोले कि— अब तुम काम्यक वन में जाओ। अर्जुन ने सब शस्त्रास्त्र सीख लिये हैं। अब इन्हें कोई भी न जीत सकेगा। यह कह कर इन्द्र चले गए।

तत्पश्चात् अर्जुन ने अपने प्रवास के सब वृत्तान्त सुनाये। किस प्रकार पाशुपतास्त्र प्राप्त हुआ, किस प्रकार स्वर्ग जाना हुआ, किस प्रकार निवातकवच दानवों से टक्कर हुई, किस प्रकार वे निवातकवच दैत्य मारे गए, किस प्रकार पौलोम और कालकेय दैत्यों का वध किया गया, इस सब का विवरण आद्योपान्त सुना कर बोले कि जिन शस्त्रास्त्रों की सहायता से वे दानव मारे गए हैं, उन्हें आपको कल दिखाऊँगा।

हे राजन् ! दूसरे दिन प्रातःकाल शुद्ध होकर अर्जुन ने कवच धारण किया और दिव्यास्त्रों का प्रयोग दिखाने को तत्पर हुए तभी भूमण्डल काँप उठा। देवर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, सुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, ब्रह्मा, यहाँ तक कि भगवानशंकर भी आगए तभी नारदजी ने आकर कहा—दिव्यास्त्रों का अकारण प्रयोग अनुचित है। इनका चमत्कार तो समय पर ही देखना

चाहिए। यह सुन कर अर्जुन ने दिव्यास्त्रों का दिखाना रोक दिया।

इसके पश्चात् गन्धमादन पर्वत को छोड़ने के विचार से सबने कुबेर को नमस्कार किया और वहाँ से चल पड़े। तथा विशाखयूप नामक स्थान पर कुछ दिनों के लिए ठहर गए। उस वन में एक दिन एक अजगर ने भीमसेन के शरीर को जकड़ लिया। बहुत चेष्टा करने पर भी वे कुछ कर न सके। भीमसेन ने उससे पूछा—हे अजगर ! आपने मुझे क्यों पकड़ लिया है। वह बोला—पूर्व जन्म में, मैं राजा नहुष था, अगस्त्य के शाप से मुझे यह योनि मिली है। यद्यपि तुम मेरे ही वंश के बालक हो, फिर भी शापवश मुझे तुम्हारा भक्षण करना पड़ेगा। यह कह कर सर्प ने उन्हें इतना कस लिया कि अब उनका हिलना-डुलना भी संभव नहीं था।

इधर धर्मराज ने अपशकुन होते देखे तो पुरोहित धौम्य के साथ भीमसेन को खोजने चले। तभी उनकी दृष्टि अजगर के बन्धन में अचेत-से पड़े भीमसेन पर पड़ी। उन्होंने अजगर से भीम की बंधन निवृत्ति का उपाय पूछा। वह बोला—यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर देसको तो मैं इसे छोड़ दूँगा। युधिष्ठिर बोले - पूछो। अजगर ने पूछा—सत्य, दानादि गुण शूद्र में भी देखे जाते हैं, तो शूद्र और ब्राह्मण में अन्तर क्या रहा ? युधिष्ठिर बोले—सत्य, दानादि गुण जिस शूद्र में हो उसे ब्राह्मण ही समझो। जिसका आचरण पूर्ण शुद्ध है, वह ब्राह्मण से किसी प्रकार कम नहीं। यह सुन कर अजगर सन्तुष्ट हुआ और उसने भीमसेन को छोड़ दिया। तभी शाप से निवृत्ति होने के कारण अजगर का शरीर छोड़ा और स्वर्गलोक में चले गए।

तत्पश्चात् पाण्डवों ने कुछ काल उस आश्रम में निवास किया और फिर सब को साथ लेकर काम्यक वन के लिए चल पड़े।

मार्कण्डेय द्वारा मनुचरित्र वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—काम्यक वन में आने पर एक दिन सत्यभामा के सहित श्रीकृष्ण वहाँ आये। जिनसे मिल कर सब बहुत सुखी हुए। उसके कुछ देर बाद ही मार्कण्डेयजी वहाँ पधारे। पांडवों ने उनका पूजनादि से सत्कार कर श्रेष्ठ आसन दिया। जब वे सुख पूर्वक बैठ गए तब युधिष्ठिर के निवेदन पर पुराण-कथा सुनाने लगे। उन्होंने कहा—हैहयवंशीय एक राजकुमार ने मृग के धोखे में एक ब्राह्मणकुमार की हत्या कर दी और जब उन्हें ब्रह्महत्या होने की बात मालुम हुई तभी वे अरिष्टनेमा के आश्रम में जाकर बोले —भगवन्! मुझसे ब्रह्महत्या होगई है, अब क्या करूँ? ऋषि बोले—हत्या के स्थान पर मुझे ले चलो, मैं तुम्हें अपना तपोबल दिखाऊँगा। राजकुमार ऋषि को वहाँ लेगये तो उन्हें वह शव दिखाई न दिया। इससे उन्हें बड़ा अचरज हुआ। ऋषि बोले—तुमने मेरे पुत्र को ही मारा था, वह जीबित होकर मेरे पास आगया। देखो, मृत्यु हम तपस्वियों को मार नहीं सकती। तब तो विस्मय करते हुए राजकुमार वहाँ से चल दिये।

एक बार पृथु ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली, तब महर्षि अत्रि उनसे धन माँगने के लिए गये। और राजा को देवतुल्य एवं श्रेष्ठ बता कर उनकी स्तुति करने लगे। तभी गौतम ने कहा—सब से श्रेष्ठ तो इन्द्र और चन्द्रमा हैं, जो कि हमारा पालन करते हैं। इस प्रकार उन दोनों में विवाद होगया। तब सब ऋषियों ने उस विवाद को दूर करने के लिए सनत्कुमार से निवेदन करने लगे। सनत्कुमार ने कहा—महर्षि अत्रि ठीक कहते हैं। ब्रह्म के साथ क्षात्र तेज मिल कर शत्रुनाश का कारण होता है। राजा धर्म, नीति के मार्ग पर चल कर प्रजापालन करता और अधर्म को नष्ट करता है, इसलिए राजा को श्रेष्ठ कहना

उचित ही है। यह सुन कर राजा ने महर्षि अत्रि को बहुत-सा धन, वैभव देकर सन्तुष्ट किया।

एक बार तार्क्ष्य ने सरस्वती से पूछा कि इस लोक में मनुष्य का श्रेय क्या है? क्या करने से धर्म नष्ट नहीं होता? मैं कब, कैसे देवपूजन और अग्निहोत्र करूँ? सरस्वती बोलीं—पवित्र, सतर्क, स्वाध्याय युक्त होकर रहने वाला मनुष्य देवलोक पाता है। गोदान करने वाला श्रेष्ठ लोकों में जाता है। वृषभदाता को सूर्यलोक और वस्त्रदाता को चन्द्रलोक मिलता है। सुवर्णदान से देवयोनि प्राप्त होती है। व्रत, पुण्य, योगाभ्यास द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। वही मोक्ष है। अग्नि, इन्द्र और मरुद्गणादि ने जहाँ श्रेष्ठ यज्ञ किये हैं, वही परमपद है और मेरा निवास भी वही है।

मार्कण्डेयजी बोले—अब वैवस्वत मनु का चरित्र सुनो। सूर्य पुत्र वैवस्वत ने बदरिकाश्रम में दस हजार वर्ष तप किया था। एक दिन वे स्नान कर रहे थे, तभी एक छोटी मछली ने अपनी रक्षा की प्रार्थना की। मनु ने उसे अपने एक मृत्तिका पात्र में रख दिया। कुछ काल बाद वह इतनी बड़ी हो गई कि घड़े में रहना कठिन था। उसनें प्रार्थना की कि मुझे अन्यत्र रखिये। मनु ने उसे दो योजन लम्बे जलाशय में रखवा दिया। फिर वह उसमें भी न समाने लगी तब मनु ने उसे गंगाजी में डाल दिया। अब वह वहाँ भी न आने लगी, तब पूर्व समुद्र में डाल आये।

जब उन्होंने उसे समुद्र में डाला तो वह बोली—आपने मुझ पर इतनी कृपा की है तो मुझे भी प्रत्युपकार करना होगा। अब शीघ्र ही प्रलय होने को है। आप एक दृढ़ नाव बनवा कर उसमें एक रस्सी रखिये और समय आने पर सप्तर्षियों के साथ नाव पर चढ़ जाइये। मैं आपकी सहायता के लिए आऊँ, उस समय

मेरे शिर पर एक सींग होगा। उसके कुछ समय बाद ही प्रलय काल आगया। राजा ने नाव पर चढ़ कर उसी प्रकार मत्स्य के आने की प्रतीक्षा की, तभी वह आगया। मनु ने उसके सींग में नाव की रस्सी बाँध दी। तब वह मत्स्य बहुत वर्षों तक उस नाव को खींचता रहा और अन्त में बोला कि नाव को हिमालय के शिखर से बाँध दो। देखो, मैं ब्रह्मा हूँ। अब तुम सब जीवों की सृष्टि करो। यह कह कर मत्स्य रूपी ब्रह्मा अन्तर्धान होगए। तब मनु ने सृष्टि उत्पन्न करने की बात तो सोची, पर समझ में न आया कि कैसे करे तो वे घोर तप करने लगे।

राजन् ! अब तुम्हें प्रलय का वृत्तान्त सुनाता हूँ। मैं जल में इधर से उधर मारा-मारा फिर रहा था, तभी एक मनोहर बालक दिखाई दिया। वह बोला—मार्कण्डेय ! मैं तुम्हें जानता हूँ। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, इसलिए मेरे शरीर में घुस कर विश्राम करो। तभी बालक ने अपना मुख फाड़ा और मैं उसमें खिचकर चला गया। भीतर जाकर मैंने सम्पूर्ण भूमण्डल देखा। यहाँ तक कि मेरा आश्रम भी वहाँ अवस्थित था। तभी उस बालक के एक श्वास के साथ मुझे बाहर आना पड़ा। हे राजन् ! उस घटना से मुझे अत्यन्त विस्मय हुआ और मैंने प्रसन्न होकर भगवान् बालकृष्ण को नमस्कार किया।

तपोबल की महिमा का वर्णन

मार्कण्डेयजी बोले—हे युधिष्ठिर ! अयोध्या नरेश महाराज परीक्षित एक बार मृगया के लिए वन में गये। उन्हें सरोवर के निकट एक उपवन में एक सुन्दरी मिली। वह धीरे-धीरे राजा के पास जा पहुँची। राजा उसे देखते ही आसक्त हो गए और बोले—हे सुभ्रू ! तुम मुझे पति रूप में वरण कर लो। वह बोली—यदि आप जल न दिखाने की प्रतिज्ञा करें तो मैं आपके

साथ विवाह कर सकती हूँ। राजा ने उसका वचन मानकर विवाह कर लिया। इसके बाद राजभवन पर कुछ सेविकाएँ इसी की चौकसी पर नियुक्त कर दीं कि कोई व्यक्ति जल लेकर भीतर न जा सके।

महामात्य को जब इस बात का पता लगा तब उसने एक नया उद्यान लगवा कर उसमें एक ऐसी बावड़ी बनवाई, जो ऊपर से छिपी हुई सी थी। फिर उसने राजा से उस उद्यान में विहार करने का निवेदन किया। वे उस स्त्री के साथ वहीं जाकर रहने लगे। एक समय माधवी लता की कुंज में उस बावड़ी को देख कर जल विहार की इच्छा हुई तो वे अपनी प्रतिज्ञा का भूल कर उस बावड़ी में घुस गये। तभी रानी जल में गोता लगा कर अदृश्य हो गई और फिर वह बावड़ी भी न जानें कहाँ गई। वहाँ एक छिद्र के मुख पर एक मेंढक दिखाई दिया। राजा ने समझा कि रानी के नष्ट होने का कारण यही है, इसलिए उसने मेंढकों को नष्ट करने की आज्ञा दे दी। अब जिसे भी राजा से मिलना होता वह एक मरा हुआ मेंढक लेकर आता।

तब सब मेंढक अपने राजा मण्डूकराज के पास जा पुकारे। वह राजा के पास आकर बोला— महाराज ! मेंढक निरपराध हैं, इनकी हत्या बंद कर दीजिए। मैं मेंढकों का राजा आयु हूँ। आपकी रानी, मेरी पुत्री सुशोभना है, जो अपने खोटे स्वभाव वश अन्य अनेक राजाओं को धोखा दे चुकी है। यह कह कर उसने पुत्री को पुकारा और जब वह आगई तब उसने बोला— सुशोभने ! तू महाराज की सेवा कर। देख, तेरे होने वाले पुत्र ब्राह्मणों को न मानेंगे।

कुछ समय बाद उससे शल, दल और बल नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। राजा ने शल को राज्य देकर वन को प्रस्थान किया। एक दिन राजा शल मृगया के लिए गये और एक मृग

का पीछा करते हुए अपने सारथी से तेज रथ हाँकने को कहा। सारथी बोला—इन घोड़ों से मृग का हाथ आना संभव नहीं है। यदि वाक्य अश्व होते तो मृग पकड़ा जा सकता था। राजा ने पूछा – वे घोड़े महर्षि वामदेव के रथ में जोते जाते हैं। राजा ने कहा—मुझे वामदेव के आश्रम पर ले चलो।

वहाँ जाकर राजा ने ऋषि से घोड़े माँगे तो उन्होंने कहा—घोड़े तो ले जाओ, पर कार्य होते ही लौटा देना। राजा स्वीकार कर घोड़ों को ले आये और कार्य होने पर भी उन्हें वामदेव को नहीं लौटाया। कुछ दिन प्रतीक्षा करने के बाद ऋषि ने अपने घोड़े माँगे तो राजा ने कहा—इन घोड़ों की तुम्हें क्या आवश्यकता? यह तो राजा के पास रहनेचाहिए। तुम इन शिक्षित बैलों को ले जाओ, ब्राह्मण के लिए यही सवारी उपयुक्त तथा वेद सम्मत है।

वामदेव बोले— राजन् ! वेद ने ब्राह्मण की सवारी के लिए बैलों का विधान परलोक में किया है, पर इस लोक में अश्व ही काम में लाये जाते हैं। फिर आपने यह घोड़े लौटा देने के वचन पर उधार लिये थे। राजा ने कहा—हे विप्र ! ब्राह्मण मृगया नहीं करते तो उन्हें अश्वों की ही क्या आवश्यकता है ? मैं इन घोड़ों को तुम्हें कभी नहीं दूँगा।

राजा के यह कहते ही त्रिशूलधारी चार दैत्य प्रकट हुए। उन्होने राजा को पकड़ कर तत्काल मार डाला। तब उनका भाई दल राजा हुआ। वामदेव ने उससे भी अपने घोड़े माँगे। इस पर दल ने ऋषि को मारने के लिए विषाक्त बाण मंगाया। ऋषि बोले—यह बाण तेरे दस वर्षीय पुत्र को ही जा लगेगा। ऋषि के इतना कहते ही उस बाण से राजकुमार की मृत्यु होगई तब राजा ने दूसरा बाण मँगाया। ऋषि बोले—इसे तुम धनुष पर भी नहीं चढ़ा सकते। ऋषि के कहते ही राजा का हाथ स्त-

म्भित्त हो गया। तब उसे ब्राह्मण के प्रभाव का ज्ञान हुआ। उसने कहा– अब मैं ऋषि की हत्या नहीं कर सकता, वे जीवित रहें। ऋषि ने कहा—राजन्! इस बाण को रानी के देह से स्पर्श करा दो तो ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाओगे। तब राजा ने वैसा ही किया। उस समय रानी बोली—भगवन्! मैं इन्हें नित्य-प्रति ब्राह्मणों का अनुगत रहने का परामर्श देती रहती हूँ। वामदेव बोले—रानी! तुम्हारे प्रभाव से ही यह राजवंश नष्ट होने से बच गया है।

धुन्धुमार का चरित्र

मार्कण्डेयजी बोले—हे युधिष्ठिर! इक्ष्वाकु वंश में राजा कुवलाश्व हुए थे। उनका धुन्धुमार नाम पड़ गया। एक बार महर्षि उतङ्क की स्तुतियों से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने वर माँगने को कहा तो महर्षि बोले—प्रभो! मैं तो यही माँगता हूँ कि मेरी बुद्धि धर्म, संयम और आपकी उपासना में लगी रहे। भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा—मुने! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी और तुम त्रिलोकी के उपकार में एक बड़ा कार्य भी करोगे। धुन्धु नामक एक घोर राक्षस तप करेगा उसे राजा कुवलाश्व मारेंगे, तब उनका नाम धुन्धुमार होगा। यह कह कर भगवान् अन्तर्धान हो गए।

एक बार महाराज वृहदश्व वानप्रस्थी होकर वन में जाने लगे तब उतङ्क मुनि ने उनसे कहा—राजन्! मेरे आश्रम के निकट धुन्धु नामक असुर बहुत उपद्रव करता है, उसे मार कर ही आप वन में जाँय, क्योंकि क्षत्रिय का धर्म प्रजा की रक्षा से अधिक कुछ नहीं है। वृहदश्व बोले–ब्रह्मन्! मैं अपने सभी शस्त्रों का त्याग कर चुका हूँ। अब मेरा पुत्र कुवलाश्व उस असुर को नष्ट करेगा। वह इस कार्य में सर्वथा योग्य है। यह कह कर बृहदश्व वन को चले गए।

एक बार योगनिद्रा में अवस्थित भगवान् विष्णु की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्माजी हुए। तभी वहाँ मधु कैटभ नामक असुर आकर ब्रह्मा को डराने लगे। उन्होंने जैसे ही कमल को हिलाया वैसे ही भगवान् जाग उठे। उन्होंने असुरों से कहा—मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, कोई श्रेष्ठ वर माँग लो। असुर बोले—हम स्वयं भी वर प्रदान कर सकते हैं, इसलिए तुम्हीं हमसे वर ले लो। विष्णु ने कहा—अच्छा तो यह वर दो कि तुम दोनों मेरे हाथ से मारे जाओ। मधु-कैटभ बोले—यह तो बड़ा अनर्थ हुआ, फिर भी जो कह दिया उसे लौटावें भी कैसे ? अब तुम भी अपने कहे अनुसार वर दो कि जब हम तुम्हारे हाथ से मारे जाँय तो फिर तुम्हारे पुत्र हों। 'तथास्तु' कह कर भगवान् विष्णु ने अपनी जाँघों पर उनके सिर रख कर सुदर्शन चक्र से काट दिये।

हे राजन् ! उन्हीं मधु-कैटभ का पुत्र धुन्धु हुआ, जिसने एक पाँव से खड़े होकर घोर तपस्या की। उसे ब्रह्माजी ने वर दिया कि देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और नाग आदि कोई भी न मार सकेगा। तब वह पिता की हत्या के प्रतिशोध स्वरूप ऋषियों को सताने लगा। उतंक ऋषि उससे बड़े दुःखित थे। तब विष्णु-तेज से समन्वित कुवलाश्व ने भूमि में छिपे धुन्धु दैत्य को उसके पुत्रों सहित खोद कर निकाल लिया। तब दैत्य आग उगलने लगा, जिसमें उसी के पुत्र भस्म होगए और फिर कुवलाश्व ने उसके शरीर से निकलते हुए सब तेजोमय जल का पान कर लिया और उसके मुख से निकलती हुई भयंकर अग्नि भी बुझा दी। फिर अपने ब्रह्मास्त्र से उसे मार डाला, तब देवताओं और ऋषियों ने प्रसन्न होकर उन्हें विष्णु से मैत्री और स्वर्ग-गमन का वर प्रदान किया। तभी से उनका नाम धुन्धुमार हो गया।

कौशिक ब्राह्मण और पतिव्रता स्त्री का संवाद

मार्कण्डेयजी बोले—हे राजन् ! अब तुम्हें पतिव्रता स्त्रियों का माहात्म्य सुनाता हूँ। एक क्रोधी ब्राह्मण कौशिक थे। उन पर एक पक्षी ने बीट कर दी तो उन्होंने क्रोध पूर्वक उस पक्षी को देखा, जससे वह तुरन्त मर गया। अब वह ब्राह्मण ग्राम में भिक्षा के लिये गये और सब द्वार पर जाकर भिक्षा माँगी। भीतर से गृहस्वामिनी ने कहा—मैं बर्तन मांज कर आती हूँ, आप कुछ देर ठहरें। यह सुन कर कौशिक द्वार पर ठहरे रहे तभी गृहस्वामी घर में आया। स्त्री ने उसे पाद्य, अर्घ्य, आचमन आसन और भोजन समर्पित किया और सेवा करने लगी। फिर जब पति सेवा से कुछ निवृत्त हुई तब पात्र में भिक्षा लेकर द्वार पर आई। कौशिक बोले—भद्रे ! बड़ी देर लगा दी। इससे तो पहिले ही कह देतीं कि अवकाश नहीं है। गृहस्वामिनी ने ब्राह्मण को क्रोधित जान उन्हें शान्त करने की चेष्टा की—विप्रवर ! स्वामी आगये तो मैं उनकी सेवा में लग गई थी, इसलिए क्षमा कीजिए।

कौशिक क्रोधित होगए, बोले—ब्राह्मण अग्नि के समान है, तुम पति को उससे भी बढ़ कर समझती हो। क्या तुम नहीं जानती कि ब्राह्मण क्रोधित कर समूची पृथिवी को जला सकते हैं। स्त्री बोली—विप्र ! मैं पक्षी नहीं हूँ, जिसे आप भस्म कर देंगे। मैं तो पतिव्रता स्त्री हूँ। आपका क्रोध मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। किन्तु, मैं आपका अनादर न करके क्षमा ही माँग रही हूं। धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है, जिसे जनकपुरी के धर्मव्याध जानते हैं। यदि कुछ अनुचित बात निकल गई हो तो उसके लिए मुझे क्षमा करना आपका कर्त्तव्य है। यह सुन कर कौशिक का क्रोध नष्ट होगया। वे उसे धन्यवाद देकर चुपचाप चले गए।

धर्मव्याध का वृत्तान्त

वहाँ से चल कर कौशिक ने धर्मव्याध से मिलने का निश्चय किया। धर्मव्याध मांस बेच रहे थे। कौशिक को आया देख तुरन्त उठते हुए उन्होंने कहा—ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। आपने पतिव्रता के कहने से इतनी दूर आने का कष्ट किया है। यह सुन कर कौशिक को अत्यन्त आश्चय हुआ। तभी व्याध उन्हें अपने घर पर लेगये। वहां पूजनादि से सत्कृत होकर कौशिक ने कहा—मांस विक्रय का कार्य तो तुम्हारे योग्य नहीं है। व्याध बोले- ब्रह्मन्! यह कार्य मेरे पूर्व पुरुषों से चला आ रहा है। मैं अपने कुलोचित धर्म के पालन में तत्पर हूँ। मैं अपने वृद्धमाता-पिता की सेवा, यथाशक्ति दान और सत्यभाषण में लगा रहता हूँ। मेरे मन में ईर्ष्या-द्वेष, एवं परनिन्दा आदि को किंचित् भी स्थान नहीं है। देवता, अतिथि और सेवकों को खिलाने से जो शेष रहता है, उसी का आहार करता हूँ। हे भगवन्! शूद्र का धर्म सेवा, वैश्य का धर्म कृषि और गोपालन, क्षत्रिय का प्रजापालन और ब्राह्मण का जप, तप, स्वाध्याय, सत्य, अनुष्ठानादि तथा स्त्री का धर्म पति सेवा है। जो अपने धर्म-कर्म में लगा रहता है, वही धन्य है। जो अपने कर्म को छोड़ देता है वह अधर्मभागी तथा राजा द्वारा भी दण्डनीय होता है। हे द्विजवर! कैसी भी विपत्ति पड़े, अपने कर्म को न छोड़े। जिस कर्म में अपना अधिकार न हो उसे श्रेष्ठ होने पर भी न करे।

हे कौशिक! अब मैं उन्हें भी प्रत्यक्ष दिखाता हूँ कि जिनसे मुझे यह सिद्धि प्राप्त हुई है। आप घर के भीतर चलिए। कौशिक उनके घर के भीतरी कक्ष में गये। वहाँ धर्मव्याध के माता पिता स्वच्छ वस्त्र धारण कर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान थे। धर्मव्याध ने उन्हें देख कर उनके चरणों में शिर रखा और उनकी प्रसन्नता प्राप्त की। उन्होंने कहा—हे पुत्र! हे धर्मज्ञ!

तुम चिरायु हो। तुम हमारी बड़ी सेवा करते हो। तब व्याध ने उन्हें कौशिक के आगमन की सूचना दी। उन्होंने कौशिक से स्वागत भरे वचनों में कुशल प्रश्न किया। कौशिक के यथोत्तर देने पर व्याध ने कहा—ब्रह्मन् ! माता-पिता ही मेरे लिए तो परम देवता हैं। जो देवाराधन के लिए करना चाहिए, वह मैं इनके लिए करता हूँ। इनके लिए अप्रिय वचन कभी मुख से नहीं निकलता, कभी अप्रिय कार्य नहीं करता। माता-पिता की सेवा ही पुत्र का परम कर्त्तव्य और सनातन धर्म है।

भगवन् ! आपने अपने माता-पिता की सेवा नहीं की, वरन् उनका अनादर करके घर से निकल आये। यह कार्य उचित नहीं है। आपका कोई भी धर्म-कार्य उन्हें सन्तुष्ट किये बिना सफल नहीं हो सकता। आप तुरन्त अपने पिता के पास जाकर उन्हें सन्तुष्ट कीजिए, कौशिक बोले—व्याध ! तुमने मेरे नेत्र खोल दिये। अब मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा। किन्तु मुझे यह बताओ कि तुम्हें यह शूद्रयोनि किस दोष से प्राप्त हुई है।

व्याध बोले—ब्रह्मन् ! मैं पूर्वजन्म में ब्राह्मण था। मैं वेद वेदांग का विद्वान् एक राजा के संग से धनुर्विद्या का ज्ञाता भी होगया। एक दिन मृगया के समय मेरा एक बाण एक ऋषि के जा लगा तो वे ऋषि तुरन्त धरती पर गिर गये। मैं यह देखकर उनके पास गया और उनसे क्षमा माँगने लगा, तभी उन्होंने शाप दे दिया—मुझे शूद्रयोनि प्राप्त होगी।

तब मैंने उनकी बहुत अनुनय विनय की, जिससे प्रसन्न हुए ऋषि बोले—मेरा शाप तो अटल है, पर शूद्र योनि में जाकर भी तू माता-पिता की सेवा करेगा, जिसके प्रभाव से तुझे पूर्व जन्म का स्मरण रहेगा और फिर ब्राह्मण योनि में जन्म लकर स्वर्ग में जायेगा। यह सुन कर मैंने उनके शरीर से बाण निकाला और अपने आश्रम में पहुँच कर वे स्वस्थ होगये। कौशिक बोले—

धर्मज्ञ ! तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी है, लगी रहे। यह कह कर कौशिक अपने घर जाकर माता-पिता की सेवा करने लगे।

चित्रसेन का दुर्योधनादि को पकड़ना

जनमेजय बोले—हे भगवन् ! पाण्डवों ने इस प्रकार वन में रहकर वहाँ के कष्ट सहते हुए फिर क्या किया ? यह बताइये। वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! पाण्डवगण पुनः उसी सरोवर पर सुन्दर कुटी बना कर रहने लगे। एक दिन एक चतुर ब्राह्मण उनसे मिल कर राजा धृतराष्ट्र की सभा में पहुँचा और उसने राजा के पूछने पर पाण्डवों का हाल सब सुनाया। तब धृतराष्ट्र सोचने लगे कि मैंने कितना बुरा कार्य किया जो शकुनि को जुआ खेलने की आज्ञा दी। लगता है कि कौरवों का नाश होकर रहेगा। क्योंकि पाण्डव अपने इन दुःखों से कुपित होकर बदला लिये बिना न रहेंगे। देखो, अर्जुन इन्द्रलोक में पहुँच कर वहाँ से दिव्यास्त्र ले आया। अब उसके दिव्य तेज को कौन सहन कर सकता है ?

हे राजन्! राजा धृतराष्ट्र की उपर्युक्त चिन्ता युक्त बातें सुनकर शकुनि दुर्योधन और कर्ण के पास जाकर बोला—सुयोधन ? अब तुम अकेले ही सम्पूर्ण पृथिवी का निष्कंटक राज्य भोगते हो। अभी सुना है कि पाण्डवगण द्वैतवन में सरोवर के निकट वनवासी विप्रों के रहते हैं। तुम वहाँ चल कर उनकी दीन-हीन दशा आँखों से देख कर उन्हें चिढ़ाओ। पाण्डवगण पहिले अपने वैभव को तुम्हें दिखाते थे, अब वे तुम्हारे वैभव को देख कर अपने भाग्य की निन्दा करेंगे। यह कह कर शकुनि चुप हो गया।

उसकी बात सुन कर पहले तो दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु फिर उदास होता हुआ बोला—वैसा करने के लिए पिता

जी आज्ञा नहीं देंगे, क्योंकि वे पाण्डवों की दशा पर सदा दुःख व्यक्त किया करते हैं। इसलिए तुम सब मिल कर कोई ऐसा उपाय निकालो जिससे वे हमें वहाँ जाने की आज्ञा दे दें। इधर मैं भी ऐसा ही प्रयत्न करता हूँ।

तदुपरान्त कर्ण ने कहा—तुम्हारी गौएँ द्वैतवन में हैं, वहाँ उन्हें देखने के बहाने से चलना चाहिए, इसके लिए महाराज की अनुमति भी सहज ही मिल जायगी। यह सुन कर परस्पर परामर्श कर वे तीनों ही राजा धृतराष्ट्र के पास गये। उन्होंने अपने पुत्र का विचार सुन कर कहा—देखो, पता लगा है कि पाण्डव भी द्वैतवन में ही हैं, इसलिये कहीं ऐसा न हो कि तुम वहाँ जाकर उनसे कुछ छेड़छाड़ कर बैठो और उसका परिणाम बुरा निकले। मैं कुछ मन्त्रियों को तुम्हारे साथ भेजता हूँ, उनके परामर्श के बिना कहीं इधर-उधर मत चले जाना।

इस प्रकार धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर कर्ण, शकुनि, दुर्योधन मन्त्रियों, वन्दीजनों, सैनिकों, सेवकों, रानियों, दासियों आदि के साथ एक बड़े समूह के रूप में द्वैतवन के लिये चले और सरोवर से दो कोश दूर उन्होंने अपने शिविर डाले। दुर्योधन ने सरोवर तट पर एक क्रीड़ा भवन बनाने की आज्ञा दी। वहाँ चित्रसेन नामक गन्धर्वराज पहिले से ही क्रीड़ा के लिए अपने साथी गन्धर्वों के सहित डेरे डाले हुए पड़ा था। उसने दुर्योधन के सैनिकों को वहाँ से भगा दिया। जब दुर्योधन ने यह सुना कि गन्धर्वों ने हमारे सैनिकों को दुत्कार दिया है, तब उसने आज्ञा दी कि गन्धर्वों को मार डालो। यह सुनते ही कौरव-सेना उनसे जा भिड़ी और फ़िर दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा।

गन्धर्वगण प्रबल थे, उन्होंने कौरवों को बुरी तरह मारा। कर्ण और दुर्योधन के भाई मैदान से हट गए। दुर्योधन का रथ टूट गया, उसे चित्रसेन ने जीवित पकड़ लिया और फिर दुःशा-

सन भी उनके चंगुल में जा फँसा। तब कौरव सेना के भागे हुए सैनिकों ने पाण्डवों की शरण ली। वे पुकारने लगे--पाण्डवगण! गन्धर्वों ने कौरवों को परास्त कर दिया। अब वे दुर्योधन, दु:शासन आदि के साथ राजकुल की महिलाओं को भी पकड़ कर लिये जारहे हैं। आप उन्हें छुड़ाइये।

उनकी बात सुन कर भीमसेन ने कहा—हमें चिढ़ाने आये थे, किन्तु स्वयं ही दुर्दशाग्रस्त होगये, हमें जो कार्य करना चाहिए था, वह गन्धर्वों ने कर दिया, अब उसे अपने कर्मों का फल भोगने दो। युधिष्ठिर बोले—भीमसेन! यह समय इन कठोर वचनों का नहीं है। दुर्योधन और राजकुल स्त्रियों को पकड़ कर ले जाना हमारा ही अपमान करना है। उस पर भी कौरवों ने हमारी शरण ली है तो हमें उनकी रक्षा करनी ही चाहिए। हे भीम! हे अर्जुन! मेरे वचन मान कर दुर्योधन की सहायता करो।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अर्जुन उठ खड़े हुये। भीमसेन ने भी गदा हाथ में ली। गन्धर्वों ने पाण्डवों को पीछे से आते और ललकारते हुए देखा तो पीछे लौट पड़े। अर्जुन ने उन्हें समझाया कि दुर्योधनादि को स्त्रियों सहित छोड़ दो, किन्तु वे न माने। तब तो दोनों ओर से युद्ध होने लगा। अनेकों गन्धर्व मारे गये। तभी गन्धर्वराज चित्रसेन ने सामने आकर कहा—अर्जुन! मैं तुम्हारा मित्र चित्रसेन हूँ। उसे देखते ही अर्जुन ने धनुष से अस्त्र उतार लिया, अर्जुन ने पूछा—मित्र! तुमने कौरवों को इस प्रकार क्यों हराया है? चित्रसेन बोले—मुझे दुर्योधन के दूषित विचारों का पता लग गया था। वह तुम्हारी और द्रौपदी की दुर्दशा देखने और चिढ़ाने आया था। इनके बुरे विचारों को देख कर ही देवराज ने मुझे आज्ञा दी कि कौरवों को पकड़ कर ले आओ।

अर्जुन बोले—चित्रसेन ! धर्मराज की आज्ञा है कि दुर्योधनादि को छुड़ाया जाय। इसलिए अब तो हमारा प्रिय उन्हें छुड़ाने में ही है। अब तुम स्वयं महाराज युधिष्ठिर से बातें कर लो। तब सब लोग युधिष्ठिर के पास पहुँचे। चित्रसेन ने सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया। युधिष्ठिर बोले—गन्धर्वराज ! आपने दुर्योधन का प्राण नहीं लिया यह बड़ी कृपा की। अब मेरे अनुरोध पर आप इन सब को छोड़ दीजिए। चित्रसेन दुर्योधनादि को छोड़ कर चले गए। तब युधिष्ठिर ने कहा—भैया दुर्योधन ! फिर कभी ऐसा कार्य न करना। अब अपने भाइयों आदि के साथ अपने घर जाओ। लज्जित हुआ दुर्योधन तुरन्त वहाँ से चल दिया।

दुर्योधन का प्रायोपवेशन करना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! युधिष्ठिर के पास से दुर्योधन चले तो उनकी भेंट कर्ण से हुई। कर्ण ने कहा—राजन् ! मैं तो गन्धर्वों को जीत नहीं सका, किन्तु आप बहुत बलवान हैं जो गन्धर्वों को हरा कर सकुशल लौट आये। मेरी समझ में तो आपके समान अन्य कोई योद्धा पृथिवीमंडल पर नहीं है।दुर्योधन बोला—कर्ण ! यह बात नहीं है। मुझे तो गंधर्वगण बाँध कर ले जा रहे थे। दुःशासनादि के साथ राजकुल की स्त्रियाँ भी उनके बन्धन में थीं। तभी हमारी सेना की पुकार पर अर्जुन ने गंधर्वों से युद्ध किया, तब गन्धर्व अर्जुन के सामने आया और दोनों परस्पर गले मिले तथा हम सब को साथ लेकर युधिष्ठिर के पास पहुंचे। गंधर्व ने हमारे दूषित विचारों का भण्डाफोड़ कर दिया, तब भी युधिष्ठिर ने हमें गंधर्वों के बन्धन से छुड़ा दिया। अब मैं किस मुख से हस्तिनापुर जाकर अपने को वीर कह सकूँगा ? इसलिए हे कर्ण ! मैंने निश्चय किया है कि मैं यहीं रह कर प्रायोपवेशन करूँगा और तुम सब राजधानी में लौट जाओ।

कर्ण बोला—राजन् ! पाण्डवों ने आपकी सहायता की तो यह कोई अहसान नहीं किया। वे आपकी प्रजा हैं और प्रजा का कर्त्तव्य है कि वह राजा की हर समय सहायता करे। इसलिए प्रायोपवेशन करके हँसी उड़वाना उचित नहीं सुन कर भी दुर्योधन अपने प्रायोपवेशन के निश्चय पर दृढ़ रहा और स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से कुश-वल्कल आदि धारण कर कुशासन पर जा बैठा। उसने प्रायोपवेशन का नियम लेकर निकट ही चिता चिनवा ली।

उधर पातालवासी दैत्य दुर्योधन को अपने यहाँ बुलाना चाहते थे। उन्होंने यज्ञ करा कर कृत्या उत्पन्न कराई और उसे आज्ञा दी कि दुर्योधन प्रायोपवेशन कृत्य कर रहे हैं, उन्हें लेकर यहाँ आजाओ। कृत्या ने तुरन्त दुर्योधन को उठाया और रात्रि के समय पाताल में ले जाकर दैत्यों के समक्ष उपस्थित कर दिया।

दैत्य बोले—दुर्योधन ! तुम वीर होकर भी प्रायोपवेशन करते हो ? आत्महत्या करने वाले को इहलोक में निन्दा और परलोक में पाप का भागी होना होता है, नाभि से ऊपर का तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर वज्र से निर्मित है। तुम साधारण मनुष्य नहीं हो। जाओ, तुम्हारी सहायता के लिये अनेकानेक दैत्य क्षत्रिय रूप में पृथिवी पर उपस्थित हैं। तुम्हारी अवश्य विजय होगी और पृथिवी का निष्कंटक राज्य भोगते रहोगे। यह कह कर दैत्यों ने कृत्या को आज्ञा दी कि इन्हें वहीं पहुँचा दो। कृत्या ने वैसा ही किया। दुर्योधन उसी कुशासन पर बैठ कर सोकर उठे के समान चैतन्य होगया। उसने सोचा कि यह स्वप्न नहीं था। उसे लगा कि मैं पाण्डवों को परास्त कर दूँगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल कर्ण ने आकर दुर्योधन को समझाया—राजन् ! प्राण देने से शत्रु परास्त नहीं हो सकते, उन्हें तो जीवित व्यक्ति ही मार सकता है। मैं अर्जुन को मारने और पाण्डवों को आपके अधीन करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। इस प्रकार कहने सुनने का भी दुर्योधन पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह तुरन्त उठ कर सब के साथ राजधानी के लिए चल पड़ा।

पाण्डवों का काम्यकवन में निवास

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! भीष्म ने द्वैतवन में हुई कौरवों की दुर्दशा का हाल सुन कर कर्ण की बड़ी निन्दा की। तब भीष्म के चले जाने पर कर्ण ने कहा राजन् ! पितामह मेरी सदैव निन्दा और भर्त्सना किया करते हैं। मैं अकेला ही संसार को दिग्विजय करके इन्हें अपना बल दिखा देना चाहता हूँ। इस के लिए आप मुझे आज्ञा दीजिए। यह सुन कर दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कर्ण को दिग्विजय की आज्ञा देकर शुभ मुहूर्त में स्वस्ति-वाचन आदि करा कर उसे विदा किया।

तब कर्ण ने राजा द्रुपद के राज्य पर आक्रमण करउन्हेंजीता और फिर उनके अनुगत राजाओं पर विजय प्राप्त की। फिर हिमालय, नेपाल, अंग, वंग, कलिंग, मिथिला मगध आदि को जीत कर दक्षिण के राजा को परास्त किया इस प्रकार सब दिशाओं में विजय प्राप्त कर और कर लेकर कर्ण हस्तिनापुर लौट आया, जहाँ भीष्म आदि को साथ लेकर दुर्योधन ने उसका भारी स्वागत किया। फिर वह धृतराष्ट्र के पास पहुँचा तो उन्होंने भी प्रसन्न होकर उसे कण्ठ से लगा लिया।

इसके बाद दुर्योधन ने ब्राह्मणों को बुला कर कहा कि मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ। ब्राह्मण बोले—महाराज धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के जीवित रहते आपके कुल में कोई भी राजसूय यज्ञ नहीं कर सकता। यदि आपको वैसा ही यज्ञ करना है तो

वैष्णव यज्ञ कीजिए। भगवान् विष्णु ने इस यज्ञ को सर्व प्रथम किया था! सोने का हल बनवा कर उससे यज्ञ भूमि को जोत कर शुद्ध किया जाता है। यह सुन कर दुर्योधन ने वैष्णवयज्ञ करने का निश्चय किया और उसकी तैयारी करा कर दुर्योधन ने दीक्षा ली। तब सब देशों में निमन्त्रण पत्र भेजे गये। पाण्डवों के पास भी दूत भेजा गया, किन्तु उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए वनवास की प्रतिज्ञा के कारण असमर्थता प्रकट कर दी।

तत्पश्चात् उस यज्ञ में अनेक देशों के राजाओं ने भाग लिया। यज्ञ के पूण होने पर विधिवत अवभृथ स्नान किया और ब्राह्मणों को बहुत-सा धन देकर सब आगत व्यक्तियों को सम्मान सहित विदा कर दिया। इसके बाद कर्ण ने कहा—महाराज दुर्योधन! यह यज्ञ तो सानन्द पूर्ण हो ही गया। अब आप युधिष्ठिर को मार कर जब आप राजसूय यज्ञ करेंगे तब मैं आपका अभिनन्दन करूँगा। और सुनो—जब तक मैं अर्जुन का वध नहीं करूँगा, तब तक मद्यमांस सेवन न करूँगा और जो कोई याचक आयेगा उसे विमुख न लौटने दूँगा। यह सुन कर सभी कौरव अत्यंत आनन्दित हो कर्ण की प्रशंसा करने लगे।

एक दिन युधिष्ठिर ने एक स्वप्न देखा। उस वन के मृग आकर निवेदन करने लगे कि राजन्! आपके भाइयों ने इतने मृगों का संहार किया है, कि कुछ थोड़ा-सा मृगवंश ही शेष रहा है। इसलिए अब आप किसी अन्य वन में जाकर रहें तो हमारे वंश की रक्षा हो सकती है। प्रातःकाल उठकर युधिष्ठिर ने अपने स्वप्न की बात सब को सुनाई औरस्थान बदलने का निश्चय किया। इसके अनुसार द्वैतवन छोड़ कर सब पाण्डव अपने साथियों सहित काम्यक वन में जाकर रहने लगे।

कृष्ण-कृपा से दुर्वासा की तृप्ति

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय ! एक समय ऋषि दुर्वासा दुर्योधन के यहाँ आकर कई दिन ठहरे, तब दुर्योधन उनकी सेवा में सतर्कता पूर्वक तत्पर रहा । ऋषि उसकी सेवा से बहुत प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहने लगे । तभी दुर्योधन ने कहा—ब्रह्मन् ! हमारे कुल में महाराज युधिष्ठिर बड़े हैं । वे वन में रहते हैं । मैं यही वर माँगता हूँ कि आप शिष्यों सहित पधार कर उनका भी आतिथ्य ग्रहण करें । आप वहाँ उस समय पधारें, जब कि सब ब्राह्मणों और पतियों को भोजन खिला कर द्रौपदी स्वयं भी खा चुकी हो । दुर्वासा इसे स्वीकार कर चले गए ।

अब तो दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ । उसने कहा कि महर्षि दुर्वासा को भोजन न करा सकने के कारण उनकी क्रोधाग्नि में सभी पाण्डव भस्म हो जाँयगे । इस प्रकार परस्पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए वे सब पाण्डवों का अनिष्ट चिन्तन करने लगे । उधर एक दिन जब सब पाण्डवादि भोजन से निवृत्त हो चुके और द्रौपदी भी खा-पीकर विश्राम करने लगी, तब महर्षि दुर्वासा दस सहस्र शिष्यों के साथ वहाँ आकर स्नान करने चले गए । इससे द्रौपदी को बड़ी चिन्ता हुई । अब महर्षि को भोजन कैसे कराया जाय ? जब समस्या का समाधान दिखाई न दिया तो वह मन ही मन भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करने लगी ।

भगवान् समझ गए कि द्रौपदी पर भारी संकट पड़ा है तो वे तुरन्त वहाँ जा पहुँचे । भगवान् का आगमन जान कर द्रौपदी बड़ी प्रसन्न हुई । तभी वे बोले—पाँचाली ! मुझे जोर की भूख लगी है, कुछ खाने को दो । द्रौपदी लज्जित थी, तभी वे बोले उस बटलोई को ही इधर ले आओ । उस बटलोई पर शाक का एक कण लगा था । उन्होंने उसे ही खाकर कहा—इससे विश्व-

रूप एवं यज्ञपति तृप्त हो जाँय। भीमसेन! भोजन के लिए ब्राह्मणों को बुलाओ।

भीमसेन ब्राह्मणों को बुलाने गये। वे अभी स्नान कर रहे थे, तभी उन्हें लगा जैसे अभी पेट भर भोजन किया हो। उन्होंने महर्षि दुर्वासा से कहा—भगवन्! हमें तो बिल्कुल भूख नहीं है, पाण्डवों का बना हुआ भोजन व्यर्थ जायगा। दुर्वासा बोले—यह सत्य है कि व्यर्थ ही उन्हें इतना कष्ट दिया। पाण्डव भगवान् के परम भक्त हैं और भक्त अम्बरीष का प्रभाव मैं अभी तक नहीं भूला हूँ। इससे यह ठीक होगा कि हम उनसे कुछ कहे बिना ही यहाँ से चुपचाप चल दें। यह सुन कर सभी ब्राह्मण दुर्वासा के साथ चुपचाप चले गए। भीम से उनके जाने का समाचार सुन कर कृष्ण बोले—द्रौपदी के स्मरण करते ही मैंने यहाँ आकर उन सब को तृप्त कर दिया है। अब वे यहाँ नहीं आयेंगे। यह कह कर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका चले गये।

पाण्डवों का जयद्रथ को हराना

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! काम्यक वन में रहते हुए पाण्डव मृगया के लिए गये थे, तभी सिन्धुदेश का राजा जयद्रथ विवाह करने के लिए शाल्वेय देश की ओर बहुत-से राजाओं और विशाल सेनाओं के सहित उसी मार्ग से जारहा था। उसकी दृष्टि एकाकी खड़ी हुई द्रौपदी पर पड़ी तो वह वासना से पीड़ित हो उठा। उसने अपने साथी राजा कोटिकास्य से कहा कि इसका पता लगाओ, यह सुन्दरी कौन है, किसकी पत्नी है? यह सुन कर वह राजा अपने रथ से उतर कर द्रौपदी के पास जा पहुँचा और पूछने लगा—हे सुन्दरी! तुम कौन हो! किसकी पत्नी हो? यहाँ अकेली क्यों खड़ी हो? देखो, मैं राजा सुरथ का पुत्र कोटिकास्य हूँ। वे कुलिंदराज के पुत्र हैं, वे सिन्धु सौवीर के महाराज जयद्रथ हैं।

द्रौपदी बोली– हे राजकुमार ! मैं राजा द्रुपद की पुत्री और पाण्डवों की भार्या द्रौपदी हूँ। महाराज युधिष्ठिर अतिथि-भक्त हैं, आप लोग आतिथ्य सत्कार स्वीकार करने के पश्चात् यथेष्ट स्थान को जाँय। पाण्डवगण भी आते ही होंगे। यह सुन कर कोटिकास्य ने जयद्रथ के पास जाकर सब वृत्तान्त कह दिया।

तब जयद्रथ ने द्रौपदी के पास जाकर कहा—पाँचाली ! उन राज्य-श्री से हीन पाण्डवों के पास रह कर क्या करोगी ? चलो, सम्पूर्ण सिन्धु-सौवीर की महारानी बन कर मेरे पास रहना। यह सुन कर द्रौपदी का मुख क्रोध से लाल हो गया। वह जब तक कुछ कहे तब तक जयद्रथ ने उसे बलपूर्वक पकड़ कर रथ पर चढ़ा लिया। यह देख कर धौम्य ऋषि बोले—अरे मूर्ख ! क्षत्रियों के धर्म का ध्यान रख कर ऐसा नीच कर्म न कर। किन्तु जयद्रथ ने उनकी बात अनसुनी करके रथ को तेजी से बढ़ा दिया।

जयद्रथ का रथ अभी कुछ ही दूर गया होगा कि पाण्डव अपने निवास स्थान पर लौटे और दासी आदि से द्रौपदी के अपहरण का हाल जान कर उधर ही दौड़ पड़े। उन्हें आते हुए देख कर शत्रु-सेना का उत्साह फीका पड़ गया। उसके प्रमुख-प्रमुख योद्धा बात की बात में मारे गए। त्रिगर्तराज का हृदय फट गया। जयद्रथ द्रौपदी को छोड़ कर वन की ओर भाग निकला। नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, धौम्यऋषि के साथ द्रौपदी आश्रम की ओर लौटी तथा अर्जुन और भीम जयद्रथ को पकड़ने के लिए चले। तभी युधिष्ठिर ने कहा—यह दुर्योधन की बहन दुःशला का पति है, इसलिए इसे मारना मत। तभी द्रौपदी ने क्रोधित होकर कहा—ऐसे नराधम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

भागते हुए जयद्रथ को भीमसेन ने जा पकड़ा। उसके बाल पकड़ कर धरती पर फेंका और घूसों तथा थप्पड़ों से खबर लेते हुए जैसे ही जान से मारने को हुए, वैसे ही अर्जुन ने कहा—भैया! महाराज युधिष्ठिर के वचनों का ध्यान रखना। तब भीमसेन ने अर्द्धचन्द्र बाण से उसका सिर मूँड़ कर उस पर पाँच चोटी बना दीं और घसीटते हुए आश्रम में आये। युधिष्ठिर ने उसकी दशा देख कर कहा-अब इसे छोड़ दो। भीम बोले—राजन्! इस नराधम को दास बना दिया गया है।

युधिष्ठिर की आज्ञा से उसके बन्धन खोल दिये गये। तब युधिष्ठिर ने उससे कहा—जयद्रथ! तुम्हें दासभाव और बन्धन से मुक्त कर दिया गया। अब भविष्य में ऐसा निन्दनीय कम कभी नहीं करना। यह सुन कर जयद्रथ ने सिर झुका कर युधिष्ठिर को प्रणाम किया और वहाँ से चल कर प्रतिशोध की भावना से हरिद्वार पहुँचा। वह वहाँ भगवान् शंकर को प्रसन्न करने लगा, तब उन्होंने प्रकट होकर वर-प्रदान की इच्छा व्यक्त की।

जयद्रथ बोला—भगवन्! मैं पाण्डवों को जीत लूँ यही वर प्रदान कीजिये। शिवजी बोले—जयद्रथ! पाण्डवों को जीतना संभव नहीं है। क्योंकि उनमें अर्जुन 'नर' के अवतार हैं, उन्हें त्रैलोक्य में कोई नहीं हरा सकता। उनके अतिरिक्त शेष चार पाण्डवों को तुम केवल एक दिन जीत सकोगे। यह कह कर शिवजी अन्तर्धान होगए और जयद्रथ अपने नगर को चला गया।

राम-चरित्र, सीता की खोज वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा—हे ब्रह्मन्! हम वनवास के जैसे कष्ट भोग रहे हैं, वैसे किसी और ने भी कभी भोगे हैं? मार्कण्डेयजी ने

कहा—भरतश्रेष्ठ ! रामचन्द्रजी ने वनवास और स्त्री-वियोग के दुःख से दुःखित होते हुए तुमसे भी अधिक संकट झेला था। अयोध्या के राजा दशरथ के चार पुत्र थे—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न। कौशिल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए थे। राम की पत्नी सीता राजा जनक की पुत्री थी। जिस दिन राम को राजगद्दी मिलने वाली थी, उसके पहले दिन कैकयी की दासी मन्थरा ने उसे समझाया-रानी ! कौशिल्या का पुत्र राम राजगद्दी पर बैठेगा,अब तुम्हारा दुर्भाग्य ही उपस्थित समझो। रानी ने यह सुन कर राम के राज्याभिषेक में विघ्न डालने का निश्चय किया और राजा दशरथ के पास जाकर बोली—महाराज ! एक बार आपने मुझे वर माँगने के लिए कहा था, आज वह समय आगया है। राम के राज्याभिषेक के स्थान पर भरत का राज्याभिषेक और राम को चौदह वर्षों का वनवास यही वर मुझे चाहिए।

रानी के मुख से दारुण वरदान की याचना सुन कर राजा को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया तभी राम को वह बात ज्ञात हुई और वे पिता के वचनों का निर्वाह करने के लिये तुरन्त वन को चले गए। पतिव्रता सीता और छोटे भाई लक्ष्मण भी साथ हो लिये। राम के वियोग में दशरथ जी ने प्राण त्याग दिये। कैकेयी ने भरत को बुला कर कहा—पुत्र ! राम लक्ष्मण तो वनवासी होगये, अब तुम अयोध्या का निष्कंटक राज्य भोगो। भरत बोले—हे कुलनाशिनी माता ! तुमने यह कार्य ठीक नहीं किया। यह कह कर भरत राम को वन से लौटा लाने के लिये सब माताओं, परिजनों और पुरजनों का साथ लेकर चल दिये वहाँ जाकर भरत ने राम से लौटने के लिये बहुत अनुनय-विनय की किन्तु राम ने स्वीकार न कर अपनी खड़ाऊँ देकर भरत को लौटा दिया और स्वयं दण्डकारण्य के भीतर जाकर गोदावरी तट पर रहने लगे।

एक दिन वहाँ रावण की बहिन शूर्पणखा ने राम-लक्ष्मण से हँसी की, जिसके कारण लक्ष्मण ने उसकी नाक और ओष्ठ काट दिये। उसके पक्ष में आये हुये खर दूषण को चौदह हजार राक्षसों के सहित राम ने मार डाला। तब वह लंका में अपने भाई रावण के पास पहुँची। रावण ने उसकी दशा देखी तो दाँत पीसता हुआ बोला—बहिन ! तेरी यह दशा किसने की ? आज किसकी मौत सिर पर बोल रही है ? तब शूर्पणखा ने राम-लक्ष्मण सीता का पूर्ण वृत्तान्त सुना कर चौदह हजार राक्षसों के सहित खरदूषण के मरने का समाचार भी सुना दिया।

रावण तुरंत उठ कर मारीच के पास गया और बोला—तुम्हें माया मृग के रूप में राम के आश्रम पर जाकर, वह उपाय करना है जिससे मैं सीता का अपहरण करने में सफल हो सकूँ। यह सुन कर मारीच पहिले तो घबराया, पर रावण की आज्ञा न मानने में भी कुशल न देख कर उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

मारीच सोने का मृग बन कर आश्रम के निकट उछल-कूद करने लगा, जिसे देख कर सीता ने राम से उसे लाने का आग्रह किया। सीता की रक्षा में लक्ष्मण को नियुक्त करके राम ने मृग का पीछा किया और जैसे ही उसे बाण मारा, वैसे ही वह पुकार उठा—हाय सीते ! हाय लक्ष्मण ! इस करुण पुकार को सुनकर सीता ने कहा—लक्ष्मण ! तुम्हारे भाई पर कोई विपत्ति आई जान पड़ती है। तुरन्त जाकर उनका पता लगाओ। लक्ष्मण अनिच्छा पूर्वक राम की खोज में चले, तभी संन्यासी के रूप में रावण ने आकर भिक्षा माँगी और जब सीता उसे भिक्षा देने लगीं,तभी उसने उनके केश पकड़कर खींचा और आकाश मार्गसे ले चला। मार्ग में सम्पत्ति के भाई गिद्धराज जटायु ने रावण को सीता को ले जाते देखा तो अपने पंखों से रावण के शरीर पर प्रहार करने लगा। तब रावण ने क्रुद्ध होकर उसके दोनों पंख

काट डाले और सीता को उठाकर लंका की ओर चल दिया मार्ग में जहाँ कहीं कोई आश्रम या सरोवर आदि दिखाई देता वहीं, सीता अपने आभूषण उतार कर डाल देतीं। एक स्थान पर पाँच बन्दरों को बैठे देख कर उन्होंने अपना एक वस्त्र उतार कर फेंक दिया।

इधर लक्ष्मण को आते हुए देख कर राम ने आने का कारण पूछा। लक्ष्मण ने कहा—सीताजी ने मुझे यहाँ आने के लिए विवश कर दिया। तब अमंगल की आशंका से व्यग्र हुए राम शीघ्रता पूर्वक आश्रम की ओर चले तो मार्ग में जटायु पड़ा मिला। जटायु ने सीता हरण और उसे लेजाने की दिशा संकेत में बता दी। तब दोनों भाई शोक में विह्वल होकर दण्डकारण्य में दक्षिण की ओर चले।

माग में कबन्ध नामक विशालकाय राक्षस मिला जिसका मुख उदर पर था। उसने लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया, तब लक्ष्मण ने उसका दाँया और बाँया हाथ काट डाला। अन्त में राम के बाणों से मरे हुए कबन्ध के शरीर से एक दिव्य पुरुष निकल कर आकाश में जा पहुँचा और वहीं से बोला—मैं विश्वावसु हूँ। विप्रशाप से राक्षस हुआ था। सीता को रावण हर ले गया है। आप ऋष्यमूक पर्वत के निकट स्थित पम्पा झील पर वानरराज सुग्रीव से मिलें।

तब राम-लक्ष्मण पम्पा झील पर गये तो सुग्रीव ने हनुमान को उनके पास भेजा। परिचय प्राप्त कर हनुमान उन्हें सुग्रीव के पास लेगए। वहाँ सुग्रीव ने सीता द्वारा फेंका हुआ वस्त्र दिखाया तो राम ने पहचान लिया कि यह उन्हीं का है। तब राम-सुग्रीव में मित्रता हो गई।सुग्रोव ने सीता का पता लगाकर उन्हें लाने में सहायता देना स्वीकार किया और राम ने वाली को मारने का

आश्वासन दिया। तब राम सुग्रीव के साथ किष्किधा में बाली को मारने के लिए चल दिये।

बाली ने सुग्रीव की गर्जना सुनी तो अपनी स्त्री तारा द्वारा रोके जाने पर भी न रुका। बाली और सुग्रीव में युद्ध होने लगा। सुग्रीव को हतोत्साहित देख कर राम ने बाण मार कर बाली को धाराशायी कर दिया। बाली के मरने पर सुग्रीव किष्किधा का राजा हुआ। उसने तारा को अपनी पत्नी बना लिया। तत्पश्चात् सीता की खोज चालू हुई।

उधर रावण ने सीता को अशोक बाटिका में ठहराया। वहाँ भयंकर राक्षसियाँ उनकी चौकसी करती थीं। वे सदा सीता को डराती रहतीं। उनमें त्रिजटा नाम की एक राक्षसी प्रिय बोलती और सीता को धीरज बँधाती रहती। कभी-कभी रावण भी वहाँ आकर सीता को पत्नी बनाने के उद्देश्य से प्रीति और भय प्रदर्शित करता। किन्तु सीता अपने धर्म से विचलित नहीं हुई।

इधर बहुत समय तक वानरों को सीता का पता न लगा। तभी हनुमान और उनके साथी वानरों ने आकर बताया–प्रभो ! हम सीताजी का पता लगा आये हैं। हम समुद्र पार करके रावण की लंकापुरी में पहुँचे जहाँ सीताजी अशोक वन में उपवास-रत रहती हैं। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया तो वे बोलीं—हनुमान! यह चूड़ामणि उन्हें दे देना और उनकी प्रतीति के लिए उस घटना की चर्चा करना कि चित्रकूट में काक को मारने के लिए आपने इषीकास्त्र का प्रयोग किया था।

हे नाथ ! सीता के पास से चल कर मैंने राक्षसों से टक्कर ली, जो मुझे पकड़ कर रावण के पास लेगए। रावण ने मेरी पूँछ में आग लगाने की आज्ञा दी, तब मैं लंकापुरी को भस्म कर के अपने साथी बन्दरों के पास आगया। फिर हम सब मिल कर

आपकी सेवा में आ उपस्थित हुए हैं। यह सुन कर राम ने हनुमानजी का बहुत सत्कार किया।

रावण वध, राम को राज्य-प्राप्ति

मार्कण्डेयजी बोले—हे युधिष्ठिर ! लंका पर चढ़ाई करने की घोषणा सुन कर अनेकानेक वानर यूथपति अपने-अपने अनुयायियों के साथ आ-आकर इकट्ठे होने लगे। उनमें विभिन्न वर्ण, विभिन्न जाति और विभिन्न वंशों के वानर दिखाई दिये। वह सम्पूर्ण वानरसेना समुद्र के पास जाकर रुकी। राम ने समुद्र से कहा कि मुझे मार्ग दो। समुद्र बोला—भगवन् ! आप की सेना में नल नामक एक कुशल शिल्पी है, वह घास-फूँस, काष्ठ, पाषाण जो कुछ भी मुझ पर डालेगा उसी को मैं जल पर धारण कर लूँगा। इस प्रकार सहज में पुल बन जायगा। तब राम ने नल को पुल बनाने की आज्ञा दी। नल ने पुल बाँध कर तैयार कर दिया, तभी रावण के भाई विभीषण अपने चार मंत्रियों के साथ राम की शरण में आगये। तत्पश्चात् वानर-सेना के साथ राम-लक्ष्मण समुद्र-पार पहुंचे, वानर वेश में हुए रावण के दो गुप्तचर शुक सारण विभीषण द्वारा पहिचान लिये गये। किन्तु राम ने छोड़ दिया तथा अंगद को अपने दूत रूप में रावण के पास भेजा।

वहाँ जाकर अंगद ने रावण को बहुत समझाया कि तू राम की पत्नी सीता को तुरन्त लौटा दे, अन्यथा राम ने कहा है कि मैं तुझे कुल सहित नष्ट कर दूँगा। यह सुन कर क्रुद्ध हुए रावण ने अपने चार सेवकों को अंगद को पकड़ कर बन्दी बनाने का संकेत किया। तभी उन्होने अंगद को पकड़ने की चेष्टा की, किन्तु अंगद ने उन सब को भवन के शिखर से गिरा-गिरा कर मार डाला और स्वयं कूद कर राम के पास आ पहुंचे।

तत्पश्चात् लंका का परकोटा गिरा दिया गया। वानरगण उसमें घुस-घुसकर राक्षसों को मारने लगे। तभी राक्षसों के एक विशाल समूह ने सहसा आक्रमण कर वानरों को भगा दिया। इस प्रकार कभी वानर हारते, कभी राक्षस। तब रावण ने कुम्भकर्ण को सोते से जगा कर युद्ध करने के लिए भेजा, जिसने अपना भीषण पराक्रम दिखाया और अन्त में लक्ष्मण के द्वारा मारा गया।

कुम्भकर्ण की मृत्यु से रावण ने दुःखित होकर इन्द्रजित् मेघनाद को रणस्थल में भेजा। उसके प्रबल वेग के कारण वानरों का टिकना कठिन हो गया। उसकी बाण-वर्षा से राम-लक्ष्मण दोनों ही अचेत होगए। तब मायामय अस्त्रों का प्रतीकार जानने वाले विभीषण ने उनकी बेहोशी दूर कर दी और सुग्रीव ने अपनी मन्त्र विद्या के बल पर उनके घाव भर दिये। तदनन्तर लक्ष्मण और इन्द्रजित् का भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें इन्द्रजित् मारा गया। यह समाचार सुन कर रावण ऐसा बौखलाया कि सीता को मारने चला, तभी अविन्ध्य राक्षस ने उसे समझा कर शान्त किया।

इसके बाद रावण स्वयं रणक्षेत्र में कूद पड़ा उसने अनेक प्रकार की माया प्रकट कीं। तभी इन्द्र का रथ राम के पास आ गया। मातलि उसका सारथी था। तब राम ने उस पर चढ़कर राम ने ब्रह्मास्त्र को अभिमन्त्रित कर रावण पर छोड़ा, जिससे रावण तुरन्त भस्म हो गया। यह देख कर देवगण पुष्पवृष्टि और जयजयकार करने लगे। राम ने लंका के राज्य पर विभीषण को अभिषिक्त कर दिया।

हे राजन् ! रावण का वृद्ध सचिव अविन्ध्य सीता को लेकर राम के पास आया। राम बोले—हे सीते ! तुम्हें राक्षस के पंजे से मुक्त कराना ही मेरा उद्देश्य था। अब तुम चाहे जहाँ जा

सकती हो। श्वान द्वारा उच्छिष्ट हुए हव्य के समान मैं अब तुम्हें स्वीकार नहीं करूँगा। यह सुन कर सीता अत्यन्त दुःखित हुई, तब वायु, अग्नि, वरुण, ब्रह्मा और महाराज दशरथ तक ने स्वर्ग से लौट कर कहा कि सीता पवित्र है. उसके विषय में सन्देह मत करो।

राम ने उन सब को प्रणाम कर सीता को ग्रहण किया तभी दशरथ पुनः बोले—पुत्र। चौदह वर्ष पूर्ण होगए, अब अयोध्या का राज्य सँभालो। तब लंका की सुरक्षा का प्रबंध करके सीता सहित राम देव प्रदत्त पुष्प विमान पर चढ़े और साथ में लक्ष्मण सुग्रीव, हनुमान्, विभीषण आदि को चढ़ाया तथा आकाशमार्ग से किष्किधापुरी आदि स्थानों पर होते हुए नन्दिग्राम के पास पहुँच कर रुक गये। वहाँ से हनुमान को भरत के पास भेजा गया।

हनुमान से राम-लक्ष्मण-सीता के शुभागमन का समाचार पाकर भरत-शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त वहाँ जाकर उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् अयोध्या के राजा भगवान् राम हुए। उन्होंने गोमती नदी के तट पर सौ अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणों को तिगुनी दक्षिणा देकर संतुष्ट किया! हे युधिष्ठिर! रामचन्द्रजी ने वन में रह कर तुमसे भी अधिक कष्ट सहे हैं, यह वृत्तान्त मैंने सुनाया है देखो, राम के मित्र और सहयोगी वानर और रीछ थे, अन्य कोई सहायक न था तब भी वे रावण को मार कर सीता को मुक्त करा लाये। इसलिए तुम भी शोक न करो, तुम्हारा कल्याण होगा।

सावित्री-सत्यवान का वृतान्त

युधिष्ठिर बोले—हे ब्रह्मन्! आपने सौभाग्यशालिनी द्रौपदी के समान भी कहीं कोई अन्य पतिव्रता स्त्री देखी-सुनी है? मार्कण्डेयजी ने कहा—राजन्! राजकन्या पतिव्रता सावित्री के पति-

व्रत धर्म और सौभाग्य का वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूँ। एक सन्तान-हीन राजा थे अश्वपति। उन्होंने सन्तान के उद्देश्य से भगवती सावित्री की उपासना की थी। इस प्रकार अठारह वर्ष तक तपस्या करने के पश्चात् सावित्री ने प्रसन्न होकर उन्हें एक तेजस्विनी कन्या उत्पन्न होने का वर दिया था। समय पाकर उनके यहाँ साक्षात् लक्ष्मी सदृश्य एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम उन्होंने सावित्री रखा। जब वह विवाह योग्य हो गई तो राजा ने उससे कहा–पुत्री ! तुम अपने योग्य कोई श्रेष्ठ वर स्वयं खोज लो।यह सुनकर वह कन्या मंत्रियों सहित वर ढूँढने के लिए चली और कुछ काल पश्चात् उसने बताया कि पिताजी ! शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन नेत्रहीन हो गए। उनका पुत्र भी उस समय अवयस्क था। उस परिस्थिति से लाभ उठाकर शत्रुओं ने उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया। राजपद से च्युत हुए राजा वन में जाकर रहने लगे। उनके पुत्र सत्यवान वन में पल कर बड़े हुए।

सावित्री ने उपर्युक्त वृत्तान्त देवर्षि नारद के समक्ष सुनाया था। राजा ने नारदजी से उस राजकुमार के विषय में पूछा तो वे बोले— राजन्। वह राजकुमार योग्य, सत्यनिष्ठ, गुणी तथा धर्मज्ञ है। वह सब प्रकार से तुम्हारी कन्या के योग्य हो सकता था। किन्तु उसकी आयु इतनी अल्प है कि केवल एक वर्ष का ही जीवन शेष रह गया है। राजा बोले—यदि ऐसा है तो यह सम्बन्ध उचित नहीं होगा। पुत्री ! कोई अन्य वर देखो। सावित्री ने कहा—पिताजी ! मैं तो सत्यवान को ही अपना पति मान चुकी हूँ, इसलिए अब किसी दूसरे का वरण नहीं कर सकती। यह सुन कर राजा ने अपनी पुत्री का विवाह सत्यवान के साथ कर दिया।

हे राजन् ! नारदजी के वचन सावित्री को याद थे । जब मरण-दिवस में चार दिन शेष रह गए तभी सावित्री ने तीन दिन का निर्जल व्रत रखा और चौथे दिन भी भोजन किये बिना ही सत्यवान के साथ वन में लकड़ी लेने के लिए चल दी । सत्यवान ने उसे रोका भी कि तुम क्या करोगी ? उसने कहा—आज तो आपके साथ चलूँगी ही। वन में पहुँच कर सत्यवान ने प्रथम तो फल तोड़े और फिर लकड़ी काटने लगे । उस समय उनके शरीर से परिश्रम के कारण स्वेद छूट पड़ा और शिरशूल के साथ शिथिलता आगई । उसने पत्नी को अपने शरीर की दिशा बता कर कहा—प्रिये ! मैं लेटना चाहता हूँ । यह कह कर सावित्री की गोद में सिर रख कर सत्यवान सोगये । तभी सावित्री ने देखा कि सत्यवान के समीप एक भयंकर पुरुष खड़ा है । वह पुरुष बोला—मैं यमराज हूँ, इसकी आयु पूर्ण हो चुकी है, इसलिए इसे ले जाऊँगा सावित्री ने पूछा—भगवन् ! प्राणी को लेने के लिए आपके दूत आते सुने गए हैं, फिर आपको क्यों आना पड़ा है ?

यमराज ने कहा—सत्यवान अत्यंत धर्मात्मा और सत्यनिष्ठ है । ऐसे व्यक्तियों को मेरे दूत नहीं ले जा सकते । इसीलिए मैं आया हूँ । यह कह कर यमराज ने सत्यवान के शरीर से अंगूठे की पोर के बराबर जीवात्मा को खींच कर बाँध लिया और चल दिये । यह देख कर दु:ख से व्याकुल हुई सावित्री भी उनके पीछे-पीछे चल दी । यमराज बोले—सावित्री तुम लौट जाओ । अब तुम्हारा-इसका साथ समाप्त हो चुका सावित्री ने कहा—यह जहाँ तक जायेंगे, वहीं तक मैं भी चलूँगी यही पतिव्रता का धर्म है । यमराज ने कहा—किन्तु तुम वहाँ नहीं जा सकतीं । वह बोली—मैं अपने पतिव्रत धर्म के बल पर अवश्य इनके साथ चलूँगी । यमराज बोले—तुम क्यों हठ करती हो ? अच्छा, तुम

इसके जीवन के अतिरिक्त मुझसे कोई वर मांग लो। सावित्री ने कहा—वर देते हैं तो यह दीजिए कि मेरे श्वसुर नेत्रहीन हैं, उनके नेत्रों में ज्योति आजाय। यमराज तथास्तु कह कर आगे बढ़े।

सावित्री फिर भी पीछे चली। यम बोले—अभी और कुछ माँगना चाहती हो तो माँग लो। वह बोली- मेरे श्वसुर को छिना हुआ राज्य पुनः मिल जाय। 'ऐसा ही होगा' कह कर यमराज तेजी से चल। किन्तु सावित्री ने उनका पीछा फिर भी न छोड़ा। तब यमराज ने पुनः रुक कर और कुछ माँगने को कहा। सावित्री ने कहा—मेरे पिता अश्वपति पुत्रहीन हैं, उनके सौ पुत्र हों। यमराज बोले—चलो, यह भी दिया। अब तुम लौट जाओ, बहुत थक गई होगी।

सावित्री ने कहा—भगवन्! स्वामी के साथ चलने में मुझे कुछ भी थकान प्रतीत नहीं होरही है। मैं आपसे अभी और कुछ माँगना चाहती हूँ। यम बोले—अच्छा, उसे भी माँगो। सावित्री ने कहा—प्रभो! वंश को बढ़ाने वाले सौ पुत्र सत्यवान् के वीर्य से मुझे प्राप्त हों। यमराज ने कहा—ऐसा ही होगा। अब तुम तुरन्त लौट जाओ। सावित्री बोली—भगवन्! आपने मुझ पर अत्यन्त कृपा की है। अब आप अपने वचनों की पूर्ति के लिए मेरे पति को लौटा दीजिए। क्योंकि इन्हीं के वीर्य से पुत्र-प्राप्ति का वरदान आपने मुझे दिया है।

यमराज लाचार होगए। उन्होंने सत्यवान के प्राण लौटा दिये। वह सोते हुए पुरुष की निद्रा भंग होने के समान उठ खड़े हुए। अब सावित्री और सत्यवान तुरन्त अपने आश्रम को चले। वहाँ माता-पिता बड़ी व्यग्रता से उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी अन्धे द्युमत्सेन के नेत्रों में ज्योति आगई। उन्होंने कहा—यह क्या? मुझे सब कुछ दिखाई देने लगा है। उसी

समय उन्होंने सावित्री-सत्यवान को आते देखा तो हर्ष के आसूँ निकल पड़े। उन्होंने पूछा—पुत्र ! इतना अधिक विलम्ब कैसे हुआ ? सत्यवान बोला - लकड़ी काटते हुए मुझे इतनी थकान प्रतीत हुई कि खड़ा रहना कठिन होगया। तब लेटते ही मुझे नींद आगई। बाद में क्या हुआ, यह मैं नहीं जानता। यह सुन कर सावित्री से आगे का हाल पूछा गया तो उसने सब आद्योपान्त सुना दिया। तब सास-श्वसुर के अतिरिक्त अन्य उपस्थित महर्षिगण भी उसके पतिव्रत धर्म की प्रशंसा करने लगे। इसके बाद राजा द्युमत्सेन को समाचार मिला कि उसके राज्य में विद्रोह होगया। शत्रु के मंत्री ने ही उसे मार दिया और प्रजा ने सर्व सम्मति से द्युमत्सेन को ही अपना राजा मानना स्वीकार किया। इस प्रकार द्युमत्सेन को अपने खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति होगई।

हे युधिष्ठिर ! सावित्री के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। इधर सावित्री के पिता राजा अश्वपति को भी सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई। राजन्! जैसे सावित्री ने अपने कुल को विपत्ति से उबारा था, वैसे ही यह कल्याणरूपिणी द्रौपदी तुम सब को संकट से मुक्त करावेंगी। आप शोक को त्याग दीजिये।

कर्ण का इन्द्र को कवच-कुण्डल-प्रदान

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! वन में रह कर पाण्डवों ने बारह वर्ष पूर्ण किये और तेरहवाँ वर्ष लगने पर इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल लेने की इच्छा से उसके पास गए, तभी रात्री में कर्ण ने स्वप्न में देखा कि एक वेदपाठी ब्राह्मण के रूप में सूर्य भगवान् उससे कह रहे हैं—पुत्र ! ब्राह्मण के वेश में इन्द्र तुमसे कवच-कुण्डल की याचना करने आयेंगे, किन्तु तुम उन्हें अनुनय-विनय पूर्वक अन्य वस्तु माँगने के लिए राजी कर लेना, किन्तु

कवच-कुण्डल न देना। कर्ण बोले—प्रभो ! यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो मुझे दान देने से न रोकें। क्योंकि माँगने पर मैं अपने प्राण भी दे सकता हूँ। सूर्य ने कहा—पुत्र ! इन कुण्डलों के प्रभाव से तुम्हें कोई नहीं मार सकता। इसलिए अपनी प्राण रक्षा के निमित्त इन्हें नहीं देना ही उचित है। यह कह कर सूर्य अन्तर्धान होगए।

हे जनमेजय ! मध्याह्न काल में स्नान करके कर्ण सूर्य की आराधना किया करते। उस समय जो ब्राह्मण जिस वस्तु की याचना करता, उसे वही दे देते। ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र भी ऐसे ही समय में कर्ण के पास पहुँचे। कर्ण ने उनका स्वागत करते पूछा—भगवन् ! आप क्या माँगते हैं ? इन्द्र बोले—राजन् ! मुझे कुछ और नहीं चाहिए। केवल आपके शरीर के साथ उत्पन्न हुए यह कवच-कुण्डल ही चाहिए। इन्हें काट कर आप मुझे दे दें। कर्ण ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपको पहिचानता हूँ। आप देवताओं के राजा हैं, यदि मैं इन कवच-कुण्डलों को दे दूँगा। तो शत्रुओं के हाथ से मारा जाऊँगा। फिर भी मैं आपको निराश नहीं जाने दूँगा। किन्तु आप भी मुझे कुछ दीजिए। इन्द्र बोले—तुम क्या चाहते हो, माँगों। कर्ण ने कहा—आप अपनी अमोघ शक्ति दीजिये, जो शत्रु-नाश के लिए प्रयुक्त होने पर कभी निष्फल नहीं होती।

कर्ण की बात सुन कर इन्द्र कुछ चिन्तित हुए, किन्तु तुरन्त सँभल कर बोले—कर्ण ! वह शक्ति तो मैं देता हूँ। किन्तु यह एक शत्रु को ही मार कर फिर मेरे पास आजायगी, दुबारा तुम्हारे पास न लौटेगी। साथ ही यह भी ध्यान रखना कि यदि तुम अन्य शस्त्रों के होते हुए, प्राणों पर संकट उपस्थित हुए बिना, असावधानी से इस शक्ति का प्रयोग करोगे तो इससे तुम स्वयं ही मारे जाओगे।

यह सुन कर कर्ण ने अपने कवच-कुण्डल काट कर दे दिये और बदले में अमोघ शक्ति देकर इन्द्र वहाँ से चल दिये। कर्ण की दानवीरता के कारण देवताओं ने उन पर पुष्पवर्षा की।

चार पाण्डवों का मर कर जीवित होना

वैशम्पायनजी बोले – जनमेजय ! बारह वर्ष का वनवास पूरा होने पर पाण्डवगण काम्यक वन से द्वैतवन में पुनः जा पहुँचे। वहाँ एक दिन एक ब्राह्मण ने आकर युधिष्ठिर से कहा—राजन् ! मेरी अरणी और मथानी वृक्ष में लटक रही थी, एक मग ने उस वृक्ष से अपने सींगों को रगड़ा तो अरणी और मथानी उसके सींगों में फंस गई। फिर वह मृग ऐसा भागा कि मैं उसे पकड़ नहीं सका। आप उस अरणी मथानी को ला दें तो मेरा अग्निहोत्र निर्विघ्न चलता रहेगा।

यह सुनकर युधिष्ठिर अपने भाइयों को साथ लेकर वन में गये। वह मृग मिल तो गया, किन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी मारा न जा सका और वन में कहीं छिप गया। तब उसका पीछा करते हुए पाण्डव भूख, प्यास और थकान से व्याकुल होकर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गए। युधिष्ठिर ने नकुल से कहा—भाई कहीं जल की खोज करो। नकुल वन के भीतर की ओर बढ़े। थोड़ी दूर पर उन्हें एक सरोवर दिखाई दिया। वे जल पीने की इच्छा से सरोवर में उतरे तभी एक यक्ष ने वृक्ष पर से कहा—यह सरोवर मेरे अधिकार में है, इसका जल नहीं पीना। उसकी बात पर नकुल ने ध्यान न दिया और जैसे ही उन्होंने जल पीया, वैसे ही प्राण-रहित होकर धरती पर गिर पड़े।

नकुल को बहुत देर हुई देखकर सहदेव उनकी खोज में चले और उस सरोवर पर पहुँचे तो वही घटना उनके साथ हुई। जब उसे भी बहुत विलम्ब होगया। तब अर्जुन उनको तलाश

करते-करते उसी जलाशय पर गये। उन्होंने नकुल-सहदेव को धरती पर पड़े देखा। वे जैसे ही सरोवर में उतरने लगे, तभी यक्ष ने कहा—यहाँ का जल कोई नहीं पी सकता। यदि पीना चाहते हो तो मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर पी सकते हो। अर्जुन बोले—तुम अदृश्य रह कर बातें करते हो, यदि सामने आओ तो अभी समाप्त कर दूँ। यह कह कर जैसे ही अर्जुन ने जल पीया, वैसे ही निर्जीव होकर गिर गये। उधर अर्जुन के भी न लौटने से युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने भीमसेन का भेजा भीमसेन की भी उस सरोवर पर पहुँच कर वही दशा हुई।

जब भीमसेन भी न लौटे, तब युधिष्ठिर बड़े चिन्तित और व्याकुल हुए। वे भी वहाँ से उठ कर उसी सरोवर पर पहुँचे और चारों भाइयों की दशा देख कर आंसू बहाने लगे। फिर उन्होंने उनकी मृत्यु का कारण जानने की चेष्टा की तो कोई कारण समझ में नहीं आया, फिर सोचा कि संभवतः इस सरोवर का जल ही ऐसा विषाक्त हो, जिसके कारण इनकी मृत्यु होगई है। ऐसा विचार कर युधिष्ठिर जैसे ही जल पीने को हुए, वैसे ही यक्ष ने कहा—इस सरोवर पर मेरा अधिकार है, इसलिए इसका जल पीना हो तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, अन्यथा तुम्हारी भी इन चारों जैसी ही दशा होगी।

युधिष्ठिर सतर्क हो गए। उन्होंने कहा—तुमने इनकी ऐसी दशा करके उचित कार्य नहीं किया। फिर भी मैं तुम्हारे प्रश्न जानना चाहता हूँ। यक्ष ने कहा—बताओ, सूर्य को कौन उठाये हुए हैं, उसके चारों ओर भ्रमण करने और अस्त करने वाले कौन हैं? वह किसमें स्थित है? युधिष्ठिर बोले—सूर्य को ब्रह्म उठाये हुए हैं, देवता उसके चारों ओर भ्रमण करते हैं, धर्म सूर्य को अस्त करता है और सत्य में वह स्थित है। यक्ष ने पूछा—

पुरुष और सबसे अधिक धनी कौन है ? युधिष्ठिर बोले—पुण्यात्मा पुरुष और प्रिय-अप्रिय को समान मानने वाला सब से अधिक धनी है। यक्ष बोला—राजन् ! मैं तुम्हारे उत्तर से सन्तुष्ट हुआ। अब मैं तुम्हारे एक भाई को जीवित कर सकता हूँ। बताओ किसका जीवन चाहते हो ? युधिष्ठिर बोले—यदि एक भाई जीवित हो सकते हैं तो नकुल जीवित हो जाँय। यक्ष बोला—अन्य भाइयों को छोड़ कर नकुल को ही क्यों जीवित कराना चाहते हो ? युधिष्ठिर बोले—मेरी दो माताएँ हैं कुन्ती और माद्री। मैं कुन्ती का पुत्र हूँ और नकुल माद्री के इसलिए दोनों के पुत्र जीवित रहें। यक्ष बोला—राजन् ! तुम्हारी बुद्धि बहुत उदार है, इसलिए तुम्हारे चारों भाई अभी जीवित हो जाँय।

जब चारों भाई जीवित होकर उठ खड़े हुए तब युधिष्ठिर ने निवेदन किया—भगवन् ! आप कौन हैं ? मेरे भाइयों को मार कर गिराने की शक्ति किसी में नहीं है। किन्तु आपने बात की बात में इन्हें मार दिया, इससे लगता है कि आप वसु, रुद्र, मरुद्गण, इन्द्र में से कोई हों। मेरे यह भाई सोकर जागे हुए के समान नितान्त स्वस्थ हैं, इसलिए अवश्य ही आप हमारे शुभचिन्तक हैं।

उसने उत्तर दिया—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ। तुम्हारे धर्म की परीक्षा लेने के लिये ही यक्ष रूप रखा था। उस ब्राह्मण की अरणी और मथानी को भी मैं ही मृग रूप रख कर ले आया था। वह तुम्हें देता हूँ, उन्हें उस ब्राह्मण को लौटा देना। अब तुम कोई वर मुझसे प्राप्त कर लो। युधिष्ठिर बोले—प्रभो ! अब हमारा अज्ञातवास का वर्ष चल रहा है, इसमें हमें कोई पहिचान न सके और लोभ, क्रोध, मोह आदि विकार मुझे अपने वश में न कर सकें,यही वर मैं आपसे माँगता हूँ। 'तथास्तु'

कह कर धर्म अन्तर्हित होगए और पाण्डवों ने ब्राह्मण के पास जाकर उसकी अरणी मथानी दे दी।

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! अब पाण्डवों ने अज्ञातवास की तैयारी की और सब ब्राह्मणों से बोले—ब्रह्मन् ! अब हमारा अज्ञातवास का वर्ष आ गया है। यदि आप लोग साथ रहेंगे पहिचाने जाने का भय है। इसलिए इस समय हमें जाने की आज्ञा दीजिए। यह कह कर पुरोहित धौम्य और द्रौपदी को को साथ लेकर पाण्डवगण उस स्थान से एक कोश चल कर ठहर गये।

॥ वन पर्व समाप्त ॥

विराट पर्व

पाण्डवों की विराट के यहाँ नियुक्ति

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! पाण्डवों ने किस प्रकार अज्ञातवास किया, वह मुझे सुनाइये। वैशम्पायन जी बोले—राजन् ! सब भाई परस्पर परामर्श करके इस निर्णय पर पहुँचे कि राजा विराट् के यहाँ कार्य करते हुए एक वर्ष का समय व्यतीत करें। युधिष्ठिर कंक नामक ब्राह्मण का वेश बना कर चौसर के खेल के विशेष बन कर रहें। भीमसेन बल्लव नामक रसोइया, अर्जुन वृहन्नला नामक हिजड़ा, नकुल ग्रंथिक नामक अश्वाध्यक्ष और सहदेव सन्तिपाल नामक गोरक्षक बनेंगे। अब द्रौपदी का प्रश्न उठा कि यह वहाँ क्या करेंगी ? तो द्रौपदी बोली—मैं शृंगार का कार्य करने वाली सैरन्ध्री बन जाऊँगी। क्योंकि सैरन्ध्री उच्च कुल की और पतिव्रता होती हैं। इसलिए सभी मेरे प्रति श्रद्धा भाव रखेंगं।

यह सुनकर युधिष्ठिर बोले—पुरोहित धौम्य भी रसोइये आदि के साथ राजा द्रुपद के यहाँ रह कर हमारे अग्निहोत्र के अग्नि की रक्षा करते रहें। इन्द्रसेन आदि हमारे अनुचर द्वारका में और द्रौपदी की सेविकाएँ पाँचाल देश में जाकर ठहरें और यह प्रसिद्ध करें कि पाण्डवगण अचानक ही एकदम सब को छोड़ कर न जाने कहाँ गए।

हे जनमेजय ! ऐसा निश्चय होने पर पुरोहित धौम्य ने स्वस्ति वाचन आदि मंगल कार्य कर द्रौपदी सहित पाण्डवों को विराट नगर की ओर भेजा तथा स्वयं दासी आदि के साथ राजा

द्रुपद के देश को चल दिये। अनुचरों ने द्वारकापुरी को प्रस्थान किया।

विराट नगर के पास पहुँच कर सब विचार करने लगे कि अपने शस्त्रास्त्र कहाँ रखे जाँय? तभी उनकी दृष्टि पर्वत शिखर के समीप के एक शमी वृक्ष पर गई। अर्जुन ने कहा—यह स्थान उपयुक्त रहेगा। तब पाँचों पाण्डवों ने अपने-अपने शस्त्र उतारे और नकुल को आदेश दिया कि इन सब को किसी ऐसे स्थान पर रख दो, जहाँ कोई देख न सके। यह सुन कर नकुल ने वैसा ही किया और फिर एक मृत मनुष्य का शव भी उस वृक्ष से इसलिए बाँध दिया कि मुर्दे की दुर्गन्ध के कारण कोई उधर आवे ही नहीं तत्पश्चात् किसी आपत्काल में पुकारने के लिए उन्होंने जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल नाम कल्पित किये और फिर शीघ्र ही विराट नगरी में जा पहुँचे।

हे जनमेजय! पाण्डवगण राजा विराट की सभा की ओर चले तब युधिष्ठिर भगवती दुर्गा की मन ही मन स्तुति करते जाते थे, जिससे प्रसन्न हुई देवी ने विजय प्राप्ति का वर प्रदान किया और तुरन्त अन्तर्धान होगई। तत्पश्चात् यह सब राजा विराट की सभा में जा पहुँचे। उस समय युधिष्ठिर ने कहा—महाराज! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम कक और गोत्र वैयाघ्रपद है। मैं महाराज युधिष्ठिर का प्रिय था और उन्हें चौसर खिलाया करता था। मैं आपकी सेवा करके आपको प्रसन्न करते रहने की इच्छा से यहाँ आया हूँ।

राजा बोले—कंक! मैं तुम्हें अपने सखा का पद देता हूँ। क्योंकि चौसर के खेल में निपुण व्यक्ति मुझे बहुत प्रिय हैं। राज-काज में भी तुम्हें मेरे समान अधिकार प्राप्त रहेगा। तुम राजसी ठाठ से रहोगे और मेरे रनिवास में भी जा सकोगे। यदि कोई

व्यक्ति तुमसे जीविका की प्रार्थना करे तो मुझे सूचित करने से तुम्हारा इच्छानुसार प्रबन्ध हो सकेगा।

हे जनमेजय ! इसके बाद रसोइये के वेश में भीम सेन वहाँ पहुँचे। उन्होंने कहा—महाराज ! मैं रसोइया हूँ। बड़ी स्वादिष्ट और अद्‌भुत रसोई शीघ्र बना सकता हूँ। मेरा नाम वल्लव है। मैं महाराज युधिष्ठिर के यहाँ यही कार्य करता था। विराट बोले —यदि ऐसा है तो मैं तुम्हें पाकशाला का प्रमुख नियुक्त करता हूँ।

तत्पश्चात् सैरन्ध्री के वेश में जाती हुई द्रौपदी पर महारानी सुदेष्ण की दृष्टि पड़ी। उन्होंने बुला कर पूछा—सुन्दरी तुम कौन हो ? तुम्हारा रूप अनुपम है ? यहाँ किसलिए घूम रही हो। द्रौपदी ने कहा—महारानी जी मैं सैरन्ध्री हूँ। महाराज युधिष्ठिर की प्रिया द्रौपदी और श्रीकृष्ण की सत्यभामा की सेवा में रह कर यही कार्य कर रही हूँ। इस समय आपकी सेवा करने के विचार से इधर आई हुई हूँ। रानी सुदेष्णा ने कहा—सुन्दरी ! मैं तुम्हें अपने पास रख तो लूँगी, किन्तु तुम्हारा रूप-सौंदर्य देख करके शंका होती है कि कहीं महाराज तुमसे रति-संबंध न बना लें जिससे तुम्हें मुझसे भी ऊपर बैठाल देंगे। इस भय से मैं तुम को अपने पास रखने से घबराती हूँ।

द्रौपदी बोली—महारानी जी ! पाँच गन्धर्व मेरे स्वामी हैं, वे सदा मेरी रक्षा गुप्त रूप से किया करते हैं। इसलिए मुझे कोई मनुष्य नहीं पा सकता और न कोई मेरे धर्म को ही नष्ट कर सकता है यह सुन कर रानी ने कहा—यदि ऐसा है तो तुम यहाँ पवित्रता पूर्वक रह सकती हो। न किसी की जूठन उठाओ न किसी के पाँव धुलाओ और न किसी प्रकार की शरीर की कोई सेवा करो, जिससे तुम्हारे सम्मान में कमी आती हो। इस प्रकार द्रौपदी महारानी सुदेष्णा के पास रहने लगी !

इसके बाद नकुल ने राजा विराट से भेंट की और तन्तुपाल या अरिष्टनेमि नामक गोपालक वैश्य के रूप में अपना परिचय दिया तो राजा ने उन्हें गोशाला अध्यक्ष के पद पर नियुक्त कर दिया। तब नपुंसक के वेश में अर्जुन वहाँ पहुँचे। उन्होंने प्रार्थना की कि महाराज! मैं नाच-गान-वाद्यादि की विद्या में कुशल नपुंसक हूँ। मेरा नाम वृहन्नला है। मुझे राजकुमारी का यह विद्या सिखाने के कार्य पर नियुक्त कर दीजिए। पाण्डवों के अकस्मात् कहीं चले जाने से मेरी जीविका नष्ट हो गई। अब आपके आश्रय में उपस्थित हुआ हूँ। यह सुन कर राजा ने उन्हें रनवास में रख कर राजकुमारी के लिए नियुक्त कर दिया

अब नकुल महाराज विराट की सभा में पहुँचे एवं राजा विराट से बोले—महाराज ! मैं अश्व विद्या का पारंगत हूँ। मेरा नाम ग्रंथिक है। आपके यहाँ जीविका के लिए उपस्थित हुआ हूँ। राजा बोले—ऐसा है तो तुम आजसे अश्वशाला के अध्यक्ष बनाए गये।

कीचक वध वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय मलय देश की राजधानी में एक वृहद् मेला लगता था। उसमें ब्रह्मा और शिवजी जैसी राजा की सभा लगी। उसमें मल्लयुद्ध का प्रदर्शन करने के लिए वड़ी दूर-दूर से पहलवान आते थे। इस बार जीमूत नामक एक पहलवान भी आया। उसने कुश्ती लड़ने के लिए सभी पहलवानों को ललकारा, किन्तु कोई भी पहलवान इससे लड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ यह देख कर राजा विराट ने अपने रसोइये वल्लव को बुला कर उससे लड़ने की आज्ञा दी। भीमसेन बड़े असमंजस में पड़े, किन्तु राजाज्ञा के सम्मानार्थ अखाड़े में जा कूदे। इस प्रकार जीमूत और भीमसेन भिड़ गए। भीमसेन ने

जीमूत को दे मारा और धरती पर रगड़ कर उसके प्राण ले लिये। इससे राजा और उसके परिजन, पुरजन आदि बहुत प्रसन्न हुए।

एक दिन राजा विराट का साला सेनापति कीचक रनिवास में गया और द्रौपदी को देख कर कामवश होगया। उसने अपनी बहिन से कहा कि तुम्हारी यह दासी अत्यन्त सुन्दरी है। मैं इसे अपने पास रखना चाहता हूँ। यह कह कर वह द्रौपदी के पास जाकर बोला—सुन्दरी ! तुम कौन हो ? कहाँ से आई हो ? मैं तुम्हारे चन्द्रमुख पर मोहित होगया हूँ। तुम दासी रहने के योग्य नहीं हो। मेरे पास चल कर रहो, मैं तुम्हारा सेवक हो जाऊँगा।

द्रौपदी बोली—सूतपुत्र ! मैं तो दासी सैरन्ध्री हूँ, सब मुझे घृणा से देखते हैं। इस पर भी मैं पराई स्त्री हूँ, तुम मुझे प्राप्त करने की इच्छा मत करो। यदि मोहवश ऐसा करोगे तो नष्ट हो जाओगे, क्योंकि मेरे पति गन्धर्व सदैव मेरी रक्षा करते रहते हैं।

यद्यपि द्रौपदी ने स्पष्ट अस्त्रीकार कर दिया था किन्तु कामपीडित कीचक ने अपनी बहन रानी सुदेष्णा से कहा—बहन ! यदि यह सुन्दरी मुझे न मिली तो मैं अपने प्राण दे दूँगा। सुदेष्णा बोली—तुम अपने यहाँ मांस-मदिरा आदि स्वादिष्ट सामग्री बनवा कर मुझे सूचित करना। तब मैं मदिरा लाने के बहाने से उसे तुम्हारे पास भेजूँगी। तब तुम अपना कार्य बना लेना।

कीचक चला गया। उसने शीघ्र ही मांस-मदिरा आदि स्वादिष्ट भोजन तैयार करा कर सुदेष्णा को सूचित किया। सुदेष्णा ने द्रौपदी से कहा—सैरन्ध्री ! तुम शीघ्र ही पीने योग्य श्रेष्ठ मदिरा कीचक के घर से ले आओ, मुझे बड़ी प्यास लगी है। द्रौपदी बोली—महारानी जी ! कीचक का व्यवहार ठीक नहीं

है, वहाँ किसी अन्य को भेज दीजिये। रानी बोली—कीचक तुमसे कुछ भी न कहेगा, जाओ शीघ्र मदिरा ले आओ। यह कर कर रानी ने स्वर्ण-पात्र द्रौपदी के हाथ में थमा दिया तब विवश हुई द्रौपदी कीचक के घर की ओर चलीं। मार्ग में उन्होंने सूर्य से प्रार्थना की कि प्रभो ! मेरी रक्षा करना। तब भगवान सूर्य ने एक राक्षस उसके साथ अदृश्य रूप से कर दिया। द्रौपदी वहाँ पहुँच कर बोली—महारानी जी मदिरा मँगा रही हैं, उन्हें प्यास लगी है।

कीचक ने कहा— मदिरा कोई और दासी ले जायगी। तुम्हें तो मेरे साथ रहना है। चलो, उधर चल कर हम दोनों ही मदिरा-पान करें। यह कह कर कीचक ने द्रौपदी के वस्त्र का कोना पकड़ कर खींचा, तभी द्रौपदी ने उसे झटका देकर गिरा दिया और स्वयं तेजी से भागती हुई राजा विराट की सभा में जा पहुँचीं। कीचक भी उनके पीछे तेजी से दौड़ता हुआ राज सभा में जा पहुँचा और उसने राजा के सामने ही उनकी चोटी पकड़ कर खींची और धरती पर गिरा कर लात मार दी। भीम सेन और युधिष्ठिर भी उस समय उपस्थित थे। उनके नेत्र लाल होगए। भीमसेन क्रोध से कुछ करना चाहते थे, किन्तु युधिष्ठिर ने उन्हें संकेत से शान्त कर दिया और द्रौपदी को भी शान्त करके कहा—सैरन्ध्री ! तुम महारानी के पास जाओ। तुम्हें समय का ज्ञान नहीं है। व्यर्थ ही रो-पीट कर चौसर के खेल में विघ्न डाल रही हो। तुम्हारे स्वामी गन्धर्व अनुकूल समय देख कर तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।

यह सुन कर द्रौपदी वहाँ से चली गईं। आधी रात के समय उन्होंने भीमसेन से मिल कर कीचक का उपाय करने का निवेदन किया और प्रतिशोध की भावना से रोने लगीं। उन्होंने कहा—

हे भरतकुल भूषण !आज तुम्हें क्या होगया, जो मुझे लात खाती देख कर भी चुप बैठे रहे ? तुमने जटासुर से मेरी रक्षा की थी तो आज कीचक से न करोगे ? उसके वशीभूत रह कर जीने से मर जाना ही श्रेष्ठ है। इसलिए उसे सूर्योदय से पहले ही मार डालो।

भीमसेन बोले—पांचाली ! घबराओ मत। कल सायंकाल तुम कीचक के पास जाकर अपने रात्रि-मिलन का स्थान निश्चित कर लेना। मैं समझता हूँ कि राजा की नाट्यशाला इसके लिए उपयुक्त रहेगी। वहाँ श्रेष्ठ शय्या और राग रंग के सब सामान मौजूद हैं। वह किसी प्रकार वहीं जा पहुँचे। यह सुनकर द्रौपदी ने अपना कर्तव्य निश्चित किया और वहाँ से अपने स्थान पर चली गईं।

दूसरे दिन कीचक रनिवास में जाकर द्रौपदी से बोला—सैरन्ध्री ! यदि तुम मेरी आज्ञा न मानोगी तो मैं तुम्हारी बहुत दुर्दशा करूँगा। राजा विराट तो मत्स्यदेश के कहने भर के स्वामी हैं, किन्तु यथार्थ में तो मैं ही इस देश पर शासन करता हूँ। इसलिए यदि तुम मेरा कहना मान लोगी तो राजरानी बन कर रहोगी।

द्रौपदी ने कहा—कीचक ! मैं तुम्हारी बात एक शर्त पर मान सकती हूँ कि हमारा-तुम्हारा मिलन गुप्त रूप से हो। इसे कोई भी न जान सके। नहीं तो गन्धर्व कुपित होकर न जाने क्या कर बैठें। कीचक बोला—तो मैं रात के समय तुमसे मिलूँगा। उस समय हमारे प्रेमालाप को कोई भी न देख सकेगा। द्रौपदी बोली—राज्य की नाट्यशाला को गन्धर्व नहीं जानते होंगे। इसलिए आज अँधेरी रात में तुम मुझ से वहीं मिलना।

यह सुन कर कीचक अत्यन्त आनन्द में मग्न होगया वह उस समय की प्रतीक्षा करने लगा, जबकि सैरन्ध्री से मिलन हो।

इधर द्रौपदी ने भीमसेन के पास जाकर सबवृत्तान्त सुना दिया। रात्रि का समय होने पर भीमसेन कीचक की प्रतीक्षा करते हुए नाट्यशाला के कक्ष में जा लेटे। निश्चित समय पर कीचक उस कक्ष में घुस कर भीमसेन के शरीर पर हाथ रखा और अँधेरे में द्रौपदी समझ कर बोला—प्रिये ! मैं उपस्थित हूँ। भीम बोले—मैं भी धन्य होगई कि आपके जैसे प्रियदर्शन की प्रिया बनी। किन्तु आपने भी ऐसे स्पर्श सुख का कभी अनुभव नहीं किया होगा।

यह कह कर भीमसेन सहसा उछल पड़े। उन्होंने तुरन्त कीचक के बाल पकड़ कर खींचे। कीचक भी सावधान होकर भीमसेन से भिड़ गया। पराक्रमी भीमसेन ने अवसर पाकर उसके हृदय पर मुष्टिका प्रहार किये और उसे धरती पर गिरा कर बार-बार पृथिवी पर रगड़ने लगे। कीचक चीत्कार कर अचेत होगया। तब उन्होंने उसकी हड्डी-पसलियाँ तोड़ डालीं और बुरी तरह मार-मार कर लोथड़ा जैसा कर दिया। फिर भीमसेन तुरन्त वहाँ से चले गए। इधर द्रौपदी ने नाट्यशाला के रक्षकों से कहा कि मेरे स्वामी गन्धर्वों के द्वारा मारा गया कीचक भीतर पड़ा है। यह कह कर वह भी अपने स्थान को गईं। इधर रक्षकों ने जाकर देखा कि कीचक मांस का लोंदा बना हुआ पड़ा है तो उन्होंने कीचक के बान्धवों को उसकी सूचना दी।

कीचक परिवारीजन उसके मृत देह को संस्कारार्थ ले जाने लगे, तभी उन्होंने द्रौपदी को सामने की ओर खड़ी हुई देखा। वे बोले—इसी पापिन के कारण कीचक की मृत्यु हुई है, इसलिए इसे उसी की चिता पर रख कर भस्म कर दो। ऐसा विचार कर उन्होंने राजा से भी आज्ञा प्राप्त कर ली और द्रौपदी को बाँध कर कीचक के शव के साथ बैठाया और श्मशान पर ले

चले। यह देख कर द्रौपदी अनाथ के समान रोने लगी। उन्होंने पुकार कर कहा—जय, जयन्त, बिजय, जयत्सेन और जयद्बल ! आप पाँचों मेरी बात सुनो। यह दुष्ट मुझे कीचक के शव के साथ जला देना चाहते हैं, तुम शीघ्र आकर मुझे बचाओ।

लेटे हुए भीमसेन ने द्रोपदी का आर्तनाद सुना तो जोर से बोले—डरो मत, हम अभी आते हैं। यह कह कर वे शीघ्रता से छलांग लगा कर उधर दौड़ पड़े। उन्होंने एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और सूतपुत्रों की ओर बढ़े। यह देख कर और उन्हें गन्धर्व जान कर सूतपुत्र वहाँ से भाग खड़े हुए। किन्तु भीमसेन ने तेजी से पीछा करके उन्हें पकड़ कर मार डाला। इस प्रकार वे एक सौ पाँच उपकीचक उसी एक वृक्ष से मारे गये। तब तो उनके पक्ष के लोगों ने राजा विराट से जाकर कहा—महाराज ! गन्धर्व बड़े क्रोधी हैं। उन्होंने सभी सूतपुत्र मार डाले। सैरन्ध्री का असाधारण रूप-लावण्य किसी समय भी न जानें कितनों की आहुति ले ले, इसलिए इसे राज्य से निकाल दीजिए।

यह सुन कर राजा विराट ने सुदेष्णा से कहा—प्रिये ! सैरन्ध्री को यहाँ से निकाल देने में ही भलाई है। पुरुषों की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से स्त्री-समागम की ओर होती है, इसलिए कोई अन्य घटना घटित हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। तुम उससे कहो कि जहाँ चाहो, वहाँ चली जाओ। राजा तुमसे यह स्वयं नहीं कहना चाहते, इसलिए मेरे द्वारा कहलवाया है। यह सुन कर रानी सुदेष्णा ने राजा का मन्तव्य सैरन्ध्री से कह दिया। सैरन्ध्री बोली—महारानीजी ! मुझे केवल तेरह दिन और रहने दिया जाय, फिर गन्धर्वों का कार्य पूरा हो जायगा और वे मुझे यहाँ से ले जाँयगे। वे आपका और महाराज का भी प्रिय कार्य करेंगे।

भीम से सुशर्मा का पराजित होना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! कीचक वध का पूर्ण समाचार कौरवों के गुप्तचरों ने उन्हें जाकर दिया तभी त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा ने दुर्योधन से कहा—महाराज ! राजा विराट ने कीचक की सहायता से मुझे अनेक बार हराया था। अब कीचक और उसके बांधव बली गन्धर्वों द्वारा मारे गये हैं तो विराट की शक्ति नष्ट होगई होगी। इसलिए हमें तुरन्त ही मत्स्य देश पर आक्रमण कर राजा विराट को पराजित करना चाहिए। उसका जो धन हमारे हाथ लगेगा, उसे हम परस्पर बाँट लेंगे। यह सुन कर कर्ण बोला—महाराजा ! सुशर्मा का कथन सत्य है। मत्स्य देश पर आक्रमण के लिए यह उपयुक्त समय है। धन-बल-पौरुषहीन पाण्डवों की खोज में समय व्यतीत करना व्यर्थ है।

कर्ण की बात मान कर दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी कि सेना तैयार करके सुशर्मा के साथ विराट के नगर पर आक्रमण कर दो। यह सुन कर दोनों देशों की सेनाएँ तैयार होकर मत्स्य देश की ओर बढ़ चलीं और जिस समय सुशर्मा के आधिपत्य में विराट नगर के समीप पहुँचीं उस समय तक पाण्डवों के अज्ञातवास का समय पूर्ण हो चुका था।

जब राजा विराट अपनी सभा में बैठे थे, तभी गोपालक ने जाकर कहा—महाराज ! त्रिगर्त देश के सैनिक हमें जीत कर आपकी असंख्य गौओं को लिये जा रहे हैं। यह सुन कर राजा ने अपनी चतुरंगिणी सेना को तुरन्त सुसज्जित होने की आज्ञा दी। तब उनके भाई आदि शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर बाहर निकले। उन्होंने कहा—महाराज ! कंक, वल्लव, ग्रंथिक, तन्तिपाल आदि को भी शस्त्राशस्त्र देकर युद्ध करने के लिए भेजिये।

तब राजा ने उनके लिए भी श्रेष्ठ रथादि की व्यवस्था की। इस प्रकार दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध रत हो गईं। तभी राजा विराट का सुशर्मा से सामना हुआ। उनमें घोर युद्ध हुआ। सुशर्मा ने अपने भाई सुधर्मा के साथ मिल कर भीषण आक्रमण किया, जिसमें मत्स्य देश की सेना बुरी तरह पराजित हुई और राजा विराट का सारथी, मारा गया, रथ टूट गया। सुशर्मा ने राजा विराट को पकड़ कर अपने रथ पर बैठाया और अपने देश की ओर चल दिये।

तभी युधिष्ठिर ने भीमसेन को आज्ञा दी कि राजा विराट को छुड़ा कर उनके उपकार का बदला चुका दो। यह सुन कर भीमसेन ने सुशर्मा को ललकारा तब वह भी रुक कर युद्ध करने लगा। भीमसेन ने पल भर में ही उसकी भारी सेना नष्ट कर दी और उसके रथ के घोड़ों को मार डाला। तभी राजा विराट भी गदा लेकर कूद पड़े। इसी समय भीमसेन ने सुशर्मा को उठा कर धरती पर दे मारा और इस बुरी तरह से रगड़ने लगे और जब वह अचेत होगया तब महाराज युधिष्ठिर के सामने ले गये। युधिष्ठिर ने हँस कर कहा—वीरवर! अब इस पापी को छोड़ दो। तब उन्होंने उसे भविष्य में वैसा न करने की चेतावनी देकर छोड़ दिया।

कौरवों से युद्ध में अर्जुन की विजय

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! सुशर्मा के प्रणाम कर चले जाने पर राजा विराट ने बहुत-सा धन देकर सम्मानित किया और कहा कि मैं आप लोगों के बल से ही जीवित बच गया हूँ। यह कह कर उन्होंने युधिष्ठिर के कहने पर युद्ध क्षेत्र से अपनी राजधानी में समाचार भेज दिया कि हमारी विजय हो गई है।

इधर, जब राजा विराट और युधिष्ठिरादि सब राजा सुशर्मा से गौओं को छुड़ाने के लिए पीछा करते हुए बढ़े जारहे थे, तभी दुर्योधनादि कौरवों ने मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया उन्होंने गोपालकों को मार भगाया और साठ हजार गौएँ छीन कर चल दिये। तब गोपालकों का प्रधान कर्मचारी राजा विराट के पुत्र उत्तर के पास जाकर बोला—युवराज ! आप शीघ्र ही चल कर गौओं को छुड़ाइये। राजकुमार बोला—गोपालक ! मेरे पास निपुण सारथी नहीं हैं, इसलिए शीघ्र ही एक योग्य सारथी लाओ। ऐसा होने पर मैं तुरन्त सब कौरवों को हरा कर गौओं को ले आऊँगा। जब मैं युद्ध करूँगा, तब शत्रु समझेंगे कि क्या यह साक्षात् अर्जुन ही रणक्षेत्र में आगए हैं।

अर्जुन की प्रेरणा पर द्रौपदी ने राजकुमारी उत्तरा से कहा कि वृहन्नला पहले अर्जुन के सारथी रह चुके हैं और धनुर्विद्या में बढ़े-चढ़े हैं। इसलिए उन्हें सारथी बना कर ले जाँय। उत्तरा ने यह बात राजकुमार उत्तर से जाकर कह दी तो उत्तर बोले कि बहिन ! वैसे तो वह हिजड़ा है, पर सैरन्ध्री कहती है तो ठीक है। तुम उससे कह दो कि मेरा सारथी बन जाय। उत्तरा ने वृहन्नला को राजी करके भेज दिया। तब राजकुमार के बैठ जाने पर अर्जुन ने रथ को तीव्र गति से चला कर कौरव-सेना के निकट पहुँचा दिया। उस विशाल सेना को देख कर उत्तर घबरा गया और बोला-वृहन्नला ! इस असंख्य रथ, अश्व, हाथी और पदाति युक्त सेना को देख कर मेरा तो हृदय काँप रहा है। इसलिए, मेरे रथ को लौटा ले चलो।

वृहन्नला ने कहा—महाबाहो ! साहस को मत छोडो। अभी तो कौरव सेना ने आपको कुछ भी हानि नहीं पहुँचाई है। आपने ही मुझे कौरवों के मध्य रथ ले चलने के लिए कहा था, इसलिए मैं अवश्य वहाँ चलूँगा। उत्तर बोला—चाहे मत्स्य राज्य का

धन चला जाय और चाहे कोई मेरी कितनी ही हँसी उडावे, मैं युद्ध नहीं करूँगा। यह कह कर राजकुमार रथ से कूद कर पीछे की ओर भागा। क़िन्तु अर्जुन ने भी तुरन्त रथ से उतर कर उसे पकड़ लिया और बोले—इस प्रकार डर कर भागने से तो युद्ध में मर जाना ही श्रेयस्कर है।

उत्तर ने वृहन्नला की बहुत अनुनय-विनय कि रथ को वापिस ले चलो, मैं तुम्हें बहुत-सा धन, सम्मान प्रदान करूँगा। तब अर्जुन ने कहा—राजकुमार! यदि तुम में युद्ध करने का साहस नहीं है तो डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा भी करूँगा और युद्ध भी। तुम सारथी बन जाओ और मैं रथी बन कर शत्रुओं को खदेड़ दूँगा। यह कह कर अर्जुन ने अपना रथ शमी वृक्ष की ओर बढ़ाया उस समय कौरव-पक्ष के लोग हँसने लगे, किन्तु द्रोणाचार्य ने कहा—देखो, आकाश में अद्‌भुत आकृति के मेघ दिखाई दे रहे हैं, धूलियुक्त आँधी वेग से चल रही है, स्यार रो रहे हैं। इन अशुभ लक्षणों से प्रतीत होता है कि आज कुछ होने वाला है। उस हिजड़ा वेशधारी पुरुष की आकृति कुछ-कुछ अर्जुन से मिलती है। हे भीष्म! कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन इन गायों को जीत कर लेजाय। दुर्योधन बोला—यदि वह अर्जुन है तो हमारा काम बन गया। अभी पाण्डवों के एक वर्ष के अज्ञातवास के दिन पूरे नहीं हुए हैं, इसलिए उन्हें पुनः बारहवर्ष वन में रहना होगा और यदि वह अर्जुन नहीं है तो हम उसे वैसे ही मार डालेंगे।

इधर शमी वृक्ष के पास पहुँच कर अर्जुन ने कहा—राजकुमार! तुम तुरन्त इस वृक्ष पर चढ़ कर दिव्य धनुषों को उतार लाओ। क्योंकि तुम्हारे यह सामान्य धनुष मेरे झटकों को सहन नहीं कर सकते। देखो, वहाँ अर्जुन का गाण्डीव धनुष रखा है। यह सुन कर उत्तर उस वृक्ष पर चढ़ कर शस्त्रों की पोटली

उतार लाया। अर्जुन ने उसमें से अपने शस्त्रास्त्र लिये और शेष भाइयों के शस्त्रास्त्रों को पोटली में रख कर वहीं रखने को कहा राजकुमार उस पोटली को वहीं रख आया किन्तु उन शस्त्रास्त्रों को देख कर उसे आश्चर्य हुया, उसके समाधानार्थ पूछने लगा—वृहन्नला ! यह शस्त्रास्त्र किसके हैं ? यहाँ कहाँ से आये ? यह स्वर्ण मण्डित अद्भुत धनुष किसने यहाँ रखा है ? अर्जुन ने कहा—उत्तर ! यह सब शस्त्रास्त्र पाण्डवों के हैं, उन्होंने स्वयं ही इन्हें यहाँ रखा है। यह अर्जुन का विश्वविख्यात गाण्डीव धनुष है। इसकी सहायता से अकेले अर्जुन ने बड़े-बड़े देवता, दैत्य और मनुष्यों को पराजित किया है।

राजकुमार ने कहा—वृहन्नला ! पाण्डवों के शस्त्रास्त्र तो यह हैं, किन्तु पाँचों पाण्डव और द्रौपदी इस समय कहाँ हैं ? अर्जुन बोले— कुमार ! वे सब तुम्हारे नगर में रह रहे हैं। मैं अर्जुन हूँ, कंक युधिष्ठिर और वल्लव भीमसेन हैं। ग्रन्थिक नामक अश्वपाल नकुल और तन्तिपाल गोप सहदेव हैं। देवी द्रौपदी सैरन्ध्री के रूप में तुम्हारे यहाँ रह रही हैं।

यह सुन कर राजकुमार ने अर्जुन के चरणों में शिर रख कर प्रणाम किया और बोला—हे महाबाहो ! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अब मेरा भय दूर होगया है। आप रथ पर बैठिये, मैं आपका सारथी बनता हूँ। तब अर्जुन ने चूड़ियाँ उतार फेंकीं और स्वर्ण कवच धारण कर रथ पर चढ़े। राजकुमार उत्तर ने घोड़ों को हाँका। तभी अर्जुन ने गाण्डीव धनुष की टंकोर कर अपना शंख बजाया। तभी द्रोणाचार्य ने कौरवों से कहा—कौरवगण ! देखो, वह अर्जुन आरहे हैं, इसलिए आज के युद्ध में क्षत्रियों का विनाश संभव है। दुर्योधन बोला—आचार्य ! अभी पाण्डवों के अज्ञातवास का समय शेष है, इसलिए यदि यह अर्जुन ही है तो पाण्डवों को पुनः वनवास में

जाना होगा। हम समझते हैं कि उसने प्रतिज्ञा तोड़ दी है, अथवा क्या हम ही भूल रहे हैं ? कर्ण बोला–कुछ भी हो, इस समय तो हमें युद्धनीति पर ध्यान देना चाहिए। सेना की नाके बन्दी करो, गायों को बीच में करके, मुकाबिले के लिए तैयार होजाओ आज मैं भी अर्जुन को मारकर अपनी प्रतीज्ञा पूरी करूँगा। कर्ण की बात सुन कर कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भीष्म आदि ने उनकी भर्त्सना की और युद्ध के लिए तैयार होगए।

अर्जुन के आदेशानुसार कुमार उत्तर ने रथ को कौरव सेना के मध्य लाकर रोका और अर्जुन ने असंख्य बाणों से कौरव दल पर प्रहार किया। उनके शंख की ध्वनि से भयभीत हुई गौएँ पूँछ उठा कर अपने नगर की ओर मुख करके भागने लगीं। तभी कर्ण अर्जुन के सामने आ डटा। इतने में ही अर्जुन के बाणों की मारसे विकर्ण आहत होकर रथसे गिरगया और अपने प्राण बचा कर भागा। तब कर्ण और अर्जुन का युद्ध होने लगा। दोनों ओर से भीषण बाण वर्षा हुई। अन्त में अर्जुन ने भल्ल बाण के प्रहार से कर्ण को व्याकुल कर दिया, तब वह व्यथित होकर रण क्षेत्र से भाग गया।

तत्पश्चात् अर्जुन का रथ आगे बढ़ा। उन्होंने कृपाचार्य के समक्ष जाकर अपना नाम सुनाया और शंखनाद किया। कृपाचार्य ने तुरन्त दस बाण चलाये जिनका उत्तर उन्होंने नाराच बाण से दिया। इसके बाद दोनों में घनघोर युद्ध हुआ और अर्जुन ने आचार्य का रथ तोड़ डाला। अन्त में कृपाचार्य के साथी योद्धाओं ने अपनी हार देखी तो कृपाचार्य को साथ लेकर शीघ्रता पूर्वक वहाँ से पलायन कर गये।

फिर द्रोणाचार्य के साथ युद्ध हुआ। अर्जुन ने आचार्य को प्रणाम कर कहा—हे दुर्जय ! हे आचार्य ! आप क्रोध न करें, मैं तो अपने शत्रुओं से बदला लेने के लिए आया हूँ। किन्तु मैं तब

तक आप पर प्रहार नहीं करूगा, जब तक कि आप मुझ पर बाण नहीं चलायेंगे। यह सुन कर द्रोणाचार्य ने बाण-वर्षा प्रारंभ की, अर्जुन ने उनके बाणों को बीच में ही काट दिया। इसके बाद गुरु-शिष्य में जो घोर युद्ध हुआ, उसे देख कर सभी वीर काँप उठे। अर्जुन के बाणों ने आचार्य के रथ को चारों ओर से ढक दिया। तब क्रोध करके आचार्य के पुत्र अश्वत्थामा सामने आये, अब उन दोनों में युद्ध होने लगा। अन्त में अश्वत्थामा अर्जुन के सामने न टिक कर, अलग हट गये। तभी अर्जुन को कर्ण दिखाई दिया और वे उसकी ओर बढ़ गये।

कर्ण की सेना भी अर्जुन की ओर तेजी से बढ़ी। किन्तु अर्जुन के बाणों ने उनमें से अधिकांश को मार डाला और फिर कर्ण के हृदय में ऐसा बाण मारा कि हृदय में घुसने के कारण कर्ण अचेत होकर गिर गया। फिर जब उसे चेत हुआ, तब रण क्षेत्र छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। यह देख कर दुःशासनादि कौरव अर्जुन की ओर बढ़े, सब महारथियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। भयंकर युद्ध के बाद सभी महारथी भाग खड़े हुए। इसके बाद भीष्म पितामह ने शंख बजाया और अर्जुन पर आक्रमण किया। दोनों ही भयंकर युद्ध करने लगे। उस समय देवताओं ने दोनों वीरों पर आकाश से फूल बरसाये। तभी अर्जुन का बाण लगने से पितामह अचेत होगए और उनका सारथी उनकी प्राणरक्षा के लिए उनके सहित रथ को युद्धक्षेत्र से हटा लेगया।

अब दुर्योधन सामने आया। इन दोनों में भी भयंकर युद्ध हुआ। इसी बीच एक मदमत्त गज पर बैठा हुआ विकर्ण अर्जुन की ओर बढ़ा तो उन्होंने ऐसा बाण मारा कि हाथी का मस्तक फट गया। यह देख कर विकर्ण भाग गया। फिर अर्जुन ने बाण मार कर दुर्योधन के हृदय को घायल कर दिया, जिससे व्याकुल

हुआ दुर्योधन भागने लगा। यह देख कर अर्जुन ने कहा—अरे दुर्योधन ! अभी से भाग रहा है। अभी तो तुझे राज्य से भ्रष्ट करने की घोषणा भी नहीं हुई है। इस प्रकार अर्जुन की लल-कार सुन कर दुर्योधन लौट पड़ा। कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य कृपा-चार्य, दुःशासन आदि वीर भी चारों ओर छा गए। तब अर्जुन ने सम्मोहनास्त्र का प्रयोग किया। उसके कारण सब ओर बाण ही बाण दिखाई देने लगे। उससे कौरवगण व्याकुल होगए तत्पश्चात् अर्जुन ने शंखनाद किया जिससे कौरव पक्ष के सभी वीर अचेत होकर पृथिवी पर गिर गये। तब अर्जुन ने उत्तर से कहा—राजकुमार ! तुम तुरन्त जाकर अचेत पड़े द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और दुर्योधन के श्वेत, पीत एवं नील वर्ण के वस्त्रों को सावधानी से उतार लाओ। उनके रथ के बाँई ओर से जाना। भीष्म पितामह सम्मोहनास्त्र का प्रतीकार जानते हैं इसलिये वे अचेत हुए नहीं जान पड़ते।

यह सुन कर राजकुमार उनके पास जाकर वस्त्र ले आया। फिर उसने रथ पर बैठ कर घोड़ों को चलाया, तभी भीष्म ने अर्जुन पर बहुत-से बाण चलाये। यह देख कर अर्जुन ने बाण चलाकर उनका रथ तोड़ दिया और उनके हृदय में भी दस बाण मारे, जिससे वे मूर्च्छित होगए। तब अर्जुन का रथ कौरवों के रथों के घेरे से बाहर निकल कर पृथक् खड़ा होगया। तभी दुर्योधन को होश आया और उसने कहा- देखो, अर्जुन यहाँ से बच कर न चला जाय। यह सुन कर पितामह ने कहा—मूर्ख ! तुम लोगों को अचेत देख कर अर्जुन ने तुम्हारे साथ कोई अधर्म-व्यवहार नहीं किया। तुम्हारे प्राण बच गये यही बहुत है। यह सुन कर सब कौरव वीर अपने देश के लिए चलने को तैयार हुए तब अर्जुन ने सब पूजनीय पुरुषों के चरणों में बाणों से प्रणाम किया और दुर्योधन के शिर का मुकुट काट कर वहाँ से लौट पड़े।

पाण्डवों का प्रकट होना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! रनिवास में स्थित राजा विराट को कौरवों के पराजय का समाचार विदित हुए तो उसे वे अपने पुत्र का कार्य समझ कर बहुत प्रसन्न होते हुए बोले—हे कंक ! आज मेरे पुत्र ने कौरवों को सहज में पराजित कर दिया। युधिष्ठिर बोले—राजन् ! जिसका सारथी वृहन्नला है उसकी जीत होनी ही है। राजा ने कहा—मेरे पुत्र ने कौरवों को हराकर अपने वंश की कीर्ति उज्वल कर दी। युधिष्ठिर ने कहा—वृहन्नला जैसे सारथी के होते हुए ऐसा ही होना चाहिए था। युधिष्ठिर के मुख से वृहन्नला की बार-बार प्रशंसा सुन कर विराट ने क्रोधित होते हुए कहा—कंक ! युद्ध में मेरा पुत्र क्या कौरवों को हरा नहीं सकता जो तुम वृहन्नला की बार-बार प्रशंसा करते हो? कहाँ वह नपुंसक वृहन्नला और कहाँ युवराज?

युधिष्ठिर बोले—महाराज ! वृहन्नला बड़े-बड़े महारथियों, देवताओं, दैत्यों से भी बेधड़क सामना कर सकता है। उसके समान बली न कोई हुआ, न है और न आगे होगा। यह सुन कर राजा को क्रोध आगया। वे बोले—कक ! अब मेरे सामने वृहन्नला की प्रशंसा न करना, अन्यथा ठीक नहीं होगा। युधिष्ठिर बोले—राजन् ! घोर युद्ध में भी वृहन्नला का उत्साह बढ़ जाता है, उसकी सहायता पाने पर कौन न जीत जायगा ? यह सुन कर कुपित हुए राजा ने अपने हाथ के पांसे उठा कर कंक के मुख पर दे मारे, तभी उनकी नासिका से खून बहने लगा। युधिष्ठिर ने उस खून को धरती पर न गिरने देकर अपने हाथ पर ले लिया। उस समय द्रौपदी पास खड़ी थीं, उन्होंने जल-पात्र लाकर रक्त धो डाला। तभी द्वारपाल ने आकर कहा—राजकुमार उत्तर यहाँ आ रहे हैं। तब युधिष्ठिर ने द्वारपाल के कान में कहा कि अकेले राजकुमार को ले आओ। वृहन्नला को

किसी प्रकार भीतर आने से रोकना। क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा है कि सामान्य स्थिति में जो कोई मेरे शरीर से रक्त निकालेगा, उसे जीवित नहीं रहने देगा। यह सुन कर द्वारपाल वृहन्नला को वहीं रोक कर राजकुमार को भीतर लिवा लाया।

राजकुमार ने आकर पहिले पिता को और फिर कंक को प्रणाम किया। तभी उसकी दृष्टि कंक की नाक से गिरे हुए खून की ओर गई तो वह घबरा कर बोला—पिताजी! इन्हें मारने का पाप किसने किया है? तब राजा ने वह सब वृत्तान्त सुना दिया। उत्तर बोला—महाराज! यह तो बहुत बुरा हुआ। आप इनसे शीघ्र क्षमा-याचना कीजिए, अन्यथा न जाने क्या होजाय। यह सुन कर घबराये हुए राजा ने कंक से क्षमा माँग ली। जब युधिष्ठर की नाक से रक्त गिरना रुक गया, तब वृहन्नला ने आ कर राजा और कंक को प्रणाम किया। तब राजकुमार ने राजा से कहा—महाराज! कौरवों को एक देवपुत्र ने आकर जीता है उसने कौरवों के सभी महारथियों को सेना सहित भगा कर गायें छीन लीं। विराट ने पूछा—पुत्र! वे देवपुत्र कहाँ हैं? उसने कहा—वे परसों प्रकट होंगे। यह कह कर राजकुमार उत्तर अर्जुन के साथ उत्तारा के पास पहुँचे। वहाँ अर्जुन ने कौरवों के वे वस्त्र उत्तरा को दे दिये। तत्पश्चात् भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए पाण्डवों और द्रौपदी के पास गये।

वैशम्पायनजी बोले-हे जनमेजय! कौरवों की पराजय के तीसरे दिन पाँचों पाण्डव राजसीवेश में सुसज्जित होकर राजा विराद की सभा में पहुँचे और उनमें से युधिष्ठिर विराट के सिंहासन पर जा बैठे। तभी राजा विराट भी राजसभा में आये और कंक को अपने आसन पर बैठा देख कर कुपित होगये। उन्होंने कहा—

कंक ! मैंने तुम्हें पाँसों के खेल के लिए अपना सभासद बनाया था, पर तुम मेरे राजसिंहासन पर कैसे बैठ गए हो ? तब अर्जुन ने विनोद पूर्वक कहा— राजन् ! यह तो इन्द्र के भी आधे आसन पर बैठ सकते हैं, तब आपके आसन पर क्यों नही बैठ सकते ? देखिये, यह तो बड़े धर्मात्मा और जितेन्द्रिय हैं। इन महाराज युधिष्ठिर के प्रताप से दुर्योधन सदैव ईर्ष्या किया करता है।

यह सुन कर आश्चर्य में भरे हुए विराट ने पूछा—यदि यह महाराज युधिष्ठिर हैं तो इनके अन्य चार भाई और यशस्विनी द्रौपदी कहाँ हैं ? अर्जुन बोले—महाराज ! वल्लद नामक रसोइया भीमसेन हैं, इन्हीं ने दुरात्मा कीचक और उपकीचकों का वध किया था। आपके अश्वपाल ग्रन्थिक नकुल और गवाध्यक्ष तन्तिपाल सहदेव हैं। वह सैरन्ध्री महारानी द्रौपदी हैं और मैं अर्जुन हूँ। राजन् ! हम आपके यहाँ एक वर्ष तक अज्ञातवास करते हुए अत्यन्त सुखपूर्वक रहे हैं। यह कह कर अर्जुन चुप हुए तभी राजकुमार उत्तर ने कहा—पिताजी ! वह देवपुत्र भी यही अर्जुन हैं, जिन्होंने अकेले ही असंख्य कौरव-सेना को हरा कर भगा दिया और आपकी गायों को छीन कर ले आये। अब इनके पूजन और सम्मान का समय उपस्थित है।

विराट बोले—पुत्र ! मुझे भी भीमसेन ने ही बचाया है। इसलिए हम इनके उपकार को मानते हुए इनसे क्षमा-याचना करके राजकुमारी उत्तरा भी वीरवर अर्जुन को अर्पण कर दें। यह कह कर विराट ने युधिष्ठिर की अनुनय-विनय कर उन्हें अपना सम्पूर्ण राज्य और राजकुमारी उत्तरा अर्पित कर दी। अर्जुन ने कहा—राजन् ! राजकुमारी उत्तरा मेरी पुत्रवधु हो सकती है, क्योंकि एक वर्ष तक उसने साथ रह कर मुझ पर पिता के सम्मान श्रद्धा रखी है। वैसे भी मेरा पुत्र अभिमन्यु सर्वथा

उपयुक्त है। विराट ने कहा—आप लोग धर्मात्मा हैं, जैसा उचित समझें करें। मैं तो आपके साथ सम्बन्ध होने से पूर्ण कृतार्थ होगया।

तत्पश्चात् उत्तरा के विवाह की तैयारी होने लगी। एक दूत के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के पास सूचना भेजी गई। फिर अन्यान्य राजे-महाराजों, सम्बन्धियों आदि को निमंत्रण पत्र भेजे गए। काशिराज, शैव्य, द्रुपद, द्रौपदी के पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि असंख्य सेवकों और सेनाओं के साथ आगए। भगवान् कृष्ण, बलराम, अक्रूर, साम्ब, अभिमन्यु, सुभद्रा तथा अन्यान्य यादव-गण प्रसन्न होते हुए आये। इसके बाद शुभ लग्न, मुहूर्त में अभिमन्यु-उत्तरा का विधिवत विवाह हुआ। राजा विराट ने भारी दहेज देकर अपना राज्य, कोष, सेना आदि सर्वस्व अर्पण कर दिया। उस समय राजा विराट की वह नगरी इन्द्रपुरी के समान शोभायमान हो रही थी।

॥ विराट पर्व समाप्त ॥

उद्योग पर्व

युद्ध की तैयारी, त्रिशिरा एवं वृत्रासुरवध वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! विवाह के दूसरे दिन सब पाण्डवगण, कृष्ण-बलरामादि यादवगण एवं सभी आगत राजागण विराट की राजसभा में श्रेष्ठ आसनों पर विराजमान थे। तभी श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के अत्याचारों और पाण्डवों के वनवास में भोगे हुए कष्टों का वर्णन किया और फिर बोले—महाराज युधिष्ठिर अपने बाहु-बल से अर्जित राज्य की ही कामना करते हैं। उन्हें किसी का धन, वैभव या राज्य नहीं चाहिए। किन्तु आवश्यकता यह है कि विपक्ष का मन्तव्य जान कर ही कोई कदम उठाया जाय। इसलिए किसी श्रेष्ठ, शीलवान, धर्मात्मा और व्यवहार कुशल व्यक्ति को दूत बनाकर कौरवों के पास भेजा जाय जो उन्हें आधा राज्य देने के लिए राजी कर सके। बलरामजी ने कृष्ण की बातों का अनुमोदन कर, इतना और कहा--उपस्थित जन ! दुर्योधन ने राजा युधिष्ठिर को जुए में हरा कर ही राज्य लिया था, उसमें शकुनि का कोई अपराध नहीं था। धर्मराज के स्वीकार करने पर ही उसने पाँसों के खेल में इन्हें हराया। इसलिए नम्रता पूर्वक धृतराष्ट्र को आधा राज्य देने के लिए तैयार किया जाय। जहाँ तक सम्भव हो युद्ध से बचना चाहिए।

तब सात्यकि और राजा द्रुपद ने मत व्यक्त किया कि दुर्योधन स्वेच्छा से आधा राज्य देने को तैयार नहीं होगा। इसलिए सैन्य संग्रह और राजाओं को अपने पक्ष में तैयार करना आवश्यक कार्य है। आप अपना निमन्त्रण पहिले भेज दीजिए, क्योंकि

राजागण उसी की सहायता करते हैं, जिसका निमन्त्रण पहले पहुंच जाय। कृष्ण बोले—महाराज द्रुपद का कथन यथार्थ है। हमें अपनी भलाई के लिए राजाओं के पास सब से पहिले निमंत्रण भेज देने चाहिए। अवस्था और ज्ञान में आप ही हम से बड़े हैं, इसलिए आप यह प्रयत्न कीजिए कि पाण्डवों का सन्देश कौरवों को मिल जाय। यह कह कर यादवों सहित श्रीकृष्ण द्वारका चले गये। इसके बाद राजा विराट और द्रुपद ने परामर्श करके राजाओं के पास युद्ध में साथ देने के लिए निमन्त्रण भेजे। तब अनेक देशों के राजा सेनाओं के सहित विराट नगर में आ-आकर एकत्र होने लगे। फिर राजा द्रुपद ने अपने वृद्ध पुरोहित को दूत बना कर धृतराष्ट्र के पास भेजा, जो कि अपने शिष्यों के सहित तुरन्त हस्तिनापुर के लिए चल पड़े।

हे राजन्! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण को निमन्त्रण देने के लिए अर्जुन स्वयं द्वारकापुरी गये। उसी समय दुर्योधन भी वहाँ जा पहुँचा। दोनों ही एक साथ श्रीकृष्ण के भवन में पहुँचे। श्रीकृष्ण पर्यंक पर शयन कर रहे थे। दुर्योधन लपक कर पहिले जा पहुंचा और उन्हें सोते देख, उनके सिरहाने की ओर श्रेष्ठ आसन पर जा बैठा। अर्जुन बाद में पहुंचे, वे उनके चरणों के पास नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर बैठ गये। श्रीकृष्ण की नींद खुली तो उनकी दृष्टि सामने बैठे हुए अर्जुन पर पहले पड़ी, बाद में उन्होंने दुर्योधन को देखा।

श्रीकृष्ण ने दोनों का स्वागत सत्कार कर आने का कारण पूछा तब दुर्योधन बोला—केशव! हम दोनों भाइयों के इस युद्ध में आप हमारे सहायक बनें। आपके लिए हम दोनों ही समान एवं सम्बन्धी हैं, किन्तु जो पहले आता है उसी का पक्ष लिया जाता है। कृष्ण बोले—आप पहिले अवश्य आये हैं, किन्तु मुझे पहले अर्जुन ही दिखाई दिये हैं। इसलिए मैं दोनों की ही सहा-

यता करना उचित समझता हूँ। देखो, मेरे पास दस करोड़ पराक्रमी गोपों की विशाल नारायणी सेना है, वह एक ओर से युद्ध करेगी और एक ओर मैं निहत्था, युद्ध न करने के प्रण सहित रहूँगा। हे अर्जुन! तुम दुर्योधन से छोटे हो, इसलिए भी तुम्हें अपनी पसन्द प्रकट करने का पहले अधिकार है, बोलो तुम क्या चाहते हो सेना को अथवा मुझ निहत्थे को?

हे राजन्! यह सुन कर अर्जुन ने निहत्थे भगवान् श्रीकृष्ण को माँग लिया और दुर्योधन ने उनकी नारायणी सेना माँग ली। तत्पश्चात् प्रसन्न हुआ दुर्योधन बलदेवजी के पास पहुँचा तो वे बोले—दुर्योधन! मैं तुम दोनों में से किसी का भी पक्ष नहीं लूँगा। अब तुम जाकर धर्मपूर्वक युद्ध करना। फिर वह कृतवर्मा नामक यादव के पास गया, जिसने उसे अपनी एक अक्षौहिणी सेना प्रदान कर दी। इसके बाद दुर्योधन हस्तिनापुर लौट गया।

इधर अर्जुन से कृष्ण ने पूछा—पार्थ! तुमने मुझ युद्ध विमुख को माँगने में क्या लाभ देखा? अर्जुन बोले—आप अकेले ही सब कौरवों को मारने में समर्थ हैं। मैं बहुत समय से आपको अपना सारथी बनाना चाहता था, वह इच्छा अब पूरी कीजिए। तब श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बन कर उनके साथ चल दिये।

उधर महाबली शल्य जब अपने पुत्रों के सहित पाण्डवों की सहायता के लिए चले, तब मार्ग में दुर्योधन ने उनके ठहरने के लिए स्थान-स्थान पर श्रेष्ठ व्यवस्था की और सुस्वादु भोजनादि का भी उत्तम प्रबन्ध कर दिया। शल्य ने उस प्रबन्ध को देख कर बड़ी प्रशंसा की। तभी दुर्योधन ने उनके पास आकर यह प्रकट किया कि वह सत्कार-व्यवस्था उसी ने की है तो शल्य बोले कि—तुम जो चाहो वह मुझसे माँग लो। दुर्योधन बोले—आप मेरी सेना का संचालन करते हुए मेरे पक्ष में युद्ध करके अपने

वचन का पालन करिये। शल्य ने उसका अनुरोध मान कर कहा कि मैं युधिष्ठिर से मिल कर तुम्हारे पास पहुँचूंगा। दुर्योधन ने कहा—अपने वचनों का ध्यान रख कर शीघ्र आने की कृपा कीजिएगा।

तत्पश्चात् शल्य राजा युधिष्ठिर से मिले और दुर्योधन द्वारा प्राप्त सेवा-सत्कार तथा अपने द्वारा दिये हुए वचन का वृत्तान्त बताया। युधिष्ठिर बोले—आपने जो वर दे दिया, वह तो ठीक हुआ। किन्तु युद्ध में कृष्ण के समान पराक्रमी और अश्वकला में विशेषज्ञ, जान कर कौरवगण आपको कर्ण का सारथी बनायेंगे। उस समय आप कर्ण का उत्साह कम करने का प्रयत्न करते रहिये। यदि इतना भी आप कर सकें तो बड़ा उपकार होगा। यह सुन कर शल्य ने वैसा करना स्वीकार कर लिया और फिर बोले—युधिष्ठिर! अब तुम्हारे दुःख का समय समाप्त होने को है। इन्द्र ने भी बड़े-बड़े दुःख उठाये हैं तो मनुष्य की बात ही क्या है। मैं तुम्हें एक पुरातन इतिहास बताता हूँ. उसे सुनो।

पूर्वकाल में त्वष्टा नामक प्रजापति ने इन्द्र का अनिष्ट करने की इच्छा से त्रिशिरा नामक पुत्र उत्पन्न किया, जिसके तीन सिर थे। उसने इन्द्र पद पाने के लिए भारी तपस्या की। उससे डर कर इन्द्र ने अप्सराओं को तप-भंग करने के लिए भेजा। किन्तु त्रिशिरा पर उन अप्सराओं के नृत्य-गान का कोई प्रभाव न पड़ा। तब इन्द्र ने त्रिशिरा पर वज्र-प्रहार किया। त्रिपुरा धरती पर गिर पड़े। किन्तु उनकी तेजस्विता पूर्ववत बनी रही। तभी वहाँ एक बढ़ई आया जिसे इन्द्र ने आज्ञा दी कि इसके तीनों शिर काट दो। बहुत तर्क-वितर्क पश्चात् उसने इन्द्र की बात मानी और त्रिशिरा के तीनों सिर धड़ से पृथक् कर दिये।

जब त्वष्टा को ज्ञात हुआ कि इन्द्र ने त्रिशिरा को मार डाला है, तब उन्होंने क्रोध पूर्वक अग्नि में आहुति छोड़ कर त्वष्टा को

उत्पन्न किया और उसे आज्ञा दी कि तुम इन्द्र को मार डालो। तब तो वृत्रासुर और इन्द्र का घोर युद्ध हुआ। उसने सम्पूर्ण विश्व पर अधिकार कर लिया। तब भय से व्याकुल हुए सब देवता भगवान् नारायण की शरण में गये। नारायण बोले— देवगण ! तुम ऋषियों और गन्धर्वों को साथ ले जाकर वृत्रासुर से मेल कर लो, तभी उसे जीत सकोगे। में अव्यक्त रूप से इन्द्र के वज्र में प्रवेश करूँगा।

यह सुन कर वृत्रासुर से सन्धि करने का प्रयत्न किया गया। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् वृत्र ने कहा—यदि सूखे या गीले पदार्थ से, लौह या काष्ठ के शस्त्र से, पाषाण या किसी अस्त्र से, दिन में अथवा रात्रि में इन्द्रादि देवता मुझे न मार सकें, तो इस वचन पर मैं मेल करने को तैयार हूँ। यह बात देवताओं ने भी स्वीकार कर ली।

एक दिन, सायंकल के समय इन्द्र ने वृत्रासुर को समुद्र तट पर देखा। इन्द्र ने सोचा कि इस समय दिन-रात कुछ भो नहीं है, इसलिए इसे मार देना ही ठीक है। यह निश्चय कर इन्द्र ने अपने वज्र से समुद्र का फेन खींच कर वृत्रासुर पर मारा, विष्णु वज्र के भीतर प्रविष्ट थे ही, इसलिए उसे मारने में देर न लगी। तब सम्पूर्ण प्रजा प्रसन्न हो उठी। तभी इन्द्र को ब्रह्महत्याएँ व्याप्त करने लगीं। उनके भय से व्याकुल हुए इन्द्र जल में जा कर रहने लगे। उस समय पृथिवी की हरियाली नष्ट होगई तथा घोर अराजकता और उपद्रवों का जोर बढ़ गया।

नहुष का स्वर्ग से उतरना

शल्य बोले—हे युधिष्ठिर ! इन्द्र के अदृश्य होने पर देवताओं ने राजा नहुष को अपना राजा बनाया, तब राजा नहुष विषयी हो गए और देवकन्याओं के साथ इच्छित विहार करने लगे।

तभी उन्होंने एक दिन इन्द्राणी शचि को देखा तो बोले कि मैं इन्द्र हूँ, फिर यह इन्द्राणी मेरे पास क्यों नहीं आती? जब इन्द्राणी ने नहुष की आज्ञा सुनी तो उसने बृहस्पतिजी से कहा—ब्रह्मन् ! इस कामात्मा से मेरी रक्षा करिये। बृहस्पति बोले—देवि ! डरो मत, मैं तुम्हें इन्द्र से शीघ्र मिला दूँगा। उधर नहुष ने सुना कि शचि बृहस्पति की शरण में गई है, तो वे बहुत क्रोधित हुए और बोले—इन्द्राणी तुरन्त मेरे पास आजाय। तब ऋषियों और देवताओं ने आश्वासन दिया कि हम उसे शीघ्र ले आवेंगे।

यह कह कर ऋषि और देवता बृहस्पतिजी के पास जाकर बोले—भगवन् ! नहुष इन्द्राणी को चाहते हैं इसलिए वे भी उन्हें पतिरूप में स्वीकार कर लें, इसी में हम सब की भलाई है। इन्द्राणी ने रोते हुए कहा—मैं नहुष को पति नहीं मान सकती, मेरी रक्षा कीजिए। बृहस्पति बोले—मैं शरणागत का त्याग कभी नहीं करता। फिर भी तुम्हें स्पष्ट विरोध से बचने का एक उपाय बताता हूँ कि नहुष से कुछ समय माँग लिया जाय। इसके लिए इण्द्राणी नहुष के पास जाकर स्वयं कहें कि मुझे इतना समय दिया जाय। इसके बाद मैं तुम्हारी आज्ञा मान लूँगी। यह बात सभी ने मान ली और तब इन्द्राणी नहुष के पास गई, जिसे देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उससे शचि ने कहा—देवराज ! मैं इन्द्र का पता लगाने के लिए कुछ समय माँगती हूँ। यदि उनका पता उस अवधि में न लगा तो आपकी आज्ञा स्वीकार कर लूँगी।

नहुष ने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा, कुछ समय देना मुझे स्वीकार है। यह सुन कर इन्द्राणी बृहस्पति के पास लौट गई। तब सभी देवता इन्द्र से मिलने के लिए व्यग्र होकर भगवान् की शरण में जाकर इन्द्र की ब्रह्महत्या दूर होने का उपाय पूछने लगे। विष्णु ने कहा—पवित्र अश्वमेध यज्ञ में मेरी आराधना

हो तो वह पाप से छूट सकते हैं। उधर नहुष अपने पाप से स्वयं नष्ट होजायगा। तब देवताओं ने इन्द्र को खोज कर उन्हें भगवान् का संदेश दिया। उन्होंने यज्ञ की दीक्षा ली और ब्रह्महत्या को नदी पर्वत, वृक्ष, स्त्री और धरती में बाँट दी और तब ब्रह्महत्या से मुक्त होकर अनुकूल समय की प्रतीक्षा करने लगे।

इधर नहुष ने इन्द्राणी से मिलने की पुनः इच्छा प्रकट की तो देवगण उसे उसके पास ले आये। नहुष ने कहा—सुन्दरी ! अब मेरी इच्छा पूरी करो। इन्द्राणी बोली—मैं तैयार हूँ। किन्तु तुम ऋषियों के कन्धों पर रखी हुई पालकी पर चढ़ कर आना तब तुम्हारा इच्छित पूर्ण करूँगी। नहुष बोला–ऐसा ही करूँगा तब उसने ऋषियों को पालकी में लगाया। जब वे उस पालकी को उठा कर चलते हुए थक गए. तब उन्होंने नहुष से पूछा—ब्रह्माजी कृत गोप्रोक्षण के मंत्रों को आप प्रमाण मानते हैं या नहीं ? नहुष ने कहा—कदापि नहीं। ऋषियों ने कहा—आप पूर्व महर्षियों के वचनों को न मान कर अधर्म की बात करते हैं, यह सुन कर उसने महर्षि अगस्त्य के शिर में लात मार दी। तभी महर्षि ने क्रोध पूर्वक कहा—दुष्ट ! तू तेजहीन होकर पृथिवी पर गिर। वहाँ दस हजार वर्ष तक अजगर बना रह कर फिर स्वर्ग में आयेगा। इस प्रकार नहुष का तुरन्त पतन होगया और देवताओं ने इन्द्र को लाकर स्वर्ग के सिंहासन पर बैठा दिया। इस प्रकार इन्द्र और इन्द्राणी दोनों का संकट दूर होगया।

शान्ति-स्थापन के प्रयास

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! इस प्रकार इन्द्र का वृत्तान्त सुना कर राजा शल्य ने युधिष्ठिर को सान्त्वना दी और उनसे विदा लेकर दुर्योधन के पास चले गये। तत्पश्चात् सहायता के लिए अनेकानेक राजा आकर अपने-अपने पक्ष में जा

मिले। इस प्रकार पाण्डवों के पक्ष में सात अक्षौहिणी और दुर्योधन के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्र होगई।

तत्पश्चात् राजा द्रुपद का भेजा हुआ पुरोहित दूत कौरवों की सभा में जाकर बोला—राजन्! आप और पाण्डु एक ही पिता के पुत्र हैं। पैतृक सम्पत्ति में दोनों का ही समान भाग है, अतः पाण्डवों का भाग उन्हें मिलना चाहिए। इसलिए आप उन्हें धर्म और न्याय अनुसार आधा राज्य दे दीजिये। फिर कोई झगड़ा नहीं रहेगा।

भीष्म ने दूत की बात का अनुमोदन किया। किन्तु कर्ण ने कहा कि वे विराट और द्रुपद के बल पर राज्य लेना चाहते हैं यह उनकी भूल है। यदि वे युद्ध की इच्छा करते हैं तो सामना होने पर उन्हें पछिताना होगा। भीष्म बोले—कर्ण! यह निरी बकवाद है। अभी अकेले अर्जुन ने हम छः महारथियों को पराजित कर दिया था। यदि हम ब्राह्मण की बात न मानेंगे तो पाण्डवों को नहीं, तुम्हें पछिताना पड़ेगा। यह सुन कर धृतराष्ट्र ने कर्ण को चुप रहने के लिए कहकर उस ब्राह्मण दूत को सत्कार पूर्वक वापस भेजा और संजय को बुला कर कहा—संजय! तुम अभी पाण्डवों के पास जाओ। उनसे कुशलक्षेम पूछ कर कहना कि तुम्हारे वन से नगर में आने का वृत्तान्त जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं चाहता हूँ कि युद्ध न करके सन्धि का ही प्रयत्न किया जाना चाहिए। यदि कृष्ण चाहें तो यह संभव है, क्योंकि उनकी बात को युधिष्ठिर कभी नहीं टालेंगे।

राजा धृतराष्ट्र के मनोभावों को समझ कर संजय तुरन्त वहाँ से चल कर पाण्डवों के पास पहुँचे। उन्होंने कुशल-प्रश्न के पश्चात् राजा धृतराष्ट्र का संदेश देकर कहा—हे राजन्! भीष्म पितामह और राजा धृतराष्ट्र यही चाहते हैं कि विरोध सदा के लिए मिट जाय। युधिष्ठिर बोले—सूत! महाराज का विचार

अच्छा है। यदि मेल से कार्य निकल आये तो युद्ध कौन चाहेगा? किन्तु मुझे वनवास देकर समूचे राज्य को वे स्वयं हड़प लेना चाहते हैं तो विरोध कैसे शान्त होता ? मैं भी युद्ध नहीं, मेल ही चाहता हूँ। बस, मुझे मेरा इन्द्रप्रस्थ का राज्य मिल जाय तो फिर विग्रह का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। इस पर भी श्रीकृष्ण जो कुछ कहें, वह मुझे पूर्णतः मान्य है, क्योंकि यह मेरे परम प्रिय हैं।

तभी श्रीकृष्ण बोले—हे संजय ! मैं भी यही चाहता हूँ कि युद्ध न हो और कौरव-पाण्डव में मेल होकर शान्ति रही आवे। तुम महाराज धृतराष्ट्र से कह देना कि पाण्डव युद्ध और सन्धि दोनों के लिए ही तैयार हैं। युद्ध तभी होगा, जब वे आधा राज्य देने को तैयार नहीं होंगे। यह सुन कर संजय युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर महाराज धृतराष्ट्र के पास लौट आये। उन्होंने वहाँ की सब बातें बता कर अन्त में कहा कि महाराज ! पाण्डव युद्ध नहीं करना चाहते। यदि उन्हें इन्द्रप्रस्थ का राज्य लौटा दिया जाय तो वे शान्त हो जाँयगे। इसलिए राजन् ! युधिष्ठिर का प्रस्ताव मान लेना ही श्रेयस्कर है।

धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाकर उनका विचार जानना चाहा, विदुर ने पाण्डवों के गुणों और दुर्योधन के अवगुणों की ओर ध्यान खींच कर अन्त में कहा—महाराज ! राजा पाण्डु के पश्चात्, उनके पुत्रों को आपने ही पाला और शिक्षित किया। वे इस समय भी आपकी आज्ञा-पालन के लिए तैयार हैं। उनके भाग का राज्य उन्हें देकर निश्चिन्त होजाने में ही बुद्धिमानी है। यदि आप ऐसा न करेंगे तो सर्वत्र आपकी निन्दा होगी। राजन् ! सरल व्यवहार करना तीर्थयात्रा से भी अधिक है। इसलिए आपको पाण्डवों के साथ सरल व्यवहार करना चाहिए, जिस प्राणी की जब तक इस लोक में शुभ कीर्ति रहती है, तभी

तक वह स्वर्ग में सुख पाता है। यहाँ मैं आपको एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ।

एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी, उसका नाम केशिनी था। दैत्य विरोचन ने उसकी कामना कर, उससे कहा—हे सुभ्रू ! तुम मुझे स्वीकार कर लो। केशिनी बोली—ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अथवा दैत्य ? सुधन्वा ने मुझसे पहले प्रार्थना की है तो मैं उन्हें क्यों न वरण करूँ ? विरोचन बोला - देवता और ब्राह्मण क्या हैं ? हम प्रजापति द्वारा उत्पन्न होने के कारण सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर यह सम्पूर्ण लोक भी हमारे ही हैं। केशिनी बोली—प्रातःकाल सुधन्वा भी यहाँ आवेंगे, तब तक तुम भी यहीं ठहरो। मैं दोनों की एक साथ परीक्षा करूँगी।

प्रातःकाल सुधन्वा और विरोचन दोनों का ही केशिनी ने स्वागत किया। तब सुधन्वा ने विरोचन से कहा—तुम्हारे स्वर्णासन को मैं छूकर स्वीकार करता हूँ पर एक आसन पर तुम्हारे साथ बैठ नहीं सकता। विरोचन बोला--तुम्हें तो कुश या काष्ठ का आसन चाहिए, तुम मेरे साथ स्वर्ण के आसन पर नहीं बैठ सकते। सुधन्वा ने कहा—विरोचन ! पिता-पुत्र, ब्राह्मण-ब्राह्मण, क्षत्रिय क्षत्रिय, शूद्र-शूद्र और वृद्ध-वृद्ध भी एक आसन पर बैठ सकते हैं किन्तु उच्च और नीच एक आसन पर कभी नहीं बैठ सकते। देखो तुम्हारे पिता प्रह्लाद भी मुझसे नीचे ही बैठते हैं। किन्तु बालक होने के कारण तुम्हें अभी इसका ज्ञान नहीं है।

विरोचन बोला—सुधन्वा ! मैं स्वर्ण, अश्व, गोधन आदि को दाँव पर लगाता हूँ। चलो, किसी विज्ञ पुरुष से पूछें। सुधन्वा ने कहा—स्वर्ण, अश्वादि धन तुम्हारे पास ही रहें, यदि बाजी लगानी है तो प्राणों की बाजी लगा कर ही विज्ञों से पूछने चलें। विरोचन ने कहा—किस से पूछेंगे ? किसी देवता या मनुष्य पर तो मैं विश्वास नहीं करता। सुधन्वा बोला—तुम्हारे पिता प्रह्लाद को ही निर्णायक बना लिया जाय।

तब वे दोनों, प्राणों की बाजी लगाकर प्रह्लाद के पास पहुँचे उन्होंने कहा—दैत्यराज ! हम प्राणों की बाजी लगाकर यह पूछने आये हैं कि हम दोनों में श्रेष्ठ कौन है ? प्रह्लाद बोले—सुधन्वा ! तुम ब्राह्मण होने के कारण पूजनीय हो। तुम्हारी पूजा के लिए मैं जल, मिष्ठान्न और गौ मँगा रहा हूँ। सुधन्वा ने कहा—आप हमारे विवाद का निर्णय कीजिये। प्रह्लाद बोले—मेरे एक ही पुत्र है तो भी निर्णय तो देना ही होगा। विरोचन ! सुधन्वा तुम से श्रेष्ठ हैं, तुन इनसे हार गए। सुधन्वा बोला—दैत्यराज ! तुम धर्मज्ञ हो। तुमने पुत्र का पक्ष न लेकर सत्य निर्णय दिया है। इससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे पुत्र को प्राणदान देता हूँ और केशिनी को भी इन्हीं की पत्नी बनाता हूँ।

विदुर बोले—हे राजन् ! इसलिए आप भी पृथिवी के लिए मिथ्यावादी न बनें। क्योंकि ऐसा करने वाला मनुष्य कुल सहित नष्ट हो जाता है। हे राजन् ! कौरव-पाण्डवों का हित भी इसी में है कि वे परस्पर कठोर वचनों को छोड़ें तथा मित्र को मित्र और शत्रु को शत्रु मानें। इस प्रकार स्वजनों को आश्रय देना ही श्रेयस्कर है। हे नरश्रेष्ठ ! पाण्डवगण सत्य के आश्रित हैं, आप दुर्योधन को शान्ति के मार्ग में लगा कर विनाशकारी युद्ध को रोकिये, हे राजन् ! चिता पर चढ़ कर भस्म हुए पुरुष के साथ उसका किया हुआ कर्म ही जाता है। इसलिए वही कर्म करे, जिससे धर्म का उपार्जन हो सके। आपके दोष से युधिष्ठिर प्रजापालन रूपी क्षत्रिय धर्म के पालन में समर्थ नहीं होरहे हैं, अब उन्हें अपना धर्म पालन करने दीजिए।

धृतराष्ट्र बोले—हे विदुर ! तुमने इतनी अद्‌भुत बातें कह दी हैं। अभी कुछ और कहने को शेष हो तो वह भी कह दो। विदुर ने कहा—राजन् ! महर्षि सनत्सुजात ऋषि का कथन है कि मृत्यु नामक कोई वस्तु नहीं है। इस विषय में आप उन

ऋषियों से ही उपदेश ग्रहण कीजिये। धृतराष्ट्र बोले–हे विदुर! उन ऋषियों से सम्पर्क किस प्रकार हो? तुम ही उनसे मिलने का उपाय करो।

यह सुन कर विदुर ने सनत्सुजात ऋषि का ध्यान किया, तभी वे वहाँ आगए। पूजनादि से संस्कृत होकर जब वे बैठ गए, तब विदुर ने उनसे कहा—ब्रह्मन्! महाराज धृतराष्ट्र के मन में कुछ शंका है, उसका समाधान करने की कृपा कीजिए। सनत्सुजात बोले—राजन्! पूछो, क्या पूछना चाहते हो? धृतराष्ट्र ने कहा—प्रभो! आप मृत्यु को कोई वस्तु नहीं मानते, किन्तु देव-दैत्यों ने मृत्यु का भय दूर करने के विचार से ब्रह्मचर्य धारण किया था। इनमें क्या ठीक है, यह बताइये।

ऋषि बोले–धृतराष्ट्र! कुछ लोग मृत्यु को मानते हैं, किन्तु उसका भय दूर होसकना भी स्वीकार करते हैं। कुछ लोगों के मत में मृत्यु नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। यह दोनों विचार ठीक हैं विज्ञजन मोह को मृत्यु मानते हैं। मैं प्रमाद को मृत्यु और सावधानी को अमरत्व मानता हूँ। क्योंकि प्रमाद से दैत्य पराजित एवं मृत्यु के वश में हुए और अप्रमाद से देवता अमरत्व को प्राप्त होगये। मृत्यु का रूप किसी ने अभी तक नही देखा। कुछ लोग यमराज को मृत्यु और ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मचर्य अमरत्व मानते हैं। क्योंकि यमराज पितर लोक में निवास करते हुए सभी का शासन करते हैं। वे पापियों के लिए अमंगल और पुण्यात्माओं के लिये मंगल स्वरूप हैं।

हे राजन्! मृत्यु के चंगुल में न फंसने वाला पुरुष आत्म-चिन्तन द्वारा वासना को नष्ट कर देता है। उसके लिये वासना-नाश ही अमरत्व है। किन्तु, विषयासक्त पुरुष के लिए वासना का नाश ही मृत्यु है। क्योंकि विषयासक्ति से विवेक रूप प्रकाश

बुझ कर अन्धकार ही अन्धकार रह जाता है। इस प्रकार काम्य विषय का त्याग ही वासना क नाश का मूल है। अपने अन्तर में स्थित जीवात्मा ही क्रोध, लोभ, भय और मोहादि के कारण मृत्यु रूप हो जाता है। किन्तु विज्ञ पुरुष मृत्यु को इस प्रकार उत्पन्न हुई समझ कर उससे भयभीत नहीं होते। काल के द्वारा शरीर के नष्ट होने के समान ही मृत्यु भी ज्ञानयोग के द्वारा नष्ट हो जाती है।

हे राजन्! यह संसार उसी ब्रह्म के नाम आदि रूपों से प्रकाशित है। वेद भी संसार को ब्रह्म से भिन्न मानता है। ब्रह्म की प्राप्ति तप और यज्ञ से हो सकती है। इन्हीं से पुण्य की प्राप्ति होती है। फिर आत्मज्ञान के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इस लोक में किये हुए तप का फल परलोक में मिलता है, पर तप को अवश्य कर्त्तव्य मान कर तपस्या करने वाले ब्राह्मण अपने कर्म का फल इसी लोक में प्राप्त कर लेते हैं।

हे राजन! ब्रह्मज्ञानी का हृदय निन्दा सुन कर संताप को प्राप्त नहीं होता। उसे वेदाध्ययन में मन न लगने या अग्निहोत्र न करने का भी सन्ताप नहीं होता। ब्रह्मज्ञान युक्त योगी ही उस सनातन पुरुष के साक्षात्कार का लाभ उठाते हैं। उन्हें कभी शोक नहीं होता। जो वासना में अनुरक्त हैं, वही शोकाकुल रहते हैं। वेदों से आत्मज्ञानी की अभीष्ट सिद्धि होती है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्रह्म सभी के अन्दर विराजमान है। इस प्रकार की ज्ञानवार्ता का लाभ उठाने में ही वह रात्रि व्यतीत होगई।

युद्ध न करने का दुर्योधन का उपदेश

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! प्रातः काल होने पर राजसभा जुड़ी। धृतराष्ट्र की आज्ञा से सभी राजागण संजय

की बातें सुनने के लिए अपने-अपने स्थान पर जा बैठे। तभी संजय ने आकर कहा—कौरवगण ! मैं पाण्डवों के पास जाकर लौट आया हूँ। आप उनके वचन सुनिये। उन्होंने सर्व प्रथम अवस्थानुसार सभी कौरवों को प्रणामादि सत्कार वचन कहे हैं। युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने कहा है कि यदि दुर्योधन महाराज युधिष्ठिर को उनका राज्य नहीं लौटायेंगे तो मैं समझूँगा किअभी कौरवों का पूर्व जन्म का किया हुआ कोई पाप शेष रहगया है। उसका फल युद्ध के द्वारा नष्ट होने के रूप में उन्हें प्राप्त होगा।जब कौरव सेना में घुस कर भीमसेन धृतराष्ट्र-पुत्रों का संहार करेंगे, तब दुर्योधन को अवश्य अपने कृत्य पर पछिताना होगा।

संजय के चुप होते ही भीष्म पितामह ने कहा—हे दुर्योधन ! अर्जुन और कृष्ण नर-नारायण नामक वही ऋषि हैं, जिन्होंने इन्द्र की प्रार्थना पर असंख्य असुरों को पराजित किया था। जब घोर युद्ध की आवश्यकता होती है, तब यह दोनों अवतार लेकर दुष्टों का विनाश करते हैं। इसलिए इनसे वैर करना अच्छा नहीं है। किन्तु तुमने हीन जाति के सूतपुत्र कर्ण, शकुनि और दुःशासन को अपना मंत्री बनाया हुआ है। वे तुम्हें युद्ध के लिए उकसाते रहते हैं। कर्ण ने कहा—पितामह ! आप बार बार ऐसी अनुचित बातें कहते रहते हैं। किन्तु मैं क्षात्रधर्म-पालन का ही परामर्श देता रहता हूँ और उनका प्रिय करने क लिए अपने प्राण भी दे सकता हूँ।

धृतराष्ट्र बोले—हे संजय ! युद्ध के लिए एकत्रित होती हुई हमारी अपार सेना के विषय में युधिष्ठिर के क्या विचार हैं, वह बताओ। संजय ने कहा—महाराज ! उस पक्ष के सभी राजे-महाराजे युधिष्ठिर से युद्ध की आज्ञा प्राप्त होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन पर आपकी सेना का कोई प्रभाव नहीं होता। उस पक्ष में जितने वीर हैं, वे सभी दुर्धर्ष और दुर्जय हैं। धृष्टद्युम्न,

केकय देश के पाँच महारथी राजकुमार, सात्यकि, विराट, काशिराज, महात्मा श्रीकृष्ण, चेदिपति के भाई शरभ और करकर्ष, जरासन्ध-पुत्र सहदेव, राजा द्रुपद तथा पूर्व और उत्तर दिशाओं के असंख्य राजा पाण्डवों की ओर से लड़ने के लिए तैयार खड़े हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—संजय ! तुम ठीक कहते हो. परपक्ष के सभी वीर दुर्धर्ष और अजेय हैं, उनका सामना कौरवपक्ष कदापि नहीं कर सकता। मैं समझ रहा हूँ कि यह सब लोग मेरे पुत्रों को मारने में सफल हो जांयगे। देखो, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और उनके पुत्रादि का अपार बल कौरवकुल को नष्ट कर डालेगा। हे पुत्रो ! पाण्डवों से युद्ध न करना ही उचित है, अन्यथा कौरवकुल का नाश हो जायगा। मेरी सम्मति में सन्धि ही श्रेयस्कर है। यदि तुम स्वीकार करो तो मैं इसके लिए प्रयत्न करूँ। मुझे सन्धि से ही शान्ति मिल सकती है।

दुर्योधन बोला—महाराज ! आप चिन्ता न करें। हम अवश्य ही शत्रुओं को हरा देंगे। पहले यह सब पृथिवी उनके हाथ में थी, जिसे हमने उनसे ले लिया है। अब वे पाण्डव बल-वीर्य हीन और सहायता-रहित हैं और समूची पृथिवी भी मेरे अधीन है। जिन राजाओं ने मेरा पक्ष स्वीकार किया है, वे मेरे हितार्थ समुद्र में या अग्नि में भी कूदने के लिए तैयार हैं। वे आपको शोकयुक्त प्रलाप करते हुए देख कर हमारी हँसी उड़ा रहे हैं। इन राजाओं में प्रत्येक वीर युद्धकला में निपुण और पाण्डवों के समान अथवा उनसे भी अधिक पराक्रमी हैं, इसलिए आप इस भय को मन से दूर कर दीजिए कि कौरवगण हार जाँयगे। देखिये, यह मेरी अपार सेना का ही प्रभाव है कि जिससे डर कर युधिष्ठिर अब नगरों को छोड़ कर पाँच ग्राम ही लेकर सन्धि करने के लिए तैयार हैं। आपको मेरा प्रभाव नहीं मालुम है,

इसीलिए आपको अपनी निर्बलता का भ्रम होगया है। हमने पाण्डवों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली है, इसलिए युद्ध से पीछे हटने का प्रश्न ही शेष नहीं रहा है। अतः आप खेद को छोड़ कर निश्चित हो जाइये।

धृतराष्ट्र बोले—हे संजय ! दुर्योधन जो कुछ कह रहा है, उसे मैं पागल के प्रलाप जैसा ही समझता हूँ। यह युद्ध में उन्हें कदापि नहीं हरा सकता। यह अग्नि में घृत डालने के समान व्यर्थ ही उनके क्रोध को बढ़ा रहा है। दुर्योधन ! तू मेरा कहना मान कर युद्ध का विचार त्याग दे। पाण्डवों को उनका भाग दे देना न्याय संगत भी है। पुत्र ! तुम अपनी सेना को देखो, यह तुम्हारे ही सर्वनाश के लिए एकत्रित हुई है। मैं जानता हूं तुम अपनी इच्छा से युद्ध नहीं करना चाहते, वरन तुम्हें कर्ण, दुःशासन और शकुनी इसके लिए उत्तेजित करते हैं।

दुर्योधन बोला—पिताजी ! मैं अपने इन्हीं वीरों के बल पर युद्ध के लिए तैयार हुआ हूँ। मैं रणभूमि में आत्मयज्ञ के अनुष्ठान से यमराज को प्रसन्न करके शत्रुओं को नष्ट कर दूँगा और तब निष्कंटक राज्य श्री को प्राप्त करके अपने नगर में लौटूँगा। हे महाराज ! चाहे मेरा सर्वस्व चला जाय, किन्तु पाण्डवों से सन्धि कदापि नहीं करूँगा।

धृतराष्ट्र बोले—उपस्थित राजागण ! अब मैं इसे इसके भाग्य के भरोसे छोड़ता हूँ। मुझे तुम लोगों के लिए भी शोक है, जो इसके पीछे यमपुरी मार्ग पर चल रहे हो। दुर्योधन ! यदि पाण्डवों से तुमने सन्धि न की तो भीम की गदा तुम सब को पीस डालेगी। मेरा कथन तुम्हें अब तो बुरा लग रहा है, पर बाद में याद आवेगा। यह कह कर धृतराष्ट्र चुप होगए।

कर्ण ने कहा- मैंने अपने को ब्राह्मण बता कर परशुरामजी से ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था। किन्तु बाद में मेरा छल खुल गया,

तब परशुरामजी ने कहा कि अन्त समय आने पर तू मेरे ब्रह्मास्त्र आदि सब शस्त्रों को भूल जायगा। तत्पश्चात् मैंने सेवा करके परशुरामजी को पुनः प्रसन्न कर लिया। मुझे वे सब शस्त्रास्त्र अभी भी याद हैं, इससे समझता हूँ कि मेरा अन्तकाल अभी नहीं आया है। इस प्रकार मुझे विश्वास है कि मैं अर्जुन को अवश्य मार दूँगा। इस प्रकार भीष्म बोले—कर्ण! तेरी बुद्धि काल के प्रभाव से भ्रष्ट होगई है। क्या तू यह नहीं जानता कि जब तू मर जायगा, तब यह धृतराष्ट्र पुत्र भी मारे जाँयगे। बाणासुर और भौमासुर का संहार करने वाले श्रीकृष्ण जिस अर्जुन के रक्षक हैं, उन्हें तू क्या खाकर मार सकेगा?

कर्ण बोला-श्रीकृष्ण की श्रेष्ठता में कोई सन्देह नहीं है, किन्तु पितामह के कठोर शब्दों के फल स्वरूप मैं शस्त्रों को रखे देता हूँ, अब मैं युद्ध में अथवा सभा में कहीं भी दिखाई नहीं दूँगा। जब पितामह युद्ध में काम आजाँयगे, तभी मैं अपने बल-पराक्रम को प्रदर्शित करूँगा। यह कह कर कर्ण वहाँ से चला गया। तब पितामह बोले—दुर्योधन! कर्ण ने प्रतिज्ञा की है कि वह मेरे मरने पर ही शस्त्र उठावेगा। इससे वह समझता है कि उसके रक्षा-भार से पृथक् होने पर भीमसेन कौरवों के शिर काट लेगा, किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि शत्रुसेना के सहस्रों वीरों के शिर मैं नित्य प्रति काटूँगा।

भीष्म की प्रतीज्ञा सुन कर, दुर्योधन ने कहा—पितामह! पाण्डव और हम एक ही वंश में उत्पन्न हुए हैं, तब पाण्डवों की विजय होने की ही आशा क्यों की जाय? आप, द्रोणाचार्य कृपाचार्य या अन्यान्य राजाओं के बल भरोसे पर मैं नहीं लड़ रहा हूँ वरन् कर्ण, दुःशासन और मैं, तीन ही उन पाण्डवों को मारने में समर्थ हैं।

विदुर बोले—महाराज ! इस लोक में दम गुण ही सर्व श्रेष्ठ कहा गया है। उसकी प्राप्ति दान, तप और शास्त्रज्ञान से होती है। जिनमें यह गुण नहीं, वे भयंकर होते हैं। विधाता ने क्षत्रियों की उत्पत्ति उन्हीं को नष्ट करने के लिये की है। किन्तु जाति-बन्धुओं से वैर न बढ़ा कर सन्धि करने में ही भलाई है। राजन्! पाण्डवों को अपने अंक में स्थान दीजिये। यह कौन कह सकता है कि युद्ध में किसकी विजय होगी। देखिये, अनीति वाला पक्ष सदा हारता है।

तभी संजय से धृतराष्ट्र ने कहा—संजय ! हमारी और पाण्डवों की सेनाओं में कौन-कौन राजा श्रेष्ठ और निकृष्ठ हैं, यह बताओ। संजय बोला—महाराज ! मेरा निवेदन है कि आप महात्मा वेदव्यासजी और महारानी गान्धारी को बुलाइये, तब उनके समक्ष मैं आपसे अर्जुन और श्रीकृष्ण के विषय में कुछ कहूँगा। यह सुन कर विदुरजी उन दोनों को लिवा लाये तब उनकी आज्ञा पाकर संजय ने अर्जुन और श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन किया। जिसे सुनकर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा—पुत्र ! तुम शीघ्र ही जगदीश्वर श्रीकृष्ण को प्रसन्न करो। दुर्योधन बोला—यदि श्रीकृष्ण अर्जुन की मित्रता के कारण त्रिलोकी को नष्ट करने लगें तब भी उनकी शरण में नहीं जा सकता।

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहा—देवि! यह दुर्मति दुर्योधन किसी का उपदेश नहीं मानता, इससे प्रतीत होता है कि इसकी मृत्यु आगई है। गांधारी बोलीं—दुष्ट ! तू वृद्ध पुरुषों की अवहेलना कर मुझे शोक से सन्तप्त करने को प्रस्तुत है। जब भीम की गदा तेरे प्राणों को पृथक् कर देगी, तब तुझे अपने पिता की बात याद आयेगी। इसके बाद व्यासजी ने भी उसे समझाया कृष्ण-महिमा का वर्णन किया।

दूत बन कर श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर गमन

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! उधर युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण से निवेदन किया—हे मित्र वत्सल ! इस संकट-काल से उबारने वाला कोई अन्य व्यक्ति दिखाई नहीं देता। आपके ही बलबूते पर हमने दुर्योधन से अपना भाग प्राप्त करने की आशा की है। इसलिए अब हमारे लिये जो हित कर कार्य हो वह कीजिए। श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मुझे जो कुछ आज्ञा हो उसका तुरंत पालन करने के लिए तैयार हूँ। युधिष्ठिर ने कहा—वासुदेव ! राजा धृतराष्ट्र हमारे पूज्य एवं माननीय हैं। किन्तु पुत्रस्नेह के कारण वे दुष्ट दुर्योधन के हाथों का खिलौना बन गये हैं। अब हमें क्या उपाय करना चाहिए, जिससे कि हमारा धर्म, अर्थ और काम नष्ट न हो सके।

श्री कृष्ण बोले--राजन् ! मैं दोनों पक्षों की भलाई के लिए कौरव-सभा में जाकर शान्ति-स्थापना का प्रयत्न करूँगा। युधिष्ठिर ने कहा—केशव ! वहाँ इस समय दुर्योधन के अनुगामी बहुत से राजागण एकत्र हैं, उनके मध्य आपका जाना मैं उचित नहीं समझता। क्योंकि उससे यदि आपका कुछ अनिष्ट होगया तो हम सर्वस्व प्राप्त करके भी सुखी नहीं होंगे। भगवान् बोले—महाराज ! दुर्योधन की पाप-बुद्धि मुझसे छिपी नहीं है। किन्तु आप चिन्ता न करें। कुपित सिंह के सामने मृग कभी नहीं ठहर सकते। यदि उन्होंने मेरे साथ कोई अनुचित कार्य किया तो मैं उन्हें भस्म कर दूँगा। युधिष्ठिर बोले—तो जैसा आप उचित समझें, वैसा करें। सन्धि या युद्ध जो कुछ भी आप निश्चय करेंगे वह मुझे सर्वथा मान्य होगा।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी से पृथक्-पृथक् परामर्श कर अपना जाना निश्चित किया और कार्तिक मास में, रेवती नक्षत्र और मैत्र मुहूर्त में यात्रा

प्रारम्भ की। उस समय ब्राह्मणों ने स्वत्ययन पाठ और हवन किया तब श्रीकृष्ण ने सूर्य की उपासना कर बैल की पूँछ को स्पर्श कर और ब्राह्मणों को प्रणाम कर अग्नि-प्रदक्षिणा की और रथ पर सवार होगए। उनके पीछे की ओर सात्यकि बैठे। तब दस महारथी, एक सहस्रपदाति और एक सहस्र अश्वारोही तथा सैकड़ों सेवक आदि भी उनके साथ चले। यद्यपि चलते समय कुछ अपशकुन दिखाई दिये, किन्तु मार्ग में सहस्रों ब्राह्मणों ने उनका स्तुति आदि से सत्कार किया तथा अनेकानेक स्त्रियों ने सुगन्धित पुष्पों की वर्षा की।

राजा धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के आगमन की बात जान कर मार्ग में स्थान-स्थान पर ठहरने, खाने-पीने आदि की सुन्दर व्यवस्था की। हस्तिनापुर को अलकापुरी के समान सुसज्जित किया। फिर विदुर से कहा—कल प्रातःकाल जनार्दन यहाँ आ जाँयगे। मैं उनकी पूजा करना चाहता हूं। उन्हें चार-चार श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त सोलह स्वर्ण मण्डित रथ, आठ गजराज, सौ-सौ दास-दासियाँ, अठारह हजार मेष और हजार अश्व उन्हें भेंट करूँगा। मेरे सभी पुत्र-पौत्र और वृद्धजन उनका स्वागत करेंगे। सभी आबाल-वृद्ध प्रजाजन उनका दर्शन कर धन्य होंगे। दुःशासन का भवन, दुर्योधन के भवन से अधिक श्रेष्ठ है, इसलिए उसे भले प्रकार सजा कर उसी में उनके ठहरने की व्यवस्था की जायगी।

तभी दुर्योधन बोला—पिताजी! आपने सत्कारार्थ श्रीकृष्ण को जो कुछ देना विचारा है, वह नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे वे यह समझेंगे कि कौरवगण मुझसे डर कर ही मेरा पूजन कर रहे हैं। जिस कार्य में अपना अपमान निहित हो वह कार्य कदापि न करे। यद्यपि श्रीकृष्ण सब के पूजनीय हैं, किन्तु जब

परस्पर का युद्ध रुक ही नहीं सकता, तब उनका पूजन करना भी व्यर्थ है।

यह सुन कर भीष्म ने कहा—सत्कार करो या न करो, किन्तु उनका निरादर न कर बैठना। क्योंकि उनके निश्चय को टालना किसी के वश की बात नहीं है। वे जो कुछ कहें, वही हम सबका कर्त्तव्य है। मेरी सम्मति है कि उन्हीं को मध्यस्थ बनाकर सन्धि कर लेना ठीक है। दुर्योधन बोला मुझे पाण्डवों से सन्धि करके समूची धरती भी मिलती हो, तो नहीं चाहिए। वरन् मेरा विचार तो यह है कि कृष्ण पाण्डवों के प्रमुख सहायक हैं, इसलिए उन्हें पकड़ कर वंदीगृह में डाल देना चाहिए। फिर पाण्डव और यादव सभी मेरे अधीन हो जाँयगे।

दुर्योधन का यह ओछा अभिप्राय जान कर व्यथित हुए धृतराष्ट्र ने कहा—पुत्र ! श्रीकृष्ण प्रथम तो हमारे प्रिय सम्बन्धी हैं, उस पर भी दूत रूप में यहाँ आ रहे हैं। उन्होंने कौरवों का अनिष्ट चिन्तन भी कभी नहीं किया। फिर तुम ऐसे अधर्म के विचार क्यों रखते हो ? भीष्म बोले—धृतराष्ट्र ! यह तो बड़ा अधर्मी और मूर्ख है। समझाने पर भी सही मार्ग पर नहीं चलना चाहता। यदि इसने ऐसा किया तो भगवान् वासुदेव की क्रोधाग्नि में भस्म होने से नहीं बचेगा। मैं ऐसे अनर्थ की बातें सुनना भी पाप समझता हूँ। यह कह कर भीष्म पितामह तत्काल सभा से चले गये।

हस्तिनापुर में विदुर का आतिथ्य ग्रहण

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! प्रातःकाल जब श्रीकृष्ण राजमार्ग द्वारा निकलते हुए धृतराष्ट्र के भवन में पहुँचे, तब इन्द्रप्रस्थ के सब प्रजाजन उत्साह से उमड़ पड़े और ऊँचे-ऊँचे भवनों पर खड़ी हुई महिलाएँ उन पर पुष्पवृष्टि करने लगीं।

महात्मा धृतराष्ट्र उनके आपहुँचने का समाचार सुनते ही सिंहासन से उठ खड़े हुए तथा भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, सोमदत्त आदि सभी सभासद खड़े होकर उनकी अभ्यर्थना करने लगे। श्रीकृष्ण ने भी धृतराष्ट्र के साथ भीष्मादि का अवस्था और पद के अनुसार सम्मान किया और प्रदत्त आसन पर जा विराजे। फिर कुछ देर वार्तालाप करके विदुर के घर जा पहुँचे, वहाँ उन्होंने विदुर का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार किया।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने कुन्ती के पास जाकर प्रणाम किया तो कुन्ती ने उन्हें कण्ठ से लगा कर बिलखने लगीं। उन्होंने कहा—कृष्ण ! मेरे पुत्र राज्य से भ्रष्ट होकर वन में गये, तब मुझ रोती हुई को यहाँ छोड़कर मेरा हृदय साथ ले गए। वे सदा सुख में रहे और सुख में ही पले थे, इसलिए वनवास के योग्य नहीं थे। अब उन्हें क्रूर हिंसक जीवों के भयंकर शब्दों को सुनते हुए, वन की कठोर भूमि पर कैसे नींद आती होगी ? हे कृष्ण ! विदुर ने सदा धर्म लगती बात कही है। पर उनकी बात यह दुर्योधन नहीं चलने देता। हे वासुदेव ! मुझे सन्तोष है कि मेरे सभी पुत्र धर्म को कभी नहीं छोड़ते और उस धर्म के बल से ही उनकी विजय निश्चित है। मधुसूदन ! जिस द्रौपदी ने कभी दुःख का नाम भी न सुना होगा, उस द्रौपदी ने वन के घोर दुःखों को कैसे सहन किया होगा। यह कहती-कहती कुन्ती के नेत्रों में आँसू आ गये।

श्रीकृष्ण बोले—बुआजी ! संसार में आपके समान सौभाग्यशालिनी स्त्री कोई नहीं होगी। आप महाराज शूरसेन की पुत्री अजमीढ़ कुल की कुलवधु हैं। आपके पति तो वीर थे ही, पुत्र भी उनसे कम योद्धा नहीं हैं। द्रौपदी सहित सभी पाण्डव सकुशल हैं और वे शीघ्र ही शत्रुओं को नष्ट करके अतुल सम्पत्ति के

स्वामी होने वाले हैं। यह कह कर श्रीकृष्ण ने कुन्ती की प्रदक्षिणा की और दुर्योधन के घर पधारे।

भगवान् श्रीकृष्ण को देखते ही दुर्योधन ने मंत्रियों सहित उठ कर उनकी अभ्यर्थना की और उन्हें एक सुन्दर स्वर्ण-पर्यंक पर बैठाला। फिर दुर्योधन ने उनसे भोजन के लिए कहा तो। उन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब दुर्योधन बोला—जनार्दन! आपने हमारी भेंट और भोजनादि भी स्वीकार नहीं किया। इसका क्या कारण है ? कृष्ण बोले—कार्य में सफलता मिलने पर ही दूत भोजन किया करते हैं। जब मुझे अपने कार्य में सफलता मिल जायगी तब मैं और मेरे सब साथी आपका भोजन-पूजनादि स्वीकार करेंगे।

दुर्योधन बोला—वासुदेव! कार्य पूरा हो या न हो, हम सदा आपकी पूजा के लिए प्रस्तुत हैं। क्योंकि आप महाराज धृतराष्ट्र के माननीय सम्बन्धी और अत्यन्त प्रिय हैं। आपके लिए कौरव-पाण्डव दोनों ही समान हैं। आपके साथ हमारा कोई विरोध भी नहीं है। इसलिए आपको ऐसे वचन नहीं कहने चाहिए।

कृष्ण बोले—दुर्योधन! मैं काम, क्रोध, मोह, द्वेष या स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ सकता। पराया अन्न या तो आपत्काल में खाया जाता है या प्रीति होने पर। आपने मुझे प्रीतिपूर्वक भोजन के लिए नहीं कहा और न मैं किसी विपत्ति में ही फँसा हूँ। तब तुम्हारा भोजन क्यों करूँ ? तुम सगे भाइयों के समान पाण्डवों से अकारण वैर रखते हो, जबकि उनका किंचित् भी दोष नहीं है। जो पाण्डवों से वैर रखता है, वह मुझसे वैर रखेगा, क्योंकि मैं उनसे पृथक् नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि तुम किसी दूषित विचार से मुझे भोजन कराना चाहते हो, इसलिए मैं तुम्हारा अन्न न खाकर विदुर के यहाँ

भोजन करूँगा। यह कह कर श्रीकृष्ण तुरन्त वहाँ से चल दिये। उन्होंने विदुर द्वारा पूजित होकर उनके यहाँ भोजन किया।

परशुराम और कण्व का दुर्योधन को समझाना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! भोजनादि से निवृत्त होकर विदुर के साथ सुखद वार्तालाप करते हुए श्रीकृष्ण ने वहीं रात्रि विश्राम किया। प्रातःकाल जब वे स्नान, संध्या, जप, हवन आदि करके वस्त्र धारण करके सूर्य की उपासना करने लगे, तब दुर्योधन और शकुनि ने आकर कहा कि महाराज धृतराष्ट्र राज्य सभा में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सुन कर उनका सत्कार कर श्रीकृष्ण अपने रथ पर चढ़ कर धृतराष्ट्र की राज्य-सभा में पहुँचे। उस समय उनके साथी यादवगण तथा दुर्योधन और दुःशासन भी उस सवारी में साथ-साथ रहे। उन्होंने जैसे ही सभा में प्रवेश किया, वैसे ही भीष्म आदि के साथ राजा धृतराष्ट्र ने उठ कर उनका स्वागत किया। तब वे अपने लिये रखे गये विशेष स्वर्णासन पर विराजमान हुए।

तभी उन्होंने अन्तरिक्ष में नारदादि महर्षियों को स्थित देख कर कहा--पितामह ! यह महर्षिगण देवलोक से यहाँ, इस समारोह के अवलोकनार्थ आये हैं, इसलिए यथोचित आसनादि सत्कार से इनका पूजन कीजिए। तब भीष्मजी ने तुरन्त उन ऋषियों के बैठने आदि की व्यवस्था की। फिर सब उपस्थित जन अपने-अपने स्थान पर बैठ गए तब श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज ! मेरे आगमन का यही कारण है कि कौरव-पाण्डव परस्पर सन्धि कर लें, जिससे दोनों ही पक्ष विनाश से बच सकें। राजन्! दया, उदारता, सरलता, क्षमा और सत्य आदि गुण इस वंश की श्रेष्ठता के कारण रहे हैं, इसलिये इसके द्वारा कोई अनुचित कार्य नहीं होना चाहिये। आपके दुर्योधनादि पुत्र अशिष्ट व्यवहार

करते और मर्यादा तोड़ते रहे हैं। यदि आप उन्हें न रोकेंगे तो इस युद्ध की अग्नि में असंख्य मनुष्य भस्म होजाँयगे। यदि आप चाहें तो युद्ध टल सकता है, इसलिये युद्ध ठान कर अपनी प्रजा के धर्म, अर्थ एवं सुख को समाप्त न कीजिये। पाण्डवगण संधि के लिये तो तैयार हैं ही यदि अनिवार्य हुआ तो युद्ध के लिये भी प्रस्तुत हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण के चुप होने पर कोई यह न सोच सका कि क्या उत्तर दिया जाय ? तभी महर्षि परशुरामजी ने कहा—हे धृतराष्ट्र ! पुरा काल में दम्भोद्भव नामक राजा हुये। उन्हें यह दम्भ था कि उनके समान कोई योद्धा नहीं है। इसलिये वे अपने से लड़ने वाले वीर को खोजते फिरते थे। ब्राह्मणों ने राजा को बहुत बार समझाया कि दम्भ करना ठीक नहीं है किन्तु वे नहीं माने तब ऋषियों ने कह दिया कि नर-नारायण नामक तपस्वी श्रेष्ठ देवलोक से आकर तपस्या कर रहे हैं, उनके साथ युद्ध करो यह सुन कर वह उन्हीं के पास जा पहुँचे। वे दोनों तपस्वी बहुत कृश और दुर्बल होरहे थे। राजा ने उन्हें प्रणाम कर कहा कि मैं आपके पास युद्ध की इच्छा से आया हूँ। ऋषि बोले--राजन् ! हम तो तपस्वी हैं, हमारा युद्ध से क्या काम ? आप किसी क्षत्रिय को टटोलिये। इस पर भी राजा न माने तो उन्होंने कहा—अच्छी बात है, आज मैं तुम्हारी युद्ध की अभिलाषा अन्तिम रूप से पूर्ण किये देता हूँ। यह कहकर उन्होंने कुछ सर-कण्डे उखाड़ कर इस प्रकार फैंके कि सेना के सहित राजा के मुख कान नेत्र नासिका आदि उन सरकण्डों से भर गये। अब तो उन्हें सर्वत्र सरकण्डे ही सरकण्डे दिखाई देने लगे। इससे घबरा कर राजा उनके चरणों में जा गिरे। नर-नारायण ने भी उन्हें क्षमा करके कहा—राजन् ! ब्राह्मण-भक्त बनो और अकारण युद्ध की आकांक्षा न करो। इस प्रकार हे धृतराष्ट्र !

अर्जुन और श्रीकृष्ण रूप नर-नारायण की शरण में जाकर उन्हें प्रसन्न करलो। इसी में तुम सब का कल्याण है।

परशुराम के बाद महर्षि कण्व बोले—दुर्योधन! ब्रह्मा तथा भगवान् नर-नारायण अव्यय एवं भय-रहित हैं। यह सम्पूर्ण विश्व प्रलय काल में उन्हीं नारायण में लीन होजाता है। संसार में एक से बढ़ कर दूसरा बलवान पड़ा है। देवताओं के समान पाण्डव भी अत्यन्त पराक्रमी हैं, इसलिये उनसे विरोध न करो। मैं तुम्हें एक प्राचीन वृत्तान्त कहता हूँ—इन्द्र के सारथी मातलि के गुणकेशी नाम की एक कन्या थी, पुत्र कोई न था। उस कन्या के लिये देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि और मनुष्य में अनेक वर खोजे गए, पर कोई वर न मिला तो नागलोक के लिये चल पड़े।

तभी नारदजी पाताल जा रहे थे। उन्होंने मातलि को मार्ग में देखा तो पूछ बठे—कहाँ जाते हो? किस कार्य से जाते हो? चलो हम-तुम साथ-साथ पाताल में चलें। यह सुन कर मातलि भी नारदजी के साथ हो लिये और पाताल में पहुँचकर वरुण के दर्शन किये। तत्पश्चात् नागलोक हिरण्यपुर, गरुड़ लोक, रसातल आदि में होते हुये भोगवतीपुरी में पहुंचे। वह नगरी अमरावती जैसी मनोहर और वासुकी नाग की राजधानी है। वहाँ मातलि ने एक कौरव्य नाग के विषय में नारदजी से पूछा तो वे बोले—इसका नाम सुमुख है। इसके बाबा आर्यक, पिता चिकुर तथा नाना वामन है। कुछ दिन पूर्व गरुड़ ने इसके पिता का भक्षणकर लिया था। मातलि बोला—मुनिश्रेष्ठ! मैं इसी को कन्या देना चाहता हूँ। तब नारदजी आर्यक नाग के पास जाकर बोले—नागश्रेष्ठ! यह इन्द्र के सखा और सारथी मातलि हैं। इन्होंने अपनी कन्या के लिये आपके पौत्र सुमुख को पसन्द किया है। इसलिये आप इस सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति दीजिये। आर्यक

बोले-- देवर्षे ! आपके प्रस्ताव को सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। किन्तु आप जानते हैं कि इसके पिता को गरुड़ खा चुका है और जाते समय यह भी कह गया है कि एक मास के पश्चात् इसे भी खा जाऊँगा, तब बताइये कि मैं इनकी कन्या को दुःख में क्यों डालूँ ?

मातलि ने कहा—नागराज ! इसका एक उपाय है। मैं इसे इन्द्र के पास ले जाकर उनसे आयु बढ़ाने की प्रार्थना करूँगा और गरुड़ को मारने का भी उपाय सोचूँगा। आर्यक ने इस बात को मान लिया और वह सुमुख तथा अनेक तेजस्वी नागों सहित नारद जी और मातलि के साथ इन्द्र के पास गया। उस समय वहाँ भगवान् नारायण भी विराजमान थे। उन्होंने सुमुख का हाल सुन कर इन्द्र से कहा—देवेन्द्र ! तुम सुमुख को अमृत पिला कर अमर कर दो। इन्द्र बोले—प्रभो ! मुझे तो गरड़ से भय लगता है, आप स्वयं ही इसे अमृत पिला दीजिये। क्योंकि आपसे विरोध करने में कोई भी समर्थ नहीं है। तब भगवान् की इच्छा जान कर इन्द्र ने उसे बिना अमृत-पान कराये ही दीर्घायु प्रदान कर दी और मातलि ने भी अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। गरुड़ ने सुना कि इन्द्र ने सुमुख को दीर्घजीवी बना दिया है तो वह क्रोध में भर, इन्द्र के पास जाकर बोले—इन्द्र !तुमने मेरी जीविका में बाधा उपस्थित करके मेरा अनादर क्यों किया है ? तुमने भी मुझे यथेच्छ कार्य करने का वर दिया था, उससे क्यों हट गये। नागों ने मुझे एक नाग प्रतिमास भक्षणार्थ देने का वचन दे रखा था। इस बार सुमुख की बारी थी। अब क्या मैं भूखों मरूँ ? मैं जिसका दास हूँ, वह त्रिलोकी का ईश्वर होते हुये भी चिन्ताकुल रहता है। मैं उसे भी कुछ न समझ कर तुम्हें ही त्रिलोकी का स्वामी मानता हूँ। किन्तु मैं अत्यन्त प्रबल हूँ, मेरा सामना कोई नहीं कर सकता, मैं तुमको

भी अपने पंख के एक भाग पर बैठा कर जहाँ कहो वहाँ पहुंचा दूँ, तो फिर मुझसे अधिक बली कौन है ?

गरुड़ के गर्वयुक्त वचनों को सुन कर भगवान् नारायण ने गम्भीर होकर कहा—गरुड़ ! तू अत्यन्त दुर्बल होकर भी अपने को महाबली मान बैठा है। मेरे भार को तो यह त्रिलोकी भी नहीं सँभाल सकती। मैं स्वयं ही अपना और तुम्हारा भार भी सँभाले रहता हूँ। लो, तुम केवल मेरी दाँयीं भुजा का बोझ ही सँभाल कर दिखाओ। यह कह कर नारायण ने जैसे ही गरुड़ के कन्धे पर अपना हाथ रखा वैसे ही वहअत्यन्त पीडित और व्याकुल होगये। यहाँ तक कि उन्हें मूर्च्छा आगई। फिर जैसे ही चेत हुआ वैसे ही भगवान् के चरणों में पड़ कर बोला—प्रभो ! मैं तो भार से ऐसा पिच गया कि बिल्कुल मृतक तुल्य ही होगया हूँ। मुझे क्षमा कीजिये। तब नारायण ने अपने चरण के अँगूठे से सुमुख को गरुड़ की छाती पर फेंक दिया, तब से वह गरुड़ और वह नाग साथ-साथ रहते हैं।

उपर्युक्त वृत्तान्त का उपसंहार करते हुये कण्व ऋषि बोले–हे दुर्योधन ! नारायण के किंचित् बोझ रखने से ही गरुड़ का अहंकार नष्ट होगया। इससे समझलो कि जब तक पाण्डवों से सामना नहीं होता, तभी तक जीवित दिखाई देरहे हो। उनसे लड़ना तो क्या, नजर भर कर देख लेना भी सम्भव नहीं है। तुम कृष्ण का कहना मान कर शीघ्र मेल कर लो इसी में तुम्हारी भलाई है। दुर्योधन बोला—हे ऋषि ! मुझे जो ठीक लगता है, वही करता हूँ, आप व्यर्थ ही क्यों बकवाद कर रहे हैं।

गालव और ययाति का उपाख्यान

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! अब महर्षि नारद ने कहा—हे दुर्योधन ! हठ का परिणाम बहुत भयंकर होता है।

एक समय वसिष्ठ के रूप में धर्म भूखे बन कर विश्वामित्र के आश्रम में गये। विश्वामित्र ने उनके लिए भोजन बनाया, किन्तु धर्म ने अन्य ऋषियों से भोजन लेकर खा लिया। इधर भोजन तैयार होने पर विश्वामित्र गर्म भोजन का पात्र सिर पर रख कर धर्म के पास गये तो उन्होंने कहा कि मैं तो भोजन कर चुका, तुम खड़े रहो। यह कह कर धर्म तो चले गये, किन्तु विश्वामित्र सिर पर गर्म भोजन का पात्र रखे वायु का भक्षण करते हुए वैसे ही सौ वर्ष तक खड़े रहे। उस मध्य विश्वामित्र के शिष्य गालव गुरुसेवा करते रहे।

सौ वर्ष बाद वसिष्ठ रूपधारी धर्म पुनः वहाँ आये और उन्होंने उस गर्म भोजन से तृप्त होकर कहा—ब्रह्मर्षे ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। फिर उन्हें इच्छित वर देकर धर्म चले गए। तब विश्वामित्र ने गालव से कहा—वत्स ! तुम अब इच्छित स्थान पर जा सकते हो। गालव बोले—भगवन् ! मैं गुरु दक्षिणा देना चाहता हूँ। कहिये, क्या अर्पण करूँ ? विश्वामित्र ने कहा—दक्षिणा की आवश्यकता नहीं है। किन्तु गालव हठ करने लगे तो गुरु ने कहा—यदि देने का हठ करते हो तो चन्द्रमा जैसे श्वेतवर्ण के श्माण रंग के कान वाले आठ सौ घोड़े लाकर दो।

गुरु की बात सुन कर गालव के होश उड़ गये। कहाँ से लायें इतने सारे घोड़े। अब गालव अत्यन्त चिन्ताग्रस्त होकर भगवान् विष्णु के पास जाने की बात सोचने लगे, तभी गरुड़ ने आकर कहा—मुनिवर ! भगवान् ने मुझे भेजा है। आप मेरे मित्र भी हैं, जहाँ आप कहें, वहीं आपको ले चलूँ। देखिये, वह पूर्व दिशा है, देवताओं ने इसी दिशा में तप किया है। वह दक्षिण दिशा है, सूर्य ने यज्ञ करके यह दिशा आचार्य-दक्षिणा के रूप में दी थी। वह देखो, पश्चिम दिशा है, इसमें सूर्य अपनी

रश्मियों को दिन के अन्तिम भाग में प्रेरित करते हैं। इस दिशा में जल की रक्षा के लिए भगवान् कश्यप में वरुण को नियुक्त किया है। इसी दिशा में अग्नि, वायु और मरीचि-पुत्र कश्यपजी का निवास है। वह उत्तर दिशा है, यह प्राणियों को माक्ष-सुख देने वाली है। इसी में सोने की खाने हैं। यहीं प्रातः सायं के समय सब लोकपाल अपना-अपना कार्य निश्चित किया करते हैं। अब कहो, तुम्हें किस दिशा में चलना है ?

गालव ने पूर्व दिशा में चलने की बात कही और गरुड़ की पीठ पर चढ़ गये। मार्ग में उन्होंने कहा—पक्षिराज ! तुम्हारे पंखों की वायु से ऐसा प्रतीत होता है, मानो पर्वत, समुद्र और वन के सहित समूचा भूमण्डल ही खिचा जा रहा है। महासागर के गंभीर नाद से मेरे कान फटे जा रहे हैं। अँधेरे के कारण मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है, केवल तुम्हारे चमकीले नेत्र ही मणि के समान चमक रहे हैं। तुम्हारे देह से चिंगारियां-सी निकल रही हैं, उनसे मैं बहुत व्याकुल होरहा हूँ। इसलिए तुम मुझे उतार दो। मैंने जो आठ सौ अश्व देने की प्रतिज्ञा की है, वह पूर्ण होती दिखाई नहीं देती। इसलिए, मैं मर जाना ही उचित समझता हूँ। गरुड़ बोले–मुनिश्रेष्ठ ! मरने का विचार व्यर्थ है। तुम जिस प्रकार के घोड़े चाहते हो, उनका स्थान मैं जानता हूँ। ऋषभ पर्वत पर विश्राम-भोजन के पश्चात् वहाँ चलेंगे।

ऋषभ पर्वत पर उन्होंने शाण्डिली नाम की एक ब्राह्मणी को देखा, तब गरुड़ सोचने लगे कि इसे भगवान् शंकर, विष्णु, धर्म और यज्ञ के पास ले चलें। ऐसा विचार करते ही गरुड़ के सब पंख झड़ गए और उनकी बुरी दशा हो गई। तब उन्होंने तुरन्त ध्यान आगया कि ब्राह्मणी का अपराध होने से ही मेरी यह दशा हुई। ऐसा सोच कर उसने ब्राह्मणी से क्षमा-याचना की, तब ब्राह्मणी बोली–वत्स ! तुमने मेरी इच्छा के विरुद्ध

विचार किया था, उससे यह दशा हुई थी। अब तुम्हारे पंख पूर्ववत् आ जायंगे और तुम तुरन्त स्वस्थ हो जाओगे।

तदनन्तर स्वस्थ होकर गरुड़ गालव को राजा ययाति के पास ले जाकर बोले—राजन् ! यह महर्षि गालव मेरे प्रिय सखा हैं। इन्होंने महर्षि विश्वामित्र को गुरु-दक्षिणा में आठ सौ श्यामकर्ण के श्वेत अश्व देने की प्रतिज्ञा की है। इन्हें आप से भिक्षा लेकर गुरुदक्षिणा चुकाने की आशा है। इसलिए इनकी सहायता कीजिए। ययाति बोले—पक्षिराज ! आप दोनों के आने से मेरा कुल पवित्र होगया। इस समय मेरे पास पहिले जैसा धन तो नहीं है, तो भी मैं आपको निराश नहीं लौटने दूँगा। मेरी कन्या माधवी अत्यन्त रूपवती है, इसे प्राप्त करने की अभिलाषा देव दानव, मनुष्य सभी कर रहे हैं। इससे चार वंश चलेंगे। आप इस कन्या को ले जाइये। इससे उत्पन्न पुत्र मेरा नाती हो, इसके अतिरिक्त मुझे कुछ इच्छा नहीं है।

माधवी को साथ लेकर और गरुड़ को विदा करके गालव चल दिये। पुत्र प्राप्ति की कामना से राजा हर्यश्व तप कर रहे थे। मुनि ने उन्हीं के पास जाना उचित समझा। वहाँ जाकर गालव बोले—राजन् ! शुल्क देकर आप इस कन्या को स्त्रीरूप में ग्रहण कर लीजिए। इससे आपका वंश बढ़ेगा। हर्यश्व बोले—मुनिश्रेष्ठ ! देवता, गन्धर्व, मनुष्य कौन इस कन्या को न चाहेगा? मैं समझता हूँ कि इसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र चक्रवर्ती नरेश होगा। ऋषिश्रेष्ठ ! आप इसका शुल्क बताइये। गालव ने कहा—राजन्! श्यामकर्ण एव श्वेतवर्ण के आठ सौ अश्व इसका शुल्क है। यह सुन कर काम से मोहित हुए राजा ने कहा—जैसे अश्व आप चाहते हैं, वैसे दो सौ अश्व मेरे यहाँ मौजूद हैं वे दो सौ घोड़े दे कर इससे एक पुत्र उत्पन्न करना चाहता हूँ। आप यह निवेदन स्वीकार कर लें।

गालव बोले—स्वीकार है। आप दो सौ घोड़े मुझे देकर एक पुत्र इसके गर्भ से उत्पन्न कर लीजिए। हर्यश्व ने गालव को दो सौ घोड़े देना स्वीकार किया और माधवी को अपने पास रख कर उससे वसुमना नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। तब गालव ने उनके पास जाकर कन्या को वापस माँगा। राजा हर्यश्व ने माधवी उन्हें लौटा दी। तत्पश्चात् गालव ने माधवी को समझाया—भद्रे ! तुम शोक न करो। मैं तुम्हें काशिराज दिवोदास के पास ले चलता हूँ। वे बहुत धर्मात्मा और सत्यवादी हैं।

दिवोदास ने मुनिश्रेष्ठ गालव और माधवी का सत्कार कर आने का कारण पूछा तो गालव बोले—महाराज ! आप इस रमणी को पुत्र उत्पन्न करने के लिए ग्रहण कीजिए। मैंने श्यामकर्ण और श्वेतवर्ण के आठ सौ घोड़े गुरुदक्षिणा में देने की प्रतिज्ञा की है, दो सौ घोड़े मुझे मिल चुके हैं, छः सौ अभी प्राप्त करने हैं, अब यही इस कन्या का शुल्क समझिये।

दिवोदास बोले—भगवन् ! वैसे दो सौ अश्व ही मेरे पास हैं। उन्हें लेकर मुझे एक पुत्र इससे उत्पन्न कर लेने दीजिए। ऋषि यह स्वीकार कर चले गये। दिवोदास ने माधवी से एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम प्रतर्दन हुआ। तत्पश्चात् गालव ऋषि उनसे भी उस कन्या को लौटा लेगए।

फिर वे भोजनगर के राजा उशीनर के पास गये। वहाँ भी दो सौ अश्व शुल्क के बदले में एक पुत्र उत्पन्न करने के लिए वह कन्या छोड़ी गई। राजा उशीनर ने उसके साथ इच्छित विहार कर शिवि नामक पुत्र उत्पन्न किया। यह राजा शिवि शरणागत वत्सल और सत्यनिष्ठ हुए हैं। गालव ने वहाँ जाकर पुनः वह कन्या लौटा ली।

नारदजी बोले—हे दुर्योधन ! गालव माधवी को उशीनर के पास से लौटा कर लारहे थे, कि तभी गरुड़ मिल गए। गालव ने

बताया कि अभी दो सौ अश्वों की कमी रह गई है। गरुड़ बोले— ऋषिवर ! ऐसे छः सौ घोड़े ही संसार में हैं, इसलिए अब और नहीं मिल सकते पूर्व समय में ऋचीक ऋषि ने कान्यकुब्ज देश के राजा गाधि की पुत्री सत्यवती को प्राप्त कर शुल्क रूप में एक हजार अश्व दिये थे। गाधि ने वे अश्व ब्राह्मणों को दान कर दिये उनमें से छः सौ घोड़े इन तीन राजाओं ने ब्राह्मणों से खरीद लिये और शेष चार सौ घोड़े वितस्ता नदी में डूब कर मर गये। इसलिए तुम वे छः सौ घोड़े और शेष दोसौ घोड़ों के बदले में यह कन्या महर्षि विश्वामित्र को दे दो। वे भी इसके गर्भ से एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न कर लेंगे।

यह सुन कर गालव ने छः सौ घोड़े और माधवी महर्षि विश्वामित्र के समक्ष उपस्थित कर पूर्ण वृत्तान्त कहा जिसे सुन कर विश्वामित्र बोले—गालव ! यदि तुम पहले ही इस कन्या को यहाँ ले आते तो मैं ही इससे चार पुत्र उत्पन्न कर लेता। अब मैं एक पुत्र उत्पन्न करने के लिए इसे ग्रहण करता हूँ। इन घोड़ों को यहीं छोड़ दो, यह मेरे आश्रम के चारों ओर विचरते रहें। यह कह कर विश्वामित्र ने माधवी से अष्टक नामक महा प्रतापी पुत्र को उत्पन्न किया और फिर उसे गालव के पास छोड़ कर वन को चले गए। तब गालव ने उसे उसके पिता ययाति को सौंप कर वन के लिए प्रस्थान किया।

तत्पश्चात् ययाति ने माधवी का स्वयंवर किया, उसमें अनेक राजे महाराजे देवता, दैत्य, गंधर्व आदि उपस्थित हुए। माधवी ने उनमें से किसी को स्वीकार न कर अन्त में वन की शरण ली और घोर ब्रह्मचर्य व्रत पालन द्वारा तपस्या करने लगी। इधर राजा ययाति सहस्रों वर्ष राज्य करके स्वर्ग में गये। एक दिन उन्होंने देव, ऋषि, मनुष्यों के प्रति अपमान जनक बातें कहीं, जिससे उनका तेज नष्ट हो गया और वे स्थान भ्रष्ट होकर अपने

नातियों के मध्य गिरे। नातियों ने उन्हें अपने तपोबल का अंश प्रदान किया, जिससे वे पुनः स्वर्ग में पहुँच गए।

नारदजी बोले—हे दुर्योधन ! इस प्रकार गालव अपनी हठ और ययाति अपने अभिमान के कारण घोर विपत्ति में पड़ चुके हैं। इसलिए तुम्हें अपने हितैषियों के उपदेशों पर ध्यान देकर हठ को छोड़ देना चाहिए। सज्जनों के शस्त्रज्ञान युक्त उपाख्यानों से लाभ उठा कर मनुष्य सम्पूर्ण भूमण्डल का राज्य प्राप्त कर सकता है।

श्रीकृष्ण को वन्दी बनाने का षड्यन्त्र

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! नारदजी के पश्चात् श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को समझाया—कुरुश्रेष्ठ ! युद्ध के लिए हठ करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। क्योंकि तुम सर्व शास्त्रज्ञान से युक्त, सदाचारी एवं ऐश्वर्य-सम्पन्न हो। पाण्डवों से अच्छा व्यवहार करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है। कौरव-पाडण्वों में मेल होने से ही विश्वशान्ति हो सकती है। इसलिए पाण्डवों को आधा राज्य देकर स्वयं भी विशाल वैभववन्त बनो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

भगवान् वासुदेव के चुप होने पर भीष्म, द्रोण और विदुर नें उसे बार-बार समझाया। किन्तु उसने उनकी एक भी बात नहीं सुनी। फिर कुछ ठहर कर उसने श्रीकृष्ण से कहा—हे केशव ! आप पाण्डवों का पक्ष लेकर व्यर्थ मेरी निन्दा कर रहे हैं। किन्तु मुझे अपना अपराध किंचित् भी दिखाई नहीं देता। हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र के जीवन काल में हम या पाण्डव कोई भी राजा नहीं होसकता, किन्तु इनके पश्चात् सब देखा जायगा। जब मैं बालक था, तब मेरा राज्य पाण्डवों को बाँट दिया गया था, अब मेरे जीवित रहते उन्हें एक सुई की नोंक के बराबर भूमि भी प्राप्त नहीं हो सकती।

यह सुन कर श्रीकृष्ण भी क्रोधित हो उठे। उन्होंने कहा—मूर्ख दुर्योधन! शीघ्र ही घोर युद्ध में तुम अपने भाइयों और मन्त्रियों के साथ धरती पर शयन करोगे। इस समय सन्धि से दोनों पक्षों का लाभ है, किन्तु तुम वैसा नहीं करना चाहते। इससे स्पष्ट है कि तुम्हारा हित नहीं हो सकता।

तत्पश्चात् धृतराष्ट्र की आज्ञा से पतिव्रता गान्धारी को वहाँ बुलाया गया। उन्होंने भी दुर्योधन को बहुत समझाया, किन्तु उसने माता के उपदेश का भी निरादर किया। फिर वह अपने साथियों सहित अन्यत्र जाकर परामर्श करने लगा कि हम कृष्ण को ही क्यों न बन्दी बना लें। फिर तो पाण्डवगण दाँत तोड़े हुए सर्प के समान विवश और उत्साह रहित होजाँयगे।

सात्यकि को दुर्योधन के उस षड्यन्त्र का पता चल गया। उन्होंने कृतवर्मा से परामर्श करके यादव सेना को व्यूह बना कर राज द्वार पर पहुँचने की आज्ञा दी और सभा में कृष्ण के पास जाकर हँसते हुए कहा--प्रभो! यह दुरात्मा पाण्डव दूत को पकड़ने का नीच कार्य करने को हैं। यह सुन कर विदुर ने कहा—महाराज धृतराष्ट्र! आपके पुत्रों के शिर पर काल चढ़ा हुआ है। वे भगवान् श्रीकृष्ण को वन्दी बनाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि वे इनकी क्रोधाग्नि में भस्म होजाँय।

कृष्ण बोले—राजन्! मैं अकेला ही दुर्योधन को दण्ड दे सकता हूँ, किन्तु ऐसा निन्दनीय कार्य मैं नहीं करूँगा। यह जो कुछ करेंगे, उसमें पाण्डवों का ही हित है। फिर भी दुर्योधन जो कुछ करना चाहे वह कर ले। धृतराष्ट्र बोले—विदुर! राज्य के लोभी उस दुर्योधन को भाई, मित्र, मन्त्री आदि के सहित तुरन्त यहाँ उपस्थित करो।

दुर्योधन की इच्छा न रहते हुए भी विदुर उसे पुनः बुला लाये। धृतराष्ट्र ने उससे कहा—पापी! नीच! तू दुर्धर्ष श्रीकृष्ण

को वन्दी बनाना चाहता है। अरे मूर्ख ! जिसे इन्द्र सहित संपूर्ण देवता भी नहीं पकड़ सकते, उन्हें तू कैसे पकड़ लेगा ? तभी विदुर बोले—भरतश्रेष्ठ ! तुम भगवान् नारायण को अभी तक नहीं पहचान सके, यह आश्चर्य है। यदि तुम श्रीकृष्ण को पकड़ने की चेष्टा करोगे तो अग्नि में भस्म होने वाले पतंग के समान ही तुम्हारी दशा होगी।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने कहा—मूर्ख दुर्योधन ! तुम मुझे अकेला समझ कर पकड़ना चाहते हो, किन्तु मैं अकेला नहीं हूँ। सब पाण्डव, यादव, आदित्य, रुद्र, वसु एवं ऋषि आदि यहाँ अलक्षित रूप से उपस्थित हैं। यह कह कर भगवान् जोर से हँसे। तभी उनके शरीर से अँगूठे के बराबर विद्युत जैसे तेजस्वी देवताओं के समूह के समूह निकलने लगे। उनके मस्तक में ब्रह्मा हृदय में रुद्र, भुजाओं में लोकपाल, मुख में अग्नि तथा अन्यान्य अंगों में आदित्यगण, विश्वेदेवा, वसुगण, अश्विद्वय, साध्य, इन्द्रादि देवता यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, हल-मूसलधारी बलराम, धनुर्धारी अर्जुन सहित सब पाण्डव और विभिन्न प्रकार के दिव्य शस्त्रास्त्र दिखाई देने लगे। उनके रोम छिद्रों से धूम्र सहित अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थीं। उस रूप के तेज से भीष्म विदुर संजय, द्रोणाचार्य तथा ऋषि-महर्षियो आदि के अतिरिक्त सभी के नेत्र चकाचौंध से बन्द होगए। उस समय धृतराष्ट्र ने कहा---प्रभो ! मैं भी आपके दर्शन करना चाहता हूँ। वासुदेव बोले—तुम्हारे दो दिव्य नेत्र तुरन्त हो जाँय। तब तो चक्षुहीन धृतराष्ट्र भगवान् के दर्शन कर धन्य होगए। सब लोग उनकी स्तुतियाँ करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने अपना दिव्य रूप समेट कर पूर्व रूप धारण किया और कृतवर्मा के साथ सात्यकि का हाथ पकड़ कर सभाभवन से बाहर निकल आये। उसी समय सब ऋषि-मुनि भी अन्तर्धान होगये।

जब भगवान् अपने रथ पर बैठ गये तब धृतराष्ट्र ने कहा— हे केशव ! आपने स्वयं देख लिया कि अब मेरी नहीं चलती। इसलिए मेरा कोई दोष नहीं है। तत्पश्चात् उनका रथ चल पड़ा भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि उन्हें पहुँचाने के लिए कुछ दूर तक चले। तभी रथ रोक कर भगवान् कुन्ती से मिलने चले गए।

वहाँ जाकर कृष्ण ने कहा—बुआजी ! अब मैं जारहा हूँ। कौरवों ने सन्धि का प्रस्ताव ठुकरा दिया है। अब आप यदि कुछ कहना चाहें तो मैं पाण्डवों से कह दूँ। कुन्ती बोली—कृष्ण ! युधिष्ठिर से यही कहना कि पृथिवी पालन का जो तुम्हारा धर्म है, उसकी हानि होरही है। अब तक तुमने शान्ति धर्म को देखा, अब क्षात्रधर्म को भी देखो। उन्हें विदुला-संजय का वृत्तान्त बताते हुए कहना कि विदुला का पुत्र सिन्धु नरेश से हारकर घर में बैठ गया, यह देख कर विदुला ने उसे फटकारा—अरे कायर! तू मेरा पुत्र नहीं है, न जानें तू इस कुल में कहाँ से आगया ? देख, युद्ध में शत्रु का डट कर सामना करने के कारण ही मनुष्य को पुरुष कहाजाता है। जो क्षत्रिय अपने भोग-सुख को छोड़कर राजश्री की खोज में रहता है वह अपने सहृदों परिवारी जनों और प्रजाजनों को सुखी करता है।

संजय बोला—माता ! यदि मैं मर जाऊँगा, तब तुम इस धन वैभव और राज्य का क्या करोगी ? विदुला ने कहा—पुत्र! मैं चाहती हूँ कि तेरे शत्रु निन्दित पुरुषों के और मित्र प्रशंसनीय पुरुषों के लोकों को प्राप्त हों। तू पराये अन्न से उदर पूर्ति करने वालों की वृत्ति ग्रहण न कर, वरन् ऐसा कार्य कर जिससे ब्राह्मण ऋषि तेरे आश्रय में जीविका प्राप्त कर सकें। क्षत्रिय को प्राणों के भय से शत्रु के आधीन नहीं होना चाहिए। पुत्र ! तू धैर्य पूर्वक विजय पाने का उद्योग कर। यद्यपि तू साधन-हीन है, किन्तु

समय आने पर साधन स्वयं उपलब्ध होजाते हैं। अभी मेरे पास बहुत-सा धन छिपा पड़ा है। वह सब मैं तुझे दे दूँगी। तेरे साथ अनेक बन्धु-बान्धव भी सहायक रूप से अभी तक हैं, उन्होंने तेरा साथ नहीं छोड़ा है। इसलिए तू अपने कर्म में तत्पर होजा। हे वत्स ! जब तू विजय का निश्चय कर लेगा, तब पराजय तुझसे बहुत दूर भागती रहेगी।

हे कृष्ण ! विदुला के वचनों ने उसके पुत्र संजय में साहस भर दिया। उसने तुरन्त उठ कर कहा—माता ! अब मैं अपने पिता के राज्य को अवश्य ले लूँगा। यदि ऐसा न कर सका तो प्राण देकर क्षत्रिय धर्म की रक्षा करूँगा। तब संजय ने उसी उपदेश के अनुसार कार्य करके विजय प्राप्त कर ली। इसी प्रकार मेरे पुत्रों को भी बस उपाख्यान से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हे महाबाहो ! अब तुम जाओ, तुम्हें विलम्ब होरहा है। मेरे पुत्रों की रक्षा का भार तुम पर देख कर मैं निश्चिंत हो रही हूँ।

यह सुन कर कृष्ण ने कुन्ती को प्रणाम किया और बाहर आकर भीष्मादि को विदा कर सात्यकि के साथ कर्ण को भी अपने रथ पर बैठा कर आगे बढ़े। मार्ग में उन्होंने कर्ण से कहा—कर्ण ! तुमने वेदपारंगत ब्राह्मणों की सेवा कर अनेक तत्वों को निष्ठा पूर्वक समझा है। धर्मशास्त्र के सूक्ष्म और जटिल विषयों का तुम्हें ज्ञान है। कन्यावस्था में उत्पन्न पुत्र कानीन और विवाह के पश्चात् उत्पन्न पुत्र सहोढ़ कहा जाता है। उन दोनों प्रकार के पुत्रों पर कन्या के पति का ही अधिकार है। तुम भी कन्यावस्था में कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, इसलिए धर्मानुसार पाण्डु ही तुम्हारे पिता थे। पाण्डव तुम्हारे पितृकुल के और यादव मातृकुल के बन्धु हैं। इसलिए राज्य के

अधिकारी तुम ही होगे। क्योंकि पाण्डव तुम्हें अपना भाई मानते हुए तुम्हारे अधीन रहेंगे। बड़े-बड़े राजा और राजकुमारियाँ तुम्हारा अभिषेक करेंगी। युधिष्ठिर युवराज होकर श्वेत चँवर हिलाते हुए तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे। हे कर्ण! इस प्रकार रह कर तुम्हें कुन्ती का आनन्द बढ़ाना चाहिए।

कर्ण बोला—हे मधुसूदन! आप मेरे हित के लिए ही यह सब कह रहे हैं। अवश्य ही मैं धर्मानुसार पाण्डु-पुत्र ही हूँ। किन्तु माता कुन्ती ने मेरी भलाई की ओर ध्यान न देकर मुझे त्याग कर बहा दिया। अधिरथ सूत ने मुझे नदी से निकाल कर अपनी पत्नी राधा को दे दिया। हे केशव! उन्होंने मेरा मल-मूत्र उठाया, पाला-पोसा, स्नेह दिया। वे मुझे पुत्र और मैं उन्हें पिता मानता हूँ। उन्होंने अपनी कुल रीति के अनुसार मेरा जात कर्म किया, अपनी जाति कन्याओं से विवाह किया, जिनसे पुत्र-पौत्र भी उत्पन्न हो चुके हैं। इस अवस्था में अधिरथ सूत के पुत्र-स्नेह को और उन स्त्रियों के पति-प्रेम को मैं कैसे छोड़ दूँ, कैसे भुला दूँ? दुर्योधन का आश्रित रह कर मैंने तेरह वर्षों तक निष्कंटक राज्य भोगा और मेरे ही बल-बूते पर दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ युद्ध ठाना। इसलिए अब किसी बन्धन, भय अथवा लोभ के वशीभूत होकर दुर्योधन को धोखा देने से मेरा धर्म और यश भी नष्ट हो जायगा। हे कृष्ण! दुर्योधन की प्रसन्नता के लिए मैंने पाण्डवों से कटु वचन कहे थे, उनका मुझे बड़ा खेद है। किन्तु, अब वह समय निकल चुका है, अब तो इन विद्या-वय में प्रवृद्ध वीरों और क्षत्रियों को पवित्र कुरुक्षेत्र में एकत्र होकर मरने दो, इसी में तुम्हारी कीर्ति रहेगी। अब शान्ति का उद्योग छोड़ कर क्षात्र धर्म का पालन होने दो, जिससे कि ब्राह्मणों द्वारा शुभ अवसरों पर महाभारत युद्ध कि पवित्र कथा कही जाती रहे।

कृष्ण बोले—कर्ण ! तुम पृथिवी के आते हुए राज्य को ठुकराते हो, इससे समझता हूँ कि राज्य तुम्हारे भाग्य में ही नहीं है। अब तुम भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से कहना कि युद्ध के लिए यही महीना सर्वोत्तम है इसमें घास, ईंधन, आहार, जल आदि सभी की सुविधा है। आज से सातवें दिन अमावस तिथि में युद्ध प्रारम्भ कर दिया जाय। यह कह कर कृष्ण चुप होगए। तब कर्ण ने कहा—महाबाहो ! आप सब कुछ जान कर भी मुझे भ्रमित करना चाहते हैं। आपका कथन सत्य है कि इस विकट युद्ध में पाण्डवों की जीत और कौरवों का नाश होगा। इस समय शकुन भी ऐसे ही हो रहे हैं। हे जनार्दन ! यदि इस युद्ध से जीवित बच गये तो आपसे भेंट होगी ही। यदि न बचे तो परलोक में मिलेंगे। यह कह कर कर्ण कृष्ण के कण्ठ से लिपट गया और फिर उनसे विदा होकर लौट आया। उधर श्रीकृष्ण भी शीघ्रता से वहाँ से चल दिये।

कुन्ती का कर्ण से मिलना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! विदुर से कुन्ती को मालुम हुआ कि कौरव-पाण्डव युद्ध में कर्ण ही हत्या की जड़ है, तब वह बहुत व्याकुल होकर सोचने लगी कि देखो, भाई ही भाइयों को नष्ट करने पर तुला है। कर्ण बलवान और सत्य प्रतिज्ञ है, इसलिए उसके पास जाकर सब भेद खोल कर कहूँगी कि तू मेरा ही पुत्र है, फिर अपने छोटे भाइयों की रक्षा क्यों नहीं करता ? ऐसा निश्चय कर वह कर्ण के पास गई तो उसने हाथ जोड़ कर कुन्ती को प्रणाम किया और बोला—देवि ! मैं राधा और अधिरथ का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ, मेरे लिए क्या आज्ञा है। कुन्ती बोली–कर्ण ! तुम राधा और अधिरथ के पुत्र नहीं, मेरे पुत्र हो। कन्यावस्था में उत्पन्न होने के कारण

धर्म के अनुसार महाराज पाण्डु के पुत्र भी हो। पुत्र ! तुम और अर्जुन दोनों भाई मिल कर क्या नहीं कर सकते ? हे कर्ण ! तुम पाण्डवों में सबसे बड़े हो, मेरी इच्छा है कि अब तुम सूतपुत्र न कहे जाओ।

कुन्ती की बात का भगवान् सूर्य ने भी अनुमोदन किया। तब कर्ण ने कहा- माता ! आपकी आज्ञा मानना उचित तो है, पर अब मैं उसे मान नही सकता। शैशवावस्था में मुझे अनाथों की तरह त्याग कर आपने धर्म और यश से हीन कर दिया। क्षत्रिय होकर भी मैं क्षत्रिय के अधिकारों से वंचित रह गया। इस प्रकार का अहित तो कोई पापी शत्रु भी नहीं कर सकता था जो आपने किया है। अब आप अपने पुत्रों के स्वार्थ के लिए माता और पुत्र का सम्बन्ध व्यक्त कर रही हैं। अब मुझे कौन जानता है कि मैं पाण्डवों का भाई हूँ। इसलिए, यदि अब मैं पाण्डवों का भाई बन कर उनसे मिल जाऊँ तो सभी यह मानेंगे कि मैंने भयवश ही ऐसा किया है। इस प्रकार मेरी निन्दा होगी और माननीय मानने वाले व्यक्तियों की दृष्टि में मैं गिर जाऊँगा। अब तक मैं दुर्योधन के आश्रय में था और अब कर्त्तव्य-पालन के समय उन्हें छोड़ दूँ तो मेरा परलोक भी नष्ट हो जायगा।

माता ! मुझे तुम्हारे पुत्रों के साथ युद्ध करना अनिवार्य हो गया है। किंतु आपका आगमन भी व्यर्थ न हो, इसके लिए मैं अर्जुन के अतिरिक्त आपके किसी पुत्र के प्राण नहीं लूँगा। केवल अर्जुन से ही ऐसा युद्ध करूँगा कि अर्जुन को मार दूँ या स्वयं मर जाऊँ। उस अवस्था में भी आपके पाँच पुत्र तो बने ही रहेंगे यह सुन कर दुःख से व्याकुल हुई कुन्ती ने कर्ण को कण्ठ से लगा कर कहा—पुत्र ! विनाश होता हुआ ही दिखाई दे रहा है। हे अरिमर्दन ! तुमने अर्जुन के अतिरिक्त, शेष चार भाइयों को

न मारने का वचन दिया है, उसे भूलना मत। यह कह कर कुन्ती कर्ण द्वारा सम्मानित होकर वहाँ से चली गई।

पाण्डव-सेना का कुरुक्षेत्र-प्रस्थान

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य नगर से जाकर पाण्डवों को हस्तिनापुर का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। फिर अपने को बन्दी बनाने का प्रयत्न और सब के स्तभित रह जाने की घटना आदि का आद्योपान्त वर्णन किया। तत्पश्चात् कुन्ती का संदेश देकर अन्त में बोले—हे धर्मराज! कुरु सभा का सम्पूर्ण वृत्त तुम सुन चुके हो। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अपने ही सर्वनाश के लिए उद्योग करने वाले कौरवगण युद्ध किये बिना तुम्हें कुछ भी देने को तैयार नहीं हैं।

कृष्ण के वचन सुन कर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा—कौरवों का विचार तुमने सुन लिया है। अब युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। इस लिये सम्पूर्ण सेना को विभाजित कर द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, चेकितान, सात्यकि, शिखण्डी और भीमसेन—यह सातों सात अक्षौहिणी सेना के विभिन्न विभागों के सेनापति बना दिये जाँय। अब प्रधान सेनापति कौन हो, इसके लिए परामर्श दो। सहदेव बोले—मत्स्यराज विराट इसके लिए उपयुक्त रहेंगे। नकुल बोले—महाराज द्रुपद को प्रधान सेनापति बनाइये, वे भीष्म और द्रोण का भी मुकाबला कर सकते हैं। अर्जुन ने कहा—धृष्टद्युम्न को यह भार सोंपा जाना अधिक उपयुक्त होगा। भीमसेन ने परामर्श दिया—शिखण्डी को प्रधान सेनापति बनाया जाय।

युधिष्ठिर बोले—सर्व सम्मत नाम कोई नहीं आया इसलिए श्रीकृष्ण जिसे कहेंगे, उसे ही यह भार सौंपा जायगा। कृष्ण बोले—महाराज! यह सभी नाम ऐसे महारथियों के हैं, जिनके सामने

कौरव तो क्या, कोई भी नहीं ठहर सकता। फिर भी मेरी राय में धृष्टद्युम्न को प्रधान सेनापति का भार दिया जाना चाहिए।

भगवान् की सम्मति सुनते ही सर्वत्र 'तैयारी करो तैयारी करो' सुनाई देने लगा। सब ओर शंखध्वनि और नगाड़ों का शब्द गूँज उठा। प्रयाण गीत सुनाई पड़ने लगे। वीरों के सिंह-नाद से सभी दिशाएँ परिपूर्ण होगईं। उस समय दास-दासियों सहित द्रौपदी, बलहीन सैनिकों तथा युद्ध क्षेत्र में न जा सकने वाले व्यक्तियों को उपप्लव्य नगर में ही छोड़ कर और उनकी रक्षा का पूरा प्रबंध करके सम्पूर्ण सेना सहित सभी महारथी कुरु क्षेत्र में जा पहुँचे। वहाँ समतल और विशाल स्थान देख कर पड़ाव डाले गये। डेरों में चतुर वैतनिक शिल्पी, चिकित्सक शस्त्र रक्षक अन्न-भण्डार-रक्षक आदि विधिवत नियुक्त थे। किसी कार्य में ढील नहीं थी।

कौरवों का कुरुक्षेत्र पहुँचना

वैशम्पायजी बोले—हे जनमेजय! कृष्ण के चले जाने पर दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन और शकुनि से कहा—वीरो! अब पाण्डवों से युद्ध तो होना ही है, इसलिए शीघ्र हीयुद्ध की तैयारी करनी चाहिए। कुरुक्षेत्र में इस प्रकार पड़ाव डालो कि शत्रु उस पर आक्रमण न कर सकें। सब ओर दीवारें और खाइयाँ बनवा कर रसद पहुँचाओ और युद्ध के लिए कूच करने की घोषणा कर दो।

यह सुन कर सब लोग अपने-अपने स्थान से उठ खड़े हुए। उनमें युद्ध के लिए भारी उत्साह जान पड़ा। ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं के घोष से धरती आकाश गूँज रहे थे। सर्वत्र युद्ध के बाजों की ध्वनि सुनाई दे रही थी। शंखनाद में वातावरण डूब गया था। उस अपार जन-समूह को देख कर बड़े-बड़े दिग्गज

कम्पित होगए थे। दुर्योधन ने राजाओं में से छाँट-छाँट कर सेनापतियों की नियुक्ति की थी। भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, शल्य, सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शकुनि और वाह्लीक—पर सैन्य-संचालन का विशेष भार सौंपा गया और भीष्म पितामह को प्रधान सेनापति बनाते हुए दुर्योधन ने कहा—पितामह! यह भार आपको ही उठाना पड़ेगा। क्योंकि इसके लिए वीरता के साथ-साथ विशेष सूझबूझ भी आवश्यक है। आप शुक्राचार्य के समान युद्धनीति के विशेषज्ञ तथा दुर्धर्ष हैं। क्योंकि आपकी इच्छा के बिना आपको मारने में कोई भी समर्थ नहीं है। यह कह कर दुर्योधन ने भीष्म पितामह का अभिषेक कर ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा दी। तभी सैकड़ों हजारों रण-वाद्य बज उठे। तत्पश्चात् दुर्योधन ने कुरुक्षेत्र पहुँच कर अपने डेरे डाल कर सेनाओं को उनमें टिकाया और सब प्रकार की सुविधाओं का प्रबंध कर दिया।

बलराम और रुक्मी का तीर्थयात्रा में जाना

वैशम्पायनजी बोले—हे भरतश्रेष्ठ! कौरव-पाण्डव युद्ध के प्रारम्भ होने से पहले यदुश्रेष्ठ बलरामजी पाण्डवों के डेरे में आये तब सभी ने उनका यथोचित सत्कार किया। फिर वे वृद्ध राजा विराट और द्रुपद को प्रणाम करके आसन पर विराजमान होकर बोले—प्रतीत होता है कि इस घोर युद्ध को टाला नहीं जा सकता। मैंने कृष्ण को एकान्त में समझाया कि कौरव और पाण्डव दोनों ही तुम्हारे सम्बन्धी हैं इसलिए इन दोनों की समान रूप से रक्षा करो। किन्तु कृष्ण को अर्जुन अत्यन्त प्रिय हैं इस लिए इन्होंने मेरी बात नहीं मानी। जब कृष्ण तुम्हारी ओर हैं तो विजय तुम्हारी ही होनी है। भीमसेन और दुर्योधन दोनों मेरे शिष्य हैं इसलिए दोनों पर ही मैं समान स्नेह करता हूँ।

कौरव-पाण्डव के इस भ्रातृ-युद्ध को मैं अपने नेत्रों से नहीं देखना चाहता। इसलिए तीर्थयात्रा पर जारहा हूँ। यह कह कर बल-रामजी चले गये।

तत्पश्चात् भोजवंशी राजा भीष्मक के पुत्र एवं कृष्णप्रिया रुक्मिणी के भाई रुक्मी भी अपनी एक अक्षौहिणी सेना सहित पाण्डवों के पास आकर अर्जुन से बोले—अर्जुन ! यदि तुम्हें युद्ध करने में भय प्रतीत होता हो तो मैं तुम्हारी ओर से युद्ध करके अकेला ही तुम्हारे शत्रुओं को पराजित कर तुम्हें राज्य दिलवा सकता हूँ।

यह सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की ओर देखते हुए कहा—भोजराज ! मैं कुरुवंश में उत्पन्न पाण्डु का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण मेरे सहायक हैं। मैंने बड़े-बड़े वीरों देवताओं गन्धर्वों और असुरों आदि को हराया है फिर मैं यह कैसे मान सकता हूँ कि मुझे युद्ध से भय लगता है। हे महाबाहो ! मैं न तो युद्ध से भयभीत हूँ और न किसी की सहायता चाहता हूँ। आपकी इच्छा हो तो यहाँ ठहरें अथवा जाना चाहें तो जाँय।

यह सुन कर कुपित हुआ रुक्मी अपनी सेना सहित दुर्योधन के पास जाकर उसी प्रकार कहने लगा जिस प्रकार कि उसने अर्जुन से कहा था। दुर्योधन से भी उसे वैसा ही उत्तर मिला, जैसा अर्जुन से मिला था। तब रुक्मी युद्ध से तटस्थ होकर बलरामजी के समान ही तीर्थयात्रा के लिए चला गया

दोनों पक्ष के रथी, अतिरथी का वर्णन

संजय बोले—हे महाराज धृतराष्ट्र ! उलूक के जाने पर महाराज युधिष्ठिर ने भी अपनी सेना को तैयार रहने की आज्ञा दी। तब पाण्डवों की सेनाएँ समुद्र के समान उमड़ने लगीं।

इधर दुर्योधन ने पितामह से कहा—हे पितामह ! आप शत्रुओं की और हमारी सभी बातों से पूर्णतः परिचित हैं, अतः शत्रुपक्ष और स्वपक्ष दोनों के रथी, अतिरथी आदि की संख्या बताने की कृपा करिये ।

पितामह बोले—दुर्योधन ! तुम्हारी सेना में हजारों लाखों ही रथी हैं। अतिरथी भी बहुत-से हैं। देखो, तुम स्वयं अपने भाइयों सहित श्रेष्ठ रथी हो। मैं तुम्हारी सेना का सचालक हूँ। कृतवर्मा, शल्य, भूरिश्रवा अतिरथी हैं। सिन्धुराज जयद्रथ रथी से द्विगुणित शक्तिशाली हैं। काम्बोजनरेश सुदक्षिण एक रथ हैं। माहिष्मती-नरेश नील रथी हैं। त्रिगर्त देश के पाँचों राजकुमार रथी हैं। तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दुःशासन का पुत्र दोनों ही कुशल रथी हैं। कृपाचार्य महारथी हैं। तुम्हारे मामा शकुनी एकरथ हैं और अश्वत्थामा महारथी। वे जब क्रोध करते हैं तब प्रलयाग्नि के समान प्रतीत होते हैं। इस महाभारत युद्ध का अन्त उन्हीं के द्वारा होगा।

द्रोणाचार्यजी वृद्ध होते हुए भी सब महारथियों में श्रेष्ठ किन्तु अर्जुन के गुणों के प्रशंसक हैं। पौरव को भी मैं महारथी मानता हूँ। कर्ण-पुत्र वृषसेन भी रथी हैं। जलसन्ध महारथी और महा बाहु माधव रथी हैं। वाह्लीक अतिरथी, सत्यवान और राक्षसराज अलम्बुष महारथी हैं। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त भी रथ-युद्ध में निपुण होते हुए भी हाथी पर चढ़ कर अर्जुन से सामना करेंगे। अचल और वृषक दोनों भाई रथी हैं। हे कौरव ! तुम्हारे मन्त्री और सखा कर्ण को मैं रथी या अतिरथी कुछ भी नहीं मानता, वरन् परशुरामजी से शापित होने के कारण अर्धरथी समझता हूँ। यह मूर्ख अर्जुन के हाथ से मारा जायगा।

भीष्म की बात का अनुमोदन करते हुए द्रोणाचार्य बोले—पितामह ! आप ठीक कहते हैं। यह प्रत्येक युद्ध में भाग खड़ा होता है, इसलिए अर्धरथी ही है। इन बातों को सुन कर कर्ण व्याकुल होकर बोला—पितामह ! आप मुझसे सदैव द्वेष रखते और मेरी निन्दा किया करते हैं। मैं दुर्योधन के कारण आपकी सब बातें सहन कर लेता हूँ। आपको लोग सत्यवादी कहते हैं, इसलिए अब सभी मुझे अर्धरथी कहने लगेंगे। आप कौरवों के अहित चिन्तक हैं और मेरे गुण से ईर्ष्या करते हैं। यह युद्ध का समय है, आप फूट डालने का प्रयत्न मत कीजिये। हे राजन् ! मैं अकेला ही शत्रु के आक्रमण को रोकने में समर्थ हूँ। किन्तु मेरे किये हुए कार्य का सब श्रेय भीष्म को मिलेगा, इसलिए इनके जीवित रहते मैं युद्ध नहीं करूँगा।

दुर्योधन ने कहा—पितामह ! यह युद्ध का समय है, इसमें आप दोनों ही मेरा बहुत सा हित-साधन वाला कार्य सिद्ध करेंगे, अब उस विवाद को छोड़ कर शत्रु पक्ष के रथी-अतिरथी के विषय में बताइये।

भीष्म ने कहा—राजन् ! युधिष्ठिर स्वयं श्रेष्ठ रथी हैं, भीमसेन में आठ रथियों जैसी सामर्थ्य है, नकुल और सहदेव रथी हैं। सभी पाण्डव ब्रह्मचारी, तपस्वी, बली और शरीर में ऊँचे हैं, बाल्यकाल से ही गदा उठाने, बाण चलाने, शर-सन्धान करने मर्म में आघात करने आदि का उन्हें बहुत अभ्यास है, तुम लोग उनका वेग सहन नहीं कर सकते। इसीलिए मैं पुनः कहता हूँ कि तुम युद्ध करने का विचार छोड़ दो। वासुदेव उनके सहायक हैं उन्होंने देव-दानव घोर संग्राम में भी देवताओं को विजय प्राप्त कराई। उनके समान रथी और कौन हो सकता है ? द्रौपदी के पाँचों पुत्र तथा अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु महारथी और विराट-पुत्र उत्तर, सात्यकि, उत्तमौजा और युधामन्यु रथी हैं। राजा विराट

और द्रुपद वृद्ध होकर भी युवकों से अधिक एवं भयंकर पराक्रम प्रकट करने वाले हैं। शिखण्डी प्रधान रथी, धृष्टद्युम्न अतिरथी और पाण्डव सेना के प्रधान सेनापति हैं। धृष्टद्युम्न के पुत्र को मैं अर्धरथी समझता हूँ। शिशुपाल-पुत्र धृष्टकेतु महारथी, क्षत्रदेव प्रमुख रथी हैं। इनके अतिरिक्त अनेकानेक रथी और महारथी पाण्डव सेना में हैं,वे सभी तुम्हारी सेनाओं का तत्परता से संहार करेंगे।

दुर्योधन ! मैं जब तक जीवित रहूँगा, तब तक वासुदेव और और अर्जुन सहित सब वीरों को अपने दिव्य अस्त्रों के प्रहार से रोक दूँगा, किन्तु शिखण्डी पर प्रहार न करूँगा। उसे न मारने का व्रत मैंने धारण किया हुआ है। सभी को ज्ञात है कि पिता की प्रसन्नता के लिए मैंने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया और चित्रांगद को राजा बनाया। शिखण्डी पहिले स्त्री था,बाद में पुरुष होगया और मैं स्त्री से पुरुष हुए,स्त्री नामधारी अथवा स्त्री वेश में रहने वालों पर कभी हथियार नहीं उठाता। साथ ही यह भी बताये देता हूँ कि पाँचों पाण्डव मेरे लिए अवध्य हैं। मैं उनके प्राण-हरण नहीं करूँगा। यह सुन कर दुर्योधन ने पूछा— पितामह ! आपने तो पांचालों को मारने की प्रतिज्ञा की हुई है, फिर शिखण्डी को न मारने का क्या कारण है, सो बताइये। भीष्म बोले—वह मैं तुम्हें बताता हूँ, ध्यान पूर्वक सुनो।

भीष्म-परशुराम युद्ध वर्णन

भीष्म बोले—हे दुर्योधन ! विचित्रवीर्य को राजा बना कर मैंने उसके विवाह का विचार कर काशिराज की कन्या अम्बा, अम्बालिका और अम्बिका का स्वयंवर से बलपूर्वक हरण कर लिया। उस समय जिन राजाओं ने मेरा विरोध किया उन सब को बुरी तरह परास्त कर तीनों राजकुमारियों को ले आया।

तब अम्बा ने कहा—मैं अपने मन से राजा शाल्व को अपना पति मान चुकी हूँ और वे भी गुप्तरूप से मुझे अपनी पत्नी मान चुके हैं, इसलिए मुझे अपने यहाँ रखना आपके लिए उचित नहीं है। यह सुन कर मैंने उसे राजा शाल्व के पास जाने की आज्ञा दे दी। तब वह उसके पास गई, किन्तु शाल्व ने कहा कि दूसरे की जीती हुई स्त्री को मेरा जैसा ज्ञानी पुरुष अपनी पत्नी कैसे बना सकता है ? यह सुन कर अम्बा ने उसकी बहुत अनुनय-विनय की, रोई और प्रेम प्रदर्शित किया, किन्तु शाल्व ने उसे स्वीकार नहीं किया।

तब निराश हुई अम्बा एक आश्रम में पहुँची। उसने अपना वृत्तान्त सुना कर दुःख में सहायता करने की प्रार्थना की तो ऋषियों ने उसका शोक दूर करने के लिए बहुत विचार किया। तभी वहाँ राजर्षि होत्रवाहन आगए। उन्होंने अम्बा का वृत्तान्त जान कर कहा—पुत्री ! मैं तेरा नाना हूँ, तेरे शोक को नष्ट करने का उपाय करूँगा। तुम परशुरामजी के पास जाओ, वे तुम्हारी सहायता करेंगे। तभी परशुरामजी के शिष्य अकृतव्रण वहाँ आये। उन्होंने बताया कि गुरुदेव कल प्रातः काल यहीं आने वाले हैं।

दूसरे दिन परशुरामजी उस आश्रम में पधारे। ऋषियों की प्रेरणा से अम्बा ने उन्हें अपना वृत्तान्त सुनागा। तब परशुरामजी बोले—पुत्री ! मैं भीष्म के पास दूत भेज कर वार्ता करूँगा। इसके तीसरे दिन महर्षि परशुराम ने मुझे बुलाया। मेरे पहुँचने पर उन्होंने कहा—भीष्म ! तुम दूसरे पर आसक्त हुई कन्या का हरण कर लाये और फिर त्याग दिया। इसीलिए शाल्व ने उसे नहीं अपनाया। अब तुम मेरी आज्ञा से इसे ग्रहण करलो।

मैंने कहा—इस कन्या ने कहा कि मैं शाल्व को चाहती हूँ और उसे पति मान चुकी हूँ तो मैंने इसे शाल्व के पास जाने की

आज्ञा दे दी। अब मैं इस कन्या का विवाह अपने भाई के साथ नहीं कर सकता। परशुरामजी बोले—भीष्म ! मुझे गुरु मानते हो, फिर भी मुझे प्रसन्न नहीं करना चाहते। अम्बा ग्रहण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मैंने कहा—ब्रह्मन् ! ऐसा होना कदापि संभव नहीं है, क्योंकि मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप प्रसन्न होकर हठ का त्याग कर दीजिए।

मेरी अनेक बार की प्रार्थना पर भी जब वे हठ करने लगे, तब मैंने कहा—ब्रह्मन् ! आप गुरु हैं, इसीलिए मैं आपकी प्रसन्नता चाहता हूँ, किन्तु आप मुझसे शिष्य जैसा व्यवहार नहीं करते, इसलिए आवश्यक हुआ तो मैं युद्ध से भी पीछे नहीं हटूँगा तब व्यंगपूर्वक उन्होंने कहा— भीष्म ! युद्ध के लिए तत्पर होकर कुरुक्षेत्र के मैदान में चलो। वहाँ तुम्हारी माता गंगा तुम्हें मरता हुआ देखेगी। यह सुनकर मैंने भी उनकी चुनौती स्वीकार कर ली।

तत्पश्चात् माता गंगा ने प्रकट होकर मुझ से कहा कि पुत्र ! परशुरामजी से युद्ध करना ठीक नहीं है। तब मैंने उन्हें सब वृत्तान्त सुना दिया। फिर वे परशुरामजी से अनुरोध करने लगीं ब्रह्मन् ! भीष्म आपका शिष्य है, उससे युद्ध न करें। परशुरामजी बोले—भगीरथी ! भीष्म मेरी बात नहीं मानता, आप उसे रोकिये। तब माता ने मुझे युद्ध न करने का परामर्श दिया, जिसे मैं स्वीकार न कर सका। तभी परशुरामजी ने आकर युद्ध के लिए मुझे ललकारा।

हे दुर्योधन ! युद्ध भूमि में परशुरामजी को धरती पर खड़ा देख कर मैंने कहा—ब्रह्मन् ! आप धरती पर खड़े हैं और मैं रथ पर हूँ। इस प्रकार का युद्ध तो अनुचित होगा। आप भी कवच धारण कर रथ पर बैठ जाइये। परशुराम बोले—पृथिवी मेरा रथ और गायत्री कवच है, इनके द्वारा सुरक्षित हुआ मैं तुमसे

युद्ध करने के लिए तैयार हूँ। यह कह कर वे कल्पित दिव्य रथ पर बैठे हुए दिखाई दिये। तब मैंने गुरु के सम्मानार्थ पैदल जा कर उन्हें प्रणाम करके कहा—भगवन् ! मैं आपको अपने से अधिक पराक्रमी जान कर युद्ध कर रहा हूँ इसलिए मुझे विजय का आशीर्वाद देने की कृपा करें। उन्होंने कहा—पुत्र ! अभ्युदय की इच्छा वालों को ऐसा ही शिष्टाचार वर्तना चाहिए। मैं तुम्हें विजय का आशीर्वाद नहीं दे सकता क्योंकि मैं तुम्हें पराजित करने के लिए ही तो युद्ध कर रहा हूँ। अब तुम धैर्यपूर्वक धर्म युद्ध में प्रवृत्त हो जाओ मैं तुम्हारे आचरण से प्रसन्न हूँ।

तत्पश्चात् परशुरामजी के साथ मेरा घोर युद्ध हुआ। अनेक बार वे मूर्च्छित हुए और कई बार मैं अचेत हुआ। यह युद्ध नित्य प्रातः काल प्रारम्भ होता और सूर्यास्त के समय बन्द होजाता। एक दिन मैं मूर्च्छित होगया तब आठ तेजस्वी ब्राह्मणों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया और आकाशमार्ग में लेजाकर शीतल जल छिड़कते हुए बोले—भीष्म ! डरो मत, तुम्हारी विजय होगी तभी मैंने उठ कर देखा कि गंगा माता मेरे रथ पर खड़ी हैं। मैं पितरों के लाये हुये उस रथ पर चढ़ कर स्वयं ही सारथी बना और परशुरामजी से युद्ध में पुनः तत्पर होगया। तभी मेरे हृदय भेदी बाण से वे अचेत होगए। कुछ देर बाद उठ कर वे पुनः सामने आये। किन्तु ऋषियों ने आकर परशुरामजी से युद्ध न करने का अनुरोध किया। उसी समय सूर्य भी अस्ताचल पर जा पहुँचे। परशुरामजी ने युद्ध बन्द कर दिया। इस प्रकार हम तेईस दिनों तक लड़ते रहे।

रात्रि में मैंने स्वप्न देखा, वे आठों ब्राह्मण कह रहे थे-भीष्म हम आठ वसु हैं। तुम हमारे अवतार रूप हो, इसलिए हम हर समय तुम्हारी रक्षा करते हैं। परशुराम तुमसे हार जाँयगे। पूर्व जन्म में तुम्हें इस प्रस्वाप अस्त्र का ज्ञान था, वह अब तुम्हें स्वयं

ही ज्ञात होजायगा। उसका स्मरण करते ही वह तुम्हारे पास आजायगा। उसी से तुम परशुराम को तथा और भी अजेय वीरों को हरा सकोगे। उससे परशुराम मरेंगे नहीं, इसलिए तुम ब्रह्म-हत्या के दोष से भी बच जाओगे। तुम उन्हें जीत कर संबोधनास्त्र से जगा देना। यह कह कर वे आठों ब्राह्मण अदृश्य होगए।

प्रातःकाल होने पर परशुरामजीने एक शक्ति मुझ पर चलाई उससे मैं बुरी तरह आहत हुआ। तभी उन्होंने ब्रह्मास्त्र चलाया, किन्तु मैंने भी ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। वे दोनों अस्त्र आकाश में जाकर भीषण शब्द करते हुए जल उठे। उसके कारण सब ओर 'त्राहि-त्राहि' होने लगी। तभी मैंने प्रस्वाप अस्त्र छोड़ने का विचार किया। किन्तु आकाश से आवाज उठी—भीष्म ! प्रस्वाप अस्त्र मत चलाना। उसी समय नारदजी ने भी आकर यही कहा। तब मैंने प्रस्वाप अस्त्र नहीं छोड़ा। इसी मध्य परशुराम जी के पितामह ने आकर उनसे कहा—पुत्र ! भीष्म जैसे क्षत्रिय से भिड़ना ठीक नहीं है। अब धनुष त्याग कर तप में मन लगाओ।

परशुरामजी नहीं माने तो मैं भी नहीं माना। तब नारदादि ऋषिगण और गंगा माता हम दोनों के बीच में आकर खड़े हो गए। उन्होंने परशुराम से कहा—ब्रह्मन् ! ब्राह्मण का हृदय नवनीत जैसा कोमल होता है। इसलिए आप ही शान्त हो जाइये। क्योंकि आप दोनों में से कोई भी एक-दूसरे को नहीं मार सकता, इसलिये युद्ध करना व्यर्थ है। फिर उन्होंने मुझसे कहा—भीष्म ! अब तुम विनीत होकर परशुरामजी को शान्त करो। इस प्रकार वह युद्ध बन्द होगया।

अब परशुरामजी के पराभाव से दुःखित हुई अम्बा ने मेरे मारने के लिए घोर तप आरम्भ किया। उस पर प्रसन्न होकर

ने वर दिया कि तुम भीष्म को मार सकोगी। किन्तु यह कार्य दूसरे जन्म में पुरुषत्व पाकर करोगी। तुम्हें इस जन्म का वृत्तान्त याद रहेगा। यह कह कर शिवजी अन्तर्धान होगए। अम्बा ने चिता लगा कर उसमें प्रवेश किया, उसी मध्य राजा द्रुपद ने शिवजी को प्रसन्न कर वर माँगा कि प्रभो! मुझे भीष्म को मारने वाला पुत्र दीजिए। शिवजी ने कहा—तेरे एक कन्या होगी वही पीछे पुरुष बन जायगी।

वही अम्बा समय पाकर द्रुपद की अत्यंत सुन्दर कन्या हुई, किन्तु रानी ने पुत्र उत्पन्न होना प्रचारित कर उसका नाम शिखण्डी रखा। वह पुरुषवेश में रहने लगी। द्रोणाचार्य से उसने शस्त्रास्त्र की विद्या सीखी। द्रुपद ने दशार्ण देश के राजा हिरण्य वर्मा की पुत्री के साथ उसका विवाह कर दिया। बाद में हिरण्य वर्मा की पुत्री ने यह भेद प्रकट कर दिया कि शिखण्डी स्त्री है। क्रोधित हिरण्य वर्मा ने यह सुना तो क्रोधित हो उठे। उन्होंने द्रुपद से कहलाया कि मैं शीघ्र ही तुम्हारा वध कर दूँगा। इस प्रकार पिता को संकट में फँसा देख कर द्रुपद-कन्या वन में जाकर तपस्या करने लगी। एक दिन कुबेर के सेवक स्तूणाकर्ण ने उसे देखा तो पूछने लगा—सुन्दरी! तुम कौन हो? क्यों तप करती हो? शिखंडी ने अपना सब वृत्तान्त सुना कर कहा—मेरे पिता को इस विपत्ति से बचाइये। यक्ष बोला--सुन्दरी! मैं तुम्हारा संकट तो दूर कर दूँगा, पर एक शर्त है कि मैं तुम्हें अपना जो पुरुष चिन्ह दूँ, उसे कार्य पूरा होने पर लौटा देना, तब तक तुम्हारा स्त्री चिन्ह मैं धारण करूँगा। इस प्रकार शिखंडी पुरुष होकर लौट आया और वह यक्ष स्त्री होगया।

तब दशार्ण नरेश को विश्वास दिलाया गया कि शिखण्डी पुरुष है, स्त्री नहीं। यह सुन कर उन्होंने उसकी जाँच कराई और पुरुष सिद्ध होने पर अपनी पुत्री को धमका कर द्रुपद के यहाँ

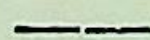
भेज दिया। उधर एक दिन कुबेर स्थूणाकर्ण के घर पहुँच गए। उन्होंने जाना कि वह अपना पुरुष चिन्ह शिखण्डी को देकर स्वयं स्त्री बन गया, तो वे रुष्ट होकर बोले--तुम सदा स्त्री बने रहोगे बहुत मनाने पर उन्होंने इस प्रकार कहा—अच्छा, शिखण्डी मारा जायगा तब तुम पुरुष हो जाओगे।

इधर शिखण्डी उसे पुरुष चिन्ह लौटाने गया और यक्ष को कुबेर के शाप की बात सुन कर प्रसन्न होता लौट आया। हे दुर्योधन! उस वृत्तान्त को अपने गुप्तचरों से जान कर मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि यदि शिखण्डी युद्ध मैं मेरे सामने आया तो उसकी ओर से मुख फेर लूँगा और उस पर शस्त्र भी न चलाऊँगा।

दुर्योधन बोला—पितामह! आप कितने समय में पाण्डवसेना का संहार कर सकेंगे? भीष्म बोले—भैया! एक महीने का समय तो लग ही सकता है। कर्ण ने दृढ़ता से—मुझे पाँच दिन ही लगेंगे। यह सुन कर भीष्म बोले—सूतपुत्र! तूने कृष्ण द्वारा रक्षित अर्जुन को अभी ठीक प्रकार नहीं परखा है। जब सामना होगा, तब सब पता लग जायगा।

हे जनमेजय! सूर्य-प्रभा के आकाश में फैलने पर दोनों पक्षों ने अपनी सेनाओं के तीन-तीन विभाग किये और स्वस्तिवाचन एवं दानादि कर्म करके आगे बढ़ने लगे। सभी सेनाएँ अपने-अपने नायको की अधीनता में चलती हुई सुशोभित हो रही थीं तथा हजारों व्यक्ति प्रसन्नता से नगाड़े और शंख आदि बजाते हुए चल रहे थे।

उद्योग पर्व समाप्त



भीष्म पर्व

संजय को दिव्य दृष्टि की प्राप्ति

जनमेजय ने पूछा - ब्रह्मन् ! कौरव, पाण्डव, सोमक, तथा अन्यान्य देशों के राजाओं ने किस प्रकार से युद्ध किया। वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! विजयोत्सुक पाण्डव गण अपनी सेना और सोमक वीरों के साथ कुरुक्षेत्र में पहुँच कर कौरवों की ओर बढ़े और उनकी सेना के सामने पश्चिम भाग में, पूर्वाभिमुख होकर खड़े होगए। उधर दुर्योधन भी सिर पर श्वेत छत्र लगाये तथा हजार हाथियों के मध्य अपने भाइयों से घिर कर आगे बढ़ा, जिसे देख कर युद्ध प्रिय पांचालों को बड़ी प्रसन्नता हुई। तभी हजारों नगाड़ों और शंखों का तुमुल नाद सुनाई देने लगा और दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आकर खड़ी होगईं। उस समय दोनों पक्षों में युद्ध के यह नियम तय हुए कि युद्ध बन्द होने पर कोई किसी पर प्रहार न करेगा, वरन् मित्रता का व्यवहार सभी सब से करेंगे। वाक्‌युद्ध वाले से वाणी का ही युद्ध होगा, घुड़सवार से घुड़सवार, हाथी सवार से हाथी सवार, रथी से रथी और पैदल से पैदल युद्ध करेंगे। युद्ध-विमुख पर कोई प्रहार न करेगा, सारथी पर, भारवाहक पशु पर, शस्त्र बनाने या पहुँचाने वाले पर अथवा शंख या नगाड़े बजाने वाले पर भी प्रहार नहीं किया जायगा।

ऐसे अवसर पर श्रीव्यासजी धृतराष्ट्र के पास जाकर बोले—राजन् ! तुम्हारे पुत्रों और अन्यान्य राजाओं का समय आगया है, उसे कोई रोक नहीं सकता। तुम उससे शोक मत करना।

यदि युद्ध देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि दे दूँ। धृतराष्ट्र बोले--ब्रह्मन्! मैं अपने नेत्रों से हत्याकाण्ड नहीं देखना चाहता। मैं तो उसे सुन लेना ही चाहता हूं। यह सुन कर व्यासजी ने संजय को दिव्य दृष्टि देकर कहा—राजन्! यह सब वृत्तान्त तुम्हें सुनाते रहेंगे। इनसे कुछ छिपा न रहेगा। जिधर धर्म है, उधर जय होगी। यह कह कर व्यासजी चले गए। धृतराष्ट्र के पूछने पर संजय ने पृथिवी के गुणों का वर्णन किया, फिर नदी-पर्वत आदि का वृत्तान्त कहा, जम्बूद्वीप और उसके खण्डों के विषय में जानकारी दी।

धृतराष्ट्र बोले—संजय! युगों के अनुसार मनुष्यों की आयु का वर्णन करो। संजय ने कहा—महाराज! सत्युग में मनुष्यों की आयु चार हजार वर्ष की, त्रेता में तीन हजार वर्ष की और द्वापर में दो हजार वर्ष की मानी जाती है। कलियुग में आयु का परिमाण निश्चित नहीं है। कोई-कोई जीव तो गर्भावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

भीष्म-वध एवं गीता का पहला अध्याय

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! भूत-भविष्य के जानकार संजय ने सहसा धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा—महाराज! भरतवंश के पितामह भीष्म आज शान्त होगए। वीरों के रक्षक एवं आश्रय स्वरूप उन महापुरुष को शिखण्डी ने मार कर शर शैया पर सुला दिया। यह सुनकर शोक-विह्वल धृतराष्ट्र बोले-संजय! मेरे चाचा भीष्म किस प्रकार मारे गये सो कहो। संजय ने कहा—राजन्! दोनों ओर की सेनाओं को युद्ध के लिए उद्यत देखकर दुर्योधन ने कहा—हे दुःशासन! पितामह की रक्षा के लिए शीघ्र रथों को सुसज्जित करो। इस युद्ध में महारथी भीष्म की रक्षा हमारा प्रमुख कर्त्तव्य है। ऐसा उपाय करो कि शिखण्डी उनका वध करने में सफल न हो सके।

तभी पितामह का गर्जन सुनाई दिया—वीरो ! क्षत्रियों के लिए युद्ध ही स्वर्ग का मार्ग है। उसी के द्वारा इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाता है। भीष्म की गर्जना सुन कर सभी राजागण अपनी-अपनी सेना के अग्रभाग में आगये, केवल कर्ण युद्ध भूमि में नहीं गये। सभी राजाओं के मध्य पितामह अत्यन्त शोभायमान होरहे थे। तत्पश्चात् सभी राजा और सेनानायक सेनाओं के साथ आगे बढ़े। उस समय हे राजन् ! आपके पुत्र की ग्यारह अक्षौहिणी सेना यमुना से मिलने के लिए बढ़ती हुई गंगा के समान दिखाई देती थी।

हे महाराज ! दुर्योधन की सेना को व्यूह-रचना पूर्वक सुसज्जित एवं संख्या में अधिक देख कर युधिष्ठिर ने कहा कि अर्जुन ! बृहस्पति का मत है कि यदि अपनी सेना शत्रु-सेना से कम होतो उसे समेट कर युद्ध करे। यदि अपनी सेना अधिक हो उसे फैला दे। थोड़ी सेना वाला पक्ष सूचीमुख व्यूह की रचना करे, इसलिए तुम इसी मत का अवलम्बन करो। अर्जुन बोले—राजन् ! मैं इन्द्र द्वारा बताये हुए वज्रव्यूह की रचना करूँगा। आप निश्चिन्त रहें, हमारे योद्धागण शत्रु के तेज का हरने में समर्थ हैं। यह कह कर अर्जुन ने अपनी सेना का वज्रव्यूह बनाया और फिर सभी पाण्डव-पक्ष के वीर जयघोष करते हुए आगे आने लगे। अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी भीष्मवध के उद्देश्य से उनके साथ रहे। भीमसेन के जिम्मे आपके पुत्र रखे गये। इस प्रकार भीमसेन गदा हाथ में लेकर आगे-आगे चले। तभी सेना के मध्य स्थित दुर्धर्ष अर्जुन से भगवान् वासुदेव बोले—पार्थ ! हमारी सेना को सिंह के समान देखते हुए पितामह वहाँ खड़े हैं। कौरव-सेना उनके चारों ओर रह कर रक्षा में तत्पर है। हे पुरुषश्रेष्ठ उस सेना को मार कर पितामह भीष्म के साथ संग्राम में जुट जाओ।

तब भगवान् के कहने से अर्जुन ने भगवती दुर्गा की स्तुति की, जिन्होंने प्रकट होकर कहा कि अर्जुन ! तेरी जीत निश्चित है। इसके बाद अर्जुन का रथ आगे बढ़ा और दोनों पक्षों में घोर युद्ध प्रारंभ हो गया। तभी अर्जुन ने देखा कि पितामह, आचार्य मामा, भ्राता, पुत्र, पौत्र, श्वसुर एवं मित्रादि आत्मीय एवं माननीय पुरुष सामने खड़े हैं, तब उन्हें अत्यंत खेद हुआ। वे बोले-- हे वासुदेव ! यह सब अपने ही जन यहाँ उपस्थित हैं, इन्हें देख कर मेरा देह कम्पित हो रहा है, हाथ-पाँव स्तंभित होते जारहे हैं, रथ पर बैठना कठिन हो रहा है। इन भाई-बन्धुओं को मार कर राज्य-सुख किस काम आयेगा ? सब ओर अपने ही अपने दिखाई देरहे हैं। हे जनार्दन कुल के नष्ट होने से, अधम छा जाता है, जिससे कुल की स्त्रियाँ दूषित होतीं और वर्ण संकर सन्तान उत्पन्न होने लगती हैं। तब कुल को नष्ट करने वाले का सम्पूर्ण कुल नरकगामी होता है। उस स्थिति में पिण्ड और तर्पण का लोप होने से पितरगण नरक में जा गिरते हैं। इस पाप से तो यह धृतराष्ट्र पुत्र ही मुझे मार डालें तो ठीक है। हे महाराज यह कह कर शोकाकुल अर्जुन शस्त्रास्त्र फैंक रथ पर मौन बैठ गये।

गीता का दूसरा अध्याय—सांख्य योग

संजय ने कहा—अर्जुन को इस प्रकार शोकयुक्त एवं युद्ध से निवृत्त बैठा देख कर भगवान् बोले—अर्जुन ! असमय में उत्पन्न यह मोह स्वर्ग और यश को भी नष्ट करने वाला है। इसलिए क्लैव को त्याग कर खड़े हो जाओ। अर्जुन बोले—हे मधुसूदन ! भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य दोनों ही मेरे पूजनीय हैं, उनके विरुद्ध कैसे युद्ध करूँ ? मैं इन्हें न मार कर भीख का अन्न खा लेना भी ठीक समझता हूँ ! हे कृष्ण ! धृतराष्ट्र को भी मार कर हम जीवित नहीं रहना चाहते। इसलिए मैं युद्ध नहीं करूँगा।

भगवान् बोले—अर्जुन ! तुम अशोचनीयों का शोक करते हो। किन्तु जिनके प्राण चले गये, अथवा नहीं गये उनके लिए शोक कैसा ? देखो हम तुम या यह सब पहिले भी थे, आगे भी रहेंगे। शरीर में अवस्था-भेद अज्ञान से ही दिखाई देता है तथा एक देह से दूसरे देह में जाना भी अज्ञान की ही प्रतीति है, इसलिए मोह नहीं करना चाहिए। इन्द्रियों के सभी भोग नाशवान हैं, उन्हें सहन करना ही श्रेयस्कर है। जो नहीं है, वह कभी नहीं होसकता और जो है उसका न होना असंभव है। आत्मा सर्वत्र और अविनाशी है। इसलिए तुम युद्ध करो। इस आत्मा को मरने या मारने वाला समझने वाले व्यक्ति अज्ञानी ही हैं। क्योंकि आत्मा न मरता है, न किसी को मारता है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतार कर नये पहन लता है, वैसे ही आत्मा भो पुराना शरीर त्याग कर नवीन देह धारण कर लेता है। आत्मा शस्त्र से नहीं कट सकता, अग्नि में नहीं जल सकता, जल से भीग नहीं सकता, वायु से सूख भी नहीं सकता। तब ऐसे जीवात्मा के प्रति शोक और मोह करना उचित नहीं है। हे पार्थ ! युद्ध स्वयं प्राप्त एवं स्वर्गद्वार रूप है, बड़भागी क्षत्रियों का यह धर्म है, यदि इससे विमुख होगे तो पाप के भागी बनोगे और तुम्हारा अपयश होगा हे अर्जुन ! सुख-दुःख, लाभ-हानि और विजय-पराजय को समान मान कर युद्ध के लिए उठ खड़े हो, इस प्रकार तुम पाप से बच जाओगे। यह बुद्धि सांख्य योग विषयक कही गई, अब कर्मयोग विषयक बुद्धि को कहूँगा, जिससे युक्त होकर तुम कर्म-बन्धन को सर्वथा नष्ट करने में समर्थ होगे। हे कुरुनन्दन ! इस कर्मयोग में एक ही निश्चयात्मिका बुद्धि होती है, जिनके ऐसी बुद्धि नहीं है, उनकी बुद्धियाँ अनन्त और अनेक शाखाओं वाली होती है। हे अर्जुन ! तुम्हें कर्म करने मात्र का अधिकार है। कर्म करो, पर उसके फल की इच्छा न करो। आसक्तिरहित होकर सिद्धि-असिद्धि

को समान मानते हुए कर्म करने में लग जाओ। क्योंकि कर्मयोग वाली बुद्धि से युक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों से छूट जाता है। जब तुम्हारी बुद्धि मोह-पंक से निकल आवेगी, तब तुम्हें विषयों से वैराग्य हो जायगा। विषयों में विचरने वाली इन्द्रियों के वश में पड़ा हुआ मन प्रज्ञा को उसी प्रकार डाँवाडोल करता रहता है, जिस प्रकार कि नदी में स्थित नौका को आंधी डाँवाडोल कर देती है। हे पार्थ ! सब इच्छाओं—वासनाओं का त्याग कर जो इन्द्रियों के विषयों का उपभोग करे उसी को शान्ति मिलती है। हे अर्जुन ! यही ब्राह्मी स्थिति है, ब्रह्मज्ञान में निष्ठा वाले पुरुष इस स्थिति को प्राप्त होकर मोहित नहीं होते। अन्तकाल में भी जो इस ब्रह्मनिष्ठा में स्थित होता है, वह ब्रह्म को प्राप्त होजाता है।

गीता का तीसरा अध्याय—कर्मयोग

अर्जुन बोले—हे केशव ! आपके मत में कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है तो आप मुझे हत्याकाण्ड रूपी इस कर्म में क्यों लगाते हैं ? कृष्ण बोले—अर्जुन ! इस लोक में निष्ठा दो प्रकार की है—सांख्य वालों का ज्ञानयोग और कर्मयोगियों का कर्मयोग। कर्म के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता और ज्ञान नहीं तो संन्यास से भी सिद्धि नहीं मिल पाती। कर्म किये बिना पल भर भी नहीं रहा जा सकता। कमन्द्रियों को संयत करके मन ही मन जो पुरुष विषयों का चिन्तन करता है, वह कपटाचारी है ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके अनासक्त मन से कर्म करने वाला योगी श्रेष्ठ है. इसलिए तुम निरन्तर कर्म करो। कर्म न करने से तो करना अच्छा है। मैं अपने लिए अप्राप्य कुछ भी नहीं है, इसलिए मुझे कर्म भी आवश्यक नहीं है, तो भी मैं कर्म करता हूँ। यदि मैं कर्म न करूँ तो सब मेरे अनुगामी होकर कर्म का त्याग कर दें। ज्ञानी पुरुष अपने स्वभाव के अनुरूप कर्म करते हैं। जब सभी प्राणी स्वभाव

के अनुसार चलते हैं, तब इन्द्रियनिग्रह से क्या होगा ? प्रत्येक इन्द्रिय में अनुकूल विषय के लिए आसक्ति और प्रतिकूल विषय के लिए अनासक्ति—यह दोनों ही मोक्ष में बाधा स्वरूप हैं। भले प्रकार अनुष्ठित पराये धर्म की अपेक्षा अपना धर्म निकृष्ट हो तो भी श्रेष्ठ है। पराया धर्म भयावह है, इसलिए अपने धर्म में तत्पर रहने से मृत्यु भी होती हो तो कल्याण करने वाली होगी, अर्जुन ने पूछा—वासुदेव ! अनिच्छा होने पर भी किसकी प्रेरणा से यह पुरुष पाप कर्म में प्रवृत्त होता है ? कृष्ण बोले—हे अर्जुन ! काम ही क्रोध रूप होकर अत्यन्त उग्र, रजोगुण-संभव एवं घोर पाप रूप है। यही मोक्ष-मार्ग में बाधक होता है। काम ही शरीरधारी आत्मा को मोहित करता है, इसलिये प्रथम इन्द्रियों के दमन-पूर्वक पापरूप काम को नष्ट करो। विषयों से इन्द्रिय श्रेष्ठ हैं। इन्द्रियों से मन और मन से स्थिर बुद्धि श्रेठ है। उस बुद्धि से श्रेष्ठ आत्मा है। उस आत्मा को जान कर काम रूप दुर्धर्ष शत्रु का नाश कर डालो।

गीता का चौथा अध्याय—ज्ञान योग

कृष्ण बोले—हे अर्जुन ! पुराकाल में यह अविनाशी योग मैंने आदित्य से कहा था। आदित्य ने मनु से, मनु ने इक्ष्वाकु से और तत्पश्चात् निमि आदि राजर्षियों ने परम्परा द्वारा इसे जाना था। वही लुप्तप्राय पुरातन योग एवं श्रेष्ठ रहस्य मैंने तुम अपने सखा से कहा है। अर्जुन ने कहा—हे केशव ! आदित्य का जन्म तो बहुत पहले हुआ था और आपका जन्म बहुत पीछे, तो मैं कैसे समझूँ कि आपने इसे आदित्य से कहा होगा ? भगवान् बोले—हे अर्जुन ! मेरे बहुत-से जन्म हैं। तुम भी अनेक बार जन्म ले चुके हो, किन्तु तुम उनके विषय में नहीं जानते, मैं जानता हूँ। मैं अजन्मा होकर भी स्वप्रकृति के आश्रित होकर अपनी माया से उत्पन्न होता हूँ। साधुजनों की रक्षा और

असाधुओं को नष्ट करने तथा धर्म की स्थापना करने के लिए मैं प्रत्येक युग में जन्म लेता हूँ। मेरे अलौकिक जन्म-कर्मों के जानने वाले, शरीर छोड़ने पर मुझी को प्राप्त होते हैं। हे पार्थ ! सब प्राणी मेरे मार्ग पर चलते हैं। मनुष्य लोक में सब कर्मों के सफल होने के कारण मनुष्य कर्म-सिद्धि की कामना से देवताओं को पूजते हैं, पर. यथार्थ में वे सब मेरा ही पूजन करते हैं। इस लोक में कर्म क्या है, अकर्म क्या है, इसके जानने में ज्ञानीजन भी मोहित हैं। कर्म की गति अत्यन्त गहन है, इसलिए कर्म, अकर्म और विकर्म (त्याज्य कर्म) का ज्ञान आवश्यक है। जो कर्म करता हुआ भी अपने को अकर्त्ता और कर्म न करता हुआ भी अपने को कर्त्ता समझता है, वही धीमान्, योगी एवं कर्म करने वाला है। शुद्ध चित्त वाला पुरुष शरीर से कर्म करके पाप-भागी कभी नहीं होता। जो मिले उसी में तृप्त, द्वन्द्व धर्मों में सहनशील तथा सिद्धि-असिद्धि में समभाव वाला पुरुष कर्म करके भी संसार के बन्धन में नहीं बँधता। हे अर्जुन ! तत्व-दर्शियों को प्रणाम, प्रश्न और सेवा करके ज्ञान की शिक्षा लो, क्योंकि ज्ञान प्राप्त कर लोगे तो तुम्हें मोह नहीं होगा। इन्द्रियों को वश में करके जो गुरुजन की सेवा कर ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह मोक्ष को शीघ्र पा लेता है। किन्तु ज्ञान और श्रद्धा से रहित संशययुक्त पुरुष नष्ट हो जाता है। जिसने योग द्वारा सब कर्म ईश्वर में अर्पित कर दिये और ज्ञान के द्वारा जो संशय-रहित होगए, उसे कर्म बाँधते नहीं। इसीलिए अज्ञान रूपी शस्त्र से अज्ञानोत्पन्न संशय को काट कर कर्मयोग के अनुष्ठानार्थ उठ पड़ो।

गीता का पांचवां अध्याय—कर्म-संन्यास योग

अर्जुन बोले—हे कृष्ण ! आप कर्म करने और कर्म न करने, दोनों का ही उपदेश कर रहे हैं, तो इनमें श्रेष्ठ कौन है ? भगवान्

ने कहा—हे पार्थ ! कर्म योग और कर्म-त्याग दोनों ही मोक्ष के साधन हैं। किन्तु इन दोनों में कर्म-त्याग ही प्रधान है। द्वेष-रहित एवं इच्छारहित व्यक्ति ही नित्य संन्यासी है। मूर्ख ही संन्यास और योग के पृथक्-पृथक् फल बताते हैं, ज्ञानी नहीं। जो संन्यास और योग दोनों में से एक का भी अनुष्ठान करते हैं, वे दोनों के ही फल को पा लेते हैं। क्योंकि दोनों को एक रूप देखना ही तत्वदर्शिता है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्राह्मण, गौ, गज, श्वान एवं चाण्डाल को समान दृष्टि से देखते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। समदर्शी पुरुष ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि ब्रह्म निर्दोष एवं सर्वत्र समान भाव से विद्यमान है। जो मोक्षपरायण पुरुष इन्द्रिय, मन और बुद्धि को वश में करके इच्छा, भय और क्रोध को छोड़ चुके हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। सभी मुझे यज्ञ और तप का भोक्ता, सबका ईश्वर और सुहृद समझते हुए शान्ति को प्राप्त होते हैं।

गीता का छठवाँ अध्याय—आत्मसंयम योग

भगवान् बोले—हे अर्जुन! कर्मफल की इच्छा न कर कर्त्तव्य कर्म करने वाला ही संन्यासी और योगी है। केवल अग्निहोत्र और कर्मों को छोड़ देने वाला पुरुष संन्यासी या योगी कदापि नहीं हो सकता। ज्ञान योग की इच्छा वाले के लिए कर्मयोग ही प्रथम सोपान है और जब ज्ञानयोग में स्थित हो जाता है तब कर्मों की निवृत्ति ज्ञान-परिपाक का कारण कही जाती हैं।आसक्ति के मूल भोग और उसके संकल्प का त्याग करने वाला अनासक्त पुरुष योगारूढ माना जाता है। आत्मा ही आत्मा का बन्धु और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है, इसलिए स्वयं ही आत्मा का उद्धार करे। योगारूढ़ पुरुष निःसंग, संयत, एकान्तरत रह कर चित्त को समाधिस्थ करे,। जो नियमित रूप से भोजन करता, सोता,

चलता-फिरता, कार्यरत रहता, चेष्टा करता और जागता है, वही योग का अभ्यास कर सकता है। हे अर्जुन! मैं सभी का आत्मा हूँ, जो मुझे सब में और सब को मुझ में देखता है, उसके लिए जैसे मैं अदृश्य नहीं होता, वैसे ही वह भी मेरी दृष्टि से ओझल नहीं रहता। जो अद्वैतवादी मुझे सब जीवों में मान कर मेरी उपासना करता है, वह मुझी में लीन हो जाता है।

अर्जुन ने कहा—हे पुरुषोत्तम! आपने जिस योग का उपदेश किया है, उसे मैं चित्त की चंचलता के कारण नहीं देख सकता। भगवान् बोले—हे अर्जुन! चंचल मन का दमन सहज में नहीं होता। उसे तो अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जा सकता है। शुभ अनुष्ठान में लगे रहने से दुर्गति नहीं होती। इसलिए योग से भ्रष्ट पुरुष भी पतित या नरकगाम नहीं होते। वे सदाचारी धनिकों या बुद्धिमान योगियों के यहाँ जन्म लेकर मोक्ष के लिए अधिक यत्नवान होते हैं। यदि विघ्न के कारण वे वैसा करने में प्रवृत्त नहीं होते तो पूर्व के जन्म संस्कार उन्हें ब्रह्मनिष्ठ बना देते हैं। हे अर्जुन! योगी पुरुष तपस्वी, ज्ञानी और कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है, इसलिए तुम भी योगी बन जाओ। जो श्रद्धायुक्त होकर हृदय से मुझे भजता है, वह सभी प्रकार के योगियों से श्रेष्ठ माना जाता है।

गीता का सातवाँ अध्याय–विज्ञान योग

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन! मुझमें मन लगा कर जिस योगाभ्यास पूर्वक मुझे जान सकोगे, वह तुम्हें बताता हूँ। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इन आठों में मेरी प्रकृति विभक्त है। यह प्रकृति निकृष्ट है। इसके अतिरिक्त जो जीवरूपिणी उत्कृष्ट प्रकृति है, उसी के द्वारा इस संसार का संचालन होता है। ये दोनों ही प्रकृति सम्पूर्ण जड़ चेतन

पदार्थों की कारण रूपा हैं। इनमें से प्रथम प्रकृति देह रूप से उत्पन्न होती और दूसरी प्रकृति मेरे अंश से उत्पन्न एवं भोक्ता रूप से शरीर में घुस कर भूत-परम्परा को धारण करती है। हे अर्जुन! यह दोनों प्रकृति मेरा कार्य होने से सम्पूर्ण संसार का कारण और संहारक मुझी को जानो। धागे में गुँथी मणियों के समान विश्व मुझ में ही गुँथा है। मैं जल का गुण रस, चन्द्र-सूर्य की प्रभा, वेद में प्रणव, आकाश में शब्द, पुरुष में पौरुष, पृथिवी का गुण गन्ध और अग्नि का गुण तेज हूँ। मैं सब प्राणियों का जीवन और अक्षय बीजरूप हूँ। आर्त, आत्मज्ञान की इच्छा वाला लोक-परलोक के भोग-साधन रूप अर्थ-लाभ के निमित्त उत्सुक और आत्मज्ञानी पुरुष यह चारों पूर्व जन्म में पुण्य कर्म करने के कारण मेरी उपासना में लगते हैं। इनमें जो पुरुष सर्वाधिक भक्ति और योग सम्पन्न हो, वह अधिक श्रेष्ठ होता है। हे पार्थ! मैं प्रपंच से परे एवं अव्यक्त हूँ, किन्तु अनजान व्यक्ति मेरे नित्य, शुद्ध रूप को न जानने के कारण ही मेरे मीन, कच्छप आदि रूपों की कल्पना करते हैं। मैं योगमाया से आच्छन्न रहता हुआ, सब के सामने कभी व्यक्त नहीं होता, इसलिए माया से मोहित हुए पुरुष मुझे जान नहीं पाते। जिन पुण्यात्माओं के पाप नष्ट हो चुके हैं, वे दृढ़व्रत महात्मा मुझे भजते हैं और जो मेरा आश्रय लेकर अमरत्व प्राप्ति का यत्न करते वे सब कर्म योग और अखण्ड ब्रह्म को जान लेते हैं। जो मुझे जानते हैं, वे मरणकाल में भी नहीं भूल पाते।

गीता का आठवां अध्याय—महापुरुष योग

अर्जुन ने कहा—हे पुरुषोत्तम! ब्रह्म अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ क्या है? श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन! परम और अक्षय ही ब्रह्म है। उसके अंश रूप जीव को अध्यात्म

कहते हैं। जिससे प्राणियों की उत्पत्ति-वृद्धि होती है, उस द्रव्य का उत्सर्ग कर्म कहा जाता है। प्राणियों का यह नश्वर देह आदि अधिभूत है। जीवों की इन्द्रियों के प्रवर्तक, देवताओं के अधीश्वर और हिरण्यगर्भ नाम से जो प्रसिद्ध है, वही अधिदेव है। सब यज्ञों के अधिष्ठाता और फलदाता के रूप से शररी में विद्यमान रहने के कारण मैं ही अधियज्ञ हूँ। मुझ अन्तर्यामी का स्मरण करते हुए जो शरीर छोड़ कर उत्तरायण मार्ग से जाते हैं वे मेरे स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। हे पार्थ ! ब्रह्मलोक तक जितने भी लोक हैं उनमें जाकर जीव को पुनः पृथिवी पर जन्म लेना होता है किन्तु मुझे प्राप्त होकर पुनः जन्म नहीं लेना होता। अर्जुन ! यहाँ के एक वर्ष में देवताओं का अहोरात्र होता है। देवताओं के अहोरात्र के अनुसार बारह हजार वर्ष व्यतीत होने पर एक चतुर्युगी होती है। ऐसे ही अहोरात्रों के परिणाम से एक सौ वर्ष की ब्रह्मा की परमायु है। जब ब्रह्मा का दिन होता है तब सब चराचर जीव प्रकट होते और ब्रह्मा की रात्रि होती है तब अपने कारण में लीन होजाते हैं। फिर दिन होने पर पूर्व कर्म के वशीभूत होकर जन्म लेते हैं। चराचर जगत् कारण-भूत अव्यक्त से भी जो अव्यक्त है वह सम्पूर्ण जगत् के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। वही अव्यक्त परम पुरुषार्थ और गम्य स्वरूप कहा जाता है। वही मेरा स्वरूप है जिसके प्राप्त होने पर पुनर्जन्म नहीं होता। जहाँ दिन श्वेतवर्ण का, अग्नि तुल्य प्रभा वाला एवं छः मास उत्तरायण होता है वहाँ जाने पर ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जहाँ रात्रि धूमिल काली और छः मास दक्षिणायन होता है वहाँ जाने पर कर्मयोगी पुरुष चन्द्रज्योतिरूप स्वर्ग को प्राप्त होते और पुनः पृथिवी पर लोटते हैं। हे पार्थ ! इस प्रकार जगत् की इन दोनों गतियों का ज्ञाता योगी मोह में कभी नहीं पड़ता। इसलिये तुम सदा योग में स्थित रहो। क्यों-

कि योगी पुरुष इस ज्ञान के प्रभाव से वेद, यज्ञ, तप और दान के निश्चित फलों को लाँघ कर परमपद को ही प्राप्त करता है।

गीता का नवां अध्याय—राजगुह्य योग

भगवान् बोले—हे पार्थ ! तुम असूया-रहित हो इसलिए तुम्हें गुह्यतम ज्ञान सुनाता हूँ। जो लोग इस धर्म में अश्रद्धा रखते हैं, वे मृत्यु और लोक के मार्ग में भटकते रहते हैं। मैं आत्मरूप से विश्व में व्याप्त हूँ, सभी प्राणी मुझी में स्थित हैं, किन्तु मैं अलिप्त हूँ, इसलिए मुझमें कोई जीव स्थित नहीं है। सब प्राणियों की सृष्टि मेरे ही आत्मा ने की है, इसलिए सब प्राणियों को मुझ में स्थित मानो। हे अर्जुन ! प्रलयकाल में सब मेरी अधिष्ठित प्रकृति में लीन होजाते हैं और फिर कल्प के आरम्भ में मेरे द्वारा उनकी सृष्टि की जाती है। इस प्रकार मैं अपनी प्रकृति के आश्रय से प्राणियों को बार-बार रचता हूँ। हे पार्थ ! आशा, कर्म और ज्ञान से विफल पुरुषों के अन्तःकरण विवेक-रहित हैं, इसलिए वे मुझे मनुष्य जान कर मेरी अवज्ञा करते हैं। किन्तु महात्माजन मुझे सब जीवों का आदि तथा अव्यय स्वरूप मान कर अनन्य चित्त से मेरी उपासना करते हैं। कोई तत्वज्ञान रूप, यज्ञ, अभेद भाव, कोई पृथक् रूप, कोई सर्वरूप, कोई रुद्रादि के रूपों में मेरी आराधना किया करते हैं। हे पार्थ ! यज्ञ, स्वधा, ओषधि, मन्त्र, घृत, अग्नि और हवन मेरे ही स्वरूप हैं, मैं ही सब का पिता, माता विधाता आदि हूँ। मैं ही वेद्य, पुनीत, प्रणव, ऋक्, साम और यजुः हूँ। गति, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद, प्रभाव, प्रलय निधान, लयस्थान एवं अक्षय बीज भी मैं ही हूँ। जो पुरुष अनन्य हृदय से मेरी आराधना करते हैं उनके योग-क्षेम को मैं ही वहन करता हूँ। जो भक्ति, श्रद्धा और पवित्र चित्त से अन्य देवताओं को पूजते हैं वे भी विधि-रहित रूप से मुझे ही पूजते

हैं। मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता एवं स्वामी हूँ किन्तु वे इसे न जान कर स्वर्ग से भ्रष्ट होते रहते हैं। जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं मैं उनके हृदय में सदैव वास करता हूँ। स्त्री, शूद्र, वैश्य, या पाप-योनि जीव भी मेरी शरण में आकर परमगति पाते हैं तो पण्डित, भक्त, ब्राह्मणों की परमगति के विषय में कहना ही क्या है ? हे अर्जुन ! तुम इस अनित्य लोक में मेरा ही भजन करो और अनन्य हृदय से मुझे ही प्रणाम करो। इस प्रकार मुझ में मन लगाने से अन्त में मुझे ही प्राप्त कर लोगे।

गीता का दसवां अध्याय—विभूति योग

भगवान् ने कहा—हे महाबाहो ! तुम्हारी प्रीति के कारण तुम्हारे हित की इच्छा से जो कहता हूँ, उसे सुनो। मैं देवताओं और ऋषियों का भी आदि पुरुष हूँ, वे देवता और ऋषि मेरे प्रभाव से अनजान हैं। मुझे अनादि, अज और सब लोकों का ईश्वर जानने वाले पुरुष मोह से रहित एवं पापों से मुक्त होजाते हैं। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! मेरी विभूतियाँ असंख्य हैं। फिर भी तुम्हें कुछ विभूतियाँ बतलाता हूँ। मैं अन्तर्यामी आत्मा, सबका आदि, मध्य और अन्त हूँ। आदित्यों में विष्णु, ज्योतियों में सूर्य मरुतों में मरीचि नक्षत्रों में चन्द्र वेदों में साम, देवों में इन्द्र इन्द्रियों में मन, भूतों में चेतना रुद्रों में शिव यक्षों में कुबेर वसुओं में अग्नि पर्वतों में सुमेरु पुरोहितों में बृहस्पति सेनापतियों में स्कन्द जलाशयों में समुद्र महर्षियों में भृगु, वाक्यों में प्रणव यज्ञों में जप स्थावरों में हिमालय वृक्षों में पीपल देवर्षियों में नारद गन्धर्वों में चित्ररथ सिद्धों में कपिल अश्वों में उच्चैःश्रवा और गजों में ऐरावत मैं हूँ। राजा वज्र कामधेनु कामदेव वासुकी प्रह्लाद काल सिंह गरुड़ पवन राम मकर गंगा सर्गों में आदि-मध्य अन्त आत्मविद्या वाद अकार कीर्ति श्री वाणी स्मृति मेधा धृति क्षमा बृहत्साम गायत्री मार्गशीर्ष मास वसन्त ऋतु द्युत

तेज, जय, उद्यम, सत्व, वासुदेव, अर्जुन, व्यास, शुक्राचार्य, दंड, नीति, मौन और अज्ञान मैं हूँ। सब प्राणियों का बीज मुझे ही समझो। मेरी विभूतियों को पृथक्-पृथक् जानना अनावश्यक है। मैं अपने एक अंश से इस सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त एवं धारण करके स्थित हूँ।

गीता का ग्यारहवाँ अध्याय—विश्वरूप दर्शन

अर्जुन बोले—हे वासुदेव! आपसे परमगुह्य अध्यात्मज्ञान को सुन कर मेरा मोहान्धकार नष्ट होगया। आपने अपने ईश्वर रूप होने की बात कही, उस रूप को मैं देखना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा—हे पार्थ! अब तुम मेरे सैकड़ों-हजारों विभिन्न प्रकार के अलौकिक रूपों को देखो। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ।

संजय ने कहा—हे राजन्! तब भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने ईश्वर रूप के दर्शन कराये। उनके अनेक मुख, अनेक नेत्र, अनेक दिव्यालंकार, दिव्यास्त्र, दिव्यमालादि को देख कर अर्जुन अवाक् रह गए। उस रूप में उन्होंने मनुष्य, देवता, पितर आदि को अनेक स्थानों में विभक्त और सम्पूर्ण विश्व को एकत्र हुआ देखा। अर्जुन ने भगवान् को प्रणाम कर कहा—हे विश्वरूप! आपके शरीर में सब देवताओं, प्राणियों ब्रह्माजी सहित ऋषियों नागों आदि को मैं देख रहा हूँ। आपके अनेक बाहु, अनेक उदर, अनेक मुख और अनेक नेत्र हैं, किन्तु आपका आदि, मध्य, अन्त कहीं भी दिखाई नहीं देता। आपके मुख में प्रदीप्त अग्नि और नेत्रों में चन्द्र सूर्य स्थित हैं। आप अकेले ही सब दिशाओं, भूमण्डल और अन्तरिक्ष को भी व्याप्त किये हुए हैं। सब लोग आपके इस रूप को देख कर भयभीत हो रहे हैं। देवगण हाथ जोड़कर 'त्राहि-त्राहि' पुकार रहे हैं। महर्षिगण और सिद्धगण आपका स्तोत्र कर रहे हैं। हे जगदीश्वर! कालाग्नि के समान भयंकर

दन्तावलि युक्त आपका मुख मण्डल मुझे भो व्याकुल कर रहा है, मुझे दिग्भ्रम होगया है, अतः हे देवेश ! आप प्रसन्न हों। हे देवदेव ! हमारे और कौरवपक्ष के सभी योद्धा कराल दाढ़ों वाले आपके मुख में शीघ्रता से प्रवेश करते चले जा रहे हैं, उनमें से किसी का मस्तक टूट गया है तो कोई आपकी दन्त-सन्धि में अटक गया है। आप अपने प्रज्वलित मुखों के द्वारा सभी को निगलते जारहे हैं। हे देवेश ! मैं नहीं जानता कि आप ऐसे भयंकर कार्य में क्यों प्रवृत्त हुए हैं ? हे प्रभो ! आप प्रसन्न हों। मुझे आपका परिचय पाने की उत्कट इच्छा है।

भगवान् बोले—हे अर्जुन ! मैं सर्वसंहारक काल इस समय लोक संहार में प्रवृत्त हो रहा हूँ। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य सब वीर इस समय काल का ग्रास होने को हैं। इसलिए युद्ध में तत्पर होकर शत्रुओं को मारो और समृद्धि युक्त राज्य को प्राप्त करो। यह सभी मेरे प्रभाव से मारे जा चुके हैं, तुम तो इनके मारने में निमित्त मात्र हो। द्रोण, कर्ण, भीष्म, जयद्रथ और अन्यान्य वीरों को मैं पहले ही मार चुका हूँ, इसलिए शोक को त्याग कर इन्हें मार डालो, तुम्हारी अवश्य ही विजय होगी।

अर्जुन ने हाथ जोड़ कर गद्गद कण्ठ से कहा—हे हृषीकेश! आपको प्रणाम है। आप ब्रह्मा के भी आदिकर्त्ता और गुरु हैं, फिर सब प्राणी आपको प्रणाम क्यों न करें ? हे विश्वात्मन् ! आपको आगे से, पीछे से तथा सब ओर से प्रणाम है। हे विभो ! आपकी महिमा को न जान कर, प्रमादवश या प्रीति के कारण आपको सखा मानते हुए 'हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे !' आदि शब्द से सम्बोधित किया तथा भोजन, विहार, शयन, आसन आदि के समय जो विनोद-व्यंग किया है, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। हे देवेश ! मैं आपके इस रूप से अत्यन्त भयभीत हो रहा हूँ, अब अपने उसी रूप से प्रकट होने की कृपा करिये।

अर्जुन की इस प्रार्थना पर भगवान् ने उस रूप को छिपा कर पूर्व रूप प्रकट किया और बोले—हे अर्जुन ! मेरे इस विश्व-रूप को देखने की इच्छा देवता भी करते हैं, किन्तु इसे देखना अत्यन्त दुर्लभ है। मेरा अनन्य भक्त, पुत्रादि में अनासक्त और जीवों से द्वेष न रखने वाला पुरुष ही मेरे दर्शन कर सकता है।

गीता का बारहवाँ अध्याय—भक्तियोग

अर्जुन बोले—हे केशव ! आप विश्वरूप, सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान हैं। आपकी हृदय से उपासना करने वाले और अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करने वाले में कौन श्रेष्ठ है ? भगवान् बोले—हे अर्जुन ! श्रद्धा सहित मन लगा कर मेरे निमित्त कर्मानुष्ठान करने वालों को मैं अधिक श्रेष्ठ मानता हूँ। सब जीवों के हित साधक, सब में समान बुद्धि वाले तथा अव्यक्त ब्रह्म का ध्यान करने वाले भी मुझे ही प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु देहाभिमानियों में अव्यक्त ब्रह्म के प्रति निष्ठा होना कठिन है, इसलिए अव्यक्त की उपासना अत्यन्त कष्टप्रद है। किन्तु अनन्य भाव से, मुझे ही सब कर्मों को अर्पण कर मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मैं स्वयं इस लोक से उबार लेता हूँ। इसलिए तुम मुझ में ही मन-बुद्धि अर्पण कर, मेरा ही भजन करो तो देह छोड़ने पर मुझमें ही लीन हो जाओगे। यदि अन्तःकरण मुझ में स्थित हो सके तो अभ्यास योग के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो। यदि वह भी न कर सको तो मैं जिन कर्मों से प्रसन्न हो सकूँ, उन कर्मों को करो। इससे तुम्हें अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी। अभ्यास से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान और ध्यान से कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है, उससे परम शान्ति प्राप्ति होती है। जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख, और स्तुतिनिन्दा को तुल्य समझता, वाणी को संयत

रख जो मिले उसी में संतोष कर लेता है, वही स्थिर बुद्धि वाला भक्त मुझे प्रिय है।

गीता का तेरहवाँ अध्याय–क्षेत्रक्षेत्रज्ञ योग

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और ज्ञेय के विषय में कहने की कृपा कीजिए। भगवान् बोले—हे अर्जुन ! यह शरीर क्षेत्र और शरीर के विषय का जानने वाला क्षेत्रज्ञ होता है। सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझो। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि, मूल प्रकृति ग्यारह इन्द्रियाँ पाँच विषय इच्छा द्वेष सुख दुःख चेतना और धृति यह क्षेत्र के विषय हैं। मान दंभ हिंसा अक्षमा असरलता का त्याग और गुरुपूजा, शौच स्थिरता आत्म-निग्रह विषयों में अनासक्ति निरहंकारता मेरी भक्ति एकान्त चिन्तन आदि उपाय ज्ञान के साधन हैं। इसके विपरीत आचरण अज्ञान के साधन समझो। अब ज्ञेय का निरूपण सुनो—ज्ञेय अनादि ब्रह्म एवं मेरा निर्विशेष रूप है। वह सत् असत् कुछ भी नहीं है। उसके हाथ पाँव नेत्र कान मुख सब में हैं तथा वह सर्वत्र व्याप्त है। सब इंद्रियों से रहित होकर भी वह इन्द्रियों और उनके विषयों का प्रकट करने वाला है। वही सब प्राणियों की उत्पत्ति पालन और संहार करने वाला है। वह ज्योतिर्मय पदार्थों की ज्योति तथा अज्ञान-रहित है। वही ज्ञान ज्ञेय ज्ञान-गम्य और सभी के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है। यह ज्ञान-ज्ञेय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का वर्णन हुआ अब प्रकृति और पुरुष के विषय में सुनो। यह दोनों अनादि हैं। शरीर इन्द्रिय आदि विकार तथा सुख-दुःखादि गुणों की उत्पत्ति प्रकृति से ही है। प्रकृति में स्थिर रह कर पुरुष सब गुणों को भोगता है। शरीर और इन्द्रियों के कर्त्तव्य-विषय में प्रकृति और सुख-दुःख के भोग-विषय में पुरुष को कारण समझो। प्रकृति अर्थात् शरीर में रह

कर पुरुष उसके गुणों को भोगता है। वह परम पुरुष उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्त्ता, एवं भोक्ता है तथा वही महेश्वर और परमात्मा भी कहा जाता है। इस प्रकार पुरुष और प्रकृति का ज्ञाता पुरुष गुणों में विद्यमान रह कर भी संसार में पुनर्जन्म धारण नहीं करता। परमेश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखने वाले पुरुष ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। सब कर्मों की कर्त्ता प्रकृति है, आत्मा कुछ नहीं करता, इस प्रकार जानना ठीक है। जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करता है, वैसे एक ही परमात्मा सब देहों को व्यक्त किये हुए है। ज्ञाननेत्रों से क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के भेद को देखने वाले ही प्रकृत्ति से मोक्ष होना जानते हुए परमपद प्राप्त करते हैं।

गीता का चौदहवाँ अध्याय—त्रिगुणविभाग योग

भगवान् बोले—हे पार्थ! जिस ज्ञान को जान कर सर्वश्रेष्ठ ऋषिगण सिद्धि प्राप्त करते हैं, उसे तुम्हारे प्रति कहता हूँ। इसी के आश्रय से योगीजन मेरे स्वरूप को पाकर पुनर्जन्म में नहीं पड़ते। सब जीवों का गर्भाधान स्थल मेरी महत् प्रकृति ही है, उसी से सब जीव उत्पन्न होते हैं। प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रज, तम नामक तीनों ही गुण प्राणियों को सुख-दुःख के बन्धन में डालते हैं। उन तीनों में सत्वगुण निर्मल है इसलिए वही सब इन्द्रियों को व्यक्त करता है। रजोगुण तृष्णा और आसक्ति से उत्पन्न होने के कारण अनुरागात्मक है। देहधारियों को कर्म-बन्धन में बाँधे रखना उसी का कार्य है। तमोगुण की उत्पत्ति अज्ञान से हुई है। जीवों को वह मोक्ष, आलस्य और निद्रा में डाले रखता है। सत्वगुण की वृद्धि से सब इन्द्रियों में ज्ञान का प्रकाश, रजोगुण की वृद्धि से लोभ, प्रवृत्ति, कर्मारम्भ, स्पृहा और अशान्ति तथा तमोगुण की वृद्धि पर अविवेक, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह की उत्पत्ति होती है। सत्वगुण की अधिकता

में मरने वाला हिरण्यगर्भ के उपासकों के श्रेष्ठ लोकों में, रजोगुण की अधिकता में मरने वाला कर्मों में आसक्ति वाले मनुष्य लोक में तथा तमोगुण की अधिकता में मरने वाला पशु आदि की योनियों में उत्पन्न होता है। सात्विक कर्म का फल निर्मल सुख, राजसी कर्म का फल दुःख तथा तामसी कर्म का फल अज्ञान है। विवेकादि गुणों को सब कार्यों का कर्त्ता मानने और आत्मा को तीनों गुणों से परे जानने से मनुष्य को मेरे भाव की प्राप्ति होती है। इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करके शरीरधारी मोक्ष को प्राप्त होजाता है।

अर्जुन बोले—हे वासुदेव ! इन तीनों गुणों से परे होने पर मनुष्य के क्या लक्षण होते हैं और वह उनका अतिक्रमण किस प्रकार करता है ? भगवान् ने कहा—जो पुरुष प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह के प्रवृत्त होने पर न तो उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर उनकी आशंका करता है। जो साक्षी के समान स्थित रहता हुआ गुणों द्वारा अविचलित और गुणों में ही वर्तमान समझता हुआ परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है। तथा उस स्थिति से कभी डिगता नहीं। जो मानापमान में समभाव वाला, मित्र और शत्रु को समान मानने वाला एवं कर्त्तापन के अभिमान से परे है, वह गुणातीत कहा जाता है। जो अव्यभिचारिणी भक्ति के द्वारा मुझे निरन्तर भजे वह तीनों गुणों से पार होकर ब्रह्म-प्राप्ति के योग्य होजाता है। क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्म का, अमृत का, शाश्वत धर्म का और एकरस आनन्द का आश्रय मैं ही हूँ।

गीता का पन्द्रहवाँ अध्याय—पुरुषोत्तम योग

भगवान् बोले—संसार रूपी अक्षय पीपल वृक्ष को अविनाशी कहते हैं। वेद उसके पत्ते हैं। उस वृक्ष को तत्व से जानने वाला

ही वेदार्थ का ज्ञाता है। इस वृक्ष की शाखाएँ नीचे-ऊपर फैली हैं। यह सत्वादि गुणों से बढ़ा और रूप-रस आदि विषयों से फला-फूला है। इसका रूप दिखाई नहीं देता। इसका आदि-अन्त भी नहीं है तथा कैसे खड़ा है यह भी कोई नहीं जानता। निर्ममता रूपी शस्त्र से काट कर इसके मूल को खोजे। जिसने खोज लिया वह पुनः संसार में नहीं लौटता। जिससे पुरातन प्रवृत्ति प्रवर्तित हुई उसी आदि पुरुष की शरण हूँ, ऐसा कहता हुआ उन्हीं की शरण ले। जहाँ जाकर लौटा नहीं जाता, वही मेरा परमधाम है। इस लोक में सनातन जीव मेरा ही अंश है, वह पाँचों इन्द्रियों के साथ मन को भी खींचता रहता है। यह जीव उक्त छओं में स्थित होकर सब विषयों को भोगता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि मेरे ही तेज से तेजस्विता को प्राप्त होकर सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करते हैं। मैं सभी के हृदय में स्थित हूँ। स्मृति और ज्ञान का उदय या अभाव मुझसे ही होता है। सभी वेद मेरा ज्ञान देते हैं, मैं ही वेदान्त का कर्त्ता और वेदों का ज्ञाता हूँ। लोक में प्रसिद्ध क्षर-अक्षर में प्राणी क्षर और कूटस्थ पुरुष अक्षर है। इनके अतिरिक्त भी एक श्रेष्ठ पुरुष है, जिसे परमात्मा कहते हैं। वही त्रैलोक्य में प्रविष्ट होकर उनका प्रतिपालन करता है। क्षर, अक्षर दोनों से विशिष्ट होने के कारण मैं पुरुषोत्तम कहा जाता हूँ। मोह से रहित होकर जो मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वही सर्वज्ञ है।

गीता का सोलहवाँ अध्याय—देवासुर सम्पत्ति

भगवान् बोले—हे अर्जुन! दैवी सम्पत्ति को लक्ष्य कर उत्पन्न होने वाले पुरुषों में अभय, चित्तशुद्धि. आत्मज्ञान-निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोध-हीनता, त्याग, शान्ति, अदुष्टता, दया, निर्लोभ मृदुता, ह्री अचंचलता, तेज, क्षमा, धृति, शौच, द्रोह-रहितता और निरभिमानता—

यह छब्बीस गुण स्वाभाविक रूप से होते हैं। किन्तु आसुरी सम्पत्ति को लक्ष्य कर उत्पन्न होने वालों में दम्भ, दर्प अभिमान क्रोध, दैवी सम्पत्ति के कारण मोक्ष और आसुरी सम्पत्ति के कारण बन्धन होता है। तुम दैवी सम्पत्ति को लक्ष्य कर उत्पन्न हुए हो, इसलिए शोक को छोड़ दो। आसुरी वृत्ति वाले पुरुष लोकनाश के लिए उत्पन्न होते हैं। उसकी रुचि दम्भ, अभिमान' मद, अखाद्य भोजन आदि में होती है। वे कामनाओं के वशीभूत होकर क्षुद्र देवताओं की आराधना करते हैं। कामनापूर्ति के लिये अन्याय-कर्मों में प्रवृत्त रहते और अपने को सर्वेसर्वा मानते हुए सोचते हैं कि मैं धनिक हूँ, ऐश्वर्यशाली हूँ, समर्थ हूँ, भोगी हूँ सुखी हूँ, कुलीन हूँ, मुझ में बल है, मैं उसे मारूँगा, यज्ञ करूँगा, दान करूँगा आदि सोचते हुए अज्ञान से मोहित रहते तथा काम-भोग, आदि के लिए षड्यन्त्र करते हुए नरक में पड़ते हैं। हे कौन्तेय ! वे मूर्ख मुझे प्राप्त न कर सकने के कारण अधम गतियों को ही प्राप्त होते रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ—तीनों नरक के द्वार हैं, इसी से आत्मनाश होता है। इसलिए यत्न करके इनसे बचे, तभी परमगति को प्राप्त हो सकता है। शास्त्रविधि का न जानने वाला स्वेच्छाचारी पुरुष सुख-शान्ति या परमगति को कभी प्राप्त नहीं होसकता। कार्य-अकार्य के निश्चय में शास्त्र ही प्रमाण है, इसलिए शास्त्रविधि का ज्ञान पाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करो।

गीता का सत्रहवां अध्याय--श्रद्धात्रय विभाग

अर्जुन बोले—हे कृष्ण ! शास्त्र-विधि-रहित किन्तु श्रद्धापूर्वक यज्ञादि कर्म करने वालों की श्रद्धा सात्विकी, राजसी, तामसी में से कौन-सी है ? भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! शरीरधारियों की श्रद्धा सात्विकी, राजसी, तामसी तीनों प्रकार की होती है। सात्विकी पुरुष देवताओं का, राजसी पुरुष यक्षों का और तामसी

पुरुष भूत-प्रेतों की पूजा करता है। दम्भ, अहंकार, कामादि की प्रवलता से तपस्यारत रह कर जो शरीर के तत्वों और शरीर में अवस्थित मुझ आत्मा को क्लेश देते हैं,वे मनुष्य आसुरी प्रवृत्ति के हैं। आहार, यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार का होता है। सात्विकी पुरुषों को आयु, सत्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति-वर्द्धक तथा सरस, स्निग्ध, पोषक आहार प्रिय होता है। राजसी व्यक्तियों को अत्यन्त कटु, खट्टा, लवणयुक्त, गर्म, तीक्ष्ण, दाहक, दुःख-शोक-रोग वर्द्धक आहार रुचिकर लगता है। तामसी लोगों को बासी, रसहीन, दुर्गन्धित, उच्छिष्ट एवं अपवित्र आहार अच्छा लगता है। फल की इच्छा छोड़ कर एकाग्र मन से किया जाने वाला यज्ञ सात्विकी, फल की इच्छा से किया जाने वाला दंभ-युक्त राजसी और विधि-रहित, श्रद्धा-रहित, अन्न-दान-रहित, मंत्र और दक्षिणा-रहित जो यज्ञ किया जाय वह तामसी होता है। फल की इच्छा त्याग कर श्रद्धा पूर्वक किया जाने वाला तप सात्विकी, मान-सत्कार की इच्छा से दम्भ पूर्वक किया जाने वाला तप फलहीन तथा राजसी और मूर्खता पूर्वक आत्मा को क्लेश पहुँचा कर अथवा दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाने वाला तप तामसी है। जो अपने अनुपकारी को देश, काल और पात्र के विचार से दिया गया दान सात्विकी,प्रत्युपकार या स्वर्गप्राप्ति के लिए अथवा अनिच्छा पूर्वक दिया गया दान राजसी तथा अनुपयुक्त देश-काल में, अयोग्य पात्र को तिरस्कार सहित दिया गया तामसी है। हे पार्थ! ब्रह्म के तीन नाम हैं—ओ३म्, तत् और सत्। इन्हीं से ब्राह्मणों, यज्ञों और वेदों का विधान हुआ इसीलिए वेदमन्त्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के शास्त्रविधि से निश्चित यज्ञ, दान, तप सदैव ओ३म् के उच्चारण से ही आरम्भ होती हैं। फल न चाहने वाले मुमुक्षुजन तत् कह कर यज्ञ, तप, दान करते हैं। सद्भाव और श्रेष्ठभाव में सत्' शब्द के साथ यज्ञादि किये जाते हैं। अश्रद्धा से कृत कर्म

'असत्' कहे जाते हैं। वे कर्म इहलोक-परलोक दोनों में ही फल-दायक नहीं होते।

गीता अठारहवां अध्याय--सन्यास योग

अर्जुन बोले—हे हृषीकेश ! संन्यास और त्याग दोनों का तत्व पृथक्-पृथक् कहिये। भगवान् बोले—हे अर्जुन ! काम्यकर्म का त्याग संन्यास और कर्म-फल का त्याग ही त्याग कहा जाता है। कुछ के मत में कर्म को दोष के समान छोड़ दे। त्याग तीन प्रकार का है।यज्ञ,दान और तप का त्याग न करे। आसक्तिऔर फल की इच्छा छोड़कर कर्म करना प्रशस्त है। नित्य कर्मों को भी न छोड़े,क्योंकि मोहवश वैसा करना तामसी कहा जाता है। शारीरिक दुःख के भय से कर्म का त्याग राजसी है। इसलिए उसका फल नहीं मिल सकता।आसक्ति और फल की प्रत्याशा से रहित अवश्य कर्त्तव्य मान कर कर्म करना ही सात्विक त्याग है। हे पार्थ ! कर्मफल का त्याग करने वाला पुरुष ही यथार्थ में त्यागी है। कर्मफल तीन प्रकार के हैं—इष्ट, अनिष्ट. और इष्टानिष्ट। अत्यागी पुरुष परलोक में इन फलों को पा लेते हैं, जबकि संन्यासियों को यह फल प्राप्त नहीं होते। कर्म-प्रवृत्ति ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता के भेद से तीन प्रकार की है। कर्म-संग्रह के भी करण, कर्म कर्त्ता के रूप में तीन हैं। जिस ज्ञान के द्वारा विभक्त जीवों में अविभक्त भाव देखने को सात्विकी ज्ञान कहते हैं। विभिन्न जीवों में विभिन्न भाव की प्रतीति राजस ज्ञान और एक ही कार्य में संसक्त, कारण-रहित, तत्वार्थ-रहित एवं अल्प तामस ज्ञान है। कर्त्तृव्य के अभिमान, कामना और रागद्वेष के बिना किया गया कर्म सात्विक, अहंकारी व्यक्ति द्वारा घोर परिश्रम से किया गया सकाम कर्म राजसी तथा भविष्य के शुभ-अशुभ, लाभ-हानि, हिंसा और पौरुष आदि का विचार बिना किया गया मोहयुक्त कर्म तामसी है।

हे अर्जुन ! ब्रह्मपद पाने के इच्छुक पुरुषों को अपनी बुद्धि को शुद्ध, संयत, राग-द्वेष एवं विषय-भोगों से परे रखनी चाहिए। मन. वाणी, शरीर की वृत्तियों को संयत कर ध्यान और योग का अभ्यास करे। अल्पाहार करता हुआ एकान्त स्थान में रहे तथा अहंकार. बल,दर्प,काम.क्रोध, संग और संचय की प्रवृत्ति को छोड़ दे। इस प्रकार ममता-रहित और शान्त भाव धारण करके साधक ब्रह्मपद को पालेता है। हे अर्जुन!तुम सभी कर्म मुझे अर्पण कर मेरी ही शरण लो तो सब प्रकार के दुःख से मुक्त होजाओगे यदि अहंकार के वशीभूत होकर मेरा कहना नहीं मानोगे तो तुम्हारा नष्ट होना निश्चित है। हे पार्थ ! यह अति गुह्यतम ज्ञान मैंने तुम्हारे प्रति कहा है। तुम सब धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आओ। भक्तिपरायण होकर जो इस परम गोपनीय ज्ञान का वर्णन करेगा. वह मुझे ही प्राप्त होगा। हे पार्थ ! इस ज्ञान के सुनने से तुम्हारा अज्ञान जनित मोह दूर हागया अथवा नहीं ? अर्जुन ने कहा—हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा सब मोह नष्ट होकर पूर्व स्मृति प्राप्त होचुकी है। अब मैं आपके कहे अनुसार ही करूँगा।

संजय बोले—हे महाराज ! भगवान् वासुदेव और अर्जुन का यह सम्वाद सुन कर मुझे हर्ष होरहा है। श्रीकृष्ण के उस अलौकिक विश्वरूप के स्मरण से मुझे अत्यंत विस्मय है। मैं समझता हूँ कि जिधर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं. उसी पक्ष की विजय होगी।

घोर संग्राम में कुमार उत्तर की मृत्यु

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा किया गया गीता का उपदेश सभी शास्त्रों का सार है। गीता. गंगा, गायत्री और गोविन्द के अनुशीलन से पुनर्जन्म नहीं होता। संजय ने कहा–हे राजन्!अर्जुनको पुनः गाण्डीव हाथ में लेता हुआ

देख कर सभी ने सिंहनाद किया, जिसका तुमुल शब्द सब ओर गूँज उठा। देवता, गन्धर्व. पितर. सिद्ध. चारण तथा महाभाग ऋषिगण भी उस युद्ध को देखने के लिए वहाँ एकत्र होगए।

महाराज युधिष्ठिर ने सेना को बिल्कुल तैयार देखा तो कवच और शस्त्र उतार कर रथ से उतरे और पैदल ही कौरवसेना की ओर चल दिये तथा पितामह भीष्म के पास जा, प्रणाम और चरण स्पर्श करके बोले—हे पितामह! अब हमें आपके साथ युद्ध करना होगा। इसके लिए आप आज्ञा एवं आशीर्वाद दें। भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर! मैं तुम्हारे शिष्टाचार से बहुत प्रसन्न हूँ, जाओ युद्ध करो, तुम्हारी जय हो।

वहाँ से चल कर युधिष्ठिर द्रोणाचार्यजी के पास गये और उन के चरण स्पर्श तथा प्रणाम करते हुए कहने लगे—भगवन् !अपने साथ धर्मयुद्ध की आज्ञा दीजिए और यह भी बताइते कि मैं अपने शत्रुओं को किस प्रकार जीत सकता हूँ ? द्रोणाचार्य ने कहा—राजन् ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जाओ, युद्ध करके विजय प्राप्त करो!हे कुन्तीनन्दन! जहाँ धर्म है वहाँ कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं वहीं जय है। युधिष्ठिर बोले–आचार्य!कृपया अपनी मृत्यु का उपाय कहिए ? द्रोणाचार्य ने कहा—युधिष्ठिर! यदि मैं अस्त्र-शस्त्र छोड़ कर अचेत हो जाऊँ तो उस प्रायोपवेशन की स्थिति में मुझे कोई भी मार सकता है। यदि कोई सत्यवादी पुरुष मुझे अत्यन्त दुःखद समाचार सुनावे तो भी मैं शस्त्रास्त्र छोड़ दूँगा।।

इसके बाद युधिष्ठिर ने कृपाचार्य के पास जाकर उनके चरण पद स्पर्श किये और प्रणाम कर कहा–आचार्य!मुझे युद्ध की आज्ञा एवं आशीर्वाद दीजिए। तब कृपाचार्य बोले—राजन् ! प्रसन्न हूँ, जाओ युद्ध करो। मैं नित्य प्रातःकाल तुम्हारी विजय-प्रार्थना करूँगा। फिर युधिष्ठिर ने मद्रनरेश महाराज शल्य को प्रणाम कर निवेदन किया—मामाजी ! मैं न्याय पूर्वक युद्ध की आज्ञा माँगता

हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि विजय प्राप्त कर सकूँ। शल्य ने भी उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया। तब युधिष्ठिर अपनी सेना के मध्य आकर खड़े हुए और उच्च स्वर से बोले—अब हमारा हित करने की इच्छा से जो कोई हमारे पक्ष में आना चाहे, वह सहर्ष आ सकता है। यह सुन कर धृतराष्ट्र का वैश्य-पत्नी से उत्पन्न पुत्र युयुत्सु डंका बजाता हुआ इधर आ मिला।

फिर युधिष्ठिर ने कवच और शस्त्रास्त्र धारण किये तब शंखध्वनि होने लगी, तभी दोनों पक्षों की सेनाएँ भारी कोलाहल के साथ आगे बढ़ीं। भीमसेन के गर्जन से कौरव-सेना काँपने लगी। उसी समय युद्ध प्रारम्भ हो गया। तब अपने पराये की पहिचान भी कठिन हो गई। रणभूमि के मध्य भीष्म पितामह की शोभा सबसे अधिक थी।

पितामह भीष्म पांच अतिरथी वीरों की सुरक्षा में पाण्डव-सेना के मध्य में जा पहुँचे। उनके द्वारा पाण्डव-सेना का विनाश होते देखकर अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने उन पर बाण-वर्षा की और भीष्म की ध्वजा काट डाली। फिर कृपाचार्य के स्वर्णमंडित धनुष में बाण मार कर उसे भी काट दिया। तभी कुमार उत्तर का सामना मद्रराज शल्य से होगया। शल्य ने भयंकर लौह शक्ति चला कर कुमार उत्तर का वध करके उसके हाथी की सूँड काट डाली। यह देख कर उत्तर के भाई श्वेत ने शल्य को जा घेरा। उनके साथी वीरों और महारथियों को विह्वल करते हुए श्वेत ने शल्य पर जोरदार आक्रमण किया। तब आपके पुत्र दुर्योधन ने शल्य को बचाया।

दूसरे दिन के युद्ध की समाप्ति

संजय बोले—हे महाराज ! पितामह भीष्म दुर्धर्ष और दुर्जय थे। उन्होंने सैकड़ों-हजारों वीरों को धराशायी कर दिया।

उधर राजकुमार श्वेत ने भी कौरव-सेना में भारी मार-काट मचा दी थी। कौरव वीर उसके सामने से युद्ध छोड़ कर भागने लगे। तभी भीष्म ने उधर बढ कर श्वेत का सामना किया। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। उस समय भीष्म पितामह के रथ की ध्वजा कट कर गिर गई। तब सभी ने समझा कि पितामह मारे गए। किन्तु तभी भीष्म ने श्वेत के घोड़े और सारथी को मार डाला। श्वेत ने तुरन्त रथ से उतर कर शक्ति चलाई, जिसे उन्होंने बीच में ही काट दिया। तभी आकाश से किसी देवदूत ने कहा—भीष्म ! श्वेत को तुरन्त मार दो, क्योंकि इसके मरने का यही समय विधाता द्वारा नियत है। यह सुन कर भीष्म ने एक अत्यन्त श्रेष्ठ बाण से श्वेत को मार कर गिरा दिया। उस समय कौरवों को बड़ी प्रसन्नता हुई। भीष्म के हाथ से अपने एक सेनापति की मृत्यु हुई देख कर पाण्डव-सेना काँप उठी। उसी समय श्रीकृष्ण और अर्जुन ने युद्ध रोकने का आदेश दिया और अपने शिविर में लौट आये।

प्रातःकाल होने पर क्रौंचव्यूह की रचना की गई। सेना के अग्रभाग में अर्जुन, व्यूह के मस्तक में राजा द्रुपद, नेत्र स्थान में कुन्ति भोज और चैद्य तथा अन्यान्य भाग में विभिन्न राजागण और पाण्डव स्थित हुए। यह देख कर भीष्म की रक्षा के लिए कौरवों ने भी महाव्यूह की रचना की। इसके बाद महावीर अर्जुन और भीष्म का घोर युद्ध हुआ। द्रोणाचार्यजी के साथ धृष्टद्युम्न भी जी-तोड़ प्रयत्न में जुट गये।

उस युद्ध में महाबली कलिंगराज और भीमसेन का भारी मुकाबला हुआ। कलिंगराज के साथ उनके पुत्र शक्रदेव भी भीमसेन पर बाण-वर्षा करने लगे। तभी भीमसेन ने इस जोर से गदा फेंकी कि शक्रदेव अपने रथ, सारथी आदि के सहित मर गया। तब तो अत्यन्त क्रोधित और क्षभित कलिंगराज भीमसेन

को मारने के प्रयत्न में लग गये। इन दोनों में घोर संग्राम हुआ और अन्त में भीमसेन के हाथ से कलिंगराज मारे गये।

इसके बाद दोनों ओर की सेनाएँ भयंकर संग्राम में प्रवृत्त हुईं। कौरवों ने अभिमन्यु को घेर लिया, यह देख कर अर्जुन उधर ही बढ़ गये। उन्होंने अपनी बाण-वर्षा से कौरव-सेना को व्याकुल कर दिया, तब वह साहस छोड़ कर भागने लगी। यह देख कर भीष्म पितामह ने द्रोणाचार्य की सम्मति से दूसरे दिन का युद्ध समाप्त कर दिया।

तीसरे दिन के युद्ध की समाप्ति

संजय बोले—हे महाराज ! तीसरे दिन पाण्डवों ने अर्द्धचन्द्र व्यूह और कौरवों ने गरुड़ व्यूह की रचना की। उस दिन के युद्ध में राजा दुर्योधन एक सहस्र रथ साथ लेकर घटोत्कच से युद्ध करने लगे। पाण्डवों ने भीष्म और द्रोणाचार्य पर तथा अभिमन्यु और सात्यकि ने शकुनि पर आक्रमण किया। घनघोर युद्ध के बाद कौरव-सेना भागने लगी, तब दुर्योधन बहुत घबराया और पितामह से कहने लगा—आपके होते हुए कौरव-सेना भाग रही है। आप अपनी सेना को नष्ट होती देख कर भी उन पर कृपा कर रहे प्रतीत होते हैं। पितामह बोले– मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि पाण्डवों को देवता भी नहीं हरा सकते। फिर भी मुझसे जो हो सकता है, वह कर रहा हूँ और करूँगा। शीघ्र ही तुम मेरा पराक्रम देखोगे।

संजय बोले—हे राजन् ! इसके बाद भीष्म पितामह घोर युद्ध में तत्पर होगए। उस समय उनका पराक्रम अद्‌भुत था। पाण्डव-सेना उनके शस्त्रास्त्रों से कट-कट कर ढेर होने लगी। तभी कृष्ण ने अर्जुन से कहा—पार्थ ! प्रतीक्षित समय आगया

है। इस समय भीष्म पर प्रहार करो, अन्यथा मोह के वशीभूत होकर तुम देखते रह जाओगे। अर्जुन बोले—वासुदेव! मेरे रथ को आप उनके सामने ले चलिए। यह सुन कर कृष्ण ने रथ को वहाँ पहुँचा दिया। अव दोनों महारथियों में घोर युद्ध होने लगा। किन्तु अर्जुन का कोमल व्यवहार देखकर कृष्ण ने सोचा कि यदि भीष्म का प्रतीकार न हुआ तो यह पाण्डव-सेना को शीघ्र समाप्त कर देंगे, इसलिए मुझे ही अस्त्र ग्रहण करना होगा। यह सोच कर उन्होंने सुदर्शन चक्र ग्रहण किया और रथ से कूद पड़े। तब तो सब ओर हाहाकार मच गया। भगवान् वेग पूर्वक पितामह की ओर लपके। यह देख कर भीष्म ने कहा—हे कृष्ण! हे जगन्निवास! हे चक्रपाणे! आपको प्रणाम है। आप मुझे मारने को तत्पर हुए इससे मेरी प्रतिष्ठा और कीर्ति की वृद्धि ही हुई है।

उसी समय अर्जुन ने वेग से दौड़ कर श्रीकृष्ण के हाथ पकड़ लिये। वे बड़े कठिनाई से रुक सके। अर्जुन ने उनके चरणों में सिर रख कर कहा—केशव! शान्त हों। आप ही हमारी गति हैं, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। आप क्रोध न करें। यह सुन कर शान्त हुए भगवान् ने घोड़ों की रास पुनः सँभाली। अर्जुन के गाण्डीव का घोर नाद हुआ। उस नाद को कौरव पक्ष के जिस वीर ने सुना, वही स्तंभित होगया। इसके बाद अर्जुन कौरव-सेना पर टूट पड़े, वह बुरी तरह कटने लगी। तभी सायं-काल होने पर युद्ध बन्द होगया।

चौथे और पांचवें दिन की समाप्ति

संजय ने कहा—रात्रि बीतने पर दोनों ओर की सेनाएँ फिर आगे बढ़ीं। इसमें अर्जुन ने भीष्म से घोर युद्ध किया। धृष्टद्युम्न के हाथ से शल के पुत्र मारे गये। भीमसेन के हाथ से आपके

अनेक पुत्र मारे गये। भीष्म के कहने से राजा भगदत्त ने भीमसेन को विह्वल कर दिया। तभी घटोत्कच ने आसुरी माया फैला कर भगदत्त को परास्त कर दिया। इससे घबराये हुए कौरवों ने चौथे दिन का युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी।

रात्रि के समय चिन्तित दुर्योधन भीष्म पितामह के पास जाकर उल्टी-सीधी बातें करने लगा। तब पितामह ने कहा—दुर्योधन ! मैंने अनेक बार तुम्हें युद्ध न करने का परामर्श दिया, पर तुमने नहीं माना। देखा नर-नारायण रूप अर्जुन और कृष्ण से वैर करके विनाश ही होगा। इसलिए तुम्हारी विजय तो कठिन ही है, फिर भी मुझसे जो कुछ होगा, करूँगा। यह सुन कर दुर्योधन उन्हें प्रणाम कर अपने शिविर में लौट गये।

प्रात:काल पाण्डवों ने श्येन व्यूह और कौरवों ने मकर व्यूह की रचना की। तब घनघोर युद्ध होने लगा। इस युद्ध में भूरिश्रवा ने सात्यकि के पुत्रों को मार डाला। तभी कैकयदेश के वीरों ने अर्जुन और अभिमन्यु पर आक्रमण किया, किन्तु कुछ समय बाद सूर्यास्त होजाने के कारण पाँचवें दिन का युद्ध समाप्त हो गया।

छठे दिन के युद्ध की समाप्ति

संजय बोले—राजन् ! प्रात: काल होते ही पाण्डवों ने मकर व्यूह और कौरवों ने क्रौंच व्यूह बनाया। फिर दोनों पक्ष के वीर जीवन का मोह त्याग कर घोर युद्ध में तत्पर होगए। उस समय भीमसेन ने कौरवसेना का व्यूह तोड़ डाला और भीतर घुस कर दु:शासन आदि के सामने जाकर सिंहनाद करने लगे। तब उन महारथियों ने भी उन्हें चारों ओर से घेर लिया। यह देख कर धृष्टद्युम्न भी आपके पुत्रों की सेना में प्रविष्ट होकर भीमसेन के पास पहुँच गये। तब द्रोणाचार्य जी भी धृष्टद्युम्न पर बाण-वर्षा

करने लगे। उन्होंने धृष्टद्युम्न के सारथी को मार डाला और फिर पाण्डव-सेना को ऐसा त्रस्त किया कि वह वहां से भाग खड़ी हुई। तभी पुनः कुल बल पाकर सेना लौट पड़ी। इसप्रकार दिन भर युद्ध चलता रहा और फिर जैसे ही सूर्य अस्त होने को था, वैसे ही दुर्योधन ने भीमसेन पर भयकर आक्रमण किया। किन्तु भीमसेन ने उनके रथ की ध्वजा काट दी और उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया। यह देख कर कृपाचार्यजी ने दुर्योधन को अपने रथ पर बैठाया और भीमसेन को मारने के उद्देश्य से उन्हें हजारों रथों के मध्य घेर लिया। तभी अभिमन्यु ने कैकेय गण और द्रौपदी के पांचों पुत्रों को साथ लेकर आपके पुत्रों पर आक्रमण कर दिया। उस युद्ध में शतानीक के भल्लबाण से दुष्कर्ण की मृत्यु होगई। इसके बाद पुनः घोर युद्ध होने लगा, किन्तु सूर्यास्त होने के कारण शीघ्र ही युद्ध बन्द हो गया।

सातवें दिन के युद्ध की समाप्ति

संजय बोले—हे महाराज धृतराष्ट्र! आपके पुत्र दुर्योधन ने पुनः पितामह से मिल कर अपने पक्ष को जिताने का निवेदन किया तो पितामह ने अपने भरसक पूरा प्रयत्न करने का आश्वासन देकर अन्त में कहा कि दुर्योधन! यथार्थ यही है कि जिनके सहायक श्रीकृष्ण हैं, उन्हें इन्द्र भी नहीं हरा सकते। फिर भी मैं तुम्हारी जीत के लिए भारी प्रयत्न करूँगा। यह कह कर उन्होंने मण्डल व्यूह की रचना की, जोकि हजारों हाथियों और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित था। पाण्डवों ने उस दिन वज्रव्यूह बनाया। तब दोनों ओर के वीर एक-दूसरे के व्यूह को तोड़ने के विचार से वेगपूर्वक बढ़ने लगे। उस समय अर्जुन ने घन घोर बाण-वर्षा की, जिससे सम्पूर्ण कौरव-सेना त्राहि त्राहि करने लगी।

अर्जुन और पितामह का घोर युद्ध हो रहा था। उधर द्रोणाचार्य और राजा विराट लड़ रहे थे। द्रोणाचार्य ने राजा के सारथी को मार दिया, तब वे अपने पुत्र शंख के रथ पर चढ़ गये और असंख्य बाण बरसाने लगे। तभी द्रोणाचार्य ने एक घोर बाण से शंख को मार दिया, यह देख कर व्याकुल हुए विराट युद्ध से हट गये।

तत्पश्चात् सात्यिक और राक्षस अलम्बुष का युद्ध हुआ। उसमें राक्षस ने माया के आश्रय से अँधेरा कर भीषण बाण बरसाये। किन्तु सात्यकि ने उसकी माया की परवाह न कर उसे अपनी बाण-वर्षा से व्याकुल कर दिया, तब वह उनके सामने से हट गया। इधर घटोत्कच और भगदत्त का संग्राम चल रहा था। घटोत्कच ने जो दुर्धर्ष शक्ति चलाई उसके भगदत्त ने तीन खण्ड कर दिये। तब घटोत्कच मैदान से भाग खड़ा हुआ।

धृष्टकेतु और भूरिश्रवा का युद्ध चल रहा था। अभिमन्यु से चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण लड़ रहे थे। तभी दुर्योधनादि ने भी अभिमन्यु को जा घेरा। यह देख कर अर्जुन भी वहाँ पहुँच गए। तभी उनकी दृष्टि सुशर्मा पर पड़ी। उन्होंने सुशर्मा के साथ ही कौरव पक्ष के राजकुमारों पर बाण वर्षा की। जब राजकुमारोंको कटते देखा तब अपने पृष्ठरक्षक बत्तीस वीरों के सहित सुशर्मा ने अर्जुन का सामना किया। उन बत्तीसों पृष्ठ रक्षकों को मार कर अर्जुन भीष्म पितामह की ओर बढ़े। तभी युधिष्ठिर भी नकुल, सहदेव और भीमसेन के सहित वहाँ आगए। उधर जयद्रथ और दुर्योधन भी आगे बढ़ कर पाण्डवों पर बाण-वर्षा करने लगे।

भीष्म की बाण-वर्षा से शिखण्डीभयभीत होकर युद्ध से हटने लगा। यह देख कर युधिष्ठिर ने कहा—वीर ! तुमने पितामह को मारने की प्रतीज्ञा की हुई है, इस समय पीछे मत हटो। यह

सुन कर शिखण्डी घोर युद्ध में तत्पर हुए। किन्तु भीष्म पितामह के प्रवल पराक्रम के आगे किसी की कुछ न चली। तब युधिष्ठिर ने कहा—सब राजागण मिल कर पितामह का वध कर दो। तब सब ने उन्हें घेर लिया, किन्तु भीष्म भी पाण्डव सेना के वीरों को मारते हुए सिंहनाद करने लगे। उस समय दुर्योधनादि आपके पुत्र उनकी रक्षा में तत्पर थे। उन्होंने पाण्डवसेना को बुरी तरह नष्ट किया। किन्तु सांयकाल तक सुशर्मा आदि अनेक राजाओं को अर्जुन ने हराया। इसके बाद युद्ध बन्द होने पर सब अपने-अपने डेरों में लौट गए।

आठवें दिन के युद्ध की समाप्ति

संजय बोले—हे राजन्! आठवें दिन प्रातःकाल पितामह ने महाव्यूह और धृष्टद्युम्नने शृंगाटकव्यूह की रचना की। तत्पश्चात् दोनों पक्ष वेग पूर्वक भयंकर युद्ध में तत्पर होगए। भीमसेन और भीष्म में घोर संग्राम हुआ। भीमसेन ने उनके सारथी को मार दिया और आपके पुत्र महारथी सुनाभ का सिर काट डाला। तब आपके अन्य सात पुत्र उनसे लड़ने लगे और भीमसेन के हाथों वे भी मारे गये। यह देख कर दुर्योधन भीष्म के पास जाकर विलाप करने लगे। तब पितामह ने उनसे कहा—दुर्योधन! तुमने मेरी बात नहीं मानी। अब हो ही क्या सकता है? स्थिरबुद्धि से युद्ध में तत्पर होकर स्वर्गलाभ को ही परम श्रेय समझो।

हे महाराज! इस लोकनाशक युद्ध में शकुनि, कृतवर्मा तथा अनेकानेक वीरों ने पाण्डवों पर आक्रमण किया। उधर अर्जुन-पुत्र इरावान भी कौरव-सेना का वेग रोकने को चले। तब दोनों ओर के वीर प्राणों का मोह त्याग कर लड़ने लगे। शकुनि न अपने छः भाइयों के साथ इरावान को घेर लिया। किन्तु इरावान भी जी-जान से जुट गये, इस कारण उन्होंने शकुनि के पाँच भाइयों को मार डाला यह देख कर भयभीत हुए दुर्योधन ने

असुरराज अलम्बुष से इरावान को मारने का अनुरोध किया, तब उसने आकर इरावान से माया युद्ध किया, जिसमें इरावान ने भी अपने मातृपक्ष के नागों का आश्रय लिया, जिन्होंने अलम्बुष को सब ओर से घेर लिया। तभी अलम्बुष ने गरुड़ का रूप रख कर सब नागों का भक्षण कर लिया। इस माया से इरावान मोहित होगये तभी अलम्बुष ने उनका सिर काट लिया।

इसके पश्चात् घटोत्कच का दुर्योधन से सामना हुआ। वह दुर्योधन पर प्रबल पढ़ने लगा। उसने कौरवों के अनेक हाथियों को मार डाला और बाण-वर्षा करने लगा। उसने एक महाशक्ति दुर्योधन पर चलाई, किन्तु वंगराज ने तुरन्त अपना हाथी बीच में कर दिया। तब घटोत्कच ने उस हाथी को मार डाला। फिर वह समूची सेना को भयभीत करता हुआ सिंहनाद करने लगा। उसके पराक्रम से कौरव वीर व्याकुल हो उठे।

उसी समय युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन भी घटोत्कच को सहायता देने चले। उसके बाद जो युद्ध हुआ, उसमें दुर्योधन की बहुत-सी सेना मैदान छोड़ कर भाग गई। भीष्म अपने भागते हुए वीरों को रोकने लगे, किन्तु वे रुके नहीं। तब दुर्योधन ने पितामह से परामर्श किया कि अब क्या किया जाय? उन्होंने कहा कि महाराज भगदत्त को उस राक्षस से युद्ध करने को कहो। तब भगदत्त घटोत्कच से लड़ने के लिए बढ़े। इस युद्ध में भगदत्त ने भारी पराक्रम दिखाया। तभी भीमसेन ने कृष्ण और अर्जुन को इरावान के मरने की सूचना दी, जिससे अर्जुन बहुत दुःखित हुए और कृष्ण से बोले कि मेरा रथ शीघ्र ही कौरव-सेना के मध्य ले चलो। हे राजन्! आपके पुत्र द्रोणाचार्यजी को बीच में लेकर भीमसेन से युद्ध करने लगे, तब उन्होंने आपके अनेक पुत्रों को मार डाला। तभी अर्जुन बड़े वेग से आते दिखाई दिये। उन्होंने कौरव-सेना के प्रमुख-प्रमुख वीरों को मारना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार दोनों पक्ष के असंख्य वीरों के मरने पर रात्रि का प्रारम्भ होने को हुआ, तभी युद्ध बन्द होगया।

नवें दिन के युद्ध की समाप्ति

संजय ने कहा—हे राजन्! रात्रि में आपके पुत्र परस्पर परामर्श करने लगे कि पाण्डवों को कैसे परास्त करें? तभी कर्ण ने कहा—आप चिन्ता न करें। भीष्म के शस्त्र रख कर युद्ध से हट जाने पर मैं अकेला ही पाण्डवों को परास्त कर दूँगा। यह सुन कर दुर्योधन ने कहा—मैं उन्हें अभी युद्ध से हटने के लिए तैयार करता हूँ। यह कह कर दुर्योधन भीष्म के पास जाकर बोले—पितामह! आपने सोमकों, पांचालों, कैकेयों और करूषों को मारने का वचन दिया था। अब या तो आप उस वचन को पूरा कीजिए। अथवा यदि पाण्डवों पर कृपा और हम पर रोष के कारण उन्हें न मारना चाहें तो कर्ण को युद्ध की आज्ञा दीजिए।

दुर्योधन की बात सुन कर क्रुद्ध हुए पितामह ने कहा—दुर्योधन! मैंने युद्ध में कोई कोर-कसर नहीं रखी है, फिर भी तुम अपने वचन-बाणों से मेरे मर्मस्थल को वेध रहे हो। देखो, वासुदेव जिसके सहायक हैं, उस अर्जुन को कोई नहीं हरा सकता। फिर भी शिखण्डी को छोड़ कर शेष पांचालों आदि को मार कर या तो तुम्हारा प्रिय करूँगा, अन्यथा स्वयं प्राण दे दूँगा। तुम कल मेरे घोर युद्ध को देखना यह सुन कर दुर्योधन उन्हें प्रणाम करके चले आये और उन्होंने दुःशासन को पितामह की भारी रक्षा-व्यवस्था के लिये कहा।

प्रातःकाल भीष्म ने सर्वतोभद्र नामक व्यूह की रचना की और पाण्डवों ने दारुण महाव्यूह बनाया। फिर दोनों ओर की सेनाएँ घोर रण में प्रवृत्त होगईं। तब अभिमन्यु-अलम्बुष की

जो लड़ाई हुई, उसमें अलम्बुष बुरी तरह पराजित हुआ। उसकी माया नष्ट होगई तो वह भी व्याकुल होकर रण क्षेत्र से हट गया, इसके बाद अभिमन्यु ने कौरव-सेना के पाँव उखाड़ दिये। उस समय अर्जुन भी अभिमन्यु को खोजते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देख कर भीष्म के निकट स्थित कृपाचार्य ने अर्जुन पर बाण चलाये, जिसका उत्तर उन्होंने प्रबल बाणों के प्रहार से दिया। इस प्रकार कृपाचार्य और अर्जुन का भारी संग्राम हुआ। तभी आपके पुत्रों को साथ लेकर भीष्म पितामह युधिष्ठिर की ओर बढ़े, यह देख कर भीमसेन गदा लेकर कौरवों पर टूट पड़े। तब तो कौरव-सेना चीत्कार एवं आर्तनाद करने लगी।

उसी दिन मध्याह्न काल में भीष्म का सोमकों से सामना हुआ। तब वे अपने बाणों की अग्नि में उन्हें बुरी तरह भस्म करने लगे। सात्यकि के साथ भी भीष्म का घोर युद्ध हुआ, उसमें पितामह ने एक तीक्ष्ण शक्ति सात्यकि पर चलाई, किन्तु सात्यकि ने उस वार को बचाकर एक शक्ति उन पर चलाई, जिसे उन्होंने बीच में ही काट दिया। इस प्रकार इधर घनघोर संग्राम हो ही रहा था। उधर युधिष्ठिर की मार से कौरव सेना पलायन कर रही थी। यह देख कर दुर्योधन ने शल्य से कहा कि युधिष्ठिर के वेग को रोकिये। तब शल्य ने युधिष्ठिर पर वेग से आक्रमण किया। यह देख कर भीमसेन भी युधिष्ठिर की सहायता के लिये पहुँच कर शल्य से युद्ध करने लगे।

इधर भीष्म-अर्जुन युद्ध में कृष्ण ने देखा कि अर्जुन मन लगा कर संग्राम नहीं करते तो उन्होंने स्वयं ही भीष्म को मारने का पुनः विचार किया और वे रथ छोड़ कर भीष्म की ओर दौड़े। तब भीष्म ने उनसे कहा—वासुदेव! आपको प्रणाम है। मुझे मार कर सद्गति और कीर्ति प्रदान कीजिये। तभी अर्जुन ने दौड़ कर उन्हें रोक लिया। तब वे पुनः रथ पर आ बैठे। अब

पाण्डवों के शस्त्रों से कौरव पक्ष के और भीष्म के शस्त्रों से पाण्डव पक्ष के वीर कट-कट कर गिरने लगे। तभी सूर्य अस्ताचलगामी हुए और युद्ध बन्द होगया।

दसवें दिन का युद्ध समाप्त, भीष्म का गिरना

संजय बोले—हे महाराज! भीष्म के बाणों से पीड़ित हुए पाण्डव बेचैन होरहे थे। तभी युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा—हे वासुदेव! भीष्म से मैं बहुत भयभीत हूँ, वे अपनी सेना को नित्य प्रति नष्ट कर रहे हैं। अब तो जीवन बचना भी कठिन होरहा है। इसलिए युद्ध बन्द करके प्राणों की रक्षा कर ली जाय। इसमें आप जो हितकर समझें, वही परामर्श दें। श्रीकृष्ण ने कहा—धर्मराज! आप चिन्ता न करें, आपके सभी भाई बल-पराक्रम में बहुत बढ़े हुए हैं। यदि आप इन पर भरोसा न करते हों तो, मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं ही भीष्म से युद्ध करूँ, मैं अकेला ही उन्हें मार सकता हूँ। किन्तु अर्जुन की प्रतिज्ञा है कि भीष्म को मैं मारूँगा, इसलिए उस प्रतिज्ञा को मैं पूरी कराऊंगा। उचित तो यह है कि भीष्म के वध का उपाय उन्हीं से पूछना चाहिए। चलिए, हम सब उनके पास चलें।

ऐसा निश्चय कर सभी पाण्डव और श्रीकृष्ण कवच एवं शस्त्रास्त्र त्याग कर भीष्म के शिविर में गये। उन्होंने सबका स्वागत करते हुए पूछा—मुझे बताइये, आपका कौन-सा प्रिय करूँ? युधिष्ठिर बोले—पितामह! हम आपकी शरण में आये हैं। हमें अपनी मृत्यु का उपाय बताइये, क्योंकि हम आपके वेग को सहने में समर्थ नहीं हो रहे हैं। भीष्म ने कहा—कुन्तीपुत्र! मुझे मारना तभी संभव है, जबकि मुझ पर कठोर प्रहार किये जाँय। अन्यथा तुम्हारी जीत नहीं हो सकती। मेरी प्रतिज्ञा है कि पुरुष-भाव को प्राप्त स्त्री या नपुंसक से युद्ध नहीं करूँगा।

इसलिए अर्जुन शिखण्डी को आगे करके मुझ पर बाण चलावें तो मैं मुख फेर लूँगा। यह सुन कर कृष्ण सहित सब पाण्डवों ने उन्हें प्रणाम किया और अपने शिविर में लौट आये।

संजय ने कहा—महाराज ! तदनन्तर सूर्योदय होने पर पाण्डवों ने सेना का व्यूह बना कर शिखण्डी को उसके अगले भाग में स्थित किया। इधर कौरवों ने भी दुर्भेद्य व्यूह की रचना की और युद्ध प्रारम्भ कर दिया। भीष्म शिखण्डी के साथ वाली पाण्डवों की रथ सेना को अपने भयंकर आग्नेयास्त्रों से भस्म करने लगे। उन्होंने हजारों ही वीर मार कर गिरा दिये। तभी शिखण्डी ने उनके सामने जाकर तीन तीक्ष्ण बाण उनके हृदय में मारे। तभी अर्जुन ने उसे प्रोत्साहित किया—वीर ! यही समय है, तुम वेग पूर्वक आक्रमण कर दो, मैं तुम्हारी सहायता में तत्पर हूँ। यह सुन कर शिखण्डी ने वेग से प्रहार प्रारम्भ किये।

इधर भीष्म पितामह पाण्डव सेना में घुस कर भीषण नर-संहार कर रहे थे। उधर भीमसेन और अर्जुन के पराक्रम के आगे कौरव-सेना त्रस्त होरही थी। कृपाचार्य, कृतवर्मा, भगदत्त आदि ने भीमसेन से परास्त हुए राजा शल्य को बचाया। किन्तु भीमसेन ने उन सभी से डट कर संग्राम किया। इस प्रकार दोनों पक्षों के वीर जीवन का मोह छोड़ कर भीषण मार काट मचाये हुए थे। उस समय भीष्म और अर्जुन के वेग को देख कर तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि कहीं आज ही प्रलय न होजाय।

किन्तु, इस संग्राम में पितामह का मन ऊब गया। वे सोचने लगे कि बहुत नरहत्या कर चुका, अब नहीं करूँगा। यह विचार कर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि अब तुम पांचालों और सृंजयों के साथ अर्जुन को भेज कर मुझे मारने की चेष्टा करो। युधिष्ठिर ने पितामह की मरणेच्छा जान कर उनके कहे अनुसार भीषण

आक्रमण किया। उसमें शिखण्डी को आगे करके अर्जुन उसकी रक्षा में तत्पर रहे। इसके बाद जो घोर युद्ध हुआ, उसका वर्णन करने में भी हृदय काँपता है। उस समय सात्यकि अश्वत्थामा से, धृष्टकेतु पौरव से, युधामन्यु दुर्योधन से, विराट जयद्रथ से, युधिष्ठिर शल्य से, भीमसेन अन्य भाइयों के सहित गजारोही सेना तथा द्रोणाचार्य से युद्ध कर रहे थे। तभी अभिमन्यु दुर्योधन से जा भिड़े, तत्पश्चात् उनका मुकाबला राजपुत्र वृहद्बल से हुआ, यह दोनों ही परस्पर घोर युद्ध कर रहे थे।

भीष्म ने सभी पांचलों और सृंजयों को व्यग्र कर दिया। उस समय सभी त्राहि त्राहि करने लगे। किन्तु अर्जुन और शिखण्डी तत्परता से वहीं डटे रहे और अर्जुन ने सम्मोहनास्त्र के प्रयोग द्वारा पितामह को मोहित करके कौरव-सेना का भीषण संहार प्रारम्भ किया। उनके प्रहारों से मर्म स्थलों में पीड़ा होने पर भी पितामह विचलित नहीं हुए। वे पाण्डवपक्ष के राजाओं का बुरी तरह संहार कर रहे थे। तभी कुपित हुए अर्जुन ने भीष्म का धनुष काट डाला और शिखण्डी ने दस बाण उनको और दस उनके सारथी को मारे। फिर एक बाण से उनके रथ की ध्वजा काट दी। तब भीष्म ने दूसरा धनुष हाथ में लिया और वेग से प्रहार में प्रवृत्त होगए। तब अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके उनका धनुष पुनः काट दिया। फिर उन्होंने तीसरा धनुष लिया वह भी काट डाला और स्वयं शिखण्डी को आगे करके घोर बाण वर्षा करने लगे। इससे भीष्म के देह में एक अंगुल स्थान भी ऐसा न बचा: जहाँ अर्जुन के बाण प्रविष्ट न हुए हों। हे राजन्! इस अवस्था को प्राप्त हुए भीष्म पूर्व की ओर शिर किये हुए सहसा रथ से नीचे गिर गये। यह देख कर आकाश में देवगण भी हाहाकार कर उठे, पृथिवी काँप उठी और भयंकर शब्द होने लगा। उसी समय आकाशवाणी हुई कि महात्मा

भीष्म ने दक्षिणायन सूर्य में प्राण कैसे छोड़ दिये ? भीष्म ने कहा—मैं अभी जीवित हूँ। तब गंगा माता ने हंस रूप में महर्षियों को उनके पास भेजा, जिन्होंने उनकी प्रदक्षिणा करते हुए कहा—महात्मा भीष्म दक्षिणायन सूर्य में प्राण कैसे त्यागेंगे ? भीष्म बोले—पिता के वर से मैं इच्छा मृत्यु में समर्थ हूँ, इसलिए हे हंसो ! मैं उत्तरायण सूर्य होने पर ही प्राण त्याग करूँगा।

हे राजन् ! पितामह को शर शय्या पर देख कर पाण्डवगण प्रसन्न और आपके पुत्र शोक-विह्वल होगए। कृपाचार्य और दुर्योधन रोने लगे। उस समय सभी घबरा कर किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे थे। सायंकाल होरहा था, सूर्य अस्त होने को था पितामह का शरीर पृथिवी से ऊपर बाणों पर ही रहा आया। दोनों ओर से युद्ध बन्द होगया। पाण्डव और कौरव दोनों ही अपने-अपने शस्त्रादि खोल कर पितामह के पास आये और प्रणाम करने लगे। तब पितामह बोले—महाभाग वीरो ! मैं तुम सब का स्वागत करता हूँ। राजाओ ! मेरा सिर बहुत नीचे लटका हुआ है, इसलिए मुझे तकिया दो। कौरवों ने तत्काल बहुमूल्य तकिये ला दिये, जिन्हें अस्वीकार कर अर्जुन से कहा—हे वीर ! तुम वीरशय्या के योग्य तकिया दो। तब अर्जुन ने अपने गाण्डीव को अभिमन्त्रित कर तीन तीक्ष्ण बाण चढ़ाये और पितामह को प्रणाम कर उनके शिर में मार दिये, तब बाणों पर उनका सिर टिक गया जिससे प्रसन्न हुए पितामह ने कहा—हे अर्जुन! तुमने उचित तकिया दिया है।

अर्जुन का भीष्म को इच्छित जल पिलाना

संजय बोले—हे राजन् ! रात्रि व्यतीत होने पर कौरव-पाण्डवों ने पुनः महात्मा भीष्म के पास प्रणाम किया। उस समय सहस्रों कन्याओं ने वहाँ जाकर चन्दनचूरा, खील, पुष्प, माल्य

आदि भीष्म पर बरसाये तथा स्त्री, बालक आदि सभी ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर अभिनन्दन किया। तभी उन्होंने पीने के लिए जल माँगा। उसी समय राजा लोग स्वयं दौड़ कर शीतल जल से परिपूर्ण कलश ले आये। भीष्म बोले—हे राजाओ! यद्यपि मैं शरशय्या पर लेटा हुआहूँ,तो भी अब मैं मनुष्य लोक में नहीं हूँ। केवल उत्तरायण की प्रतीक्षा में मेरे प्राण रुके हुए हैं। मुझे यह जल नहीं चाहिए, अर्जुन को बुलाओ।

अर्जुन ने तुरन्त उपस्थित होकर प्रणाम किया, तब भीष्म बोले—पुत्र! तुम्हारे बाणों के प्रदाह से मेरा देह व्याकुल है, मर्म स्थलों में पीड़ा के साथ मुख सूखा जारहा है, इसलिए मुझे उपयुक्त जल पिलाओ। यह सुन कर अर्जुन ने रथ पर चढ़ कर गाण्डीव पर प्रत्यंचा चढ़ाई और शर शय्या पर लेटे हुए पितामह की प्रदक्षिणा करके, प्रज्वलित बाण चढ़ाया और उसे अभिमंत्रित कर पिता के दक्षिण ओर पृथिवी में मारा, जिससे पृथिवी फट गई और उससे स्वच्छ, सुगंधित, मधुर जल की धार निकलने लगी। उस जल को पीकर भीष्म तृप्त और प्रसन्न होगए। अर्जुन के उस पराक्रम को देख कर सभी आश्चर्य प्रकट करने लगे और भय से काँप उठे। तभी भीष्म ने कहा—महाबाहो! तुम्हारे लिए यह कार्य कुछ अद्भुत नहीं है। नारदजी ने कहा था कि अर्जुन 'नर' ऋषि हैं, वे भगवान् वासुदेव की सहायता से वह वह कार्य करेंगे जिसे कोई नहीं कर सकता। मैंने दुर्योधन को बार बार समझाया, पर यह नहीं माना, अब यह शीघ्र ही भीमसेन द्वारा मारा जायगा। यह सुन कर दुर्योधन अत्यंत उदास होगए, तब पितामह ने कहा—दुर्योधन! तुम क्रोध का त्याग करो। तुम्हारे सामने ही अर्जुन ने जिस प्रकार से जल पिलाया है, उस प्रकार से कौन पिला सकता है? देखो, इन्हें कोई नहीं हरा सकता, इसलिए पाण्डवों के साथ अब भी मेल कर लो। मैं

चाहता हूँ कि मेरे विनाश से ही यह घोर हत्याकांड समाप्त हो और तुम सब शान्ति से रहो। यदि मोहवश युद्ध में तत्पर रहे तो नष्ट हुए बिना न रहोगे। पितामह की यह बात दुर्योधन को अच्छी नहीं लगी।

संजय बोले—राजन् ! भीष्म के चुप होने पर सब राजागण उठ-उठ कर चले गए, तभी कर्ण ने पितामह से गद्‌गद स्वर में कहा—पितामह ! मैं राधेय कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ। भीष्म ने धीरे-धीरे नेत्र खोल कर कर्ण की ओर देखा और स्नेह पूर्वक बोले—कर्ण ! तुम्हारा स्वागत है। नारदजी ने बताया था कि तुम कुन्ती के सूर्यदेव से उत्पन्न पुत्र हो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति किंचित् भी द्वेष नहीं है। तुम्हारा जन्म धर्म-लोप से होने के कारण ही तुम्हारे द्वारा पाण्डवों को कष्ट सहने पड़े हैं। मैं पहिले से ही जानता हूँ कि तुम पराक्रम में कृष्ण और अर्जुन हो, फिर भी मैं तुमसे दुर्वचन कहकर फूट को रोकने की चेष्टा करता रहा था। हे कर्ण ! यदि मेरी बात मानो तो अपने भाई पाण्डवों से मिल जाओ। यदि मेरे अन्त के साथ कलह की अग्नि का भी अन्त हो जाय तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

कर्ण बोले--पितामह !आपका कथन यथार्थ है। किन्तु माता कुन्ती के त्यागनेके पश्चात् सूत ने ही मुझे पाला-पोषा था। फिर दुर्योधन की कृपा से ही मैं अब तक ऐश्वर्य-सुख भोगता रहा हूँ। तब मैं कैसे उसे इस विपत्ति के समय छोड़ सकता हूँ ? हे कौरव यह युद्ध अनेक कारणों से टाला नहीं जा सकता।यद्यपि श्रीकृष्ण और अर्जुन अजेय हैं, फिर उनसे युद्ध करने का मुझ में उत्साह है। मैं समझता हूँ कि उन्हें हराने में मुझे सफलता मिल जायगी मैं आपसे आज्ञा लेकर युद्ध करना चाहता हूँ। जब कभी मैंने आपके प्रति कोई अनुचित शब्द कहा हो, उसकी मैं क्षमा माँगता हूँ।

भीष्म ने कहा—कर्ण ! यदि तुम द्वेषभाव का त्याग नहीं करना चाहते तो मैं तुम्हें युद्ध की अनुमति देता हूँ। तुम स्वर्ग की कामना से क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करो। अर्जुन के हाथ से मारे जाकर श्रेष्ठ क्षत्रियों द्वारा विजित लोकों को प्राप्त करो। महात्मा भीष्म के यह कह कर मौन हो जाने के पश्चात् कर्ण ने उठ कर उन्हें प्रणाम किया और रथ पर चढ़ कर दुर्योधन के शिविर की ओर चल दिये।

।। भीष्म पर्व समाप्त ।।

द्रोण पर्व

द्रोणाचार्य को प्रधान सेनापति बनाना

जनमेजय बोले—हे भगवन् ! भीष्म पितामह की मृत्यु का समाचार सुन कर धृतराष्ट्र ने क्या किया ? दुर्योधन की क्या स्थिति हुई ? यह कहिये । वैशम्पायन ने कहा—राजन् ! भीष्म की मृत्यु का समाचार सुन कर धृतराष्ट्र शोक से व्याकुल होगए और खिन्न होकर विलाप करने लगे । फिर उन्होंने संजय से पूछा कि पितामह के गिरने पर कौरवों ने क्या किया ? संजय बोले- महाराज ! भीष्म के गिरने पर दोनों पक्ष पृथक्-पृथक् परामर्श करने लगे । पाण्डवों ने सन्नत पव बाणों के द्वारा उनके तकिये की व्यवस्था कर रक्षक नियुक्त किये और फिर उनकी अनुमति लेकर युद्ध क्षेत्र में आगये । दोनों ओर के वीर क्रोध से लाल नेत्र किये एक-दूसरे को देखने लगे । उस समय कौरवों ने कर्ण का स्मरण किया । सभी कहने लगे—कर्ण ! तुम्हारे पराक्रम प्रकट करने का यही समय है । महात्मा भीष्म का मरण देख कर कर्ण के नेत्र भो अश्रुपूर्ण होगए, फिर उन्होंने सँभल कर कहा–वीरो ! इस अनित्य संसार में स्थिर कुछ भी नहीं है । भीष्म के बाद मुझ पर कर्त्तव्य-भार आगया है, इसलिए मैं उसका निर्वाह करूँगा । जब जीवन नित्य नहीं है तब भय कैसा ? मैं विजय प्राप्त कर सका तो यश और मारा गया तो वीरगति प्राप्त करूँगा । इसलिए आओ, मुझे स्वर्ण मंडित कवच पहना कर मेरे सिर पर सिरस्त्राण रखो । सब युद्ध सामग्री लाओ और रथ उपस्थित करो । जल स्वर्णपात्र तथा दधि से परिपूर्ण पात्र के साथ सभी मांगलिक वस्तुएँ उपस्थित कर मुझे माल्यार्पण करो

और युद्ध के बाजे बजने दो। यह सुन कर सभी में उत्साह आ गया। उन्होंने कर्ण को भले प्रकार सुसज्जित कर मांगलिक कर्मों के साथ रथ पर चढ़ाया। तब कर्ण ने कहा—सारथी ! मेरा रथ पाण्डवों के समक्ष ले चलो, मैं या तो उन्हें ही मार दूँगा अथवा स्वयं भीष्म के समान मारा जाऊँगा। कृष्ण और अर्जुन अजेय हैं, किन्तु मैं उनसे ही युद्ध करूँगा।

हे राजन् ! उस समय सभी कौरव कर्ण की स्तुति करने लगे कर्ण का रथ भीष्म पितामह के पास जाकर रुका और कर्ण ने उतर कर उन्हें प्रणाम किया तथा युद्ध करने की आज्ञा माँगी। भीष्म बोले—कर्ण ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम सत्य प्रतिज्ञ होकर दुर्योधन की ओर से युद्ध करो। यह सुन कर कर्ण उनके चरणों में प्रणाम कर रथ पर चढ़े और तुरन्त रणभूमि की ओर चल दिये। वहाँ दुर्योधन ने पूछा—कर्ण ! भीष्म पितामह के स्थान पर किसे प्रधान सेनापति बनाया जाय ? उन्होंने कहा—मेरी सम्मति में आचार्य, बृद्ध तथा शस्त्रधारियों में सर्व श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्यजी को भीष्म का स्थान दिया जाय। यह सुन कर कौरवों ने द्रोणाचार्य जी से प्रधान सेनापति का भार सँभालने की प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। तब उन्हें विधिवत् वह भार सोंप कर उनका अभिषेक किया गया। तत्पश्चात् वे सुसज्जित होकर रथ पर चढ़े और शंखनाद करते हुए रणभूमि में जा पहुँचे। उनकी तीव्र गति देख कर अपने पक्ष के लोग अत्यन्त प्रसन्न थे।

द्रोणवध का समाचार

संजय बोले—हे महाराज ! द्रोणाचार्य की गति तीव्र थी, उनका सामना करने में पाण्डवपक्ष के सभी वीर घबराते थे। तब युधिष्ठिर ने उन्हें सब ओर से घेर लेने का परामर्श दिया। तब

युधिष्ठिर ने उन्हें सब ओर से घेर लेने का परामर्श दिया। तब सब वीरों ने उन्हें घेर लिया, यह देख कर द्रोणाचार्य जी भी अपनी बाणवर्षा से शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करने लगे। वे साक्षात् काल के समान पाण्डवपक्ष का भीषण संहार करते हुए रणभूमि में विचर रहे थे। राजन्! आपके पुत्रों की विजय कामना करते हुए उन्होंने सात्यकि, भीमसेन, अर्जुन, धृष्टद्युम्न अभिमन्यु आदि को अपने पराक्रम से व्यथित किया। किन्तु पाण्डवों की एक अक्षौहिणी से भी अधिक सेना को मार कर महात्मा द्रोणाचार्य जी भी धृष्टद्युम्न के हाथ से इस लोक को छोड़ कर चले गये। उनकी परमगति को देख कर आकाशस्थ सिद्ध, देवता तथा पृथिवी पर स्थित आपके सैनिक योद्धा आदि शोकसूचक कोलाहल करने लगे। उधर पाण्डवों के जयसूचक सिंहनाद से पृथिवी काँप उठी।

धृतराष्ट्र ने कहा—संजय! द्रोणाचार्यजी की मृत्यु का समाचार सुन कर तो मैं यही समझता हूँ कि पौरुष से दैव ही प्रबल है, अन्यथा उन्हें धृष्टद्युम्न कैसे मार सकता था? देखो, मेरा हृदय वज्र से बना है जो द्रोणाचार्य की मृत्यु हुई सुन कर भी खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता। उनका मरण मेरे लिए अत्यन्त असह्य होरहा है। संजय! शोक के कारण मुझे मूर्च्छा आना चाहती है। यह कहते कहते राजा धृतराष्ट्र अचेत होकर पृथिवी पर गिर पड़े। उस समय दासियाँ उनका पंखा झलने और शीतल जल छिड़कने लगीं। राजकुल की स्त्रियों ने उनकी ऐसी दशा देखी तो उन्हें घेर कर बैठ गईं तथा आँसू बहाने लगीं। फिर कुछ देर बाद जब उन्हें चेत हुआ तब वे संजय से द्रोणाचार्य की मृत्यु का पूर्ण वृत्तान्त पूछने लगे—हे संजय! उदय हुए सूर्य के समान द्रोणाचार्यजी के पास आते हुए युधिष्ठिर का हमारे किस वीर ने सामना किया था? युधिष्ठिर महावीर, सत्यवादी तथा अतुल पराक्रमी हैं, वे अकेले ही हमारी सेना को भस्म कर सकते

हैं, उनसे युद्ध करने को हमारे कौन-कौन से वीर अग्रसर हुए थे। महाकाय, महान्वीर, दस सहस्र गजराजों के समान बल-वाले भीमसेन को मेरे पक्ष के किस-किस वीर ने रोका था ? महा धनुर्धर, पाण्डवों के प्रधान सेनापति और मन्त्री तथा द्रोणवध के लिए ही उत्पन्न धृष्टद्युम्न जब द्रोणाचार्य के सामने गये तब किन-किन वीरों ने उनका सामना किया था ? संजय ! मैं महा-मायावी घटोत्कच से बहुत भयभीत हूँ, वह भीमपुत्र जब युद्धक्षेत्र में आया तब उसे किस-किस ने रोका था ? देखो, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जिन पाण्डवों के सहायक और हितचिन्तक हैं, वे किस प्रकार हराये जा सकते हैं ? वे सनातन पुरुष सभी के शरण स्थान हैं, पण्डितजन उनके दिव्य गुणों का कीर्तन करते हैं। मैं भी अपना चित्त शान्त करने के लिए उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण के गुण-कीर्तन करूँगा। संजय ! उन गोविन्द ने बाल्यावस्था में ही केशीदैत्य को मारा, वृषभासुर, प्रलम्बासुर, नरकासुर, जम्भ, महासुर, पीठ और यम के समान मुर दानव का वध किया। इन्हीं ने कंस का संहार किया तथा अन्यान्य महाबली बहुत-से राजाओं को मार-डाला। इन्होंने कौशल से महाबली जरासन्ध को भीम के हाथों मरवा दिया। चेदिराज शिशुपाल का शिर बात की बात में काट डाला। हे संजय ! ऐसा कौन अभिमानी महाबली राजा है जो श्रीकृष्ण से पराजित न हुआ हो ? तो बताओ, जब वे पाण्डवों के पक्ष में युद्ध करेंगे तब उन्हें कौन वश में कर सकेगा ? इसी से मैं अब कौरवों का कल्याण किसी प्रकार भी नहीं देखता। क्योंकि अर्जुन श्रीकृष्ण की और श्रीकृष्ण अर्जुन की आत्मा हैं। दैव-विडम्बना में मोहित हुआ दुष्ट दुर्योधन मृत्यु के वश में पड़ा है, इसलिए श्रीकृष्ण और अर्जुन के पौरुष को वह नहीं जानता। इससे प्रतीत होता है कि इस उपस्थित दुश्चिन्त्य विषय के परिहार का उपाय नहीं है। अस्तु, अब तुम युद्ध का वृत्तान्त मुझे सुनाओ।

संजय बोले—हे महाराज ! मैंने सब हाल स्वयं देखा है, उसे आपसे कहता हूँ। जब द्रोणाचार्य सेनापति हुए तब उन्होंने दुर्योधन से कहा—राजन् ! तुमने सेनापति का पद देकर मुझे सम्मानित किया है, इसके अनुरूप फल तुम्हें अवश्य मिलेगा, बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है ? वही हो। यह सुन कर राजा दुर्योधन ने दुःशासनादि से परामर्श करके कहा—हे महामते ! यदि आप प्रसन्न हैं तो युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ कर मेरे सामने उपस्थित कर दें।

द्रोणाचार्य ने कहा—राजन् ! धन्य है, तुमने युधिष्ठिर की मृत्यु न माँग कर जीवित पकड़ लाने का वर माँगा है। इससे प्रतीत होता है कि तुम अत्यन्त वैरी होकर भी उनसे अपार स्नेह रखते हो, जो उनकी मृत्यु नहीं चाहते। दुर्योधन बोले—आचार्य युधिष्ठिर को मारने से हम जीत नही सकेंगे, क्योंकि वैसा करने पर क्रुद्ध हुए पाण्डव हमें मार डालेंगे, उस स्थिति में सम्पूर्ण देवता भी मिल कर उन्हें नहीं हरा सकते। दुर्योधन के ऐसे तुच्छ विचार सुनकर द्रोणाचार्य ने असंतुष्ट होकर कहा—दुर्योधन ! यदि युद्ध में युधिष्ठिर की रक्षा अर्जुन न कर रहे होंगे तो युधिष्ठिर तुम्हारे वश में आजाँयगे, किन्तु अर्जुन के उनकी रक्षा में तत्पर रहते यह कार्य सम्भव नहीं है। यह सुन कर दुर्योधन ने समझ लिया कि आचार्य ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लेने की प्रतिज्ञा ले ली है, और तब उन्होंने वैसी घोषणा भी कर दी।

कौरव-सेना की पराजय

संजय ने कहा—राजन् ! द्रोणाचार्यजी की प्रतिज्ञा सुन कर आपके पक्ष के वीरों ने बड़ी प्रसन्नता मनाई। उधर पाण्डवों के गुप्तचरों ने स्वजनों के मध्य बैठे हुए राजा युधिष्ठिर को वह समाचार सुनाया। तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज !

आपको युद्ध भूमि में मैं कभी अरक्षित नहीं छोड़ूँगा, दुर्योधन की वह इच्छा मेरे जीवित रहते कभी पूर्ण नहीं हो सकती। अर्जुन के ऐसा कहने पर उनके शिविर में युद्ध के वाजे बजने लगे और सेना ने मोर्चे पर कूँच कर दिया। इधर कौरव-सेना भी वहाँ पहुँच गई और पाण्डवों तथा द्रोणाचार्य के मध्य घोर संग्राम होने लगा। उस समय द्रोणाचार्य पाण्डव-सेना को घास-फूंस के समान अपने बाणों से भस्म करते हुए विचरने लगे। यह देख कर पाण्डवपक्ष के वीरों ने भी उन्हें रोकने के लिए चारों ओर से उन पर आक्रमण किया। इस प्रकार दोनों ओर के महारथी और उनके साथी वीर प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध में तत्पर होगए।

तभी वीर अभिमन्यु ने जयद्रथ पर वेग से आक्रमण किया। उसमें जयद्रथ की तलवार अभिमन्यु की ढाल में लग कर टूट गई। तब जयद्रथ पीछे हट कर अपने रथ पर चढ़ गये, यह देख कर अभिमन्यु ने भी रथ पर चढ़ कर जयद्रथ की ओर देखते हुए सिंहनाद किया। इस प्रकार जयद्रथ को परास्त करके अभिमन्यु कौरव सेना को पीडित करने लगे। उस समय शल्य ने अभिमन्यु के सामने जाकर प्रहार किया,तभी शल्य का सारथी मारा गया, यह देख कर शल्य अत्यन्त क्रोध में भर कर गदा लिए हुए काल के समान झपटे, किन्तु उसी समय भीमसेन गदा लेकर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने अभिमन्यु को रोककर शल्य से स्वयं युद्ध किया। वे दोनों महाबली साँडों के समान एक दूसरे पर टूट पड़े और भीषण युद्ध करते हुए दोनों ही बुरी तरह आहत होकर अचेतावस्था में पृथिवी पर गिर गये। महारथी कृतवर्मा ने शल्य का यह हाल देखा तो शल्य को उठाकर अपने रथ पर चढ़ाया और शीघ्रता से रणक्षेत्र से हटा लेगए। फिर जब भीमसेन को होश हुआ और वे जैसे उठे, वैसे ही आपके पुत्र भयभीत होकर वहाँ

से भाग निकले। इस प्रकार आपकी सेना को हरा कर पाण्डव-सेना सिंहनाद करने लगी।

अपनी सेना को भागती हुई देख कर पराक्रमी वृषसेन मैदान में जा डटे तभी उन्हें पाण्डव पक्ष के राजाओं ने सब ओर से घेर लिया। तदनन्तर पुनः घोर संग्राम होने लगा, किन्तु कुछ समय में ही आपकी सेना फिर भागने लगी। तब द्रोणाचार्य ने उसे धीरज बँधाया और स्वयं पाण्डव-सेना में घुस कर युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। उस समय युधिष्ठिर के रथ चक्र की रक्षा में लगे हुए कुमार ने द्रोणाचार्य के वेग को रोक दिया। किन्तु आचार्य ने शस्त्रास्त्र और मन्त्रविद्या के पारंगत कुमार को हरा कर अपना युद्ध कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। उस समय कैकेय, विराट, सात्यकि, द्रुपद, शिवि आदि बहुत-से महारथी युधिष्ठिर की रक्षा करते हुए द्रोणाचार्य के मार्ग में खड़े होगए। किन्तु द्रोणाचार्य का वेग रोकने में वे समर्थ न हुए और द्रोणाचाय बहुत शीघ्र युधिष्ठिर के पास जा पहुँचे, यह देख कर आपके सभी वीर प्रसन्न हो रहे थे, तभी महावीर अर्जुन ने वहाँ पहुँच कर रक्त की महानदी प्रवाहित कर दो। अर्जुन के चलाये हुए बाणों से सर्वत्र अँधेरा छा गया, उधर सूर्य भी अस्ताचल गामी होगए। उस समय अंधकार के कारण शत्रु, मित्र की पहिचान भी कठिन देख कर द्रोणाचार्य और दुर्योधन ने युद्ध बन्द कर दिया। कौरवों को रणविमुख देख कर पाण्डवों ने भी अपनी सेना को शिविर का ओर लौटा दिया।

इस प्रकार जब दोनों पक्ष की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों में लौट गईं, तब द्रोणाचार्यजी ने दुर्योधन से कहा— मैंने पहिले ही कहा था कि अर्जुन के सामने ता देवता भी युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सकते। इसलिए कल तुम किसी उपाय से अर्जुन को रणक्षेत्र से दूर हटा ले जाओ तो मैं युधिष्ठिर को

पकड़ कर तुम्हारे पास ला दूँगा। अथवा युधिष्ठिर मेरे वेग को न सह कर भाग खड़े हुए तो भी तुम्हारी जीत से भी अधिक है। यह सुन कर त्रिगर्तनरेश सुशर्मा ने कहा—राजन् ! अर्जुन ने हमें अनेक बार हराया है, इससे हम प्रतिशोध की अग्नि में सदैव जलते रहते हैं।हम अर्जुन को ललकार रणभूमि से दूर ले जाकर या तो उसी को मार डालेंगे अथवा हम ही मर जायेंगे। यह कह सुशर्मा ने अपने पाँचों भाइयों—सत्यवर्मा, सत्यरथ, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा के साथ दस सहस्र रथों के सहित युद्ध करने की प्रतिज्ञा की तथा सुशर्मा के साथ आये हुए मावल्लक, ललित्थ, मद्रकगण, मालव, तुण्डिकेरगण और अनेक जनपदों से समागत दस सहस्र विशिष्ट रथी वीरों ने भी शपथ ली। फिर उन्होंने पृथक्-पृथक् वेदियों में अग्नि स्थापन कर हवन, ब्राह्मण भोजन, दक्षिणादि से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया और विभिन्न प्रकार के अद्भुत शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर प्रातःकाल युद्ध के लिये चल पड़े और दक्षिण दिशा की ओर जाकर अर्जुन को ललकारने लगे।

तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—राजन् ! यदि कोई मुझे युद्ध के लिये ललकारे तो मैं उससे युद्ध करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। यह संशप्तकगण मुझे ललकार रहे हैं, इसलिए आज्ञा दीजिए कि मैं उन्हें युद्ध में मार डालूँ। युधिष्ठिर बोले—अर्जुन ! तुम्हें द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा तो मालूम ही है, इसलिए वह कार्य करो जिससे उनकी प्रतिज्ञा पूरी न हो पावे। अर्जुन ने कहा—महाराज ! सत्यजित् आपकी रक्षा में नियुक्त रहेंगे। इनके जीवित रहते आचार्य की प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो सकती। यदि दैवयोग से यह वीर गति को पा जाँय तो आप युद्धक्षेत्र से हट जाइयेगा। यह सुन कर युधिष्ठिर ने अर्जुन को आशीर्वाद दिया और जाने की अनुमति प्रदान कर दी, तब अर्जुन त्रिगर्त देश की सेना की

ओर बढ़े और दुर्योधन की सेना युधिष्ठिर को पकड़ने के उद्देश्य से वेग पूर्वक आगे बढ़ी। फिर घमासान युद्ध प्रारम्भ होगया।

भगदत्त और उनके हाथी का पराक्रम

अर्जुन को अपनी ओर आते देख कर संशप्तकगण सिंहनाद करने लगे। तभी अर्जुन ने अपना देवदत्त शंख बजाया, जिसे सुन कर संशप्तकगण की सेना भयभीत और चेष्टा-रहित होगई, फिर जब उन्हें चेत हुआ तब वे युद्ध में प्रवृत्त हुए तथा उन्होंने अर्जुन के रथ को अपने हजारों बाणों से पाट दिया। तब अर्जुन भी उन पर असंख्य बाण बरसाने लगे और उनमें से सुधन्वा का शिर काट डाला। इसके बाद उन्होंने संशप्तकगण की सेना को इस बुरी तरह से नष्ट करना प्रारंभ किया कि वह प्राण बचाकर इधर-उधर भागने लगी। यह देख कर सुशर्मा ने उन्हें धीरज बँधा कर रोका तब उनकी नारायणी सेना पुनः अर्जुन के सामने आई और उसने अपनी बाण वर्षा से कृष्ण सहित अर्जुन को अदृश्य कर दिया। तब महावीर अर्जुन ने भी अत्यंत कुपित हो कर देवदत्त शंख का नाद किया और त्वाष्ट्रास्त्र छोड़ा, जिससे सब ओर हजारों अर्जुन दिखाई देने लगे। उससे विपक्ष के वीर ऐसे मोहित हुए कि अपने ही लोगों को अर्जुन समझ कर परस्पर मारने-मरने लगे। इस प्रकार हजारों वीरों को उन्होंने बात की बात में समाप्त कर दिया। फिर स्वय भी शस्त्रास्त्र प्रहार से शत्रु-सेना को नष्ट करने लगे, जिससे वे बुरी तरह कट-कट कर परलोक जाने लगी।

उधर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के विचार से व्यूह-रचना पूर्वक उनकी ओर बढ़े। उस समय युधिष्ठिर भी अर्द्ध-चक्राकार व्यूह रच कर युद्ध में तत्पर हुए। तत्पश्चात् धृष्ट-द्युम्न और द्रोणाचार्य के मध्य घोर संग्राम होने लगा तथा दोनों पक्षों के महारथी एक-दूसरे से भिड़ गये। उस समय रणभूमि

में शोणित की नदी बह चली। वीरों के विशेष चिन्ह कट-कट कर नष्ट हो जाने के कारण कोई किसी को नहीं पहचान सकता था। उसी समय महारथी द्रोणाचार्यजी पाण्डवों को मोहित कर युधिष्ठिर की ओर बढ़ चले। यह देख कर युधिष्ठिर भी उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। उस समय सत्य पराक्रमी सत्यजित् युधिष्ठिर की रक्षा करते हुए आचार्य के सामने आ डटे। उन्होंने आचार्य के सारथी को आहत कर रथ की ध्वजा काट डाली। तभी महाबली वृक ने भी आचार्य के हृदय में एक साथ साठ बाणों से प्रहार किया। तब द्रोण ने भी अत्यन्त क्रोध में भर कर वृक के घोड़ों और सारथी को मार कर अन्त में वृक को भी मार डाला। तदनन्तर सत्यजित् द्रोणाचार्य से भयंकर युद्ध करने लगे, किन्तु उनके एक अर्द्धचन्द्र बाण से सत्यजित् का मस्तक छिन्न भिन्न हो गया।

अपने रक्षक महावीर सत्यजित् की मृत्यु हुई देख कर युधिष्ठिर पकड़े जाने के भय से रणभूमि से हट गए। तब राजा विराट के छोटे भाई शतानीक ने आचार्य के घोड़ों और सारथी को घायल कर भयंकर बाणवर्षा की, किन्तु द्रोणाचार्य ने अत्यन्त शीघ्रता से शतानीक का सिर काट डाला, जिससे भयभीत और आन्तकित हुई मत्स्यदेश की सेना युद्ध क्षेत्र से भागने लगी। तत्पश्चात् द्रोणाचार्यजी चेदि, कारूष, केकय, पांचाल आदि की सेनाओं को बुरी तरह मारने और परास्त करने लगे। तब अनेक वीरों के साथ पाण्डवों ने सामने आकर घोर संग्राम किया, जिसमें आचार्य के द्वारा दृढ़सेन, राजा क्षेम, वसुदान, क्षत्रदेव आदि मारे गये। फिर पांचाल्य नामक राजकुमार ने उनका सामना किया तो वह भी मारा गया। इस प्रकार पाण्डव सेना के अनेकों वीर मारे गये और शेष परास्त होकर कांपने लगे।

हे महाराज ! तभी भीमसेन वहाँ आगये, दुर्योधन ने हाथियों की सेना लेकर उनका सामना किया। किन्तु भीमसेन द्वारा की गई बाणवर्षा से उनकी हस्तिसेना का बुरी तरह नाश होने लगा। फिर भीमसेन ने दुर्योधन पर भी तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किये, जिससे उनका शरीर अनेक स्थानों पर कट-फट गया तथा उनके हाथ का धनुष भी कट कर गिर गया। यह देख कर हाथी पर बैठे हुए अंगराज भीमसेन पर झपटे, किन्तु भीमसेन ने हाथी सहित अंगराज को भी मार कर गिरा दिया। यह देख कर अंगराज की सेना हाथी, घोड़े, रथ आदि के सहित वेगपूर्वक भाग खड़ी हुई, उस समय उनके नीचे आकर हजारों पैदल सिपाही मारे गये।

अंगदेश की सेना को भागती हुई देख कर प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त अपने हाथी को तेजी से बढ़ा कर भीमसेन के सामने आये। उनका हाथी इन्द्र के ऐरावत हाथी के वंश का तथा बड़ा पराक्रमी था। उसने बड़े वेग से भीमसेन पर आक्रमण कर उन्हें अपनी सूँड में लपेट लिया, किन्तु भीमसेन अपने को छुड़ाकर शीघ्रता से वहाँ से हट गए। तभी लोगों ने अफवाह उड़ा दी कि हाथी के द्वारा भीमसेन मारे गये। यह सुन कर शोकाकुल हुए युधिष्ठिर धृष्टद्युम्न के साथ भगदत्त के सामने जाकर घोर युद्ध करने लगे, किन्तु भगदत्त ने अंकुश से ही पाण्डवों के शस्त्रास्त्र विफल कर दिये और हाथी को उत्तेजित कर पाण्डवों और पांचालों की बहुत-सी सेना उसके पाँव से कुचलवा डाली। यह देख कर दशार्ण नरेश ने हाथी पर बैठ कर भगदत्त का सामना किया। तब दोनों वीर प्राणों का मोह छोड़ कर घोर युद्ध में प्रवृत्त हुए और अन्त में दशार्ण नरेश के हाथी ने घुटने टेक दिये। इस प्रकार भगदत्त का साहस बढ़ता देख कर युधिष्ठिर ने अपनी रथ सेना लेकर भगदत्त को चारों ओर से घेर लिया। किन्तु

भगदत्त को परास्त करना कोई सरल कार्य न था। वे पाण्डव पक्ष के अनेक वीरों को मारते हुए रणभूमि में विचर रहे थे। उनका एक ही हाथी शत्रु सेना को कुचलता और व्यथित करता हुआ भ्रमण कर रहा था, उस समय उसके अनेक रूप दिखाई दे रहे थे।

हाथी सहित भगदत्त का वध

संजय ने कहा—हे महाराज ! भगदत्त और उनके हाथी के पराक्रमकर्म के फलस्वरूप भारी धूल उड़ती देखकर और सैनिकों का कोलाहल सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण से उधर ही रथ ले चलने के लिए कहा। उसी समय त्रिगर्तदेश के दस हजार और श्रीकृष्ण के अनुचर चार हजार, इस प्रकार चौदह हजार संशप्तकगण अर्जुन के पीछे चलते हुए उन्हें युद्ध के लिए ललकार रहे थे। इससे अर्जुन सोचने लगे कि भगदत्त की ओर चलूँ अथवा पीछे की ओर लौटूँ ? अन्त में उन्होंने संशप्तकगण को मारने का निश्चय कर उनकी ओर से रथ घुमवा दिया। तब संशप्तकों ने उन पर भीषण बाण वर्षा की, जिससे कृष्ण सहित अर्जुन का रथ अदृश्य हो गया। यह देख कर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़ कर संशप्तकगण को नष्ट करना प्रारम्भ किया, तब उनके मस्तक कट-कट कर पृथिवी पर बिछ गये। इस अद्भुत कर्म को देख कर कृष्ण ने कहा - हे धनंजय ! आज तुमने एक साथ सैकड़ों-हजारों संशप्तक वीरों को मार कर अद्भुत कर्म किया है। इस प्रकार संशप्तकगण की अधिकांश संख्या समाप्त करके अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण को भगदत्त की ओर चलने के लिये कहा।

श्री कृष्ण अर्जुन के रथ को द्रोणाचार्य की सेना के समक्ष ले पहुँचे तभी महावीर सुशर्मा ने अर्जुन का पीछा कर उन्हें ललकारा। श्रीकृष्ण ने रथ को सुशर्मा की ओर ही बढ़ा दिया तब अर्जुन ने सुशर्मा को आहत कर उनकी ध्वजा और धनुष

काटे, उनके अश्व, सारथी और भाई को मार दिया। यह देख कर क्रोधित सुशर्मा ने अर्जुन पर सर्पाकार भयंकर शक्ति और कृष्ण पर तोमर से प्रहार किया। किन्तु अर्जुन ने शक्ति और तोमर काटकर बाण-प्रहार से सुशर्मा को भी आहत एवं मूर्च्छित कर दिया तथा भगदत्त की ओर तेजी से बढ़ चले। उस समय भगदत्त का हाथी मार्ग में स्थित असंख्य पदाति सैनिकों, घोड़ों, रथों आदि को कुचल-कुचल कर नष्ट कर रहा था, यह देख कर अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगदत्त से घोर युद्ध किया। उनके रक्षकों को मार कर धनुष काट डाला और हाथी का कवच भी देखते-देखते ही काट कर गिरा दिया, जिससे वह अत्यंत व्यथित हो उठा। तब भगदत्त ने कृष्ण पर शक्ति से प्रहार किया, जिसे अर्जुन ने बीच में ही नष्ट कर दिया। इससे कुपित होकर भगदत्त ने अर्जुन के मस्तक पर तोमर चलाया और बाण-वर्षाकरने लगे फिर वैष्णवास्त्र छोड़ा, जिसे अर्जुन की रक्षा के लिये कृष्ण ने अपने वक्षस्थल पर रोक लिया। यह देख कर अर्जुन ने पूछा—हे मधुसूदन ! आपने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करके भी उसे क्यों तोड़ दिया ? जबकि मैं अपने गाण्डीव के बल पर देवता, दैत्य, मनुष्य सभी को जीत सकता हूँ।

कृष्ण वोले—पार्थ ! मैंने लोक कल्याण के लिए अपनी मूर्ति को चार अंशों में विभाजित किया है। उनमें से एक तप करती दूसरी संसार के भले-बुरे कार्यों को देखती, तीसरी मनुष्यों के कार्य-साधन करती और चौथी हजार वर्ष की नींद का सुख अनुभव करके जागती और वरयोग्य पुरुषों को वर प्रदान करती है। उस समय पृथिवी ने वरदान की बात जान कर अपने पुत्र नरकासुर के हितार्थ वर माँगा था कि मेरा वह पुत्र बैष्णवास्त्र को पाकर देवता या दैत्य के हाथ से न मारा जाय। मैंने उसे

इच्छित वर दे दिया, तभी से नरकासुर अजेय होगया। भगदत्त ने उसी नरकासुर से इस अमोघ वैष्णवास्त्र को प्राप्त किया था। तीनों लोकों में इन्द्र, चन्द्र, रुद्र आदि में से भी ऐसा कोई नहीं है, जिसका वध यह अस्त्र न कर सके। अब इसके पास वैष्णवास्त्र नहीं रहा है, इसलिए जैसे मैंने नरकासुर को मारा था, वैसे ही तुम इसे मार डालो। यह सुन कर अर्जुन ने नाराच अस्त्र चला कर हाथी को निश्चेष्ट कर दिया और फिर भगदत्त पर प्रहार किये। तभी कृष्ण बोले—अर्जुन ! यह वली राजा वृद्धावस्था से प्रभावित है। इसने अपनी पलकों को लटकने से रोकने और आँखें खुली रखने के लिए वस्त्र की पट्टी बांध रखी है। अर्जुन ने तुरन्त उस पट्टी को बाण से काट डाला, जिससे पलकों ने लटक कर आंखों को ढँक लिया। तभी अर्जुन ने अर्द्धचन्द्र बाण से उनका वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया। भगदत्त के हाथ से धनुष-बाण गिरने के साथ ही उनका प्राणान्त होगया। तब अर्जुन कौरव-सेना के वीरों का भयंकर रूप से संहार करने लगे।

कौरव पक्ष के अनेक वीरों का संहार

संजय ने कहा—हे राजन् ! भगदत्त को मार कर अर्जुन रण क्षेत्र में घूम रहे थे, तभी शकुनि के दो भाई वृषक और अचल उनके सामने आये, किन्तु घोर युद्ध के पश्चात् अन्त में अर्जुन के एक बाण से ही दोनों वीर मर कर धराशायी होगए। यह देख कर शकुनि ने कृष्ण और अर्जुन को मोहित करने के लिए माया-युद्ध किया, जिसके प्रभाव से अर्जुन पर असंख्य शस्त्रास्त्रों की वर्षा होने लगी। तब दिव्यास्त्रों के ज्ञाता अर्जुन ने उस माया को बात की बात में नष्ट कर डाला और शकुनि को जैसे बाण-प्रहार से अधिक पीड़ित किया, वैसे ही वह मैदान छोड़कर भाग गये।

इसके पश्चात् कौरव-पाण्डवों का घमासान युद्ध होने लगा। अर्जुन के बाणों से कौरव-सेना का भारी संहार हुआ और वह अपने-अपने वाहनादि को छोड़ कर भी भागने लगे। तब द्रोणाचार्य ने उन्हें धीरज बँधा कर लौटाया। उस युद्ध में महा पराक्रमी राजा नील का अश्वत्थामा ने वध कर दिया। इसके बाद भीमसेन आगे बढ़े तो उनकी मार के सामने कौरवों का टिकना कठिन होगया। भीमसेन ने कर्णपक्ष के पन्द्रह वीरों को शीघ्र ही मार दिया और कर्ण को बुरी तरह आहत किया, तब दुर्योधन, द्रोणाचार्य और जयद्रथ ने उन्हें बचाया। इस प्रकार कौरव-पाण्डव युद्ध की वाभत्सता बढ़ते-बढ़ते सूर्यास्त होने के कारण युद्ध बन्द हो गया और दोनों पक्षों की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को लौट गईं।

दूसरे दिन प्रातःकाल दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा—हे आचार्य ! आपने युधिष्ठिर को प्राप्त करके भी नहीं पकड़ा, इससे लगता है हमें आप अपने शत्रु पक्ष में मानते हैं। अन्यथा आप जिसे पकड़ना चाहें उसे सब देवता भी मिल कर नहीं बचा सकते। द्रोण बोले—राजन् ! मैं सदैव तुम्हारी भलाई में लगा रहता हूँ, फिर भी तुम मुझे दोष देते हो। अर्जुन के द्वारा रक्षित युधिष्ठिर को पकड़ना कदापि संभव नहीं है। जहाँ सहायक रूप से भगवान् वासुदेव स्वयं विराजमान हैं। वहाँ भगवान् रुद्र के अतिरिक्त किसी का भी बल व्यर्थ है। फिर भी मैं आज चक्र व्यूह रच कर पाण्डव पक्ष के किसी श्रेष्ठ महारथी का अवश्य वध करूँगा। किन्तु तुम्हें अर्जुन को युधिष्ठिर के पास से हटा ले जाने का उपाय अवश्य करना होगा।

यह कह कर द्रोणाचार्य ने बड़े यत्न से चक्र व्यूह की रचना की, जो कि नेत्रों में चकाचोंध कर रहा था। उधर शेष बचे हुए संशप्तकगण अर्जुन को ललकारने लगे, जिससे अर्जुन

उनके साथ भयंकर संग्राम में उलझ गये। इधर चक्रव्यूह को अभेद्य देख कर युधिष्ठिर ने अभिमन्यु से कहा—पुत्र ! इस चक्रव्यूह को तोड़ने का तुम्हीं कुछ उपाय करो जिससे कि अर्जुन लौट कर आवें तो हमारी अकर्मण्यता को देख कर निन्दा न करें। अभिमन्यु बोले—महाराज ! पिताजी ने मुझे इस व्यूह में घुसने का उपाय तो बता दिया था, किन्तु भीतर से बाहर निकल आना मैं नहीं जानता। युधिष्ठिर ने कहा—बेटा ! इस व्यूह को तोड़ कर भीतर जाने का मार्ग बना दो तो हम भी तुम्हारे पीछे-पीछे साथ रहेंगे और शत्रुपक्ष के वीरों का चुन-चुन कर वध करेंगे। अभिमन्यु बोले—महाराज ! मैं अवश्य उस व्यूह को तोड़ कर आप सब का प्रिय करूँगा। यदि आज मेरे सामने आकर कोई बच जाय तो मैं अर्जुन का पुत्र नहीं। यह कह कर अभिमन्यु रथ पर बैठ कर तेजी से द्रोणाचार्य की सेना की ओर बढ़े तभी कौरवों ने द्रोणाचार्य को आगे करके उन्हें रोकने की चेष्टा की, किन्तु महापराक्रमी अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य के सामने ही व्यूह तोड़ कर उसमें प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे पाण्डव पक्ष के महारथी वीर भी व्यूह में घुसने का प्रयत्न करने लगे।

व्यूह में घुस कर अभिमन्यु ने भयंकर संग्राम किया। उनके प्रहार से कौरव पक्ष के वीर कट-कट कर गिरने लगे। अनेकों विशाल रथों को उन्होंने चूर्ण कर डाला न जानें कितने घोड़े मर-मर कर पृथिवी पर गिर गये। अभिमन्यु द्वारा बुरी तरह मारी जाती हुई कौरव सेना अन्त में निरुत्साहित होकर भाग खड़ी हुई। यह देख कर दुर्योधन स्वयं अभिमन्यु के सामने पहुँचे तथा उनकी सहायता के लिए द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, वृहद्बल, शल्य आदि अनेक महारथी आगे बढ़े, किन्तु गरजते हुए सिंह के समान अभिमन्यु के सिंहनाद को सहन करना उनमें से किसी के वश की बात न थी। क्योंकि

अभिमन्यु ने अकेले ही उस विशाल सेना के वेग को रोक दिया तब अश्मकेश्वर ने अभिमन्यु का सामना किया, किन्तु अभिमन्यु ने हँसते-हँसते दस बाणों से उनके सारथी, घोड़े, दोनों बाहु, धनुष और फिर मस्तक को भी काट डाला। तब तो अश्मकेश्वर की सम्पूर्ण सेना हथियार डाल कर भागने लगी।

तदनन्तर अभिमन्यु ने कर्ण पर एक भयंकर बाण चलाया जो कि उनके कवच को तोड़ता हुआ पृथिवी में जा घुसा। कर्ण उस प्रहार से अत्यन्त व्यथित हो गए और महाराज शल्य की की भी यही दशा हुई। शल्य के छोटे भाई ने अपने ज्येष्ठ भाई को अत्यन्त व्यथित हुए देखा तो वे बाण-वर्षा करते हुए अभिमन्यु की ओर दौड़े, किन्तु कुछ देर के युद्ध में ही वे अपने सारथी आदि के सहित मारे गये। तब उनकी सेना भी चारों ओर भागने लगी। तत्पश्चात् कौरव पक्ष के अन्याय वीरों को अभिमन्यु ने बुरी तरह पीड़ित किया। उस समय कोई भी यह नहीं देख पाता था कि अभिमन्यु कब बाण निकालते, कब धनुष पर चड़ाते और कब छोड़ते हैं। उनका मण्डलाकार घूमता हुआ धनुष सब ओर शरदऋतु के सूर्य मण्डल जैसा दिखाई देरहा था। उस समय द्रोणाचार्य ने कृपाचार्य से कहा—आचार्य ! देखो, महावीर अभिमन्यु के समान रणनिपुण कोई वीर यहाँ दिखाई नहीं देता। यह चाहे तो समूची कौरव-सेना को मार सकता है, किन्तु न जाने वह ऐसा करने से कैसे रुका हुआ है ? यह सुन कर दुर्योधन ने क्रोधपूर्वक कहा—सुहृद-जन ! आचार्य तो ममता-मोह में पड़ कर अभिमन्यु की रक्षा करते प्रतीत होते हैं। इसलिए आओ, हम सब मिल कर इस अभिमानी बालक को शीघ्र समाप्त कर दें।

दुर्योधन के वचन सुन कर सभी वीर वेग पूर्वक उसे मारने के लिए दौड़े। उस समय दुःशासन ने कहा—राजन् ! आप

चिन्ता न करें, मैं अकेला ही इसे मार डालूँगा, यह कह कर दुःशासन अभिमन्यु से घोर युद्ध करने लगे। तब अभिमन्यु ने जो बाण चलाया वह दुःशासन के जत्रुस्थान को भेद कर पृथिवी में जा घुसा। फिर उन्होंने पच्चीस बाण और मारे, जिससे दुःशासन आहत एवं मूच्छित होकर गिर पड़ा और उसकी यह दशा देख कर सारथी उसे रणक्षेत्र से हटा लेगया। इसी समय द्रौपदी के पाँचों पुत्र, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय-कुमार, धृष्टकेतु, मत्स्य देश के महारथी तथा पांचालदेश आदि के वीरों सहित युधिष्ठिर आदि पाण्डव भी बड़े वेग से आगे बढ़ कर युद्ध करने लगे।

उस भयंकर युद्ध में कर्ण के पुनः आने पर अभिमन्यु ने उन्हें बाण-वर्षा से व्यथित करके उनके भाई को मार डाला। कर्ण अपने को अत्यन्त आहत जान कर व्याकुलता के साथ रण-क्षेत्र से हट गये। कौरव-सेना के सभी योद्धा उनका सामना करने से कतराने लगे, किन्तु सिन्धुनरेश जयद्रथ अपने स्थान पर डटे रहे। हे राजन्! जयद्रथ ने जब द्रौपदी का अपहरण करने की कुचेष्टा की थी तब भीमसेन ने उन्हें हराया था। उस अप-मान का बदला लेने के लिए जयद्रथ ने शिवजी को प्रसन्न कर पाण्डवों को हराने का वर माँगा। तब शिवजी ने कहा—अर्जुन के अतिरिक्त अन्य सब पाण्डवों को एक दिन हरा सकोगे। उसी वरदान के प्रभाव से उस दिन जयद्रथ ने पाण्डवों को व्यूह में घुसने से रोका। उस समय उन्होंने अभिमन्यु द्वारा बनाये मार्ग को सेना द्वारा पूर्ण कर दिया और अपनी बाण-वर्षा से पाण्डवों और उनके साथी वीरों को व्यथित करने लगे और चक्रव्यूह में घुसने की जितनी भी चेष्टाएँ उन्होंने कीं, वे सब जयद्रथ ने विफल कर दी।

शत्रु-सेना में घुसे हुए अभिमन्यु शत्रुसेना को वेग पूर्वक नष्ट कर रहे थे। उन्होंने कर्ण के पुत्र वृषसेन को मूर्च्छित किया, वीर वसातीय का वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया, सामना करते हुए राजा दुर्योधन को हराया, शल्यपुत्र रुक्मरथ और उनके साथी अनेक राजकुमारों का वध किया, दुर्योधन के पुत्र राजकुमार लक्ष्मण को यमपुरी भेजा तथा महापराक्रमी क्राथनन्दन को धराशायी कर दिया। तब उन्हें द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, वृहद्बल और कृतवर्मा इन छः महारथियों ने एक साथ चारों ओर से घेर लिया, किन्तु अभिमन्यु इससे विचलित न होकर बाण-प्रहार में तत्पर रहे और कौरव कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले महावीर वृन्दारक को मार डाला। तभी कोशलेश्वर वृहद्बल ने कर्णी बाण से अभिमन्यु को आहत किया और उनकी ध्वजा, धनुष, सारथी और अश्वों को नष्ट कर डाला। अब वे अभिमन्यु का सिर अपनी तलवार से काटना चाहते थे, तभी उन्होंने एक तीक्ष्ण बाण के प्रहार से वृहद्बल को मार डाला। यह देख कर दस हजार अन्यान्य राजागण युद्ध से भाग गये।

अभिमन्यु-वध

संजय बोले — हे महाराज! तत्पश्चात् अभिमन्यु ने कर्ण को पुनः बुरी तरह घायल किया और मगधराज के पुत्र को मार डाला। हाथी पर सवार मार्तिकावतक भोज का शिर काट गिराया, दुःशासन के पुत्र और राजा शल्य को व्यथित किया, उस समय दुर्योधन से शकुनि ने कहा—राजन्! यह एक-एक करके हमें मारे डालता है, इसलिए हम सब मिल कर इसे शीघ्र मार डालें। तब कर्ण ने द्रोणाचार्य से कहा—आचार्य! यह वीर बालक हमारी सेना और महारथियों को मारे डालता है, इस लिये इसे मारने का कोई उपाय तुरन्त बताइये। द्रोणाचार्य ने

कहा—कर्ण ! यह बालक किसी को प्रहार का अवसर ही नहीं दे रहा है. इसका ऐसा रणकौशल देख कर मुझे प्रसन्नता होरही है। मैंनें इसके पिता अर्जु न को कवच धारण के जो ढँग बताये थे, उन्हें यह भले प्रकार जानता है। इसको मारना सरल कार्य नहीं है। फिर भी एक उपाय यह है कि बाण के प्रहार से इसका धनुष और प्रत्यंचा को काट दो तथा रथ के अश्व और पार्श्व-रक्षक सारथी को मार दो तो शस्त्रहीन होकर यह मारा जा सकता है, अन्यथा इसे सब देवता मिल कर भी नहीं मार सकते।

आचार्य की सम्मति मान कर कर्ण ने बाण वर्षा करके अभिमन्यु के धनुष को काटा, भोज ने उनके रथ के घोड़ों को मारा, कृपाचार्य ने पार्श्वरक्षक सारथी को समाप्त किया। इस प्रकार वे निर्दयी महारथी मिल कर अकेले अभिमन्यु पर एक साथ प्रहार करने लगे। तब असहाय अभिमन्यु ढाल-तलवार लेकर पैदल घूमते हुए शत्रुसेना को काटने लगे। तभी द्रोणाचार्य ने नाराच बाण चला कर उनकी तलवार की मूठ काट डाली और कर्ण ने अपने बाण से ढाल के खण्ड-खण्ड कर दिये, तब अभिमन्यु चक्र लेकर द्रोणाचार्य पर झपटे। उस समय उनके छलनी हुए शरीर से रक्त बह रहा था और सभी वस्त्र लाल हो गए थे। फिर भी उन्होंने चक्र से ही अनेक वीरों को मार डाला, तब अनेक राजाओं ने मिल कर बाण-वर्षा की, जिससे चक्र के भी टुकड़े-टुकड़े बिखर गये। फिर अभिमन्यु गदा लेकर अश्वत्थामा पर झपटे, जिससे अश्वत्थामा के रथ सहित सारथी, घोड़े आदि मारे गये और अश्वत्थामा ने रथ से कूद कर अपने प्राण बचाये। तदनन्तर अभिमन्यु ने कालिकेय के साथ उसके सतहत्तर वीरों को मार दिया। तभी दुःशासन का पुत्र गदा लेकर उनसे भिड़ गया। उस समय परस्पर के गदा-प्रहार से दोनों ही गिर कर अचेत होगए,तभी दुःशासन के पुत्र ने सचेत होकर अभिमन्यु

के मस्तक में जोर से गदा दे मारी, जिससे उनका प्राणान्त होगया।

राजन् ! उस बालक के इस प्रकार मरने से कौरवों को वड़ा हर्ष हुआ। किन्तु आकाशचारी सिद्ध आदि जोर से कहने लगे कि द्रोणाचार्य आदि छः महारथियों ने मिल कर इस अकेले बालक का वध किया, यह घोर अधर्म हुआ है। अभिमन्यु के मरते ही पाण्डवपक्ष की सेना भागने लगी, उसे महाराज युधिष्ठिर ने सान्त्वना देकर रोका। फिर सन्ध्या काल होने पर यह वन्द हुआ और दोनों पक्ष की सेनाएँ अपने-अपने शिविर को लौट गईं।

हे महाराज ! अभिमन्यु की मृत्यु से पाण्डवों को अत्यन्त शोक हुआ। युधिष्ठिर तो उनकी याद करते हुए विलाप करने लगे कि मेरे कहने से ही अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में घुस कर अपने प्राण दिये हैं, अव मैं अर्जुन और सुभद्रा को अपना मुख कैसे दिखाऊँगा ? हम बालक अभिमन्यु की रक्षा न कर सके, हमको धिक्कार है। इस प्रकार राजा युधिष्ठिर विलाप कर रहे थे कि तभी वेदव्यासजी ने आकर उन्हें सान्त्वना दी। तब युधिष्ठिर ने उनसे पूछा—भगवन् ! यह मृत्यु क्या है ? इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है ? यह प्रजा का संहार क्यों करती है ? यह सब बताने की कृपा कीजिये।

व्यासजी बोले—धर्मराज ! सत्ययुग में अकम्पन नामक एक प्रतापी राजा हुए थे। उनका पुत्र हरि अत्यन्त बलवान था, वह शत्रुओं के द्वारा मारा गया। इससे राजा अत्यन्त दु:खी और विह्वल रहने लगे। एक बार नारदजी उनके पास आये तो राजा ने उनसे यही प्रश्न किया जो तुमने पूछा है। नारद ने कहा—राजन् ! ब्रह्माजी ने जो प्रजा की सृष्टि की. उसे विनष्ट न होती देखकर ब्रह्माजी को बड़ी चिन्ता हुई और तब उन्हें जो क्रोध

हुआ, वह संसार के सब देशों को भस्म करने को सर्वत्र फैलने लगा। तब शिवजी उनकी शरण में लोकहित की इच्छा से आये। ब्रह्मा ने उनसे पूछा—वत्स ! तुम मेरी इच्छा से जन्मे हो, इसलिए वर-प्राप्ति के योग्य हो, बोलो तुम्हारी क्या कामना है, जिसे मैं पूर्ण करूँ ?

शिवजी बोले—विभो ! आपका यह क्रोध सम्पूर्ण जगत् को भस्म किये देता है। इसे शान्त कीजिए। अन्यथा सृष्टि की जड़ ही समाप्त हो जायगी। आप यही वर मुझे दीजिए कि यह सृष्टि नष्ट न हो। यह सुन कर ब्रह्माजी ने उस क्रोध को अपने में लीन कर लिया, तभी उनके इन्द्रिय-छिद्रों से एक अद्भुत स्त्री उत्पन्न हुई, जिसका वर्ण काला लाल और पीला था, उनमें मुख. जिह्वा और नेत्र लाल थे। वह सम्पूर्ण अंगों में स्वर्णाभूषण धारण किये हुए थी। दक्षिण दिशा में आश्रय लिये हुए उस स्त्री से ब्रह्मा ने कहा—मृत्यु ! तुम प्रजा का संहार करो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। यह सुन कर वह स्त्री रोने लगी, तब ब्रह्मा उसके आँसुओं को पोंछ कर सान्त्वना देने लगे। उस स्त्री ने कहा—भगवन् ! मुझे यह क्रूर कार्य न सोंपिये, यह तो बड़ा भारी अधर्म होगा। ब्रह्मा ने कहा—तुम्हारी उत्पत्ति इसीलिए हुई है। संहार होना आवश्यक है, उसे टाला नहीं जा सकता।

युधिष्ठिर ! मृत्यु देवी ने वह क्रूर कर्म करना स्वीकार न कर, धेनुकाश्रम में जाकर घोर तप किया। असंख्य वर्षों तक तपस्या द्वारा अपने देह को सुखाती हुई उस स्त्री के पास जाकर ब्रह्माजी ने उसे पुनः समझाया कि यह कार्य तुम्हें ही करना है। तुम्हारे लिये यह अधर्म नहीं होगा, वरन् इसी में तुम्हारा यश निहित है। इस प्रकार बहुत समझाने-बुझाने से उसने ब्रह्माजी की आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया। हे राजन् ! वही मृत्यु काम-क्रोध रहित निर्लिप्त भाव से, अन्तकाल आने पर प्राणियों

को मारती है। देवता भी अमर नहीं है, उन्हें भी मृत्यु नहीं छोड़ती। तुम अपने पुत्र की मृत्यु के लिए व्यर्थ शोक न करो। देखो, कोई किसी को नहीं मारता, वरन् किसी न किसी बहाने से मृत्यु ही सब को मार देती है। हे युधिष्ठिर! नारदजी के मुख से यह इतिहास सुन कर महाराज अकम्पन का शोक नष्ट होगया और नारदजी वहाँ से चले गये। अभिमन्यु चन्द्रमा के अंश से उत्पन्न था, वह शत्रुसेना का संहार करता-करता मृत्यु को प्राप्त होकर चन्द्रलोक में चला गया है। इसलिए उसका शोक छोड़ कर शत्रुओं से युद्ध करने में तत्पर रहो।

मृत्यु का महान् राजर्षियों को भी न छोड़ने का वर्णन

संजय बोले—महाराज! वेदव्यास जी से मृत्यु विषयक उपाख्यान सुन कर युधिष्ठिर को कुछ सान्त्वना मिली और उन्होंने पुनः प्रश्न किया—भगवन्! पूर्व काल में अनेक सत्यवादी राजर्षि हुए हैं, उनमें से कितनों को मृत्यु ने नष्ट किया है? व्यासजी बोले—धर्मराज! राजा शैव्य के पुत्र सृंजय के दो मित्र थे महर्षि पर्वत और देवर्षि नारद। एक दिन दोनों ही सृंजय से मिलने के लिए पधारे। वहाँ सृंजय की अविवाहिता कन्या को देख कर महर्षि पर्वत ने पूछा—राजन्! यह सुन्दरी कौन है? उन्होंने उत्तर दिया—मित्र! यह मेरी कन्या है। तभी देवर्षि नारद ने कहा—राजन्! इस कन्या को पत्नी बनाने के लिए मुझे प्रदान कर दो। राजा ने प्रसन्न होकर वह कन्या नारद को दे दी।

तब तो महर्षि पर्वत क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने नारद से कहा—इस राजकुमारी को पहिले मैं अपने मन में पत्नी रूप से ग्रहण कर चुका हूँ, बाद में तुमने इसे माँगा है। मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम इच्छानुसार स्वर्ग में न जा सकोगे। नारद बोले—अपने मन में किसी स्त्री को पत्नी मान लेना, मुख से स्वीकार करना,

जल छोड़ कर कन्यादान होना तथा पाणिग्रहण के मन्त्र पढ़े जाना, विवाह के प्रसिद्ध लक्षण अवश्य हैं, किन्तु इन्हीं के होने से विवाह की पूर्णता नहीं, होती वरन् वह सप्तपदी-गमन से ही होती है। तुमने मन से इसका वरण कर लिया, किन्तु वास्तव में विवाह नहीं हुआ था। इसलिए मैं भी यही शाप देता हूँ कि तुम स्वर्ग में न जा सकोगे। इस प्रकार परस्पर शाप देकर दोनों ऋषि राजा के ही भवन में निवास करने लगे।

इधर राजा सृंजय पुत्र की कामना से ब्राह्मणों को प्रसन्न करने लगे। तब उन वेदज्ञ ब्राह्मणों की प्रेरणा से नारदजी ने सृंजय से पूछा—राजन् ! यह सब ब्राह्मण आपको पुत्र-रत्न प्रदान करना चाहते हैं। इसलिए बताइये कि आपको कैसे पुत्र की इच्छा है ? राजा ने कहा—भगवन् ! मुझे जो पुत्र मिले उसका मल-मूत्र, थूक, पसीना आदि सब स्वर्ण का हो। तब नारद ने उन्हें वैसा हो वर दे दिया और समय आने पर राजा को इच्छानुसार पुत्र की प्राप्ति हुई। उस पुत्र का नाम स्वर्णष्ठीवी हुआ। उसके कारण राजा के पास अपार स्वर्ण हो गया और उन्होंने अपना भवन, दुर्ग, दीवार, विप्रशाला, अतिथिशाला, स्थान, आसन, पात्रादि सभी कुछ स्वर्ण के बनवा लिये। यह बात जब दस्युओं को ज्ञात हुई तो वे एक दिन स्वर्णष्ठीवी का अपहरण कर लेगए और उन्होंने सोचा कि इसके शरीर में सोना भरा है, इसलिए मार कर स्वर्ण निकाल लें। तब उन्होंने वैसा ही किया, किन्तु खण्ड-खण्ड होने पर भी शरीर में कहीं भी सोना न मिला।

इधर राजा सृंजय वरदान से प्राप्त पुत्र को मरा हुआ जान कर विलाप करने लगे। तब देवर्षि नारद ने उन्हें समझाया—राजन् ! हम ब्रह्मवादी ऋषि हैं। यह संसार मृत्यु के मुख में पड़ा है। एक दिन तुम्हें भी सब कुछ यहीं छोड़ कर चले जाना

होगा। देखो, जिस राजा मरुत्त को विविध यज्ञानुष्ठान करने के निमित्त भगवान् शंकर ने हिमवान पर्वत का स्वर्णमय भाग दिया और यज्ञ के अन्त में बृहस्पति सहित इन्द्रादि सब देवता राजा के साथ बैठा करते थे। उनके यज्ञ में मरुद्गण आदि देवता भोजन परोसते और विश्वेदेवा सभासद होते थे। वे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े पुण्यात्मा राजा मरुत्त भी मृत्यु से नहीं बच सके, तब तुम्हारे क्या कहने हैं। इसलिये, तुम शोक को छोड़ दो।

हे सृंजय। महान् पराक्रमी राजा सुहोत्र भी मृत्यु से नहीं बच सके। उनके राज्य में प्रति वर्ष मेघों द्वारा स्वर्ण की वर्षा की जाती थी। उन्होंने एक सहस्र अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञ तथा अन्यान्य यज्ञों को किया तथा ब्राह्मणों को अपने राज्य का अपरिमित स्वर्ण प्रदान किया था।

नारदजी बोले—हे सृंजय ! महा तेजस्वी पुरुवंशी राजा अंग भी मृत्यु से नहीं बच सके। उन्होंने अपने अश्वमेध तथा अन्यान्य यज्ञों में असंख्य ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र, घर, शय्या, आसन, सवारी एवं स्वर्ण-रत्न आदि की दक्षिणा दी थी। स्वर्ण मण्डित दस हजार हाथी, ध्वजापताका एवं अश्वादि से युक्त स्वर्ण के रथ तथा अलंकारों से सुसज्जित कन्याएँ, दास-दासियाँ, गाय-बैल आदि पशु सुपात्र ब्राह्मणों को दान दिये। वे तुमसे अत्यधिक धर्मात्मा, दानी, सत्यनिष्ठ और दयालु थे, किन्तु उन्हें भी एक दिन मृत्यु ने दबोच ही लिया। इसलिये तुम अपने पुत्र का शोक न करो, जिसने यज्ञादि कोई भी कर्म नहीं किये थे।

नारदजी ने कहा—सृंजय ! उशीनर के पुत्र प्रतापी शिवि को भी मरना पड़ा। उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवी को जीत कर अश्वमेध यज्ञ किया, उसमें वर्षा में जितनी बूँदें पृथिवी पर गिरती हैं, आकाश में जितने तारे, गंगा में जितने रेत-कण, सुमेरु पर

जितने शिलाखण्ड तथा समुद्र में जितने रत्न एवं जीव-जन्तु हैं, उतनी ही स्वर्णालंकृत गौएँ उन्होंने दान की थीं। इसके पश्चात् भी अनेकानेक यज्ञ उन्होंने किये थे, जिनके यूप, आसन, गृह, भित्ति, द्वार आदि सब स्वर्ण के बने थे। उन्हें भगवान् रुद्र ने वर प्रदान किया था कि राजन् ! तुम्हारा ऐश्वर्य श्रद्धा, कीर्ति, धर्म-कर्म, जीवों का तुम्हारे प्रति स्नेह और स्वर्ग अक्षय हो। ऐसे इच्छानुसार वर पाने वाले महाराज शिवि भी संसार में न रहे।

हे राजन् ! प्रजाहितैषी, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की उज्वल कीर्ति पृथिवी पर आज भी व्याप्त होरही है। उन्होंने चौदह वर्ष वन में वास किया और सीता का हरण करने वाले महाबली रावण को वंश सहित नष्ट कर दिया। उन्होंने अनेकों प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञ किये। उनके राज्य लोभ, मूर्खता, चोरी, छल-कपट या अधर्म कहीं भी दिखाई नहीं देता। उन भगवान् राम को भी मृत्यु ने नहीं छोड़ा। इसलिए तुम वृथा शोक न करो।

राजा भगीरथ ने तपस्या करके देवनदी गंगा को पृथिवी पर उतार कर अपने पूर्व पुरुषों का उद्धार किया था, वे महाराज भी मृत्यु से न बच सके। महाराज दिलीप ने सैकड़ों बड़े-बड़े यज्ञ किये तथा धनरत्न से परिपूर्ण समूचा पृथिवी मंडल ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे दिया था। वे ऐसे पराक्रमी थे उन्होंने रथारूढ़ होकर जल के ऊपर युद्ध किया था, किन्तु उनके रथ के पहिये जल में नहीं डूबे। ऐसी अद्भुत क्षमता वाले राजा दिलीप भी एक दिन मृत्यु के ग्रास बन गये। युवनाश्व के पुत्र राजा मान्धाता अपने पिता की कोख से उत्पन्न हुए थे। उन्हें पिता की गोद में लेटे देखकर देवताओं ने कहा था कि यह बालक क्या पीकर जीवित रहेगा ? तब इन्द्र बोले कि यह मुझे पीवेगा, यह मेरी अँगुलियों का पान करे। इतना कहते ही इन्द्र की अंगुलियों से दूध-घी की धाराएँ

बहने लगीं। वे बारह दिन में ही बारह वर्ष के से लगने लगे और उन्होंने एक दिन में ही सम्पूर्ण भूमण्डल को जीत लिया था, उन्होंने सौ-सौ अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये थे। ऐसे महा-पराक्रमी राजा भी मृत्यु के हाथ से न बच सके।

नारदजी ने कहा—हे सृञ्जय! राजा ययाति ने सौ अश्व-मेध, सौ राजसूय, सौ वाजपेय, हजार पुण्डरीक, हजार अतिरात्र असंख्य चातुर्मास्य, विविध अग्निष्टोम तथा प्रचुर दक्षिणा वाले अन्यान्य यज्ञ किये थे। उनके यज्ञ में सब नदी, समुद्र, पर्वत आदि जल के स्थान पर दूध-दही देते थे। वे दूसरे इन्द्र के समान स्वेच्छापूर्वक सब लोकपालों के उद्यानों में विहार करते थे। उन्होंने वृद्धावस्था आने पर विषयों का त्याग किया और पुरु को राज्य देकर वनवास करते हुए घोर तपस्या की थी। वे महान् पराक्रमी, परम उद्योगी राजा भी अन्त में मृत्यु के वशवर्ती हुए बिना नहीं रह सके।

महा प्रतापी राजा अम्बरीष ने दस अयुत यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को एक लाख राजाओं का पौरोहित्य प्रदान किया था। राजा शशबिन्दु की एक लाख रानियाँ थीं जिनसे एक-एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे, वे सब अश्वमेध एवं अन्य प्रकार के दस-दस लाख यज्ञों की दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों को दे दिये। उनके साथ अपार धन, हाथी, घोड़े, दास, दासियाँ भी दान की थीं। मृत्यु ने राजा अम्बरीष या शशबिन्दु में से किसी को भी नहीं छोड़ा।

हे सृञ्जय! महाराज गय, महाराज रन्तिदेव, महाराज भरत और महाराज पृथु के कर्म प्रसिद्ध ही हैं। उनमें से भी कोई मृत्यु के पंजे से नहीं बच सका। इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन करने वाले परशुरामजी को भी एक दिन अवश्य मरना होगा। इसलिये तुम अपने पुत्र के लिये शोक मत करो, जिसने

न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेदाध्ययन ही किया था। तुम से सब गुणों में श्रेष्ठ, प्रतापी राजर्षि मर चुके हैं तथा ऐसे ही आगे भी मृत्यु को प्राप्त होते रहेंगे।

व्यासजी बोले—हे धर्मराज ! नारदजी के मुख से उक्त राजाओं का उपाख्यान सुन कर सृंजय का शोक नष्ट होगया। तब नारदजी ने उनके पुत्र को जीवित कर दिया, जिससे राजा सृंजय बहुत प्रसन्न हुए। युधिष्ठिर ! सृंजय का वह पुत्र न तो रणकुशल था, न युद्ध में मरा था, उसने कोई यज्ञ भी नहीं किया और न कोई सन्तान ही उत्पन्न की थी,इसीलिए नारदजी ने उसे जीवित किया था। किन्तु अभिमन्यु तो शूर, वीर और कृतार्थ था, वह युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग लोक को गया है। इसलिए उसे पार्थिव सुख भोग के लिए स्वर्ग से नहीं लौटाया जा सकता उसके लिए शोक करना उचित नहीं है। अब तुम शोक का सर्वथा त्याग कर दो। यह कह कर वेदव्यासजी अन्तर्धान होगए यद्यपि उस उपदेश से उनका शोक मिट गया था, तथापि अर्जुन के आने पर क्या कहूँगा ? यह चिन्ता उन्हें व्यथित करने लगी थी।

अर्जुन द्वारा जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा

संजय बोले—हे राजन् ! सन्ध्या काल होने पर दोनों ओर की सेनाएँ अपने-अपने शिविर में लौट गईं। तब संशप्तकगण को मार कर अर्जुन भी अपने शिविर को लौटे और वहाँ की उदासीनता एवं व्याकुलता देख कर उन्होंने पूछा—आप सब इतने उदास क्यों हैं ? यहाँ अभिमन्यु मुझे दिखाई नहीं देरहा है। द्रोणाचार्य ने आज चक्रव्यूह की रचना की थी, अभिमन्यु उसे तोड़ कर भीतर तो जा सकता था, किन्तु बाहर निकलने का उपाय अभी उसे ज्ञात नहीं था। क्या अभिमन्यु उसमें घुस कर

मारा गया ? यदि मैं उसे न देख सकूंगा तो अपने प्राण दे दूंगा।।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन! द्रोणाचार्य ने जब हमको बहुत पीड़ित किया तब मैंने ही उसे चक्रव्यूह तोड़ कर मार्ग बनाने को कहा था। वह शीघ्र ही व्यूह तोड़ कर भीतर घुस गया तो हम भी उसकी रक्षा के लिए पीछे-पीछे चले। उस समय रुद्र से वर प्राप्त जयद्रथ ने हमको भीतर नहीं घुसने दिया। उधर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहत्बल और कृतवर्मा इन छः महारथियों ने अकेले अभिमन्यु को सब ओर से घेर कर प्राणान्तक आक्रमण किया। सब ने मिल कर उसका रथ नष्ट किया और दुःशासन के पुत्र ने उसे पैदल देख कर मार डाला।

युधिष्ठिर से अभिमन्यु-वध का वृत्तान्त सुन कर अर्जुन पुत्र-शोक से विह्वल एवं अचेत होगए और फिर चेत आने पर बोले—वीरो! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल जयद्रथ को अवश्य मार डालूँगा। क्योंकि वही पापी मेरे पुत्र की हत्या में कारण है। यदि मैं उसे न मारूँ तो घोर पापियों की गति को प्राप्त करूँ। यह कह कर अर्जुन ने गाण्डीव की ध्वनि की, जिसका शब्द आकाश तक पहुँचा और तभी श्रीकृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य तथा अर्जुन ने देवदत्त शंख बजाया, जिससे पाताल, स्वर्ग एवं सब दिशाएँ काँप उठीं।

हे राजन्! उस महाशब्द को सुनकर गुप्तचरों ने पता लगाकर अर्जुन की प्रतिज्ञा का सब हाल जयद्रथ को जा सुनाया। इससे जयद्रथ भयभीत एवं अत्यंत दुःखित हुए। उन्होंने सब राजाओं के मध्य बैठे हुए दुर्योधन से कहा—देखो, दुर्मति अर्जुन ने अकेले मुझे मार डालने की प्रतिज्ञा की है। मैं समझता हूँ कि उसके हाथ से कोई भी राजा मुझे नहीं बचा सकते। इसलिए मुझे

अपने प्राण लेकर भाग जाना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। दुर्योधन बोले—सिन्धुराज ! आप भयभीत न हों। हम सब मिलकर आप की रक्षा करेंगे, तब अर्जुन आपको कैसे मार डालेगा ? वैसे, आप स्वयं भी श्रेष्ठ रथी और शूरवीर हैं, आपका कोई कुछ नहीं कर सकता। इसलिए आप किंचित् भी न डरें। इस प्रकार सान्त्वना देकर दुर्योधन उनके साथ द्रोणाचार्य के पास गये तब उन्होंने कहा—युद्ध में अर्जुन से डरने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि मेरे बाहुबल से रक्षित पुरुष का देवता भी कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। फिर मृत्यु से डरने की क्या बात है ? युद्ध में मर भी गये तो दिव्य लोकों में जाओगे। क्योंकि एक दिन मरना तो है ही, फिर क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए ही क्यों न मरो ? यह सुन कर जयद्रथ की चिन्ता मिट गई और उन्होंने भय छोड़ कर युद्ध करने का निश्चय किया।

उधर अर्जुन के कहने से श्रीकृष्ण अपनी बहिन सुभद्रा के पास पहुँचे और उसे पुत्र-शोक में अत्यन्त विह्वल देख कर बहुत प्रकार समझा कर सान्त्वना दी। किन्तु सुभद्रा का पुत्र-वत्सल हृदय किसी प्रकार शान्त नहीं होता था। वह बार-बार विलाप करती हुई कह रही थी कि भैया ! तुम्हारे रहते हुए यह क्या हो गया ? देखो, वह विलखती हुई उत्तरा कैसी व्याकुल होरही है, उसे मैं कैसे समझाऊँ ? सुभद्रा इस प्रकार विलाप कर ही रही थी कि तभी उत्तरा के साथ द्रौपदी भी वहाँ आगई। अब वे सब मिल कर विलाप करने लगीं। यह देख कर श्रीकृष्ण ने उन्हें विविध प्रकार से समझा-बुझा कर शान्त किया। फिर वे वहाँ से लौट कर अर्जुन के पास पहुँचे और उन्हें विश्राम करने की आज्ञा देकर स्वयं भी विश्राम करने लगे।

उधर सोते हुए अर्जुन की स्वप्नावस्था में गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण ने आकर कहा—पार्थ ! महादेवजी के पाशुपतास्त्र का तुम्हें स्म-

रण होगा, उसी से जयद्रथ मारा जा सकेगा। यदि तुम उसे भूल गये हो तो भगवान शंकर का ध्यान करो, वे तुम्हें पुनः उस अस्त्र को प्रदान करेंगे। तब अर्जुन ने आचमन कर शिवजी का ध्यान किया और तभी वे भगवान् कृष्ण के साथ आकाश मार्ग से कैलास पर्वत पर पहुँचे, जहाँ पार्वती जी के साथ भगवान् शंकर विराजमान थे। अर्जुन ने उन्हें भक्तिभाव से प्रणाम किया तब शिवजी ने कहा—वीरो ! तुम्हारा स्वागत है यहाँ जिस कामना से आये हो, वह कहो। अर्जुन ने निवेदन किया—विभो! मैं दिव्य पाशुपतास्त्र की कामना करता हूँ। शिवजी बोले—वे दिव्य धनुष बाण निकटस्थ अमृतमय दिव्य सरोवर में रखे हैं, वहां से ले लो।

श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन ने उस सरोवर पर जाकर देखा कि जल में दो भयंकर नाग बैठे हैं। उन्होंने उन दोनों नागों की आराधना की तो वे दिव्य धनुष बाण बन गये। उन्हें उठा कर भगवान् शिव के सामने जाकर उन्होंने रख दिया। तभी शिवजी के पार्श्व भाग से एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ, जिसने उस धनुष पर विधिपूर्वक बाण चढ़ा कर उसका प्रयोग और मन्त्र सब कुछ प्रदान करके प्रतिज्ञा पूर्ति का वर दिया। तब भगवान् शिव को प्रणाम कर कृष्ण और अर्जुन अपने शिविर में लौट आये।

कौरव-पाण्डवों का घोर युद्ध वर्णन

संजय बोले—हे महाराज धृतराष्ट्र ! प्रातःकाल होने पर भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर के पास पहुँचे और उन्हें शोक को त्यागने की बात कही। तभी अर्जुन ने वहाँ पहुँच कर प्रणाम किया और युद्ध में जाने की आज्ञा माँगी। युधिष्ठिर ने उन्हें प्रसन्न हृदय से आज्ञा देकर अपने सब वीरों का युद्ध यात्रा का

आदेश दिया। तभी पाण्डवों को प्रसन्न करने वाले विविध शकुन होने लगे। जिन्हें देख कर अर्जुन ने कहा कि इन शकुनों से आज मेरी विजय का आभास हो रहा है।

इधर द्रोणाचार्य ने शकट व्यूह की रचना की और अपना दिव्य शंख बजाकर जयद्रथ से बोले—सोमदत्त के पुत्र, कर्ण अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य आदि एवं अपनी विशाल सेना के मध्य रहते हुए तुम मुझसे छः कोश के अन्तर पर रहो। तब तुम पर इन्द्रादि देवता भी आक्रमण नहीं कर सकते, तो पाण्डवों की बात ही क्या है ? यह सुन कर जयद्रथ आचार्य के निर्देशानुसार उन महारथियों के साथ निर्दिष्ट स्थान पर चले गये। उसी समय बहुत-से अपशकुन होने लगे। तब आपके पुत्र दुर्मर्षण ने कहा—आज के युद्ध में मैं उस दुर्धर्ष अर्जुन को आगे बढ़ने से रोकूँगा। यह कह कर वह वीर हजार रथ, सौ हाथी, तीन हजार घोड़े और दस हजार पदाति सैनिकों को साथ लेकर सब सेना से तीन सहस्र गज आगे जाकर खड़े हो गए।

उधर महा प्रतापी अर्जुन ने अपने शंख की ध्वनि की, तभी महात्मा वासुदेव ने अपना पाञ्चजन्य शंख जोर से बजाया। जिससे आपकी सेना में हलचल मच गई। तभी आपके सैनिकों में उत्साह भरने के लिए शंख, भेरी, मृदंग आदि बाजे बजाये जाने लगे। फिर सिंहनाद, रथ चलने के शब्द एवं खम ठोकने आदि के शब्द से रणभूमि व्याप्त हो उठी। अर्जुन के कहने से भगवान् कृष्ण ने उनका रथ दुर्मर्षण के पास ले जाकर खड़ा किया। तत्पश्चात् अत्यन्त भयंकर संग्राम छिड़ गया। अर्जुन द्वारा की जाती हुई अँधाधुन्ध बाण-वर्षा से कौरव पक्ष के हजारों वीर, हाथी, घोड़े आदि कट-कट कर गिरने लगे। इधर कौरव सेना ने भी उनका डट कर सामना किया। किन्तु प्रतापी अर्जुन अपने बाणों से एक साथ ही अनेकानेक हाथी, महावत, अश्व, अश्वारोही आदि को मार गिराते थे। अर्जुन के बाणों

की मार से आपके पक्ष के वीर किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर मोहित से हुए अर्जुन की ओर बढ़ते और मृत्यु को प्राप्त हो रहे थे।

हे राजन् ! यह देख कर दुःशासन ने अर्जुन का सामना किया। किन्तु दुःशासन की सेना तो बुरी तरह व्यथित हुई ही, स्वयं दुःशासन भो उनके बाणों से पीड़ित होकर व्यूह में जा घुसे। इस प्रकार आगे का मार्ग साफ देख कर अर्जुन तेजी से व्यूह द्वार पर खड़े द्रोणाचार्य के पास पहुँच कर बोले—ब्रह्मन् ! आप मुझे आशीर्वाद दीजिए। मैं आपकी कृपा से इस दुर्भेद्य व्यूह के भीतर जाऊँगा। यह सुन कर द्रोणाचार्य ने कहा—मुझे जीते बिना तुम भीतर जाकर जयद्रथ का वध नहीं कर सकते। यह कह कर द्रोणाचार्य ने अर्जुन पर बाण-प्रहार किये तो उन्होंने भी नौ बाण आचार्य के चरणों में मारे, जिन्हें उन्होंने मार्ग में ही काट डाला और भयंकर बाण वर्षा से कृष्ण सहित अर्जुन को ढक दिया। तब अर्जुन ने भी अनेक बाणों से आचार्य को लक्ष्य किया। उसी समय कृष्ण ने रथ को आगे बढ़ाते हुए कहा—पार्थ ! इनसे युद्ध में उलझ कर समय नष्ट न करो। आचार्य ने उन्हें अन्यत्र जाते देखा तो बोले—मुझसे युद्ध न करके कहाँ बढ़ रहे हो ? तुम तो शत्रु को जीते बिना उसके सामने से कभी नहीं हटते थे। अर्जुन ने कहा—ब्रह्मन् ! आप मेरे गुरुदेव हैं, शत्रु नहीं। आपको इस लोक में कोई भी नहीं जीत सकता। यह कह कर अर्जुन आगे बढ़ गये। उनके पीछे-पीछे, उनके रथ-चक्रों की रक्षा में नियुक्त पांचालकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा भी व्यूह में जा घुसे।

इधर द्रोणाचार्य भी उनका पीछा करते हुए तेजी से व्यूह में घुसे और उधर कौरवपक्ष के अन्यान्य वीरों ने उनका मार्ग रोका तो अर्जुन ने भयंकर बाण-वर्षा द्वारा शत्रु-पक्ष को तितर-बितर कर दिया। तब आगे बढ़ते हुए कृतवर्मा ने अर्जुन को

रोका, किन्तु उनका बाण लगने के कारण कृतवर्मा मूर्च्छित हो गए। उधर अर्जुन काम्बोज सेना में घुसे, किन्तु तभी सचेत हुए कृतवर्मा ने अर्जुन के रथचक्र-रक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा को आगे नहीं बढ़ने दिया। श्रुतायुध ने अर्जुन को आगे बढ़ते देखा तो उन्हें रोकने की चेष्टा की। श्रुतायुद्ध वरुण के पुत्र थे। वरुण ने उनकी माता को वर दिया था कि इस गदा के प्रभाव से तुम्हारा पुत्र अजेय होगा। किन्तु युद्ध न करते हुए पर यदि इस गदा का वार किया जायगा तो वह गदा इसी पर आ गिरेगी। इस समय श्रुतायुद्ध ने काल से मोहित होकर उस गदा का वार युद्ध-विरत कृष्ण पर चला दी, जो श्रीकृष्ण के कन्धे पर लग कर और कृत्या के समान वेग पूर्वक लौट कर श्रुतायुध के सिर पर आकर पड़ी, जिससे उसका मस्तक चूर-चूर होगया। शत्रु-दमन श्रुतायुद्ध की मृत्यु हुई देख कर कौरव-सेना हाहाकार कर उठी और श्रुतायुद्ध के सब सैनिक तुरन्त भाग खड़े हुए।

तत्पश्चात् काम्बोजराज सुदक्षिण अर्जुन के सामने दौड़ गये, कुछ देर के युद्ध में ही अर्जुन ने उन्हें मार गिराया तभी श्रुतायु और अच्युतायु नामक दोनों भाइयों ने अर्जुन से घोर युद्ध किया, अन्त में वे भी अपनी भारी सेना और प्रमुख वीरों के सहित मारे गये। यह देख कर उनके पुत्र नियतायु और दीर्घायु अर्जुन पर बाण-वर्षा करने लगे, किन्तु अर्जुन ने उन्हें क्षण भर में ही समाप्त कर दिया। इसके बाद कौरव पक्ष के अन्य अनेक वीरों को अर्जुन ने मार डाला, जिनमें महावीर अम्बष्ठराज के मरण से कौरवों को भारी आघात पहुंचा।

संजय ने कहा—महाराज! आपके पक्ष का इस प्रकार ह्रास होता देख कर दुर्योधन अत्यन्त चिन्तित हुए और द्रोणाचार्य के पास जाकर बोले—ब्रह्मन्! इस सेना को नष्ट भ्रष्ट करते हुये अर्जुन आगे बढ़ गये, इससे जयद्रथ के प्राण संकट में पड़ गये हैं।

आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे कि उनकी रक्षा होसके। मैं समझता हूँ कि आपका ध्यान हमारी ओर नहीं है। आप हमारे ही आश्रय में, हमारी वृत्ति से ही जीवन निर्वाह करते हुये रहे हैं और हमारी ही जड़ काटते हैं। यदि मैं यह जानता कि आप अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं करेंगे तो जयद्रथ को घर जाने से कभी नहीं रोकता। मैं इस समय आर्त एवं विमूढ़ होरहा हूँ इसलिये मेरे कटु वचनों पर ध्यान न दीजिये।

द्रोणाचार्य ने कहा—दुर्योधन ! अर्जुन के रथ के घोड़े बात की बात में इतने आगे बढ़ गये कि मेरे द्वारा छोड़ेगये वाण उनसे कोस भर पीछे रह गये। फिर अब मैं वृद्ध भी तो हो गया हूँ, पहिले जैसी फुर्ती मुझ में नहीं रही है। देखो, इस समय अर्जुन-रहित युधिष्ठिरमेरी दृष्टि मेंहैं,जिन्हें पकड़ने की मैंने प्रतिज्ञा की हुई है। इसलिये मैं व्यूह को छोड़कर अर्जुन के पीछे नहीं जा सकता देखो, तुम सब प्रकार वली और सदल-बल हो, जबकि तुम्हारा शत्रु अकेला ही तुम्हारे मध्य में फँसा हुआ है। इसलिये तुम स्वयं वहाँ जाकर उससे युद्ध करो। लो, यह अद्भुत अभेद्य कवच पहिनो, इसके पहिने हुए कोई भी वाण या अस्त्र तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट न हो सकेगा। यह कह कर द्रोणाचार्यजी ने तुरन्त जल का स्पर्श किया और एक तेजोमय कवच दुर्योधन को पहना कर मन्त्रपूत कर दिया। फिर बोले—राजन् ! वरदाता शिव ने यही कवच और मंत्र देकर इन्द्र को अजेय किया था, तब निर्भय होकर इन्द्र ने वृत्रासुर को सेना सहित मारा था। उसे ब्रह्माजी के बताये हुए मंत्र के द्वारा पूत यह कवच मैंने तुम्हें पहिनाया है। जाओ, निर्भय होकर युद्ध करो। यह सुन कर दुर्योधन उन्हें प्रणाम करके व्यूह में घुस कर अर्जुन से युद्ध करने लगे।

राजन् ! उस समय वहाँ जैसा घोर युद्ध हुआ, वैसा उससे पहिले नहीं हुआ था। अनेक राजागण द्वन्द्व युद्ध करते-करते मर गये। दोनों पक्षों में से कभी कोई जीतता कभी कोई, किन्तु

कौरव पक्ष का विनाश अत्यधिक हो रहा था। उस समय भीमसेन राजा जलसन्ध से, युधिष्ठिर प्रतापी कृतवर्मा से, धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य से तथा अन्यान्य राजे महाराजे परपक्ष के राजे-महाराजों से भिड़ रहे थे। उस युद्ध में धृष्टद्युम्न पर आचार्य ने भारी बाण-वर्षा की थी और अन्त में एक भयंकर बाण धृष्टद्युम्न पर छोड़ा, जिसे वीर सात्यकि ने तेजी से चौदह बाण चला कर काट डाला। इससे धृष्टद्युम्न बच गये और द्रोणाचार्य-सात्यकि में घोर युद्ध होने लगा। उस समय दोनों ही जलधारा के समान असंख्य बाण बरसाने लगे। उन्होंने सूर्य के प्रकाश और वायु की गति को भी रोक लिया।

द्रोणाचार्य और सात्यकि के उस भयंकर संग्राम को आकाश में स्थित देवता भी देखने लगे। युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव सात्यकि की सहायता कर रहे थे तथा धृष्टद्युम्न आदि वीर एवं विराट, केकय, मत्स्य, शाल्व आदि देशों की सेनाएँ आचार्य पर वेग पूर्वक प्रहार कर रही थीं। यह देख कर दुःशासन को आगे करके हजारों राजकुमार आचार्य की रक्षा में तत्पर हुए। इधर इस प्रकार यह घोर युद्ध होरहा था, उधर सूर्य धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर बढ़ रहे थे।

जयद्रथ के पास पहुँचने की इच्छा से कृष्ण और अर्जुन बराबर आगे बढ़ रहे थे। मार्ग में अवन्ति देश के विन्द, अनुविन्द ने उन्हें रोक कर युद्ध किया, किन्तु अर्जुन के प्रहारों से वे दोनों अपने सैकड़ों सहायकों के साथ मारे गये। इसके बाद अर्जुन ने कहा—वासुदेव! बाण-प्रहार से यह घोड़े जर्जर हो रहे हैं, जयद्रथ अभी दूर है। मेरा विचार है कि घोड़ों को रथ से खोल कर इनकी शिथिलता दूर कीजिए। आप यहीं ठहरें, मैं पैदल ही,शत्रुओं को रोकता रहूँगा। कृष्ण ने यह बात मान ली, तब अर्जुन रथ से उतर कर गाण्डीव धनुष लिये खड़े होगए। उस

अवसर को उपयुक्त जान कर कौरव पक्ष के क्षत्रिय योद्धाओं ने अपने असंख्य रथादि के साथ उन्हें सब ओर से घेर लिया। तब अर्जुन अपना अद्भुत प्रभाव दिखाने लगे। उन्होंने एक ही स्थान पर खड़े रह कर असंख्य राजाओं को बात की बात में दूर ही रोक दिया, तभी कृष्ण बोले—अर्जुन! यह घोड़े प्यासे हैं, यहाँ निकट में कोई जलाशय नहीं है, जहाँ से जल पिलाया जा सके। तब अर्जुन ने 'यह रहा जलाशय' कह कर अस्त्र द्वारा पृथिवी तल को फोड़ दिया, जिससे तुरन्त एक विस्तृत सरोवर बन गया। जिसे देखने के लिए देवर्षि नारदजी आकर अर्जुन को साधुवाद देने लगे।

तब केशव ने रथ से घोड़े खोल कर उन्हें जल पिलाया और फिर अर्जुन द्वारा बनाये बाणों के घर में विश्राम करा कर दाना-पानी दिया। इस बीच अर्जुन शत्रु-योद्धाओं की बाढ़ को सब ओर से रोके रहे। जिसे देख कर कौरव पक्ष के सभी वीर कृष्ण और अर्जुन को निर्भयता तथा पराक्रम की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। साथ ही वे सब उनके उस कार्य से अत्यन्त विस्मय और भयभीत भी होरहे थे। उसी समय घोडों के स्वस्थ होने के बाद कृष्ण ने उन्हें रथ में जोडा और अर्जुन को रथ पर चढ़ा कर आगे बढ़ गये। कौरव पक्ष के सभी वीर हाथ मल-मल कर पछताते रह गये कि देखो, इस स्थिति में भी हम इनका कुछ नहीं बिगाढ़ सके, हमें धिक्कार है।

जयद्रथ वध के लिए उत्सुक अर्जुन का रथ वेगपूर्वक बढ़ा चला जा रहा था। यह देख कर अनक वीरों ने उन्हें बीच में रोका और सब ओर से घेरने का प्रयत्न किया। किन्तु अर्जुन उन सब को मारते-काटते हुए आगे बढ़ते रहे और अन्त में वहाँ जा पहुँचे, जहाँ जयद्रथ थे। तब यह वेग से उधर ही बढ़े। किन्तु दुर्योधन ने उनके आगे पहुँच कर रथ को रोक लिया। तब उन

दोनों वीरों में अत्यन्त भयंकर संग्राम हुआ। किन्तु अर्जुन जो बाण चलाते वही दुर्योधन के कवच पर पड़ कर व्यर्थ होजाता। तब वे समझ गये कि इसने अवश्य ही दुर्भेद्य कवच पहना हुआ है तो उन्होंने दुर्योधन के रथ के घोड़े सारथी और पार्श्वरक्षक का वध कर दिया और फिर उनका धनुष तथा हस्तावाप काट कर हथेलियों पर बाण का प्रहार किया। उस चोट को सहन न करके दुर्योधन भाग खड़े हुए। यह देख कर अर्जुन ने उनकी सेना का बुरी तरह संहार कर शंखध्वनि की और श्रीकृष्ण ने भी शख बजाया, जिससे कौरव सेना उत्साहीन और मूर्च्छित-सी होगई। तभी श्रीकृष्ण ने रथ को वेग से जयद्रथ की ओर बढ़ाया, किन्तु जयद्रथ की रक्षा में जो महारथी नियुक्त थे, वे आगे बढ़कर सिंहनाद करने लगे।

हे राजन् ! उस समय भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा यह आठों महारथी कृष्ण सहित अर्जुन को मारने का यत्न करने लगे। उन्होंने अर्जुन पर ऐसी भीषण बाण वर्षा की कि सब ओर बाण ही बाण दिखाई देते थे। इस प्रकार वहाँ घोर संघर्ष हो रहा था और इधर द्रोणाचार्य और पांचालों में भयंकर युद्ध हो रहा था। पाण्डवों के साथ सभी पांचाल द्रोणाचार्य के रथ के समीप पहुँच कर अपने दिव्यास्त्र चलाने लगे। उस समय द्रोणाचार्य और युधिष्ठिर के मध्य जो युद्ध हुआ, वह वैसा ही था, जैसा कि राम-रावण के मध्य हुआ था।

सोमदत्त के पुत्र महाधनुर्धर शल का सामना द्रौपदी के पुत्रों से हो रहा था। उस युद्ध में वीर शल वीर गति को प्राप्त हुए, तब कौरव सेना भय से इधर-उधर भागने लगी। तदुपरान्त राक्षस राज अलम्बुष का भीमसेन से युद्ध होने लगा। उसमें अलम्बुष अत्यन्त पराक्रम प्रकट करने लगा। उसकी माया ने

पाण्डव-सेना को व्याकुल कर दिया, तब भीमसेन ने त्वाष्ट्र अस्त्र छोड़ कर उसकी माया नष्ट की और राक्षस को भी ऐसा पीड़ित किया कि वह मैदान छोड़ कर द्रोणाचार्य की ओर भागा। यह देख कर पाण्डवपक्ष के वीर प्रसन्न होकर सिंहनाद करते हुए शंखध्वनि से दसों दिशाओं को गुंजायमान करने लगे।

सात्यकि से दुर्योधन और कृतवर्मा का हारना

संजय ने कहा—महाराज! भीमसेन के सामने से भाग कर दूसरी ओर जाते हुए अलम्बुष को घटोत्कच ने मार्ग में ही रोक कर पीड़ित करना प्रारम्भ किया। तब अलम्बुष भी घोर युद्ध में प्रवृत्त हुआ। अब वे दोनों राक्षस इन्द्र और शम्बरासुर के समान भिड़े हुए थे। उस युद्ध में अलम्बुष कटे वृक्ष के समान धराशायी होगया, तब कौरव पक्ष के सभी वीर हाहाकार कर उठे।

इधर द्रोणाचार्य और सात्यकि का युद्ध होरहा था सात्यकि के बाणों से आहत हुए द्रोणाचार्य ने क्रोधित होकर सात्यकि को बहुत पीड़ित किया, तब सात्यकि कुछ किंकर्तव्य विमूढ़-से हो गए, इससे कौरव पक्ष में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। किन्तु युधिष्ठिर ने सात्यकि को अत्यन्त पीड़ित देखा तो धृष्टद्युम्न को सात्यकि की रक्षा के लिए प्रेरित करके स्वयं भी अनेक वीरों के साथ उधर ही बढ़ गये। पर, द्रोणाचार्य के सामने किसी की भी पेश नहीं जारही थी, तभी युधिष्ठिर के कानों में श्रीकृष्ण का शंखनाद और कौरवों का सिंहनाद सुनाई पड़ा। जिससे उन्हें शंका होने लगी कि कहीं अर्जुन किसी विपत्ति में तो नहीं पड़ गये हैं। इसलिये उन्होंने सात्यकि से कहा कि वीर! तुम अर्जुन के बन्धु, सखा और शिष्य भी हो। वहाँ अनेक महारथियों में अर्जुन घिरे हुये है, इसलिये तुम वहाँ पहुँच कर उनकी सहायता करो।

सात्यकि ने कहा—महाराज ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा परम कर्त्तव्य है। किन्तु अर्जुन मुझे आपकी रक्षा में नियुक्त करके जाते-जाते कह गये हैं कि सात्यकि ! तुम्हें द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा मालुम है, इसलिये तुम्हें सावधानी से इनकी रक्षा करनी है। मैं इन्हें तुम्हारे भरोसे छोड़ कर ही जयद्रथ की ओर जारहा हूँ। इसलिये हे राजन् ! यदि मैं यहाँ से चला जाऊँ तो फिर ऐसा कौन है, जिसके हाथों में आपकी रक्षा का भार सौंपूँ ?

युधिष्ठिर बोले—यादवश्रेष्ठ ! मुझे अर्जुन के अनिष्ट की आशंका बेचैन किये हुए है, इसलिए मैं स्वय अपनी रक्षा करूँगा मुझे यही अधिक उपयुक्त लगता है कि की तुम अर्जुन की रक्षा के लिए तुरन्त प्रस्थान करो। सात्यकि ने कहा--आपकी ऐसी ही आज्ञा है तो मैं तीन योजन दूर अर्जुन के पास अभी जाता हूँ और जयद्रथ का वध होने तक उनके पास ही रहूँगा। आप मेरे लिए श्रेष्ठ लक्षण वाले अश्वों से युक्त सुसज्जित रथ की व्यवस्था करा दें। यह सुन कर युधिष्ठिर ने श्रेष्ठ रथ की व्यवस्था की, जिस पर बैठ कर सात्यकि तेजी से उधर बढ़े, किन्तु पीछे से भीमसेन को आते हुए देखकर सात्यकि ने कहा–वीरवर ! तुम मेरे साथ न आकर महाराज युधिष्ठिर की सावधानी से रक्षा करो, यह सुन कर भीमसेन युधिष्ठिर की ओर गए और सात्यकि कौरव सेना के भीतर घुस गए।

महाराज ! कौरव सेना को मारते, गिराते, भयभीत करते सात्यकि तेजी से बढ़ रहे थे, कि मार्ग में द्रोणाचार्य ने उन्हें रोका और बोले---सात्यकि ! तुम्हारे गुरु अर्जुन मुझसे युद्ध करते-करते कायर के समान आगे बढ़ गए हैं, यदि तुम भी उसी प्रकार भाग न गये तो जीवित न बचोगे। सात्यकि ने कहा—ब्रह्मन् ! धर्मराज की आज्ञा से मुझे भी उन्हीं के मार्ग पर जाना होगा।

मैं यहाँ अधिक नहीं रुक सकता। यह कह कर सात्यकि ने सारथी को संकेत किया तो उनका रथ आचार्य को छोड़ कर दक्षिण ओर से अकस्मात् ही निकल गया, तब तो क्रोधित हुए द्रोणाचार्य सात्यकि पर बाण-वर्षा करते हुए उसका पीछा करने लगे।

उधर सात्यकि तेजी से बढ़ने लगे, तभी कृतवर्मा ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया। तब सात्यकि कृतवर्मा की सेना पर बड़े वेग से टूट पड़े और फिर तेजी से काम्बोज सेना के भीतर घुस गये। वहां अनेक वीरों ने उन्हें घेर लिया, किन्तु वे उससे किंचित् भी विचलित नहीं हुये। तभी द्रोणाचार्य कृतवर्मा को अपनी सैन्य-सुरक्षा का भार देकर सात्यकि को रोकने के लिये आगे बढ़े। तब पाण्डव सेना द्रोणाचार्य को वहीं उलझाने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु कृतवर्मा ने उनके प्रयत्न विफल कर दिये। यह देख कर पाण्डवों ने कृतवर्मा पर जोरदार आक्रमण किया। फिर भी कृतवर्मा अकेले ही पाण्डवों को परास्त करने लगे। उस समय कौरवों का भारी सिंहनाद सुन कर सात्यकि ने लौट कर कृतवर्मा से सामना किया और उन्हें रथ हीन करके अपने बाणों की मार से उनकी सेना में हाहाकर मचा दिया। इस प्रकार कृतवर्मा को हरा कर सात्यकि वहाँ से चल दिये।

आगे बढ़ने पर उन्हें त्रिगर्तदेश के राजकुमार, विचित्र पराक्रमी योद्धागण एवं अनेक महारथियों से सामना करना पड़ा। वे रुक्मरथ को आगे करके अपनी महान् गज-सेना के सहित युद्ध करने को प्रस्तुत थे। महावीर सात्यकि ने अपनी बाण वर्षा से उस गज सेना को शीघ्र ही छिन्न-भिन्न कर डाला। यह देखकर महाबली राजा जलसन्ध अपने हाथी सहित आगे आकर युद्ध करने लगे। उनके तोमर की चोट से सात्यकि का हाथ बुरी तरह आहत होगया तब उन्होंने क्रोध पूर्वक जलसन्ध को दोनों

हाथ काट कर तथा हाथी से गिरा कर मार डाला। इसी समय द्रोणाचार्य भी वेग पूर्वक सात्यकि के सामने आकर घोर युद्ध करने लगे।

अब द्रोणाचार्य, दुर्मर्षण, दु:शासन, दुर्योधन, चित्रसेन आदि महारथियों ने सात्यकि को घेर लिया। उस भयंकर युद्ध में आप के पुत्र दुर्योधन सात्यकि के बाणों से रथहीन एवं व्यथित होकर युद्ध छोड़ भागे। उन्होंने चित्ररथ के रथ में जाकर आश्रय लिया। यह देख कर कृतवर्मा ने वेग से सात्यकि पर आक्रमण किया, किन्तु अर्जुन के पास शीघ्र पहुँचने की इच्छा वाले सात्यकि ने एक साथ अस्सी बाण चलाये, जिससे कृतवर्मा थर-थर काँप उठे। फिर तिरेसठ बाण उनके घोड़ों पर और सात बाण सारथी पर चला कर एक भयंकर बाण कृतवर्मा पर और चलाया, जो उनके अद्भुत कवच और शरीर को भेद कर पृथिवी में जा धुसा। उस प्रहार से कृतवर्मा अचेत होकर पृथिवी पर गिर गये और उनके हाथ से धनुष बाण भी छूट गये। इस प्रकार कृतवर्मा को परास्त करके सात्यकि तेजी से आगे बढ़े।

भीमसेन का अर्जुन और सात्यकि के पास जाना

संजय बोले—हे महाराज धृतराष्ट्र ! आपकी सेना में भगदड़ मचा कर सात्यकि आगे बढ़े तब द्रोणाचार्य उन पर भयंकर बाण-वर्षा करने लगे। तभी सात्यकि ने सैकड़ों-हजारों बाण चला कर आचार्य के रथ को ढक दिया। फिर उनके बाणों का बचाव करते हुए सात्यकि ने आचार्य के सारथी को मार कर घोड़ों को इतना पीड़ित किया कि वे इधर-उधर चक्कर काटते हुए भागने लगे। यह देख कर कौरव गण यह चिल्लाते हुए भागे कि दौड़ो, आचार्य के घोड़ों को पकड़ कर सँभालो। इस प्रकार कौरव गण सात्यकि को छोड़ कर हटे और आचार्य के घोड़े वायु वेग से

उनके सारथी-हीन रथ को व्यूह-द्वार पर पुनः ले पहुँचे। इधर सात्यकि को रोकने के लिए राजा सुदर्शन सामने आये, किन्तु भारी युद्ध के बाद सुदर्शन को मार कर सात्यकि यवनों के पास पहुँच गये। उस समय यवनों ने उन्हें रोका तो उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणों से यवनों के सिर काट-काट कर धरती पर बिछा दिये। तब जो यवन शेष बचे वे इधर-उधर भाग निकले। सात्यकि को इस प्रकार घोर विनाश कर पार जाते देख कर कौरव वीर तिलमिला उठे और उन्होंने मिल कर सात्यकि को जा घेरा। उसमें दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि दुःसह आदि अनेकों दुर्धर्ष वीर थे, जिन्हें आते देख कर सात्यकि ने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की। उस समय देव-दानव युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न होगई। यह देख कर सभी आचार्य चकित थे कि सात्यकि का एक भी बाण व्यर्थ नहीं जाता था। इस प्रकार असंख्य वीरों को अकेले सात्यकि ने मार दिया।

सात्यकि की मार के सामने ठहरना कठिन देख कर शेष सेना भाग निकली। दुःशासन ने उन भागते हुए वीरों को सान्त्वना देकर रोका और स्वयं घोर युद्ध में तत्पर होगए। किन्तु सात्यकि की मार को न सह कर वे भी प्राण बचा कर द्रोणाचार्य के रथ की ओर भाग गये।

उधर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न में भीषण संग्राम होने लगा था। महाबली वीरकेतु, सुधन्वा, चित्रकेतु, चित्रवर्मा और चित्ररथ नामक पांचाल राजकुमार आचार्य के हाथों मारे गये तब धृष्टद्युम्न अपने भाइयों की मृत्यु से अत्यन्त शोकाकुल और क्रोधित हो उठे थे। तब उन्होंने आचार्य के वक्ष नव्वे तीक्ष्ण बाण मारे, जिससे आचार्य मूर्च्छित होगए। तब उन्हें मारने के विचार से तलवार लेकर धृष्टद्युम्न अपने रथ से उनके रथ में जा कूदे। तभी आचार्य को होश आगयाऔर उन्होंने निकट युद्ध में उपयोगी

छोटे-छोटे बाण चढ़ा कर मारे, यह देखकर धृष्टद्युम्न तुरन्त अपने रथ पर जाकर आचार्य पर बाण वर्षा करने लगे। तभी आचार्य ने धृष्टद्युम्न के सारथी को मार दिया और घोड़े उस सारथी-हीन रथ को लेकर इधर-उधर भाग चले। फिर तो आचार्य को परास्त करना बहुत कठिन होगया।

उधर दुःशासन ने सात्यकि पर पुनः आक्रमण किया, तव सात्यकि ने धनुष, हस्तावाप, ध्वज युक्त रथ, सारथी, घोड़े और पृष्ठ रक्षक आदि को मार कर दुःशासन को बहुत पीड़ित किया, तब त्रिगर्तसेनाध्यक्ष उन्हें अपने रथ पर बैठा कर रणभूमि से हटा लेगया। यह देख कर सात्यकि फिर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े।

उधर द्रोणाचार्य भयंकर युद्ध में प्रवृत्त थे। उन्होंने केकय देश के राजकुमार वीर वृहत्क्षत्र को मार दिया। तब शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु उनके सामने पहुंचे किन्तु कुछ देर में ही आचार्य के एक तीक्ष्ण बाण ने धृष्टकेतु का कवच तोड़ कर हृदय विदीर्ण कर डाला, जिससे उनकी मृत्यु होगई। अपने पिता को मारा गया देख कर उनके महाबली पुत्र ने आचार्य से युद्ध किया और अन्त में वह भी प्राण दे बैठा। तत्पश्चात् जरासन्ध के पुत्र ने भी आचार्य से संग्राम करके वीरगति प्राप्त की। तब तो पाण्डव सेना क्रोध पूर्वक 'द्रोण का वध करो, द्रोण का वध करो' पुकारती हुई आगे बढ़ी, किन्तु उनकी वाण-वर्षा के आगे ठहरना कठिन देख कर पीछे हट गई। तभी धृष्टद्युम्न के पुत्र क्षत्रधर्मा ने आचार्य पर तीक्ष्ण प्रहार किया, पर अन्त में वह भी प्राण दे बैठा। फिर महाबली चेकितान के रथ को सारथी विहीन कर आचार्य चेदि, पांचाल, सृञ्जय आदि को मारने और भगाने लगे। इस प्रकार अपनी सेना कम हो जाने से युधिष्ठिर बहुत चिन्तित हो उठे।

उसी समय युधिष्ठिर ने गाण्डीव का भयंकर शब्द सुना, किन्तु उन्हें श्रीकृष्ण, अर्जुन या सात्यकि कहीं भी दिखाई न दिये तो उन्होंने भीमसेन के पास पहुँच कर कहा—भ्राता ! पहिले मुझे अर्जुन की ही चिन्ता थी, किन्तु अब सात्यकि की चिन्ता और होरही है। उनका कुशल समाचार मिलना आवश्यक है। सात्यकि मुझे अर्जुन से कम प्रिय नहीं हैं। इसलिए मेरा प्रिय करने के निमित्त तुम अभी वहाँ जाओ और उनकी कुशल का समाचार सिंहनाद करके प्रकट करो। जिससे मैं निश्चिन्त हो सकूँ। भीम बोले—हे धर्मराज ! महावीर अर्जुन और श्रीकृष्ण ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र के बैठने वाले रथ पर चढ़ कर गये हैं, इस लिए उनके लिए कोई भय नहीं है। फिर भी मैं आपकी आज्ञानुसार जारहा हूँ और शीघ्र ही आपको कुशल-समाचार दूँगा। यह कह कर, युधिष्ठिर की रक्षा का भार धृष्टद्युम्न को सौंप कर भीमसेन शत्रु-सेना में बढ़ने लगे। उस समय दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल आदि आपके सब पुत्र उन्हें रोकने को प्रयत्नशील हुए। किन्तु उन सब वीरों को भीमसेन ने बाण-वर्षा द्वारा ढक कर वेग पूर्वक द्रोणाचार्य की सेना के समक्ष पहुँच कर बाण बरसाने लगे।

फिर उन्होंने द्रोणाचार्य के ऊपर गदा फेंकी तो वे तुरन्त रथ से कूद गये, किन्तु रथ, ध्वजा, अश्व और सारथी का चूर्ण हो गया। फिर वे आपकी सेना को वेग से रोंदने और मारने लगे। उन्होंने कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घलोचन को मार कर वृन्दारक का वध कर दिया और फिर अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचन नामक आपके तीन पुत्रों को तथा सुवर्मा, विन्द, अनुविन्द को मार कर आपके वीर पुत्र सुदर्शन को भी मार डाला। इस प्रकार भीमसेन के प्रहारों से बुरी तरह नष्ट होती हुई रथ सेना भागने लगी, तब वे द्रोणाचार्य की सेना की ओर पुनः बढ़े। तब

द्रोणाचार्य उन्हें रोकने क लिए वाण वर्षा करने लगे। किन्तु भीमसेन ने निर्भय होकर कौरव-दल का भीषण संहार प्रारम्भ कर दिया। यह देख कर द्रोणाचार्य ने सहसा घोर सिंहनाद किया। तब भीमसेन और द्रोणाचार्य के मध्य भारी युद्ध होने लगा किन्तु भीमसेन ने आचार्य के रथ का धुरा पकड़ कर उठाया और धरती पर दे मारा। इस प्रकार उन्होंने आचार्य के आठ रथ चकनाचूर कर दिये, तब वे अन्य रथ पर चढ़ कर पुनः मैदान में आगये।

उसी समय भीमसेन का सारथी रथ लेकर आ गया, जिस पर बैठ कर भीमसेन कौरव सेना को चीरते-फाड़ते इतने आगे बढ़ गये कि उन्हें युद्ध करते हुए सात्यकि दिखाई दे गये। फिर और आगे बढ़ने पर उन्होंने जयद्रथ-वध की इच्छा से घोर युद्ध करते हुए अर्जुन को देखा। तब भीमसेन ने भयंकर सिंह-नाद किया, जिसे सुन कर अर्जुन और श्रीकृष्ण सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ने लगे। भीमसेन का वह सिंहनाद जब युधिष्ठिर ने सुना तब वे बहुत प्रसन्न हुए। भीमसेन के उस सिंहनाद को सुन कर कर्ण ने उनका सामना किया तो दोनों में घोर युद्ध होने लगा। किन्तु भीमसेन में दृढ़ता और कर्ण में कुछ उदासीनता थी, जिससे भीमसेन शीघ्र ही आगे बढ़ गये। तब दुर्योधन ने आचार्य के पास पहुँच कर कहा—आचार्य! अर्जुन आपको लाँघ कर चले गये, उन्हें तो आप नहीं रोक सके, किन्तु सात्यकि और भीम आपको लाँघ कर भीतर चले गए, यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। द्रोणाचार्य ने कहा—इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जिन पर विचार न करके जयद्रथ के प्राण बचाने का प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है इसलिए तुम शीघ्रता पूर्वक जयद्रथ की रक्षा करने वालों की रक्षा में तत्पर हो जाओ मैं यहाँ रह कर पांचाल, पाण्डव, सृञ्जय आदि की सेनाओं को रोकता हुआ'

तुम्हारी सहायता के लिए और कुमुक भेजने का प्रयत्न करूँगा।

यह सुन कर दुर्योधन जयद्रथ की ओर शीघ्रता से बढ़े। उसी समय अर्जुन के रथ चक्र रक्षक पांचालकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा भी सेना के बाह्य भाग को भेद कर अर्जुन के पास पहुँचने को बढ़ने लगे। यह देख कर दुर्योधन ने उन्हें रोका और युधामन्यु के रथ, सारथी आदि पर प्रहार किया। तब उत्तमौजी ने दुर्योधन के सारथी को मार दिया, इससे कुपित होकर दुर्योधन ने उत्तमौजी के पार्श्वरक्षक, सारथी, और घोड़े नष्ट कर दिये तो उत्तमौजा ने युधामन्यु के रथ पर चढ़ कर दुर्योधन के घोड़ों को बाणों के प्रहार से मार डाला तथा दुर्योधन के तरकस और धनुष को काट दिया। तब दुर्योधन गदा लेकर दोनों कुमारों पर झपटे, जिससे कुमारों का रथ नष्ट होगया। फिर दुर्योधन शल्य के रथ पर चढ़ कर आगे बढ़े और यह दोनों भी अन्य रथों पर चढ़ कर उधर ही चल दिये।

सात्यकि द्वारा भूरिश्रवा का वध

संजय बोले—महाराज ! युद्ध में तत्पर कर्ण की उपेक्षा करके भीमसेन आगे बढ़ने को हुए, तब कर्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा—भीम ! इस तरह पीठ दिखा कर क्यों भागते हो ? यह कार्य माता कुन्ती के पुत्र के योग्य कदापि नहीं है, इसलिए मुझ से युद्ध करो। भीमसेन इस चुनौती को सहन न कर सके, उन्होंने कर्ण पर भीषण बाण वर्षा की। उस समय भारी युद्ध के बाद भीमसेन के बाणों से घायल हुए कर्ण धनुष और रथ से हीन होकर अन्य रथ की खोज में युद्ध से हट गये। किन्तु कुछ देर में ही वे एक श्रेष्ठ सुसज्जित रथ पर चढ़ कर पुनः सामने आये। तब उन दोनों में घोर संग्राम होने लगा। उस समय उनके युद्ध को देख

कर सभी वीर काँपने लगे । उन दोनों के छोड़े हुए बाणों से मर-मर कर हाथी, अश्व और मनुष्य बहुत दूर जा-जाकर गिरते थे । इस प्रकार आपकी सेना क्षण-क्षण पर घटती जा रही थी ।

भीमसेन ने कर्ण के सारथी को मार डाला, तब कर्ण ने एक भयंकर शक्ति उन पर चलाई, जिसे उन्होंने मार्ग में ही काट दिया और फिर कर्ण के धनुष की मूठ काट डाली इससे कर्ण अत्यन्त चिन्तित हो उठे । तभी दुर्योधन ने दुर्जय से कहा कि कर्ण की तुरन्त सहायता करो । तब दुर्जय ने भीमसेन को नौ, घोड़ों को आठ और सारथी पर छः बाण चलाये । इससे कुपित हुए भीमसेन ने दुर्जय के सारथी और घोड़ों को मार कर अन्त में दुर्जय को भी मार डाला, इससे कर्ण अत्यन्त दुःखित हुए । तभी कर्ण अन्य रथ पर चढ़ कर युद्ध करने लगे । उन दोनों में फिर घोर युद्ध होने लगा, किन्तु अन्त में भीमसेन के बाणों की मार न सह सकने के कारण कर्ण अपने रथ को वेग से हँकवा कर मैदान से हट गये । यह देख कर दुर्मर्षण, दुःसह दुर्मद, दुर्द्धर और जय नामक आपके पाँच पुत्रों ने भीमसेन को जा घेरा, किन्तु कुछ देर में ही वे भीमसेन के हाथों मारे गये ।

महाराज ! आपके उक्त पुत्रों के मरने पर महारथी कर्ण ने उन्हें अपने कारण नष्ट हुआ जान कर अत्यंत क्रोधित होकर सामने आये, तब भीमसेन उन पर भारी बाण वर्षा करने लगे । कर्ण ने भी बहुत से ब्राणों के प्रहार से भीमसेन को पीड़ित किया। किन्तु भीमसेन केप्रहार इतने कठिन थे कि कर्ण उन्हेंन सहकर पुनः युद्ध सेहट गये। तब दुर्योधन की आज्ञा से चित्र,उपचित्र,चित्राक्ष, चारुचित्र, चित्रायुध और चित्रवर्मा नामक आपके पुत्र भोमसेन की ओर दौड़े किन्तु भीमसेन ने उन्हें निकट पहुँचने से पहिले ही मार डाला ।यह देख कर कर्ण के नेत्र अश्रुपूर्ण होगए और वे पुनः

भीमसेन से युद्ध करने लगे। तब भीमसेन ने बाणों की निरन्तर वर्षा से कर्ण को ढक दिया। उस समय उनके पराक्रम को देखकर आपके पुत्र अत्यन्त आश्चर्य चकित होगए।

हे राजन् ! दुर्योधन की प्रेरणा से आपके अन्य सात पुत्र कर्ण की सहायता के लिए पहुँच कर भीमसेन पर प्रहार करने लगे, किन्तु भीमसेन के प्रहार से वे सातों मारे गये। उन सात में आपके पुत्र विकर्ण पाण्डवों को बहुत प्रिय थे। उनके मरने से भीमसेन भी अत्यन्त शोकाकुल होगए। अपने इकत्तीस भाइयों के मर जाने से दुर्योधन को अत्यन्त दुःख हुआ। उस समय कर्ण और भीमसेन के घोर संग्राम में कौरव-सेना का भारी संहार उपस्थित हुआ और वह भीमसेन के आगे से भागने लगी। तब कर्ण भी प्राणों का मोह छोड़ कर भीमसेन पर भयंकर प्रहार करने लगे। इससे पीड़ित हुए भीमसेन क्रोध पूर्वक आकाश में बहुत ऊँचे उछलकर आक्रमण को तत्पर हुए तो कर्ण रथ में छिप कर बैठ गए। तब भीमसेन रथ छोड़ कर कर्ण के पास जा पहुँचे, यह देख कर कर्ण भी आगे आगए और उन्होंने अपने शस्त्रास्त्र के प्रभाव से भीमसेन को शस्त्रहीन कर दिया। इससे भयभीत हुए भीमसेन ने एक मरा हुआ हाथी उठा कर उसकी ओट में अपनी प्राण रक्षा की।

किन्तु कर्ण ने उस हाथी को भी काट कर खण्ड-खण्ड कर दिया। यह देख कर भीमसेन घूँसा तान कर कर्ण की ओर दौड़ पड़े, किन्तु अर्जुन की प्रतिज्ञा के कारण उन्हें नहीं मारा। उधर कर्ण ने भी अर्जुन के अतिरिक्त किसी अन्य पाण्डव को न मारने की प्रतिज्ञा की थी, इसलिए उन्होंने भी भीमसेन का वध नहीं किया। वरन् भीमसेन के शरीर से अपने धनुष का शिरा स्पर्श करा दिया। तभीभीमसेन ने कर्ण के हाथ से धनुष छीनकर उनके माथे में दे मारा, इससे क्रुद्ध हुए कर्ण ने कहा—अरे मूर्ख !

शस्त्र विद्या के न जानने वाले ! यह रणभूमि तेरे योग्य नहीं है, इसलिए युद्ध न कर, वरन् वन में कन्दमूल फल आहार करतेहुए मुनिवृत्ति का पालन ही तेरे लिए उपयुक्त है। यह कह कर कर्ण युद्ध क्षेत्र से हटने लगे। यह दृश्य अर्जुन ने भी दूर से देखा तो वहीं से एक भयंकर नाराच बाण कर्ण की ओर चलाया, जिसे पराक्रमी अश्वत्थामा ने बीच में ही काट दिया। तब अर्जुन ने अश्वत्थामा की ओर चौंसठ बाण चलाये, किन्तु अश्वत्थामा तुरन्त ही रथ-सेना के भीतर जा छिपे। तब अर्जुन कौरव-सेना का भारी संहार करने लगे। इधर पराक्रमी भीमसेन भी सात्यकि के रथ पर चढ़ कर अर्जुन की सहायता करने लगे।

हे राजन् ! तभी अलम्बुष ने सात्यकि के सामने आकर प्रहार किया। उस समय जो दारुण युद्ध हुआ उसमें सात्यकि बुरी तरह आहत होकर भी डटे रहे और अन्त में उन्होंने राक्षस-राज अलम्बुस का सिर काट कर गिरा दिया। तभी आपके पुत्रों के सहित कौरव सेना ने वीर दुःशासन को आगे करके सात्यकि को घेर लिया, तब सात्यकि ने दुःशासन के अश्वों का वध कर दिया। उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन सात्यकि को देखकर अत्यंत प्रसन्न तो हुए, किन्तु अर्जुन को धर्मराज के अकेले रह जाने की बहुत चिन्ता हुई और सात्यकि का उन्हें अकेले छोड़ कर चले आना उन्हें अनुचित प्रतीत हुआ।

हे राजन् ! सात्यकि के पराक्रम को देख कर भूरिश्रवा उनके सामने पहुँच कर युद्ध करने लगे। वे एक-दूसरे पर भयंकर बाण-वर्षा करते हुए भीषण रण में तत्पर हुए। फिर दोनों ने ही एक-दूसरे के घोड़ों को मार डाला और धनुष काट दिये। तब वे दोनों तलवार उठा कर युद्ध करने लगे। उसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—पार्थ ! सात्यकि कौरव-सेना से घोर युद्ध करते और अनेक वीरों को मारते हुए यहाँ आये हैं। सात्यकि

भूरिश्रवा से युद्ध करने से पहिले ही थक चुके थे, इसलिए यह समयुद्ध नहीं है। श्रीकृष्ण यह कह ही रहे थे, तभी भूरिश्रवा ने सात्यकि को उठाकर पृथिवी पर जोर से दे मारा। यह देखकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा—अर्जुन! तुरन्त अपने शिष्य सात्यकि की रक्षा करो। हे राजन्! इसी समय भूरिश्रवा ने सात्यकि को केश पकड़ कर खींचा और लात मार कर जैसे ही शीश काटने के लिए तलवार उठाई, वैसे ही सावधान हुए सात्यकि अपने सिर को चारों ओर घुमाते हुए प्रहार से बचने का प्रयत्न करने लगे। तभी श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण चला कर भूरिश्रवा का तलवार सहित दाहिना हाथ काट कर गिरा दिया। इससे व्यथित हुए भूरिश्रवा ने सात्यकि को छोड़ दिया और अर्जुन का तिरस्कार करते हुए बोले–अर्जुन! मैं सात्यकि से धर्मयुद्ध कर रहा था। तब तुमने मेरा हाथ काट कर अत्यन्त निन्दित कार्य किया है। हे पार्थ! इस प्रकार से अस्त्र-प्रयोग करना तुम्हें किसने सिखाया? भगवान् रुद्र ने द्रोणाचार्य अथवा कृपाचार्य ने? हे धनंजय! कृष्ण का सखा ही कुमन्त्रणा के वश ऐसा निन्दित कर्म कर सकता है। क्योंकि वृष्णि और अन्धक वंश के यादव व्रात्य अर्थात् पतित क्षत्रिय हैं।

अर्जुन बोले—प्रभो! वृद्धावस्था में मनुष्य की बुद्धि भी जीर्ण होजाती प्रतीत होती है। आप मुझे और श्रीकृष्ण को भले प्रकार जान कर भी श्रीकृष्ण की निन्दा कर रहे हैं, यह बुद्धि का ही भ्रम है। महावीर सात्यकि जीवन का मोह त्याग कर हमारे लिए ही युद्ध कर रहे हैं, वे मेरे शिष्य, सम्बन्धी और दाहिने हाथ के समान हैं। आप उन्हें मारने को तत्पर थे, उस समय मैं उनकी रक्षा न करता तो मुझे नरक में जाना पड़ता। इस भयंकर युद्धभूमि में अकेले सात्यकि से किसी एक व्यक्ति का युद्ध करना सम्भव भी नहीं है, उस पर भी सात्यकि बहुत व्यक्तियों

से युद्ध करके और अनेकानेक महारथियों को जीत कर बुरी तरह थक गये थे, तब आपने उनसे युद्ध करके उन्हें वश में करलिया। और अपने को अधिक पराक्रमी जान कर भी आप उनका सिर काटने को तत्पर होगए। उस स्थिति में अपने आत्मीय एवं प्रिय शिष्य की प्राण-रक्षा करना कैसे अनुचित हुआ ? आप आत्म-रक्षा करते हुये दूसरे का वध करने को उद्यत थे, इसलिये आपका कर्तव्य यही था कि आप अपनी ही निन्दा करते।

अर्जुन के वचन सुन कर महा यशस्वो एवं याज्ञिक भूरिश्रवा ने ब्रह्मलोक गमन की इच्छा से शरशय्या बिछाई और सब इन्द्रियां के अधिष्ठाता देवताओं में उन-उन इंद्रियों को अर्पण कर दिया। प्राणों को प्राण वायु में स्थापित कर महती उपनिषद का जप करने लगे। उस समय आपके पुत्र अर्जुन की निन्दा करने लगे तो उन्होंने कहा—मेरी प्रतीज्ञा है कि जहां तक मेरी बाण की परिधि है, उसके भीतर तक मेरे पक्ष के किसी व्यक्ति को कोई शत्रु नहीं मार सकेगा, मैंने उसी का निर्वाह किया है। निन्दा तो तुम्हारी की जानी चाहिए, क्योंकि तुम अनेकों ने मिल का रथ. शस्त्र, कवच, आदि से रहित अकले अभिमन्यु को मार डाला, वह कार्य किस धर्मात्मा के योग्य था ?

उसी समय महात्मा भूरिश्रवा ने अपना कटा हुआ हाथ दूसरे हाथ से उठा कर अर्जुन के पास फेंक दिया और प्रायोपवेशन के लिए तत्पर हुए, तभी उन्हें मारने के विचार से सात्यकि ने तलवार हाथ में ली। उस समय श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, उत्तमौजा, युधामन्यु, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन और जयद्रथ आदि दोनों पक्षों के पुरुषों द्वारा बहुत बार रोकने पर भी सात्यकि ने प्रायोपवेशन में तत्पर व्रतधारी महात्मा भूरिश्रवा का सिर काट डाला। यह देखकर देवता, सिद्ध, चारण, मनुष्य आदि सभी भूरिश्रवा की प्रशंसा और सात्यकि की निन्दा करने

लगे। इस पर सात्यकि बोले—वह शत्रु होने का कारण मेरा वध्य था तो मैं उसे कैसे छोड़ सकता था ? फिर जो होना होता है, उसे कौन मिटा सकता है। दैव की प्रेरणा से ही यह सब हुआ है। यह कह कर सात्यकि चुप होगए और महाराज भूरिश्रवा पवित्र तेज से सम्पन्न होकर उच्च लोकों में पधारे।

संजय ने कहा—हे महाराज ! सात्यकि महाबली हैं, उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता। किन्तु भूरिश्रवा द्वारा परास्त किये जाने का एक कारण था। शूरसेन के पुत्र वसुदेवजी हुये, उसी कुल में शिनि नामक एक अन्य महा पराक्रमी वीर हुए थे। उसी अवसर पर राजा देवक की कन्या देवकी का स्वयंवर हुआ, तब शिनि ने सब राजाओं को जीत कर वसुदेवजी के लिये देवकी को रथ पर चढ़ाया। उस समय वहाँ अत्यन्त बली सोमदत्त भी उपस्थित थे, उन्होंने शिनि का देवकी को रथ पर चढ़ाना सहन न कर उनसे युद्ध किया। तब शिनि ने सोमदत्त को पृथिवी पर डाल कर एक हाथ से केश पकड़ कर घसीटा और दूसरे हाथ में तलवार उठा कर सोमदत्त के वक्षःस्थल में लात मारी और फिर कृपा पूर्वक उन्हें छोड़ दिया। तदनन्तर हजारों राजाओं के सामने हुये अपने उस अपमान को न सहकर सोमदत्त ने शिवजी को प्रसन्न कर वर प्राप्त किया कि मेरे ऐसा पुत्र उत्पन्न हो जो हजारों राजाओं के समक्ष शिनि के पुत्र को पटक कर उसके हृदय में लात मारे। यह भूरिश्रवा उन्हीं सोमदत्त के पुत्र थे, जिन्होंने शिवकृपा के प्रभाव से सात्यकि को पटक कर लात मारी थी। हे राजन् ! भूरिश्रवा के पश्चात् अर्जुन ने कहा—हे केशव ! अब तुरन्त मुझे जयद्रथ के पास पहुँचा कर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करिये। यह सुन कर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ उधर बढ़ाया।

अर्जुन के रथ को जयद्रथ की ओर बढ़ता देख कर दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि हे राधेय ! वह उपाय करो, जिससे अर्जुन जयद्रथ को न मार सकें। यह सुन कर कर्ण ने कहा—यद्यपि मेरे सभी अंग छिन्न-भिन्न होगये हैं, फिर भी मेरा जीवन आपके लिये ही है। इसलिये आपका कार्य सिद्ध करने में कुछ शेष नहीं छोड़ूँगा। यह कह कर अर्जुन की ओर बढ़े। उस समय दुर्योधन, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि ने भी आगे बढ़ कर अर्जुन को घेरने की चेष्टा की। वे सब जयद्रथ को पीछे करके अर्जुन से युद्ध करने लगे। उसी समय सूर्य मण्डल का वर्ण लोहित होगया और वे अस्ताचल की ओर बढ़ने लगे। यह देख कर कौरवों का हर्ष बढ़ रहा था। अश्वत्थामा अर्जुन को रोकने के लिये आगे आये, किन्तु कौरव पक्ष के असंख्य वीरों को नष्ट करते हुए अर्जुन जयद्रथ के समीप जा पहुँचे, उस समय अकेले कर्ण ने ही अर्जुन से घोर युद्ध करके उन्हें आगे बढ़ने से रोक लिया। इस प्रकार कर्ण का अर्जुन से विकट संग्राम देख कर दुर्योधन ने अपने वीरों से कहा कि 'तुरन्त वहाँ जाकर कर्ण की रक्षा करो' दुर्योधन यह कह ही रहे थे कि अर्जुन ने कर्ण के रथ के चारों घोड़े और सारथी को भी मार डाला। यह देख कर अश्वत्थामा ने कर्ण को अपने रथ पर चढ़ा लिया और अर्जुन पर तीक्ष्ण अस्त्रों से प्रहार करने लगे। उधर अर्जुन ने भी वारुणास्त्र का प्रयोग कर आपके पुत्रों के मन में घोर त्रास उत्पन्न कर दिया, तब कौरवपक्ष के वीर भी प्राणों का मोह छोड़ कर घमासान युद्ध करने लगे। किन्तु अर्जुन के उग्र बाणों से कौरव-सेना भस्म होती जारही थी।

जयद्रथ-वध

संजय ने कहा—हे महाराज ! उस समय अर्जुन के गाण्डीव का शब्द काल की गर्जना के समान भयंकर था। कौरवदल के

वीरों ने शस्त्रास्त्र बरसा कर आकाश में अन्धकार कर दिया था, उसे अपने दिव्य अस्त्र से अर्जुन ने शीघ्र नष्टकर डाला और फिर मृतक हुई शत्रुसेना के रक्त से भीरुजनों के लिए भय प्रदान करने वाली भयंकर नदी प्रवाहित कर दी। आपके पक्ष के जो-जो वीर अर्जुन के सामने आते-जाते थे, उनमें से अधिकांश धराशायी होते थे। उन्होंने जयद्रथ की ओर बढ़ कर चौंसठ बाणों से उन पर प्रहार किया और फिर उनके सारथी को मार कर ध्वजा काट डाली। इसी समय सूर्य का तेजी से अस्ताचल की ओर गमन करते देख कर कृष्ण ने अर्जुन से कहा—पार्थ ! छः महारथी मिल कर जयद्रथ की रक्षा कर रहे हैं, इसलिए उसका मारा जाना कठिन हैं। इसलिए मैं सूर्य को अपनी माया से ढके देता हूँ, जिससे सूर्यास्त होगया समझ कर जयद्रथ उत्सुकतावश तुरन्त बाहर निकल आवेगा, तब तुम उसे तुरन्त मार डालना। किन्तु उस समय भी यह ध्यान रखना कि जयद्रथ का कटा हुआ सिर धरती पर न गिरे, वरन् उनके पिता वृद्धक्षत्र की गोद में जाकर पड़े। यदि पृथिवी पर गिरेगा तो तुम्हारे सिर के भी सौ खण्ड हो जाँयगे। उसका कारण यह है कि राजा वृद्धक्षत्र के घोर तप करने पर उनके यहाँ जयद्रथ का जन्म हुआ था। उस समय आकाश वाणी ने कहा था कि यह पुत्र अपने माता-पिता के तुल्य गुणशील वाला होगा, किन्तु युद्ध काल में कोई क्षत्रिय शत्रु अलक्षित रूप में इसका सिर काट देगा। यह सुन कर वृद्धक्षत्र कुछ देर चिन्तामग्न रहते हुए बोले—यदि कोई क्षत्रिय बहुत लोगों से युद्ध करते हुए मेरे इस पुत्र का सिर काट कर पृथिवी पर गिरावेगा। उसके सिर के भा उसी समय सौ टुकड़े हो जाँयगे। यह कह कर महाराज वृद्धक्षत्र चुप होगए और यथा समय जयद्रथ को राज्य देकर बन में चले गये। वे अब भी यहीं, कुरुक्षेत्र में समन्तपंचक क्षेत्र के बाह्य वन में तपस्या कर रहे हैं।

यह कह कर महात्मा कृष्ण ने योगमाया के प्रभाव से सूर्य को छिपाकर अन्धकार उत्पन्न कर दिया, जिससे कौरवपक्ष में प्रसन्नता छा गई। उन्होंने समझा कि प्रतिज्ञा का निर्वाह न होने के कारण अर्जुन अब अपना प्राण दे देंगे। उसी समय जयद्रथ भी उत्सुकता से आगे बढ़ कर सूर्य की ओर देखने लगे। तभी श्रीकृष्ण ने कहा—अर्जुन ! यही समय है, इस पापी को तुरन्त मार दो। यह सुन कर अर्जुन ने आपकी सेना को पीड़ित कर अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य आदि बाण-वर्षा करके ढक दिया और फिर दिव्य अस्त्र से अभिमन्त्रित भयंकर बाण निकाल कर जयद्रथ की ओर वेग से छोड़ा, जिसने जयद्रथ का सिर काट दिया और उसे धरती पर न गिरने देने के लिए अनेक बाण मार कर उसे सहारा दिया। उस समय वृद्धक्षत्र सन्ध्योपासन कर रहे थे, तभी वह सिर उनकी गोद में जा गिरा। उन्हें इसका कुछ पता न चला और जैसे ही वे सन्ध्या करके उठे, वैसे ही वह सिर पृथिवी पर गिर गया, तभी वृद्धक्षत्र के सिर के सौ टूक होगए। इस प्रकार जयद्रथ मारे गये, तब अन्धकार दूर होगया और अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य पुनः दिखाई देने लगे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, सात्यकि, युधामन्यु और उत्तमौजी ने अपने-अपने शंख बजाकर जो तुमुल नाद किया. उससे युधिष्ठिर समझ गये कि जयद्रथ मारे गये।

जयद्रथ की मृत्यु से क्षुब्ध हुए कृपाचार्य ने अर्जुन पर बाण वर्षा प्रारभ की। साथ ही अश्वत्थामा भी प्रहार में तत्पर हुए। किन्तु, अर्जुन ने अपना महान् पराक्रम प्रकट करके कृपाचार्य और अश्वत्थामा के बाण-जाल को नष्ट करके ऐसी बाण-वर्षा की कि कृपाचार्य शिथिल और निश्चेष्ट होकर रथ पर गिर पड़े और अश्वत्थामा अर्जुन के सामने से हट कर अन्यत्र चले गए।

कृपाचार्य की यह दशा देख कर अर्जुन खिन्न होकर स्वयं को धिक्कारने लगे। तभी कर्ण अर्जुन की ओर बढ़े, तो सात्यकि दिखाई दे गये। इसलिए उनसे ही युद्ध करने लगे। उस समय कर्ण का पराक्रम देख कर अर्जुन ने कहा—केशव ! मेरा रथ वहीं ले चलो, कहीं कर्ण सात्यकि की वही दशा न कर बैठे, जैसी कि भूरिश्रवा की हुई थी। कृष्ण बोले—चिन्ता न करो, सात्यकि स्वयं समर्थ हैं, फिर उनके साथ युधामन्यु और उत्तमौजा भी हैं। इसलिए उन्हें कोई भय नहीं। कर्ण के पास इन्द्रप्रदत्त अमोघ शक्ति होने के कारण अभी तुम्हें उससे युद्ध नहीं करना चाहिए। यह कह कर कृष्ण चुप होगए, उधर सात्यकि का कर्ण से भयंकर संग्राम होने लगा। इधर अर्जुन भी कौरव पक्ष के वीरों का भीषण संहार करने लगे। तभी सूर्यास्त होने पर युद्ध बन्द होगया।

उसी समय महाबाहु अर्जुन ने कर्ण के कुछ निकट आकर कहा—कर्ण ! तुम बहुतों ने मिल कर अकेले बालक अभिमन्यु को मारा है, इसलिए मैं भी तुम्हारे प्रिय पुत्र वृषसेन को मारने की प्रतिज्ञा करता हूँ। यह कहते हुए अर्जुन का रथ एक ओर को बढ़ता हुआ चल पड़ा। उन्होंने अपने शिविर के पास पहुँच कर शंख बजाया और फिर महाराज युधिष्ठिर के पास जाकर प्रणाम किया तब युधिष्ठिर ने कृष्ण, अर्जुन, सात्यकि, भीमसेन आदि विजेता वीरों का भारी सम्मान किया।

धृतराष्ट्र के पुत्रों और सालों का वध

संजय ने कहा—महाराज ! भूरिश्रवा और जयद्रथ की मृत्यु से दुर्योधन अत्यंत दुःखित और व्याकुल होकर द्रोणाचार्य के पास गये। उन्होंने आचार्य से कहा—ब्रह्मन् ! अर्जुन ने हमारी सात अक्षौहिणी सेनाओं को नष्ट करके आपके ही शिष्य राजा जयद्रथ

का वध कर दिया है। हमारी विजय के लिए युद्ध करने वाले हजारों मित्र राजा एवं सुहृद सम्बन्धी मारे गये हैं। इस घोर विनाश का अपराधी मैं ही हूँ। जिस समय युद्ध प्रारम्भ हुआ था, उस समय पाण्डवों की सेना बहुत थोड़ी थी,। किन्तु आज हमारी रणबिजयिनी सेना ही अल्प रह गई है। इसका कारण अर्जु न का आपका प्रिय शिष्य होना है। आप उसके कारण मन से युद्ध नहीं कर रहे हैं। इसीलिए हमें पराजय पर पराजय भोगनी पड़ रही है। इसलिए अब मैं ही घोर पराक्रम दिखा कर उन वीरों की गति को प्राप्त करूँगा हे पाण्डवों के आचार्य ! अब ऐसा करने की मुझे अनुमति दीजिए।

द्रोणाचार्य बोले—दुर्योधन ! तुम वाक्य बाणों द्वारा मुझे क्यों पीड़ित कर हो ? तुमने पाण्डवों को कपट पांसों से हरा कर और मृगछाला पहना कर वन में भेजा था,उसीका परिणाम तुम्हें भोग ना पड़ रहा है। जिस समय मैंने देवताओं द्वारा भी अवध्य भीष्म पितामह को युद्ध में गिरते देखा, उसी समय समझ लिया कि अब यह राज्य कौरवों के हाथ में नहीं रहेगा। फिर भी मैं आज तुम्हारे हितार्थ यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि सब पांचालों को नष्ट किये बिना कवच नहीं खोलूँगा। तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामा को भी मेरा सन्देश दो कि अपनी प्राण-रक्षा की चिन्ता न कर कर्त्त-व्य को करते जाना, किन्तु अपने धर्म को न छोड़ना। दुर्योधन ! पाण्डवगण और पाँचालगण आज इतने क्रुद्ध हैं कि वे रात्रि में विश्राम न करके भी युद्ध करगे। इसलिए अपनी सेना की रक्षा में तत्पर हो जाओ। यह कह कर द्रोणाचार्यजी युद्ध करने के लिए पाण्डवों-पांचालों की सेना में जा घुसे।

दुर्योधन वहाँ से चल कर कर्ण के पास आये और द्रोणाचार्य की आलोचना करने लगे तो कर्ण ने कहा—राजन् ! आचार्य के प्रति शंका निरर्थक है। वे प्राणप्रण से अपने कर्त्तव्य के निर्वाह

में तत्पर हैं किन्तु दैव ही विपरीत हो तो कोई क्या कर सकता है ? दुर्योधन और कर्ण में यह बातें हो ही रही थीं कि तभी रणभूमि में पाण्डवों की असंख्य सेना आने लगी। यह देख कर कौरव-सेना शीघ्रता पूवक उनका सामना करने को उठी। इस प्रकार रात्रि युद्ध प्रारम्भ होगया। उस समय अत्यन्त कुपित हुए राजा दुर्योधन तीव्र वेग से शत्रु-सेना में घुस कर युद्ध करने लगे, किन्तु युधिष्ठिर के तीक्ष्ण बाण से मूर्च्छित होकर रथ पर गिर गये। उसी समय द्रोणाचार्य ने वहां आकर उनकी रक्षा की।

तत्पश्चात् द्रोणाचार्य ने अपना अमित पराक्रम प्रदर्शित किया। पाण्डवगण और पांचालगण मिल कर उन पर आक्रमण करने लगे। पर, द्रोणाचार्य ने उनमें से बहुतों को मारा और शेष सभी को पीछे हटा दिया। उन्होंने अकेले ही एक हजार हाथी, दस हजार रथ, एक प्रयुत पदाति और एक अर्बुद अश्व नष्ट कर दिये। फिर धृष्टद्युम्न के पुत्रों का वध कर दिया तथा राजा शिवि के घोड़ों को मार कर स्वयं शिवि का सिर भी धड़ से पृथक् कर दिया।

इसी समय कलिंगराज के पुत्र ने भीमसेन का सामना किया। उसे भीमसेन ने उसके रथ पर जाकर इस जोर का घूँसा मारा कि कलिंगराजपुत्र की अस्थियाँ निकल कर गिर पड़ीं। तब उसके भाई ध्रुव और जयरात के साथ कर्ण भी भीमसेन की ओर बढ़े। भीमसेन ने ध्रुव के रथ पर पहुँच कर उसे भी मार डाला। तब कर्ण ने शक्ति का प्रहार किया, जिसे भीमसेन ने हाथ में पकड़ कर कर्ण के ऊपर फेंक दीं। शकुनि ने उसे कर्ण की ओर जाते देखा तो बीच में ही काट दिया। फिर आपके पुत्र दुर्मद और दुष्कर्ण ने भीमसेन पर बाण वर्षा की तो वे दोनों भी उनके हाथ से मारे गये।

तत्पश्चात् सात्यकि और सोमदत्त में तथा अश्वत्थामा और घटोत्कच में भयंकर युद्ध हुआ। उसमें सात्यकि के बाणों की चोट से सोमदत्त मूर्च्छित होगए तो सारथी उन्हें हटा ले गया यह देख कर द्रोणाचार्य सात्यकि का वध करने के विचार से आगे बढ़े तो पाण्डवों ने सात्यकि को अपने बीच में करके बचा लिया। तब द्रोणाचार्य युधिष्ठिर की ओर दौड़े, यह देख कर अर्जुन भी आचार्य पर प्रहार करने लगे। तभी भीमसेन ने अपना रथ आचार्य के सामने ले चलने को अपने सारथी से कहा।

उधर अश्वत्थामा ने सात्यकि को देखा तो उनकी ओर झपटे, किन्तु उसी समय रोद्र रूप राक्षसों की एक अक्षौहिणी सेना के सहित घटोत्कच अश्वत्थामा के सामने आ गये। अश्वत्थामा ने घटोत्कच से सामना कर उसकी राक्षसी माया को नष्ट कर दिया और फिर वायव्यास्त्र के प्रयोग द्वारा एक लाख रथी योद्धा मार गिराये। घटोत्कच ने पुनः माया प्रकट कर असंख्य राक्षसों को युद्ध करने की आज्ञा दी। अश्वत्थामा ने उन्हें भी समाप्त कर दिया और फिर घटोत्कच को पीड़ित करने लगे। उन्होंने द्रुपद-पुत्र सुरथ, शत्रुञ्जय, बलानीक, जयाश्व जयानीक और राजा श्रुताह्व को मार दिया। फिर एक बाण घटोत्कच को ऐसा मारा कि वह उसकी चोट से मूर्च्छित होकर गिर गया। तब धृष्टद्युम्न ने घटोत्कच को मरा समझ कर अपना रथ वहाँ से हटा लिया। यह देख कर पाण्डव सेना भागने लगी।

हे राजन्! सात्यकि और सोमदत्त में पुनः घोर युद्ध होने लगा, जिसमें सोमदत्त मूर्च्छित होकर गिर गये अपने पुत्र की यह दशा देख कर बृद्ध वाह्लिक सात्यकि पर झपटे। तभी भीमसेन उनसे युद्ध करने लगे और अन्त में भीमसेन के गदा-प्रहार

से वाह्लीक का मस्तक चूर-चूर होगया। यह देख कर आपके दस पुत्र नागदत्त, दृढ़रथ, महाबाहु, अयोभुज, दृढ़, सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी उनके सामने आये तो भीमसेन ने दस उग्र बाणों से उन दसों राजकुमारों को मार डाला। तत्पश्चात् भीमसेन ने आपके सात महारथी सालों को मार कर पराक्रमी शतचन्द्र का भी वध कर दिया। यह देख कर शकुनि के पाँच महारथी भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त उन पर नाराच बाणों से प्रहार करने लगे, किन्तु भीमसेन के हाथों वे भी मारे गये।

भयंकर युद्ध में घटोत्कच का मारा जाना

संजय बोले—हे राजन् ! पाण्डवों को अधिक प्रबल होते देख कर दुर्योधन ने कर्ण से कहा—हे वीर ! मित्र के कार्य करने का यही समय है, इसलिए अपने पक्ष के वीरों की रक्षा करो। कर्ण ने कहा—राजन् ! तुम चिन्ता न करो, आज इन्द्र भी अर्जुन को बचाना चाहें तो वह मेरे हाथ से नहीं बच सकता मैं पांचाल केकय और यादवों के साथ पाण्डवों को हरा कर यह समूची पृथिवी तुम्हें दूँगा। यह सुन कर कृपाचार्य बोले—हे सूतपुत्र ! यदि कथन मात्र से ही कार्य सिद्ध हो सकता तो क्या कहने थे ? दुर्योधन के सामने तो तुम बहुत बढ़-बढ़ कर बातें करते हो, किन्तु रणभूमि में अर्जुन के सामने से तुम अनेक बार भाग चुके हो। अब भी जब तक अर्जुन का सामना नहीं होता तब तक चाहे जितना गर्जन कर लो।

कृपाचार्य के वचन सुन कर कर्ण अत्यन्त क्रोधित होगए। उन्होंने कहा—कृपाचार्य ! वीर सदैव गर्जन करते और उसका फल भी प्रत्यक्ष दिखाते हैं। मैं यदि पाण्डवों के वध का निश्चय करके कहता हूँ तो इससे तुम्हारी क्या हानि होती है ? हे द्विजा-

धम ! तुम पाण्डवों को हमसे बली मान कर उनकी ही प्रशंसा करते हो यह अनुचित है। इसी प्रकार कृपाचार्य और कर्ण में वाद-विवाद बढ़ गया तो अश्वत्थामा तलवार खींच कर बोले—हे नराधम कर्ण ! तू गर्व के कारण अपनी प्रशंसा स्वयं करता है और आचार्य को कुवाक्य कहता है। जब अर्जुन ने तेरे ही सामने जयद्रथ को मार डाला तब तू कहाँ चला गया था ? अरे सूत ! जिस अर्जुन ने शिवजी से भी युद्ध किया, उसे तू सब राजाओं के सहित जीतना चाहता है। अरे मूर्ख ! मैं तेरा सिर अभी उड़ाये देता हूँ। यह कह कर अश्वत्थामा कर्ण की ओर बढ़े तो उन्हें दुर्योधन और कृपाचार्य ने पकड़ लिया। उस समय कर्ण ने कहा—राजन् ! तुम इस दुर्मति नराधम ब्राह्मण को छोड़ दो, इसे मेरे भुजबल का पराक्रम देखने दो। अश्वत्थामा ने कहा—अरे सूतपुत्र ! मैं तो तुझे क्षमा किये देता हूँ, किन्तु युद्ध में अर्जुन ही तेरे गर्व को खण्डित करेगा।

हे राजन् ! इसके पश्चात् जो युद्ध हुआ उसमें पाँचालों और पाण्डवों के पक्ष के वीर 'कर्ण कहाँ है ? कर्ण कहाँ है ? वही अनर्थ की जड़ है। कर्ण को मारो, कर्ण को मारो' इस प्रकार कोलाहल करते हुए युद्ध करने लगे। उस समय कर्ण को अद्भुत फुर्ती और शक्ति दिखाई दे रही थी। पर पक्ष के योद्धा हजार प्रयत्न करके भी कर्ण पर वार करने में सफल नहीं होते थे। यह देख कर अर्जुन ने उनके धनुष की मूँठ काट डाली और सारथी को मार गिराया, तब कर्ण कृपाचार्य के रथ पर चढ़ गये। यह देख कर आपकी सेना इधर उधर भागने लगी।

हे राजन् ! उस भागती हुई सेना को राजा दुर्योधन ने सान्त्वना देकर रोका और अर्जुन से युद्ध करने के लिए स्वयं आगे बढ़े। यह देख कर कृपाचार्य ने अश्वत्थामा से कहा—अश्वत्थामा ! राजा को वहाँ जाने से रोको, कहीं ऐसा न हो कि

अर्जुन का सामना होने पर इनके प्राण चले जाँय । तब अश्वत्थामा शीघ्र ही दुर्योधन के पास पहुँच कर बोले— राजन् । मेरे जीवित रहते हुए आप स्वयं क्यों जा रहे हैं ? आप ठहरें, अर्जुन से युद्ध करने के लिए मैं जाता हूँ । दुर्योधन ने कहा—ब्रह्मन् । आचार्य तो अर्जुन को पुत्रवत मान कर पाण्डवों की रक्षा करते हैं । फिर भी आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई ऐसा हितेषी नहीं हो सकता जो पाण्डवों के वेग को रोक सके । अतः हे अश्वत्थामा इन शत्रुओं का संहार करने के लिए मुझ पर प्रसन्न होओ । क्योंकि आप अपने पराक्रम से पाण्डवों को शीघ्र हरा सकते हो ।

महाराज ! दुर्योधन को रोक कर अश्वत्थामा शत्रुसेना की ओर बढ़ कर घोर युद्ध में तत्पर हो गये । उसमें धृष्टद्युम्न से उनका सामना हुआ । किन्तु अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न का धनुष, ध्वजा आदि काट कर चारों अश्व, सारथी और पार्श्व रक्षक मार डाले तथा सहस्रों पाँचालों का वध करके उनकी सेना को परास्त कर दिया । इस प्रकार वीर अश्वत्थामा युद्ध में शत्रुओं को जीत कर मेघ के समान गर्जन करने लगे ।

इसी समय सात्यकि का सोमदत्त से युद्ध होने लगा, कुछ काल के भयंकर युद्ध के पश्चात् सात्यकि के एक तीक्ष्ण बाण ने सोमदत्त का हृदय विदीर्ण कर दिया । इस प्रकार सोमदत्त की मृत्यु हुई देख कर कौरवपक्ष के अनेक वीर क्रोधित होकर सात्यकि से युद्ध करने लगे । किन्तु रात्रि अधिक बढ़ने के कारण दोनों पक्षों को अँधेरे में कहीं कुछ दिखाई नहीं देरहा था । इस लिए आपके पुत्रों की सेना कुबुद्धिवश अपने ही पक्ष के लोगों को परस्पर मारने लगी । तब उस सम्पूर्ण सेना को एकत्र करके द्रोणाचार्य ने पुनः व्यूह रचना की और दुर्योधन की आज्ञा से सैनिकों ने अस्त्रशस्त्र रख कर हाथों में प्रज्वलित दीपक लेलिये ।

इस प्रकार उजाला होने पर द्रोणाचार्य अपने स्वर्ण कवच आदि के कारण सूर्य जैसी शोभा को प्राप्त हुए। जब पाण्डवों ने हमारी सेनाओं में इस प्रकार उजाले का प्रबन्ध हुआ देखा तब उन्होंने भी अपनी अपनी सेनाओं को दीपक जलाने की आज्ञा दी। उन्होंने हाथियों पर भी सात-सात, घोड़ों पर दो-दो और रथों पर दस-दस दीपक जलाये, इस प्रकार पाण्डव-सेना में अधिक प्रकाश होने पर आपकी सेना में उजेला स्वयं ही अधिक बढ़ गया।

हे महाराज ! उसी समय राजा युधिष्ठिर ने पाण्डव-पांचाल सोमकगण की मिश्रित सेना को द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। वह सब सेना तुरन्त द्रोणाचार्य की ओर बढ़ी, तब युधिष्ठिर का कृतवर्मा से युद्ध होने लगा, जिसमें कृतवर्मा ने युधिष्ठिर का धनुष, ढाल, तलवार, तथा कवच भी काट दिया। तब कृतवर्मा के बाणों से पीडित हुए युधिष्ठिर वहाँ से तुरन्त हट गये।

उसी समय सात्यकि का भूरि ने सामना किया, जो कि सात्यकि के हाथों भूरि धराशायी होगए। तब अश्वत्थामा ने सात्यकि को ललकारा, किन्तु वीर घटोत्कच ने बीच में आकर अश्वत्थामा को रोका। उस युद्ध में घटोत्कच की सब माया व्यर्थ होगई और अश्वत्थामा के बाण ने घटोत्कच के हृदय को अत्यन्त पीडित किया, जिससे वह अचेत होगया, तब उसका सारथी उसे युद्ध से हटा ले गया। उधर भीमसेन और दुर्योधन की भिड़न्त में उनका रथ, अश्व और सारथी भी नष्ट होगया। यह देख कर दुर्योधन वहाँ से भाग खड़े हुए।

सहदेव ने कर्ण से सामना किया, किन्तु सहदेव असफल होकर युद्ध छोड़ कर भाग खड़े हुए। कर्ण ने उनका पीछा कर धनुष के सिरे को सहदेव के शरीर से स्पर्श कराके बोले—

सहदेव ! मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ, अब अपने से विशेष किसी महारथी से कभी मत भिड़ना। यह कह कर कर्ण पांचालों और पाण्डवों की सेना को भस्म करते हुए आगे चले गए। हे राजन! 'अर्जुन के अतिरिक्त किसी पाण्डव को नहीं मारूँगा' इस प्रतिज्ञा के कारण ही उन्होंने सहदेव का वध नहीं किया था।

राजा विराट अपनी सेना सहित द्रोणाचार्य की ओर बढ़े तो महावीर शल्य ने उन्हें बीच में ही रोक लिया। उस समय भयङ्कर संग्राम करते-करते राजा विराट शल्य की चोट से अचेत हो गये, यह देख कर सारथी उन्हें हटा ले गया। तब पीड़ित सेना इधर-उधर भागने लगी, उसे सान्त्वता देने के लिए अर्जुन शल्य के सामने आगये। उसी समय राक्षसराज अलम्बुष बीच में आकर अर्जुन से लड़ने लगा। किन्तु अर्जुन के बाणों की मार से रथ-अश्व-सारथी से विहीन और शस्त्र नष्ट होने से निरुपाय हुआ अलम्बुष मैदान छोड़ कर भाग गया।

तभी नकुल ने शकुनि को भीषण रूप से आहत किया, जिससे शकुनि अचेत हो गए और उनका सारथी उन्हें हटा ले गया। उधर शिखण्डी और कृपाचार्य में घोर युद्ध छिड़ा हुआ था। उसमें कभी कोई जीतता, कभी कोई। इस प्रकार दोनों पक्ष प्राणों का मोह छोड़कर लड़ाई लड़ रहे थे। रात्रि काल होने के कारण युद्ध की भयंकरता और बढ़ गई थी।

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। उनके बीच में वीर द्रुमसेन ने आकर धृष्टद्युम्न के हाथ से अपने प्राण गँवा दिये। सात्यकि कर्ण से भिड़ कर उन्हें व्यथित कर रहे थे। दुःशासनादि की प्रधानता में कौरव पाण्डवों से युद्ध में तत्पर थे। द्रोणाचार्य का धृष्टद्युम्न से कड़ा सामना था। तत्पश्चात् सात्यकि द्रोण के सामने आ गये और कर्ण धृष्टद्युम्न से भिड़े गये। किन्तु कर्ण के आगे से धृष्टद्युम्न को रथ-सारथी आदि

गँवा का हटना पड़ा। यह देखकर घटोत्कच ने कर्ण का सामना किया। क्योंकि श्रीकृष्ण ने उस समय अर्जुन का कर्ण से युद्ध करना उचित न समझ कर घटोत्कच को यह कह कर भेजा था कि वीर ! तुम्हीं कर्ण को मार सकोगे। तब कर्ण और घटोत्कच इन्द्र और प्रह्लाद के समान दारुण युद्ध करने लगे।

उसी समय जटासुर के पुत्र अलम्बुष ने दुर्योधन के पास आकर कहा—राजन् ! मैं पाण्डवों से युद्ध करना चाहता हूँ। दुर्योधन ने कहा—राक्षसराज ! तुम कर्ण की सहायता करके पाण्डवों को सहज मार लोगे। पहिले उस क्रूर राक्षस घटोत्कच को मार डालो। यह सुनकर अलम्बुष घटोत्कच के पास जाकर भयङ्कर युद्‌ध करने लगा, तब घटोत्कच ने अलम्बुष, कर्ण और कौरव-सेना का मर्दन आरम्भ किया। उधर अलम्बुष भी अपना पराक्रम प्रकट कर पाण्डव-सेना का संहार करने लगा। तब घटोत्कच ने अलम्बुष का सिर काट कर दुर्योधन के रथ पर फेंक कर कहा– दुर्योधन ! तुम्हारे हितैषी का सिर तुम्हें उपहार में भेंट करता हूँ। जब तक कर्ण की भी यही दशा नहीं हो जाती, तब तक तुम प्रसन्नता मना लो। यह कह कर वह कर्ण की ओर बढ़ कर भयङ्कर युद्‌ध में प्रवृत्त हुआ। उसने अनेक प्रकार की माया प्रकट की, जिसे कर्ण ने बात ही बात में नष्ट कर दिया।

इसी बीच राक्षसराज अलायुध पाण्डवों से अपने पुराने वैर को याद करके असंख्य राक्षसों सहित दुर्योधन के साथ हो गया। तब दुर्योधन के कहने से अलायुध घटोत्कच से आ भिड़ा। उस समय पाण्डव पक्ष के अनेक वीर राजाओं ने उसे घेर लिया। उस युद्‌ध में अलायुध भीमसेन पर प्रबल होने लगा तो घटोत्कच ने भयानक संग्राम करके उसे बलपूर्वक पकड़ कर उठाया और जोर से घुमा कर धरती पर दे मारा। फिर कुण्डलों युक्त उसके शीश को काट कर घोर सिंहनाद करने लगा।

अब कर्ण और घटोत्कच के मध्य भयंकर संग्राम होने लगा। अनेक मायाओं को प्रकट करता हुआ घटोत्कच कर्ण पर प्रबल होने लगा। उसने कर्ण के चारों अश्व मार गिराये और कर्ण को पीड़ित करने लगा। उस समय कर्ण के सभी अस्त्र निष्फल होते देख कर कौरवों ने कहा—वीर कर्ण ! अपनी अमोघ शक्ति द्वारा इस राक्षस को नष्ट कर डालो, अन्यथा यह दुष्ट हम सब को अभी समाप्त किये देता है। जब हममें से कोई बचेगा ही नहीं तो फिर तुम्हारी अमोघ शक्ति किस काम आवेगी ? यदि हम जीवित बचे रह गये तो अर्जुन से हमें क्या भय है ? हम सब मिल कर उससे भी निपट लेंगे।

यह सुनकर कर्ण ने उस अमोघ शक्ति को चलाने का निश्चय किया। यह शक्ति इन्द्र ने कर्ण से कुण्डल लेकर बदले में दी थी, जिसे कर्ण ने अर्जुन को मारने के लिये रख छोड़ा था। कर्ण ने उसी अमोघ शक्ति को चलाया, तब आकास्थ सभी जीव हाहाकार कर उठे। उस समय उस छूटी हुई शक्ति ने राक्षस की माया को तुरन्त नष्ट कर दिया और राक्षस का हृदय विदीर्ण कर विद्युत के समान चमकती हुई ऊपर जाकर नक्षत्रमण्डल में अदृश्य हो गई।

हे राजन ! उस शक्ति के लगते ही घटोत्कच भयंकर शब्द करता हुआ धरती पर गिर पड़ा। उसने मरते समय भी ऊपर उठ कर अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि उससे आपकी एक अक्षौहिणी सेना कुचल कर मर गई। फिर भी उस भयंकर मायावी राक्षस को मरा हुआ देख कर कौरव पक्ष के सभी पुरुष हर्षित होकर विविध प्रकार के बाजे बजाने लगे। उधर पाण्डव-सेना में शोक व्याप्त हो गया। पाण्डवों के नेत्रों में आँसू भर आये, किन्तु श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होकर सिंहनाद करने लगे।

रात्रिकालीन युद्ध का वृत्तान्त

संजय बोले—हे राजन् ! वासुदेव को प्रसन्न होकर सिंहनाद करते देख कर अर्जुन ने पूछा—हे मधुसूदन ! घटोत्कच भीमसेन का पुत्र और हमारा अत्यन्त प्रिय एवं हितैषी था। उसकी मृत्यु पर हमारे पक्ष के सभी वीर शोक मना रहे हैं। क्योंकि, हमारी सेनाएँ युद्ध से भाग कर उत्साहहीन होगई हैं। फिर आपके द्वारा प्रसन्नता प्रकट करने में कोई विशेष कारण अवश्य होगा ! श्री कृष्ण बोले—अर्जुन ! इन्द्रप्रदत्त वह अमोघ शक्ति कर्ण न तुम्हारे वध के लिए सुरक्षित रखी थी, वह घटोत्कच पर चलाने के कारण उसके हाथ से निकल गई है। इन्द्र ने कवच कुण्डल उससे पहिले ही ले लिये थे। इसलिए अब तुम कर्ण को सहज में ही मार सकोगे। किन्तु उस शक्ति के रहते हुए कर्ण को त्रिलोकी में कोई भी नहीं मार सकता था। इस समय शक्ति न रहने पर भी तुम्हारे अतिरिक्त कोई योद्धा कर्ण का वध करने में समर्थ नहीं है। अब भी तुम उसे तभी मार सकोगे, जबकि युद्ध करते समय उसके रथ का चक्र धरती में घुस जायगा और वह उस चक्र को धरती से निकालने में लगेगा। उस असावधान अवस्था में मेरा संकेत मिलते ही उसे निःसंकोच होकर मार डालना। यदि उस समय चूक गये तो फिर कभी भी नहीं मार सकोगे। यह समझलो कि मेरे द्वारा मोहित किये जाने के कारण ही कर्ण उस शक्ति का प्रयोग अब तक तुम्हारे ऊपर नहीं कर सका था।

श्रीकृष्ण के वचन सुन कर अर्जुन का भ्रम दूर होगया। तभी युधिष्ठिर घटोत्कच के मरने से दुःखित होकर अत्यन्त शोक मनाने लगे। उन्हें श्रीकृष्ण ने बहुत समझाया, किन्तु उनका शोक दूर न हुआ और वे कर्ण का वध करने की इच्छा से उठ

खड़े हुए। उसी समय भगवान् वेदव्यासजी ने आकर युधिष्ठिर को सान्त्वना दी और बोले—युधिष्ठिर ! कर्ण के सामने युद्ध करके भी अर्जुन जीवित हैं, यह तुम्हारा सौभाग्य ही है। अन्यथा वह शक्ति अर्जुन का प्राण अवश्य ले लेती। अच्छा हुआ कि घटोत्कच मारा गया और वह शक्ति कर्ण के हाथ से निकल गई। हे पुरुषसिंह ! जहां धर्म है, वहीं जय है। तुम इसी के अनुसार वर्तते रहो। यह कह कर वेदव्यासजी चले गए।

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से धृष्टद्युम्न शिखण्डी, यशोधर, पाण्डव, द्रोपदीपुत्र, द्रुपद, विराट, सात्यकि अर्जुन आदि सभी वीर द्रोणाचार्य को जीतने की इच्छा से वेग पूर्वक उधर बढ़े। द्रोणाचार्य ने उन सब का पूर्ण प्रयत्न से सामना किया किन्तु दोनों पक्षों की सेनाएँ थक कर चूर होरही थी और महारथीगण भी निद्रा के कारण व्यथित हो रहे थे। उन्हें वह तीन प्रहर की रात्रि कालरात्रि जैसी प्रतीत होने लगी। यह देखकर अर्जुन ने जोर से सुना कर कहा—वीरो ! तुम और तुम्हारे वाहन थक गये हैं, तुम सबको नींद आरही है। उधर अंधकार में अपने-पराये का पहिचानना भी कठिन है। इसलिए युद्ध बन्द करके यहीं युद्धक्षेत्र में सो जाओ। जब चन्द्रोदय हो जायगा, तब पुनः युद्ध करेंगे। अर्जुन के यह वचन सुन कर सब वीर बहुत प्रसन्न हुए और युद्ध बन्द करके वहीं सोगए। यह देख कर कौरव पक्ष के वीरों ने भी कहा—हे महाराज दुर्योधन ! पाण्डवों ने युद्ध बन्द कर दिया है, इसलिये आप भी हमें सोने की आज्ञा दीजिए। यह सुन कर कौरवों ने भी वैसा ही किया।

हे राजन् ! उस समय सभी वीर नींद में अंधे होरहे थे। जो जैसे था, वैसे ही सो गया। कोई घोड़े की पीठ पर, कोई हाथी के हौदे पर कोई रथ पर। अस्त्रशस्त्र भी किसी ने नहीं

खोले। इस प्रकार सोते-सोते जब चन्द्रमा निकल आया, तब दोनों पक्ष के योद्धा घमासान युद्ध में तत्पर हो गए।

राजा विराट और द्रुपद का मारा जाना

संजय बोले—हे महाराज! उसी समय दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को उत्तेजित करने के विचार से उनके पास जाकर कहा—आचार्य! दीन, थक कर विश्राम करते हुए तथा ग्लानि को प्राप्त शत्रुओं के प्रति उपेक्षा दिखाने से बाद में वह प्रबल हो जाते हैं। इसलिये विश्राम करने के बाद अब पाण्डव अधिक प्रबल होरहे हैं। हे द्विजवर! आप सभी दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता हैं, किन्तु आप पाण्डवों के प्रति उपेक्षा दिखाते हुए उनका वध नहीं करते हैं। यह सुन कर उत्तेजित हुए आचार्य ने कहा—दुर्योधन! मुझसे जैसा बन रहा है, वैसा युद्ध कर रहा हूँ। मैं अस्त्रों का ज्ञाता हूँ और शत्रु शस्त्रों को नहीं जानते हैं। इसलिए अस्त्रों को न जानने वालों का वध अधर्म होते हुये भी मैं तुम्हारी जीत होने के लिये उसे करने में प्रयत्नशील रहूँगा। अब मैं शस्त्र का स्पर्श करके शपथ लेता हूँ कि पाँचालों का वध करके ही शस्त्र खोलूँगा। यह कह कर द्रोणाचार्य युद्ध करने के लिए शत्रुओं की ओर बढ़ गये।

हे राजन् रात्रि के तीन भाग व्यतीत होकर एक भाग शेष रहा था, उस समय दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा। कौरव पक्ष के दो दलों में विभाजित होने के बाद द्रोणाचार्य पांचालों और पाण्डवों की ओर बढ़े। उसी समय श्रीकृष्ण और भीमसेन दोनों ने अर्जुन को दक्षिण ओर से शत्रुसेना को नष्ट करने की प्रेरणा की। तब अर्जुन कर्ण को एक ओर छोड़ कर सब ओर से शत्रु-सेना को मारने लगे। उस काल दुर्योधन, कर्ण

और शकुनि तीनों मिल कर अर्जुन पर वाण-वर्षा करने लगे। अर्जुन उनके सभी शस्त्रास्त्रों को व्यर्थ किये जारहे थे।

उधर राजा द्रुपद और राजा विराट दोनों ही द्रोणाचार्य से युद्ध करने को बढ़े। द्रुपद के तीन पोते चेदि देश के भी वीर योद्धा भी उनका साथ देरहे थे। उस समय अत्यंत क्रुद्ध हुए द्रोणाचार्य ने द्रुपद के पोतों को मारकर चेदि, केकय आदि देशों के अनेक वीरों को जीत लिया और फिर दोनों राजाओं के धनुष काट डाले और अन्त में विष बुझे तीर से उनकी हत्या कर डाली यह देख कर अत्यन्त व्याकुल हुए धृष्टद्युम्न ने शपथ खाकर कहा कि यदि मैं आज द्रोणाचार्य का वध न कर दूँ अथवा उनसे परास्त हो जाऊँ तो मेरे सभी पुण्यकर्म नष्ट होजाँय। ऐसी प्रतीज्ञा कर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को मारने के विचार से वेग से बढ़े, तब दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और आपके अन्य पुत्र आचार्य की रक्षा में लग गये। उस समय उन्होंने पाँचालों के सभी प्रयत्न निष्फल कर दिये। तभी महाबली भीम धृष्टद्युम्न के साथ द्रोणाचार्य की सेना में घुस कर उन पर प्रहार करने लगे। उस समय ऐसा जनविनाशकारी युद्ध हुआ, जैसा कि पहले कभी किसी ने देखा-सुना नहीं होगा। सर्वत्र मरे, अधमरे मनुष्यों और वाहनों के ढेर लगे हुए थे, जिनके कारण रथों के चलने का मार्ग भी रुक गया था।

तदनन्तर द्रोणाचार्य और अर्जुन का सामना होगया। द्रोणाचार्य ने उस समय जो-जो कौशल दिखाये, उन-उन को अर्जुन ने तुरन्त नष्ट कर दिया। अन्त में द्रोणाचार्य ने दिव्यास्त्र का प्रयोग किया, उस समय समूची धरती काँप गई, किन्तु अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्र से उस दिव्यास्त्र का शमन कर दिया। इस प्रकार द्रोणाचार्य और अर्जुन में से कोई किसी को न जीत

सका। तब द्रोणाचार्य पाण्डव सेना का और अर्जुन कौरव सेना का विनाश करने लगे।

उसी समय सात्यकि और दुर्योधन का सामना होगया। दुर्योधन बालकपन की मित्रता का स्मरण करके हँसते हुए बोले—हे मित्र! क्षत्रिय्-धर्म भी कैसा विचित्र है कि आज हम दोनों मित्र ही एक-दूसरे को मारने में प्रयत्नशील हैं। मुझे इस समय बचपन का वह स्नह याद आता है, जो इस रणभूमि के कारण नष्ट होगया है। सात्यकि ने भी हँस कर उत्तर दिया—हे राजकुमार! यह राजसभा या आचार्य का आश्रम नहीं, रणभूमि है। यदि तुम मुझे अपना प्रिय मित्र समझते हो तो मुझे शीघ्र मार डालो, जिससे कि मैं वीरों को मिलने वाले श्रेष्ठ लोक को प्राप्त हो सकूँ। क्योंकि जीवित रह कर मित्रों का यह महादुःख अब मुझ से देखा नहीं जाता।

यह कह कर सात्यकि प्राणों का मोह त्याग कर दुर्योधन से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। यह देख कर दुर्योधन ने भी उन पर बाण बरसा दिये। इस प्रकार उस भयंकर रण में सात्यकि ने राजा दुर्योधन को अपने असंख्य बाणों से ढंक दिया, जिससे अत्यन्त व्यथित हुए दुर्योधन उनके सामने से हट गये और कुछ देर बाद पुनः आकर सात्यकि पर बाण-वर्षा करने लगे। किन्तु सात्यकि को प्रबल जान कर दुर्योधन की सहायतार्थ कर्ण वहां आये, यह देख कर भीमसेन से न रहा गया और वे भी कर्ण के सामने पहुँच कर प्रहार करने लगे। इस प्रकार इधर यह युद्ध चल रहा था और उधर द्रोणाचार्य पाँचालों के संहार में लगे हुए थे। तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—पार्थ! द्रोणाचार्य जब तक हाथ में धनुष लिये हुए हैं, तब इन्हें इन्द्रादि देवता मिल कर भी नहीं मार सकते। इसलिए यदि इन्हें अश्वत्थामा के मरने का विश्वास दिला दिया जाय तो यह हथियार रख देंगे।

कृष्ण के इस परामर्श से अर्जुन सहमत नहीं थे और युधिष्ठिर भी बड़ी कठिनाई से सहमत हो सके। तभी भीमसेन ने मालवाधिपति इन्द्र वर्मा के अश्वत्थामा नामक हाथी का वध कर दिया और फिर द्रोणाचार्य के समीप जाकर कहा—अश्वत्थामा मारा गया।

द्रोणाचार्य का वध वर्णन

संजय बोले—महाराज! अश्वत्थामा के मरने का समाचार सुनकर आचार्य के सभी अंग शिथिल होगए, किन्तु कुछ देर बाद ही अपने पुत्र को अजेय जान कर उन्होंने धनुष उठा लिया और धृष्टद्युम्न की ओर वेग से बढ़े। तब पांचाल देश के बीस हजार वीरों ने उन्हें सब ओर से घेर लिया और भयंकर बाण वर्षा के कारण उन्हें आवृत्त कर डाला इससे कुपित हुए द्रोणाचार्य ने उन बाणों को काट कर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया और उससे पांचालों के सिरों को काट-काट कर धरती पर ढेर लगाने लगे। इस प्रकार पांचाल देश के वे बीसों हजार योद्धा नष्ट हो गए। तत्पश्चात् उन्होंने वसुदान का सिर काट कर मत्स्य देश के पांच सौ और सृंजय सेना के छः हजार वीर तथा दस-दस हजार हाथी-घोड़े भी मार डाले।

हे राजन्! उसी समय महर्षि विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि आदि आकाश से आकर बोले—हे द्रोणाचार्य! अस्त्र न जानने वालों को अस्त्र से मार कर तुम जो अधर्म कर रहे हो, उसे हमारे कहने से बन्द कर दो। अब तुम्हारे परलोक-गमन का समय आगया है। यह क्रूर हत्याकाण्ड तुम्हारे जैसे वेद-वेदांगों के ज्ञाता, सत्य-धर्म में तत्पर ब्राह्मण के लिए अनुपयुक्त है। अब विलम्ब न कर, तुरन्त अस्त्रों को रख दो।

अश्वत्थामा को मृत्यु के समाचार से व्यथित एवं शोकाकुल द्रोणाचार्य जी ऋषियों के वचन सुन कर और भी व्यथित हो गए। फिर भी उन्हें भीमसेन के वचन पर उतना भरोसा न था इसलिए उन्होंने सामने आकर खड़े हुए युधिष्ठिर से उस विषय में पूछा। क्योंकि उन्हें विश्वास था कि युधिष्ठिर कभी झूठ नहीं बोलते हैं। तभी श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्! प्राण-रक्षा के लिए मिथ्या बोलना पाप नहीं है। यदि आचार्य युद्ध से विमुख न हुए तो आधे दिन में तुम्हारी सेना का निःशेष कर डालेंगे। इसलिए मिथ्या कह कर भी अपने पक्ष को बचाना आवश्यक है। यह सुन कर विवश हुए युधिष्ठिर ने भवितव्यता वश आचार्य को सुना कर कह दिया—अश्वत्थामा मारा गया। फिर धीरे से कहा–हाथी अश्वत्थामा मर गया। युधिष्ठिर के मुख से अश्वत्थामा का मरण समाचार सुन कर द्रोणाचाय पुत्रशाक में विह्वल होगये और वे ऋषियों के कहे अनुसार अपने को उस नृशंस हत्या में दोषी-सा मानने लगे। धृष्टद्युम्न को सामने खड़े देख कर भी, वे युद्ध में तत्पर नहीं हुए, राजा युधिष्ठिर का रथ उनके सत्य के कारण पृथिवी से चार अंगुल ऊँचा रहता था, अश्वत्थामा के मारे जाने की झूठ के कारण पृथिवी से भिड़ कर चलने लगा।

पुत्रशोक से दुःखित हुए द्रोणाचार्य ने ऋषियों के वचन मान कर शस्त्रास्त्र रख देने का निश्चय कर लिया, तभी धृष्टद्युम्न ने उन्हें मारने के विचार से एक प्रज्वलित बाण अपने धनुष पर चढ़ाया, तब आचार्य ने उसे व्यर्थ करने की बहुत चेष्टा की। इस समय उनके दिव्य अस्त्र प्रकट नहीं होरहे थे और अक्षय तरकस भी खाली हो चुका था। किन्तु क्षण भर बाद ही उनके हाथ में महर्षि अंगिरा-प्रदत्त एक उग्र बाण आगया, जिससे वे युद्ध में पुनः तत्पर होगए। उन्होंने धृष्टद्युम्न के रथ के ईशा,

चक्र तथा बन्धन काट कर धनुष, ध्वजा और सारथी को भी नष्ट कर दिया। फिर तो उनका रूप पुनः प्रचण्ड होगया और वे अन्धाधुन्ध बाण-वर्षा में तत्पर हुए। उस समय आचार्य के वश में आये हुए धृष्टद्युम्न को सात्यकि ने बचा लिया।

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य का पुनः भयंकर युद्ध होने लगा। आचार्य ने क्रोध पूर्वक धृष्टद्युम्न का धनुष काटकर वक्षःस्थल में गम्भीर आघात किया जिससे प्रद्युम्न व्यथित हो उठे। यह देख कर भीमसेन ने आचार्य का रथ पकड़ कर धीरे से कहा—ब्रह्मन्! अहिंसा धर्म के मूल ब्राह्मण ही हैं, यदि वे ही चाण्डालों और म्लेच्छों के समान हत्याकांड पर उतारू होजाँयगे तो धर्म कैसे टिकेगा? आपने एक पुत्र के लिए असंख्य लोगों को मारा है, फिर भी आपको लज्जा नहीं आरही है। धर्म युद्ध करते हुए क्षत्रियों का आपने अधर्म पूर्वक संहार किया है। आप जिस पुत्र के लिए प्राण धारण किये हुए है, वह अश्वत्थामा उधर पीछे की ओर मरे हुए पड़े हैं। धर्मराज युधिष्ठिर ने भी इस समाचार की पुष्टि आपके सामने की है। तब क्या अब भी इसमें कुछ संदेह शेष रह गया है?

यह सुन कर आचार्य ने धनुष रख दिया और बोले-कर्ण! कृपाचार्य! दुर्योधन! मैं अब शस्त्रास्त्रों को रखता हूँ। तुम लोग मन लगा कर युद्ध करना। तुम्हारा कल्याण हो। यह कह कर द्रोणाचार्य जी जोर-जोर से अश्वत्थामा को पुकारते हुए रथ के आसन पर बैठ गये और परमात्मा से आत्मा को मिला लिया। तथा प्रणव का उच्चारण कर दुर्लभ उच्च लोक में चले गए। इसी समय अवसर देख कर धृष्टद्युम्न तलवार लेकर द्रोणाचार्य की ओर दौड़े तथा उनके केश पकड़ कर मस्तक काट डाला और फिर सिंहनाद करने लगे। यह देख कर सभी दर्शक धृष्टद्युम्न को धिक्कार देने और दुःखपूर्ण कोलाहल करने

लगे। यद्यपि धृष्टद्युम्न को तलवार लेकर आचार्य की ओर बढ़ते समय अर्जुन ने भी चिल्लाकर कहा था कि हे द्रुपदपुत्र! आचार्य को मारना मत, उन्हें जीवित ही ले आना, तथापि धृष्टद्युम्न ने किसी की नहीं सुनी। द्रोणाचार्य का मरण देख कर दोनों ओर की सेनाएँ भाग गईं।

अश्वत्थामा द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग

संजय बोले—महाराज! जी छोड़ कर भागती हुई कौरव-सेना को देख कर अश्वत्थामा ने दुर्योधन के पास जाकर पूछा—राजन्! आपकी सेना इस प्रकार बेदम हुई क्यों भाग रही है? अपने पक्ष के ऐसे कौन-से योद्धा की मृत्यु हुई है, जिससे आपकी सेना की ऐसी दशा हुई है। यह सुनकर दुर्योधन उस अत्यन्त अप्रिय समाचार को स्वयं न कह सके, तब उनका संकेत पाकर कृपाचार्य ने कहा—आचार्य पुत्र! आज युद्ध में तुम्हारे महान् तेजस्वी पिता का प्राणान्त हो गया। यह कहकर उन्होंने आचार्य के मरने का सम्पूर्ण वृतान्त अश्वत्थामा को आद्योपान्त कह दिया। जिसे सुनकर चोट खाये सर्प के समान अथवा ईंधन प्राप्त कर अधिक प्रचण्ड हुए अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित हो गये। उन्होंने दुर्योधन से कहा—राजन! युद्ध में हार-जीत तो होती ही है और धर्मयुद्ध में प्राण त्याग कर मेरे पिता भी उच्च लोक को गये ही हैं। किन्तु सबके सामने केश पकड़े जाने का अपमान उन्हें सहना पड़ा, यही बात मुझे अत्यन्त व्यथित कर रही है। मुझे खेद तो यही है कि मेरे जीवित रहते मेरे पिता की यह दुर्दशा हुई है। दुरात्मा धृष्टद्युम्न को इसका दारुण फल भोगना होगा और धर्म का ढोंग करने वाले जिस युधिष्ठिर ने मिथ्या बोल कर मेरे पिता से शस्त्र-त्याग कराया है, उनके रक्त का पान भी यह धरती शीघ्र ही करेगी। अब मैं प्रतिज्ञा करता हूं

कि उन सब पांचालों के सहित धृष्टद्युम्न को अवश्य मारूँगा। आज मेरे धनुष से निर्गत हुए असंख्य बाण पाण्डवों का संहार करेंगे। उस नारायणास्त्र का प्रयोग और उपसंहार सहित मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता। यह अस्त्र स्वयं भगवान् नारायण ने मेरे पिता को प्रदान किया था। मैं उसी अस्त्र के प्रभाव से आज भीषण हत्याकाण्ड मचा दूँगा। अश्वत्थामा की यह प्रतिज्ञा सुनकर समूची कौरव सेना रणक्षेत्र के लिए चल पड़ी। उस समय युद्ध के विविध बाजे बजने लगे। तभी अश्वत्थामा ने सहसा उस दिव्य नारायणास्त्र को प्रकट किया। जिसके प्रभाव से वज्रपात युक्त भीषण वर्षा होने और आँधी चलने लगी। धरती तल कम्पायमान हो गया। प्रलय जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई, सभी राजागण उसके प्रभाव से भय विह्वल हो उठे।

उधर पाण्डव, कौरव-सेना को इस प्रकार उत्साहित देख कर उसके कारण पर विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा—हे अर्जुन! दुर्योधन की भागती हुई मृतप्रायः सेना को किस वीर ने आश्वासन दिया है, जिससे वह इतनी गरज रही है। अर्जुन बोले—राजन्! यह वही गुरुपुत्र अश्वत्थामा गर्जन कर रहे हैं, जिनके पिता के केश पकड़ कर सिर काट लेने का निन्दित कर्म धृष्टद्युम्न ने किया है और जिन्हें आप जैसे सत्यवादी ने भी झूँठ बोलकर धोखा दिया तथा उनकी अधर्म मृत्यु में सहायक हुए। महाराज! अब इस कलङ्क को आप और हम सब किस प्रकार से धो सकेंगे? अब यदि आप में शक्ति हो तो धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा के कोप से बचाने का शीघ्र यत्न कीजिये।

अर्जुन की बात सुनकर भीमसेन ने कहा—अर्जुन! तुम कैसी कायरों जैसी बातें करते हो? तेरह वर्ष के बनवास के

कष्टों को भूल कर आज तुम इतने धर्मधुरन्धर बने हो ? अश्वत्थामा हमारा कुछ भी नहीं कर सकते, मैं अकेला ही गदा लेकर उन्हें मार डालूगा। धृष्टद्युम्न ने कहा—वीरो ! ब्राह्मण के छः कर्म कहे हैं—पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना, और दान देना, द्रोणाचार्य इनमें से किसी भी कर्म को न करने के कारण ब्राह्मण-धर्म से रहित थे तो उनके मारने में क्या दोष था ? क्षत्रिय का धर्म ही शत्रु को मार डालना या स्वयं मर जाना है। आचार्य से मेरा पुराना वैर था, इसलिए भी उन्हें मार देना मेरा धर्म था। यह सुन कर सात्यकि को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कहा--क्या यहाँ ऐसा कोई नहीं है जो इस नराधम का तुरन्त वध कर दे। यह अब भी अपने किये हुए पाप कर्म से लज्जित नहीं होरहा है। तू मेरे ही सामने मेरे गुरु को अधर्मी बता रहा है तो यदि कुछ शक्ति हो तो गदा लेकर सामने आ जा। इस पर धृष्टद्युम्न ने कहा—सात्यकि ! इस प्रकार की बातों का कोई प्रयोजन नहीं है। तुमने ही भूरिश्रवा को प्रायोपवेशन की स्थिति में मार कर कौन-सा धर्म का कार्य किया था ? और यदि तुममें बल था तो तुमने उसे तभी क्यों न मार डाला जब भूरिश्रवा ने तुम्हें पृथिवी पर पटक कर लात जमाई थी। इसलिए यही उचित है कि तुम पूर्ववत् कौरवों से युद्ध करो, मुझसे अटक कर मरने के लिए क्यों तत्पर हो रहे हो? यह सुन कर सात्यकि ने कहा—अरे दुरात्मा ! तेरा काल ही आगया है तो मैं क्या करूँ ?

राजन् ! यह कह कर सात्यकि ने गदा हाथ में ली और धृष्टद्युम्न की ओर झपटे। तभी श्रीकृष्ण के संकेत से भीमसेन ने तुरन्त रथ से उतर कर सात्यकि को बलपूर्वक रोका। उसी समय सहदेव ने कहा—हे पुरुषसिंह ! यादवगण और पांचालगण दोनों ही हमारे सर्वश्रेष्ठ सहायक हैं। हमारे सम्बन्ध से दोनों ही

परस्पर सम्बन्धी और मित्र भी हैं। इसलिए हे वीर ! आप अपना क्रोध शान्त कीजिए। इस प्रकार समझा-बुझा कर पाण्डवों ने दोनों का क्रोध शान्त किया और फिर सब लोग शत्रुओं की ओर वेग पूर्वक चल दिये।

उस समय अश्वत्थामा का चलाया हुआ नारायणास्त्र भयंकर संहार में प्रवृत्त हुआ। तब युधिष्ठिर बुरी तरह घबरा गये। यह देख कर श्रीकृष्ण ने कहा—वीरो ! तुम सब अपने-अपने वाहनों से नीचे उत्तर कर शस्त्रास्त्र रख दो और पृथिवी पर पड़ जाओ। नारायणास्त्र से बचने का यही एक मात्र उपाय है। क्योंकि यह अस्त्र केवल युद्ध करते हुए पुरुष को ही मारता है। जो लोग मन में भी युद्ध करने का विचार रखें, उन्हें यह जीवित नहीं छोड़ता। किन्तु हाथ जोड़ते, प्रणाम करते, वाहनों से उतर कर सम्मान करते हुए पुरुषों पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता।

यह सुन कर, पाण्डव पक्ष के सभी पुरुष हथियार रख कर विनीत भाव से धरती पर पड़ गये। किन्तु भीमसेन को इससे अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वे किसी को साथ न देता देख कर अकेले ही युद्ध करने के लिए चल दिये। उन्होंने सोचा यह अस्त्र मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। मुझमें दस सहस्र गजराजों का बल है, इसलिए उस प्रज्वलित अस्त्र को अभी नष्ट किये देता हूँ। यह सोचते हुए भीमसेन ने अश्वत्थामा के पास पहुँच कर अपने असंख्य बाणों से उनके रथ को ढँक दिया। तब अश्वत्थामा ने भी उन पर असंख्य तीक्ष्ण बाणों के प्रहार किये। नारायणास्त्र के प्रभाव से बचने के लिए सभी वीरों ने वाहनों से उतर कर शस्त्र रख दिये थे, इसलिए उन सब को छोड़कर वह अस्त्र केवल भीमसेन के सिर पर पहुँच कर अपना प्रचण्ड

रूप दिखाने लगा, क्योंकि वे ही युद्ध से नहीं हटे थे। यह देख कर पाण्डव और उनके पक्ष के सब लोग हाहाकार कर उठे।

तभी अर्जुन ने वारुणास्त्र चला कर भीमसेन के शरीर को ढक दिया। किन्तु नारायणास्त्र के तेज ने भीमसेन को फिर भी घेरे रखा। यह देख कर अर्जुन और श्रीकृष्ण शीघ्र ही भीमसेन की ओर दौड़े और अपने योगबल के प्रभाव से नारायणास्त्र के तेज के भीतर जाकर भीमसेन के हाथ से बलपूर्वक शस्त्रास्त्र छीन कर रथ से घसीटने लगे। किन्तु भीमसेन तब भी सिंहनाद किये जा रहे थे। उनसे श्रीकृष्ण ने कहा—भीमसेन! इस समय शस्त्र से काम नहीं चलेगा। तुम तुरन्त शस्त्र छोड़ कर रथ से नीचे उतर पड़ो, इसी में हमारा कल्याण है। यह सुन कर विवश हुए भीमसेन रथ से नीचे उतर आये, तभी नारायणास्त्र का तेज शान्त हो गया।

इस प्रकार नारायणास्त्र के बिल्कुल शान्त हो जाने पर पाण्डव-सेना ने पुनः शस्त्र ग्रहण किये और सिंहनाद करते हुए बढ़ने लगे। यह देखकर दुर्योधन ने कहा—आचार्य पुत्र! पाण्डव और पांचाल पुनः आगए हैं, इसलिए आप भी उसी अस्त्र का पुनः प्रयोग करके इन्हें परास्त कीजिये। अश्वत्थामा ने कहा—राजन्! उस अस्त्र का पुनः प्रयोग संभव नहीं है। यदि दुबारा प्रयोग किया भी जाय तो यह प्रयोगकर्त्ता को ही नष्ट कर देता है। बचने का उपाय बता कर कृष्ण ने ही इस अस्त्र को विफल कर दिया। दुर्योधन बोले—यदि ऐसा है तो आप गुरुद्रोही पांचालों और पाण्डवों को मारने का कुछ अन्य उपाय करो। क्योंकि अस्त्र विद्या के ज्ञान में आपसे बढ़ कर कोई और इस संसार में नहीं है। यह सुन कर वीर अश्वत्थामा अन्य अस्त्रों को लेकर युद्ध करने में प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपने प्रहारों से धृष्टद्युम्न को पीड़ित कर दिया।

उसी समय सात्यकि ने अश्वत्थामा के समक्ष जाकर उनके सारथी को आहत कर ध्वजा और धनुष को नष्ट कर दिया और रथ को तोड़ कर उनके हृदय में बाण मारे, जिससे वे अचेत हो गए। यह देख कर कृपाचार्य और कर्ण आदि के साथ आगे बढ़ कर दुर्योधन ने सात्यकि पर बाण वर्षा की। तब पीड़ित हुए सात्यकि ने उन सभी महारथियों के रथों को नष्ट कर दिया। उसी समय अश्वत्थामा सचेत होकर अपना पराक्रम दिखाने लगे। उनके बाण से सात्यकि बेहोश हो गए, यह देखकर सारथी उन्हें वहाँ से हटा ले गया। तब अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न की भोंहों में प्रहार किया, जिससे व्याकुल धृष्टद्युम्न ध्वजा के डन्डे को पकड़ कर बैठ गये। यह देखकर अर्जुन, भीमसेन, वृद्धक्षत्र, चेदिदेश के युवराज और अवन्तिनरेश सुदर्शन ने अश्वत्थामा का सामना किया। किन्तु महाबली अश्वत्थामा ने सुदर्शन, बृद्धक्षत्र और चेदि युवराज का वध कर दिया। इस प्रकार अपने पक्ष के तीन महारथियों की मृत्यु हुई देख कर भीमसेन अत्यन्त क्रोधित हो उठे।

तत्पश्चात् भीमसेन ने अश्वत्थामा पर प्रहार किया। वे भी उनके प्रहारों को व्यर्थ करने लगे। इस प्रकार घोर युद्ध करते हुए अश्वत्थामा ने भीमसेन के सारथी को आहत एवं अचेत कर दिया, तब उनके घोड़े उस रथ को लेकर, बिना हाँके ही एक दिशा में भाग खड़े हुए। यह देख कर अश्वत्थामा शङ्खनाद करने लगे।

यह देख कर अर्जुन उनके पास पहुँच कर बोले गुरुपुत्र ! यह धृष्टद्युम्न आपका भी वध करेंगे। साथ ही मैं और श्रीकृष्ण भी आपके समक्ष उपस्थित हैं। आप अपना पराक्रम प्रकट कीजिए। यह सुनकर अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने आचमन करके आग्नेयास्त्र द्वारा अर्जुन को मारने का विचार किया। वह अस्त्र अर्जुनकी ओर बढ़ताहुआ, पाण्डव सेना को अपनी प्रचंड

ज्वालाओं में भस्म करने लगा। यह देख कर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र द्वारा उसका तेज शान्त कर दिया, यह देख कर अश्वत्थामा अत्यन्त दुःखित होकर रणभूमि से चल दिये। उसी समय भगवान् वेदव्यास जी के उन्हें दर्शन हुए, तब अश्वत्थामा ने उनसे पूछा—भगवन् ! मेरे अस्त्रों के निष्फल होने का क्या कारण रहा, यह मुझे बताइये। व्यासजी बोले—द्रोणपुत्र ! यह वासुदेव नारायण ऋषि के अवतार हैं,जिन्होंने भगवान् शङ्कर से किसी भी माया का भय न होने का वर प्राप्त किया था। इस समय यह अपनी माया से जगत् को मोहित कर रहे हैं तथा उन्हीं नारायण के तप से 'नर' की उत्पत्ति हुई थी, वही नर यह अर्जुन हैं। हे महामते ! तुम भी रुद्र के अंश से उत्पन्न हो तथा तुम्हारी पूजा से सन्तुष्ट हुए भगवान् रुद्र ने तुम्हें भी अनेक वर दिये थे। यह वासुदेव भी रुद्र से उत्पन्न एवं उन्ही के भक्त हैं। भगवान् शङ्कर इनसे अत्यन्त प्रीति रखते हैं, इसलिए कल्याण की इच्छा वाले पुरुषों को इन वासुदेव भगवान् का पूजन करना चाहिये।

वेदव्यास के वचन सुनकर अश्वत्थाया का संदेह नष्ट हो गया। उन्होंने भगवान् रुद्र को प्रणाम किया और कृष्ण को साक्षात् नारायण जान कर युद्ध बन्द करा दिया। यह देख कर पाण्डवों ने भी युद्ध बन्द कर दिया। हे राजन् ! इस प्रकार पांच दिन घोर युद्ध करके द्रोणाचार्य जी अन्त में ब्रह्मलोक को गये। उस समय कौरवों में अत्यन्त शोक व्याप्त हो गया।

हे राजन् ! कौरवों के युद्ध से हट जाने पर भगवान् वेदव्यासजी पाण्डवों के पास आये, उस समय अर्जुन ने उनसे पूछा—भगवन् ! मैं जब बाण-वर्षा द्वारा शत्रु-नाश के लिए यत्न करता, तब यह देखता था कि कोई अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष शत्रुओं को मारता हुआ मेरे आगे-आगे चलता था, वह अपने शूल को तानकर जिधर जाता उधर ही शत्रु-सेना फट कर

भागने लगती या मारी जाती थी। वह पुरुष कौन था, यह बताने की कृपा कीजिए।

व्यासजी बोले—हे अर्जुन ! वे महापुरुष वरदाता महादेव जी हैं। हे पार्थ ! तुम उन्हीं की शरण में जाओ देखो उन्हीं भगवान् रुद्र ने दक्ष यज्ञ विध्वंस किया, उन्हीं ने त्रिपुरासुर के तीनों पुर नष्ट कर दिये, उस दृश्य को देखने के लिए देवी पार्वती वहां पधारीं उनकी गोद में पंचशिख बालक के रूप में स्वयं महादेव जी विराजमान थे, उस समय ईर्ष्यावश इन्द्र ने उन बालरूप प्रभु पर वज्र प्रहार का उद्योग किया तो इन्द्र का हाथ जहाँ का तहाँ रह गया। तब देवताओं ने ब्रह्माजी से वह सब हाल कहा। ब्रह्माजी योग-बल से यह जान कर कि यह तो स्वयं भगवान् महादेव हैं, उनकी स्तुति करने लगे। तब प्रसन्न हुए शिवजी की कृपा से इन्द्र का हाथ बन्धन मुक्त कर दिया। हे अर्जुन ! वे ही भगवान् ! रुद्र, शिव, अग्नि एवं सर्वरूप सर्वज्ञ हैं। त्रिलोकी का सम्पूर्ण ऐश्वर्य उन्हीं का वैभव है। वे पापी या पुण्यात्मा सभी के शरीरों में समभाव से पाँच वायुओं के रूप में विद्यमान हैं। जो मनुष्य उन विश्वेश्वर की भक्ति करता है, उसे वे भगवान् त्रिलोचन इच्छित वर प्रदान करते हैं। हे अर्जुन ! अब तुम युद्ध के उद्योग में लगो, क्योंकि महात्मा श्रीकृष्ण तुम्हारे समीपवर्ती एवं मन्त्री हैं, इसलिए तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती। इस प्रकार कह कर भगवान् वेदव्यासजी वहाँ से चले गये।

द्रोण पर्व समाप्त

——

कर्ण पर्व

कर्ण के सेनापतित्व में भयंकर युद्ध का प्रारम्भ

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! द्रोणाचार्यजी के मरने से निस्तेज हुए दुर्योधन सभी राजाओं को साथ लेकर अश्वत्थामा के पास गये और उनके चारों ओर बैठ कर युद्ध की स्थिति पर विचार-विमर्श करने लगे । इस प्रकार उनकी वह रात्रि सौ वर्ष के समान व्यतीत हुई । प्रातःकाल होने पर नित्यकर्म से निवृत्त होकर उन्होंने महाप्रतापी कर्ण को सेनापति बनाया, जिन्होंने असंख्य शत्रुओं को मार कर अर्जुन के बाण से प्राणों को छोड़ दिया । कर्ण की मृत्यु के पश्चात् संजय ने वह समाचार हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र को सुनाया । उन्होंने कहा—महाराज ! मैं संजय हूँ । मुझे अत्यन्त दुःख के साथ यह समाचार देना पड़ रहा है कि द्रोणाचार्य जी की मृत्यु के पश्चात् महाबली कर्ण भी अर्जुन के हाथों मारे गये ।

उस दुःखद समाचार को सुन कर महाराज धृतराष्ट्र अथाह शोक-समुद्र में डूब गये । उनकी अचेतावस्था देख कर रनिवास की स्त्रियाँ भी अत्यन्त चिन्तित हो उठीं । उन सब को महात्मा विदुर एवं संजय ने समझा-बुझा कर शान्त किया । तब सचेत हुए महाराज धृतराष्ट्र धैर्य धारण कर पूछने लगे—संजय ! जिस प्रकार महावीर कर्ण मारे गये, वह सब वृत्तान्त मुझे शीघ्र सुनाओ ।

संजय बोले—हे राजन् ! भीष्म पितामह ने दस दिनों में पाण्डव-सेना के एक अर्बुद वीर मार कर रणशय्या पर शयन

किया । द्रोणाचार्य ने पाँच दिनों में पांचालों के असंख्य वीरों को मारा और पन्द्रहवें दिन स्वयं भी मारे गये । भीष्म और द्रोण के मारने से बची हुई पाण्डव-सेना में से भी आधी सेना को समाप्त करके वीरवर कर्ण मृत्यु को प्राप्त हुए । राजकुमार विविंशति, विकर्ण, अवन्ति के राजकुमार विन्द-अनुविन्द, महावीर जयद्रथ, युद्धदुर्मद, दुःशासन पुत्र, महाराज भगदत्त, भूरिश्रवा आदि अनेकानेक रथी, महारथी तथा महावीर दुःशासन भी मारे गये । हे राजन् ! आपके पुत्रों की विजय-आशा और कौरव-पाण्डव-वैर के मूल रूप महारथी कर्ण थे, जिनका वध करके पाण्डवगण रणसागर के पार होगये हैं ।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! कर्ण के सभी अंग वज्र के समान थे, उनके सामने युद्ध में कोई भी नहीं ठहर सकता था । दुर्योधन की वृद्धि के लिए कर्ण ने सब शत्रुओं को जीत लिया था । उन कर्ण की मृत्यु का समाचार सुन कर मैं शोक-सागर में डूब गया हूँ । मेरा हृदय वज्र के समान है जो ऐसे दुःख उठा कर भी मुझे मरने नहीं देता । संजय ने कहा—महाराज ! आपको सभी लोग यश, लक्ष्मी, कुल, तपस्या और शास्त्र ज्ञान में राजा ययाति के समान समझते हैं । इसलिए आप शोक को छोड़ दीजिए । अब आपकी आज्ञानुसार मैं आपको युद्ध का वृत्तान्त सुनाता हूँ, उसे सावधान चित्त से सुनिये ।

महात्मा अश्वत्थामा ने सम्पूर्ण पाण्डव-सेना को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करके नारायणास्त्र और आग्नेयास्त्र चलाये, किन्तु वे निष्फल होगए । तब आपकी सेना भाग खड़ी हुई, तब दुर्योधन ने उस सेना को उत्साहित करके पाण्डवों से डट कर युद्ध किया । और फिर रात्रि में सब राजाओं के साथ बैठकर भविष्य के कार्यक्रम पर विचार करके महावीर कर्ण को सेनापति बनाना निश्चित किया । तब कर्ण बोले—महाराज ! मैं पहिले भी कह

चुका हूँ कि कृष्ण सहित सब पाण्डवों और उनके पुत्रों को परास्त कर दूँगा। वह प्रतिज्ञा आज भी मेरे सामने है। यह सुन कर दुर्योधन आदि सब राजाओं ने सेनापतिपद पर कर्ण का अभिषेक किया। उस समय सभी कर्ण की स्तुति करने लगे। इस प्रकार सेनापति होकर कर्ण ने सब सेनाओं को तैयार होने की आज्ञा दी और प्रातःकाल वीर कर्ण के आधिपत्य में सब योद्धा रणक्षेत्र में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने व्यूह बना कर सेना को खड़ा किया। यह देखकर पाण्डवों ने भी व्यूह रचना करके युद्ध आरम्भ कर दिया। उस युद्ध में कुलूताधिपति क्षेमधूर्ति को भीमसेन ने मार दिया।

इसके पश्चात् भीमसेन की अश्वत्थामा से टक्कर हुई। उधर केकयदेश के राजकुमार विन्द और अनुविन्द सात्यकि से जूझ कर मारे गये। आपके पोते श्रुतकर्मा ने अभिसार-नरेश चित्रसेन को मार कर उनकी सब सेना नष्ट कर दी। उधर प्रतिविन्ध्य ने आपके पक्ष के राजा चित्र का वध कर दिया, तब कौरव वीर प्रतिविन्ध्य को मारने के लिए दौड़े, किन्तु उन्होंने समूची कौरव-सेना को शीघ्र ही भगा दिया।

भीमसेन और अश्वत्थामा ने जो विकट युद्ध किया उसमें दोनों ही एक-दूसरे के प्रहार से आहत हुए एवं अचेत हो गए। तब उन दोनों के सारथी अपने-अपने स्वामी सहित रथों को रणक्षेत्र से हटा ले गए। उसके बाद अर्जुन और अश्वत्थामा का सामना हुआ। उसमें अश्वत्थामा ने अत्यन्त पराक्रम प्रदर्शित किया। किन्तु अन्त में अर्जुन के भीषण प्रहारों से पीड़ित अश्वत्थामा के घोड़े भी सन्तप्त होकर भाग खड़े हुए और तब अश्वत्थामा ने पुनः अर्जुन के सामने जाने का साहस नहीं किया। यह देख कर अर्जुन संशप्तकगण से युद्ध करने के लिए उनकी ओर बढ़े।

उसी समय कौरव पक्ष का पराक्रमी राजा दण्डधार पाण्डव-सेना में घुस कर संहार करने लगा। यह देख कर कृष्ण ने अर्जुन का रथ उसकी ओर बढ़ा कर अर्जुन से कहा—पार्थ ! पहले इसी से निपट लेना ठीक है। यह सुन कर अर्जुन ने अनेक बाण मार कर दण्डधार का वध कर दिया और फिर सैकड़ों बाण उसके हाथी को मारे तब वह हाथी आर्तनाद करता हुआ भागा और महावत सहित पृथिवी पर गिर कर मर गया। यह देख कर महाबली दण्ड अर्जुन के सामने आया। उसने तीन तोमर अर्जुन को और पाँच श्रीकृष्ण को मारे। तब अर्जुन ने उसकी भी दण्डधार जैसी दशा कर दी।

तत्पश्चात् अर्जुन का रथ, बचे हुए संशप्तकगण की ओर बढ़ा। यह देख कर आपके पक्ष के वीर राजागण अर्जुन को रोकने के लिए बढ़े। अर्जुन ने उनके द्वारा की गई असंख्य बाण-वर्षा को अपने बाणों से व्यर्थ करके अपने तीक्ष्ण प्रहारों द्वारा उस असंख्य सेना को नष्ट कर दिया। इस प्रकार हजारों हाथियों घोड़ों और असख्य मनुष्यों से परिपूर्ण वह संशप्तक-दल अल्प समय में ही काल-कलावित होगया।

उनका संहार करके अर्जुन लौट रहे थे कि तभी उन्होंने अपनी सेना का भारी कोलाहल सुना। तब वे तुरन्त वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने देखा कि महाबली पाण्ड्यराज मलयध्वज कौरव-सेना को सन्तप्त कर रहे हैं। उनके पराक्रम को देख कर श्रीकृष्ण को भी अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तभी अश्वत्थामा ने उनके पास पहुँच कर कहा—राजन् ! आपका बल-पौरुष प्रसिद्ध है और मैं समझता हूँ कि यहाँ मेरे अतिरिक्त ऐसा कोई दूसरा पुरुष नहीं है जो आपसे युद्ध कर सके। इसलिए इन अनेक प्राणियों का नाश करने की अपेक्षा आप मुझ अकेले से ही युद्ध कीजिए।

मलयध्वज ने अश्वत्थामा की बात मान ली। उन दोनों में भयंकर युद्ध प्रारम्भ होगया। अश्वत्थामा ने एक साथ हजारों बाण बरसाये। मलयध्वज ने उन सब को व्यर्थ करके, उनके रथ-चक्र रक्षकों का वध कर दिया। तब अश्वत्थामा की बाण वर्षा अत्यन्त तीव्र हो गई। उन्होंने आठ बैलों से खींचे जाने वाले आठ छकड़ों में भरे हुए सभी बाण आधे प्रहार में बरसा डाले। किन्तु उस भीषण बाण-वर्षा को मलयध्वज भी निरन्तर नष्ट करते रहे। यह देख कर अश्वत्थामा का क्रोध बढ़ गया। उन्होंने मलयध्वज के रथ को काट डाला। तब मलयध्वज एक हाथी पर चढ़ कर युद्ध करने लगे और अन्त में अश्वत्थामा के हाथ से हाथी सहित मारे गए। यह देख कर राजा दुर्योधन ने अश्वत्थामा का अत्यन्त सत्कार किया।

पाण्ड्यराज की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन! महाराज युधिष्ठिर कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। अन्य भाई भी कर्ण के आगे से हट गये। यदि तुम्हारे चारों भाई यहाँ लौट आयें तो शत्रु दल को भगाया जा सकता है। अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! रथ को कर्ण की ओर ले चलो। उसी समय भीमसेन आदि भी आगये। तब कर्ण के साथ घोर संग्राम प्रारम्भ हुआ। उस समय कर्ण ने अपना अद्भुत पराक्रम दिखाया। दोनों ओर के अनेकों योद्धा मारे गये या भाग गये। तब सहदेव दुःशासन से और नकुल कर्ण से भिड़ गये। कर्ण ने नकुल को इतना व्यथित किया कि वे भाग खड़े हुए, तब कर्ण ने उन्हें पकड़ कर कहा—नकुल! तुम्हें मैंने बारम्बार हराया है, किन्तु इससे तुम लज्जित मत होना। मैं तुम्हें मारूँगा नहीं। किन्तु अब अपने समान बल वाले से ही युद्ध करना। यह कह कर कर्ण ने नकुल को छोड़ दिया। कुन्ती से जो चार पाण्डवों के न मारने की प्रतिज्ञा की थी, उसी के कारण उन्होंने नकुल को नहीं मारा।

हे राजन् ! उधर पाण्डवों की ओर से आपके ही एक पुत्र युयुत्सु कौरव-सेना को नष्ट करने में लगे थे। उनका महावीर उलूक से सामना हुआ, तब उलूक ने उनके घोड़ों को मार कर युयुत्सु को भी पीड़ित किया, जिससे व्याकुल होकर वे उलूक के सामने से हट गये। इधर आपके पुत्र श्रुतकर्मा ने शतानीक के रथ, अश्व और सारथी आदि को मार दिया तब शतानीक ने श्रुतकर्मा पर गदा फेंक कर उनके रथ, सारथी, घोड़े, नष्ट कर दिये। तत्पश्चात् रथ से विहीन हुए दोनों वीर युद्ध से हट गये।

शकुनि और सुतसोम के मध्य जो युद्ध हुआ, वह भी कम भयंकर नहीं था। सुतसोम ने शकुनि पर जो अधकटा खड्ग फेंका,उसने शकुनि का धनुष काट डाला और रथविहीन सुतसोम शीघ्रता से श्रुतकीर्ति के रथ पर चले गये। तब शकुनि पाण्डव-सेना का संहार करते हुए रणभूमि में विचरने लगे।

उसी समय कृपाचार्य का धृष्टद्युम्न से सामना हुआ तब उनके मर्मभेदी बाणों से अत्यन्त पीड़ित हुए धृष्टद्युम्न वहाँ से हट गये। तब कृपाचार्य धृष्टद्युम्न के पीछे चलते-चलते सिंहनाद करने लगे। उधर कौरव-सेना के संहार में प्रवृत्त शिखण्डी को कृतवर्मा ने रोकने की चेष्टा की। तब शिखण्डी के बाणों से उनका शरीर बुरी तरह छिन्न-भिन्न होगया। फिर भी वे शिखण्डी पर प्रहार करते ही रहे। जिनसे पीड़ित हुए शिखण्डी को अचेत देखकर उनका सारथी शीघ्रता से उन्हें हटा लेगया। यह देखकर पाण्डव-सेना वहाँ से भाग खड़ी हुई।

सोलहवें दिन के युद्ध की समाप्ति

संजय ने कहा—हे राजन् ! रुई के ढेर को इधर-उधर उड़ाये जाने के समान अर्जुन जब आपकी सेना को मार कर इधर-

उधर भागने लगे, तब कौरव, शिबि, त्रिगर्त, शाल्व, नारायणी आदि सेनाएँ मिल कर अर्जुन को रोकने के लिए आगे बढ़ीं। उस समय जो अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा, उसमें अर्जुन ने शत्रुंजय, सौश्रुति और चन्द्रदेव को मार डाला। तभी सत्यसेन ने श्रीकृष्ण पर एक तीक्ष्ण तोमर से प्रहार कर सिंहनाद किया। वह तोमर कृष्ण की बाँईं भुजा को विदीर्ण करता हुआ धरती पर गिर गया, जिसके कारण कृष्ण के हाथ से घोड़ों की रास और कोड़ा भी गिर गया। यह देख कर क्रोध-विह्वल अर्जुन ने सत्य के सिर को भल्लबाणों से छिन्न करके धरती पर गिरा दिया। तत्पश्चात् वे हजारों संशप्तकों को मारने लगे। इस प्रकार बहुत-से संशप्तकों का अर्जुन ने संहार कर दिया। जिससे मर कर गिरे हुए मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के कारण वह भूखण्ड अत्यन्त दुर्गम दिखाई देने लगा।

इसी बीच राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन में युद्ध होने लगा। युधिष्ठिर ने उनके घोड़े, सारथी. ध्वजा और धनुष को नष्ट कर दिया तो वे रथ से कूद पड़े। यह देखकर कर्ण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि वीर उनकी सहायता के लिए आगए और उधर पाण्डव भी युधिष्ठिर को सहायता करते हुए युद्ध करने लगे। तत्पश्चात् कर्ण पांचाल सेना को नष्ट करने लगे तो भीमसेन कौरवों की गजसेना को चूर्ण करने में तत्पर हुए।

राजन् ! उसी समय राजा दुर्योधन दूसरे रथ पर चढ़ कर युद्ध करने लगे। उन्होंने युधिष्ठिर का धनुष काट डाला, तब उन्होंने भी दुर्योधन के धनुष को काट डाला। फिर दोनों ही दूसरे धनुष लेकर भयंकर बाण-वर्षा में प्रवृत्त हुए। उस युद्ध में युधिष्ठिर की छोड़ी हुई एक भयंकर शक्ति ने दुर्योधन के हृदय पर गंभीर चोट की, जिससे वे मूर्छित होगए। उसी समय कृतवर्मा ने आकर आपके पुत्र की रक्षा की।

तत्पश्चात् आपके पक्ष वीर महाबली कर्ण को आगे कर घमासान युद्ध करने लगे। उसमें दोनों ओर के अगणित वीरों का संहार हुआ। कर्ण के अस्त्र से पीड़ित हुई पाण्डव-सेना उनके सामने नहीं ठहरती थी, यह देख कर अर्जुन उनके अस्त्रों को विफल करने लगे। फिर अर्जुन के असंख्य बाणों की चोट से आपकी सेना भाग खड़ी हुई। इतने में ही सूर्यास्त होने के कारण सोलहवें दिन के उस युद्ध की समाप्ति हुई।

राजा शल्य से कर्ण के सारथी बनने की प्रार्थना

संजय बोले—महाराज! सत्रहवें दिन प्रातःकाल कर्ण ने दुर्योधन से कहा—राजन्! आज में अर्जुन से युद्ध करूँगा और या तो मैं उसे मार दूँगा अथवा स्वयं उनके हाथ से मारा जाऊंगा। राजन्! अर्जुन के और मेरे शस्त्रास्त्र दिव्य तथा पराक्रम भी समान है, किन्तु अस्त्र-शिक्षा में अर्जुन मेरी समानता नहीं कर सकते। मैं समझता हूँ अर्जुन आज मेरा पराक्रम सहने में समर्थ नहीं होंगे। किन्तु यह भी बता दूं कि अर्जुन किन बातों में मुझसे बढ़ कर हैं। उनके धनुष की डोरी दिव्य, तरकस अक्षय और सारथी श्रीकृष्ण हैं। किन्तु मेरे पास वैसा सारथी नहीं है। उनके पास अग्निदेवका दिया दिव्यरथ, उसे शस्त्र से काटना संभव नहीं है। फिर भी मैं अर्जुन से युद्ध करूँगा। फिर भी मैं यह चाहता हूँ कि मद्रराज शल्य मेरे सारथी हो जाँय। क्योंकि शल्य अश्वविद्या में अत्यन्त निपुण होनेके साथ ही बाहुबल में भी अद्वितीय हैं। यदि इसका प्रबन्ध कर सकें तो आज हमारी विजय निश्चित है।

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन ने उनकी प्रशंसा की और तुरन्त महाराज शल्य के पास जा कर उनसे कर्ण के सारथी बनने की प्रार्थना की, जिसे सुनकर शल्य ने क्रोध-पूर्वक कहा—

राजन् ! तुम मुझे सूतपुत्र का सारथी बनाकर मेरा अपमान करते हो। मैं उच्च कुलीन, विधिवत राज्यासन पर अभिषिक्त एवं महारथी हूँ। मैं उसका सारथी कभी नहीं बन सकता। इससे तो मैं अपने घर लौट जाना ही ठीक समझता हूँ।

यह सुनकर दुर्योधन ने उन्हें सामनीति से समझा कर उनकी बड़ी प्रशंसा की और उन्हें मनाने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने कहा—महाराज शल्य ! मैंने पिताजी के समक्ष महर्षि मार्कण्डेय द्वारा कहेहुए इस इतिहासको सुना था कि तारकासुरको देवताओं ने जीत लिया तब उसके तीनों पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ने ब्रह्माजी को प्रसन्न करके यह वर पाया कि हम तीनों भाई एक-एक अजेय नगर बनावें जो कि आकाश मार्ग से इच्छानुसार सर्वत्र जा सके। उन नगरों को देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, नाग, ब्रह्मवादी ब्राह्मण आदि कोई भी नष्ट न कर सके। उस वर को प्राप्त कर उन्होंने स्वर्ण, रजत और लौह निर्मित तीन पुर बनाने की मयासुर को आज्ञा दी। मयासुर ने वे पुर बनाकर तैयार कर दिये तब उनमें से तारकाक्ष सोने के कमलाक्ष चाँदी और विद्युन्माली लोहे के पुर का स्वामी हुआ। अब उन दैत्यों ने त्रिलोकी को अपने वश में कर लिया।

कुछ काल व्यतीत होने पर तारकाक्ष के पुत्र हरि नामक दैत्य ने ब्रह्माजी को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त कर लिया कि मैं अपने पुर में जो बावड़ी बनवाऊँ, वह ऐसी हो कि उसके जल में डालने से शस्त्रास्त्र से मरे हुए दैत्य पुनः जीवित होकर यथावत रूपवान और बलशाली हो जाँय। इस प्रकार उस बावड़ी के बनने से अब उन्हें मृत्यु का भय भी नही रहा और वे मनमाने अत्याचार करने लगे। तब देवताओं ने ब्रह्माजी की शरण में जाकर अपने कष्ट को बताया। ब्रह्माजी बोले—देवगण! हम सब मिलकर देवदेव महादेव की शरण में जाँय तो हमारा

कार्य बन सकता है। यह सुनकर सब देवता ब्रह्माजी को ऋषियों के सहित आगे करके भगवान् शङ्कर की शरण में जाकर उनकी स्तुति करने लगे और फिर अपने आने का कारण बताया तो शिवजी बोले—मैं तुम्हें अपना आधा तेज देता हूं, इसे अपने तेज से युक्त करके तुम सब उन दैत्यों को नष्ट करने में सफल होगे।

देवता बोले—प्रभो! हम उनके तेज को देख चुके हैं, आपका आधा तेज लेकर भी हम सब उन्हें मारने में समर्थ नहीं होंगे। इसलिए आप ही हमारा आधा तेज लेकर उन्हें नष्ट कीजिए। शङ्कर ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा—देवगण ! यदि ऐसा है तो तुम मेरे लिए एक दिव्य रथ, अश्व, धनुष, वाण और सारथी की व्यवस्था करो, तब मैं उन्हें मारूंगा। यह सुन कर देवताओं ने पर्वत, वन, द्वीप, पुर और सब प्राणियों से परिपूर्ण इस भूमण्डल को ही शिवजी का दिव्य रथ बना दिया। यह देख कर शिवजी ने कहा—अब मेरे लिए एक ऐसा सारथी दो, जो गुणों में मुझ से श्रेष्ठ हो। तब देवताओं ने ब्रह्माजी से सारथी बनने की प्रार्थना की,जिसे लोकहित की इच्छासे ब्रह्माजी ने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

हे महाराज शल्य ! उस वेद वेदांग और सब प्राणियों से परिपूर्ण भूमण्डल रूपी रथ पर चढ़ कर भगवान् शंकर दैत्यों को मारने के लिए चल पड़े। उस रथ ने इन्द्र, वरुण यम और कुबेर घोड़े थे, जिन्हें ब्रह्मा जी हाँके जा रहे थे। उस दिव्य रथ पर चढ़ कर भगवान् शङ्कर ने तीनों पुर नष्ट करके उन दैत्यों का संहार किया। इस प्रकार लोक-पितामह ब्रह्माजी ने लोकहित के लिए उस रथ को हाँका था, इसलिए आप भी हमारे हित के लिए वीर कर्ण के सारथी का कार्य कीजिए। गुणों में आप कर्ण से ही नहीं, कृष्ण और अर्जुन से भी अधिक हैं। यह कर्ण शङ्कर

के समान हैं तो आप ब्रह्मा के तुल्य हैं। हे महाराज मेरा सुख, जीवन, विजय सब कुछ आपकी सहायता पर निर्भर करता है, इसलिए आप इससे इंकार न कीजिए।

हे मद्रराज एक बार अस्त्र प्राप्त करने के विचार से भगवान् परशुरामजी ने शिवजी को प्रसन्न किया, तब उन्होंने प्रकट होकर कहा – हे परशुराम ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम पहिले अपने चित्त को पवित्र बनाओ, तब मैं तुम्हें सब अस्त्र प्रदान करूँगा। यह सुनकर परशुराम पुनः तप करने लगे। तभी दैत्यों के अधिक प्रबल होने पर देवताओं को उन्हें मारने का आश्वासन देकर शिवजी ने परशुराम को बुला कर कहा––वत्स ! तुम शीघ्र ही इन सब दैत्यों को मार डालो। तुम मेरी कृपा से ऐसा कर सकोगे। यह सुनकर परशुरामजी ने दैत्यों से युद्ध करके उन्हें परास्त कर दिया। किन्तु उस युद्ध में परशुरामजी घायल हो गये। उनके कायसे प्रसन्न हुए भगवान् शङ्कर ने उनके शरीर पर हाथ फेरा तो वे घाव मिट गए। तत्पश्चात् शिवजी ने उनकी इच्छानुसार सब दिव्य शस्त्रास्त्र उन्हें प्रदान कर दिये।

हे महाराज शल्य ! भगवान् शङ्कर से प्राप्त वे सब अस्त्र परशुरामजी ने कर्ण को दिये और साथ धनुर्वेद की शिक्षा भी दी। यह वीर कर्ण सब प्रकार दोष-रहित हैं। सूत ने इन्हें पाला था, इसीलिए इन्हें सब लोग सूतपुत्र कहते हैं, वरन् यह अवश्य ही किसी देवबाला या क्षत्रिय कन्या के पुत्र हैं। राजन् ! आप ही इनके कार्यों को देख कर विचार करिये कि कभी मृगी भी अपने गर्भ से किसी सिंह को जन्म दे सकती है ? इसीलिए हे शल्य ! आप मेरे निवेदन को मत ठुकराइये, वरन् कौरवों के हित में स्वीकार कर लीजिये। आपने मेरी सब प्रकार की सहायता का वचन दिया था, उसे आज पूरा कीजिये।

शल्य ने कहा—राजन् ! तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं कर्ण का सारथी बनना स्वीकार करता हूँ, किन्तु कर्ण से यह वचन चाहता हूँ कि मैं इनसे चाहे जो कुछ कहूँ, यह उससे क्षुब्ध नहीं होंगे। यह सुन कर कर्ण ने शल्य की बात मान ली, जिससे प्रसन्न हुए दुर्योधन ने कर्ण को हृदय से लगा लिया और बोले—वीर कर्ण ! अश्वसंचालन में कृष्ण से भी श्रेष्ठ मद्रराज तुम्हारा रथ वैसे ही हाँकेंगे, जैसे मातलि इन्द्र का रथ चलाते हैं।

तत्पश्चात् कर्ण ने रथ तैयार करके मँगाया और फिर शल्य से बोले—हे महाबाहो ! रथ को बढ़ा कर शत्रुसेना में ले चलो। मैं आज सब पाण्डवों का वध करना चाहता हूँ। शल्य ने कहा—हे सूतपुत्र ! पाण्डव अत्यन्त बल-वीर्यशाली,सभी शस्त्रों के ज्ञाता, युद्ध से कभी भी न हटने वाले तथा अजेय हैं। जब तुम अर्जुन के गाण्डीव का शब्द सुनोगे, तब इन बातों को भूल जाओगे। कर्ण बोले—हे शल्य ! जब मैं शस्त्रों से सुसज्जित होकर रणक्षेत्र में जाता हूँ तब वज्रपाणि इन्द्र से भी भयभीत नहीं होता। जयपराजय तो ईश्वराधीन है, भला दिव्यास्त्रों के ज्ञाता द्रोणाचार्य ही शत्रुओं को नष्ट क्यों न कर सके ? उस अर्जुन को मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं हरा सकता, जिसे तुम अजेय बताते हो। हे शल्य मैं आज उस अर्जुन को ही परास्त करूँगा।

शल्य ने हँस कर कहा—कर्ण ! अब चुप होजाओ। कहाँ श्रेष्ठ पुरुष अर्जुन और कहाँ तुम नराधम ? अपने मुख अपनी बड़ाई करते हुए तुम्हें लज्जा भी नहीं आती ? अर्जुन ने जो-जो कार्य किये हैं, उन्हें तुमने सुना भी न होगा। मैं सत्य कहता हूँ कि यदि आज तुम अर्जुन के सामने से भाग न आये तो मृत्यु तुम्हारा अवश्य ही वरण कर लेगी। कर्ण ने कहा—शल्य ! व्यर्थ की बकवाद छोड़ कर चुप होजाओ। चलो, मुझे शीघ्र ही युद्ध

भूमि में ले चलो। यह सुन कर शल्य ने वेग से रथ चलाया, तब पाण्डव सेना के निकट पहुँच कर कर्ण प्रत्येक व्यक्ति से पूछने लगे कि अर्जुन कहाँ हैं। इस समय जो व्यक्ति मुझे अर्जुन को दिखा देगा, उसे मैं इच्छित धन प्रदान करूँगा यह कह कर कर्ण ने अत्यन्त उत्साह पूर्वक शंखनाद किया। तभी शल्य ने हँस कर उनसे कहा—हे सूतपुत्र ! तुम धन देने की बात क्यों कहते हो ? अभी-अभी अर्जुन तुम्हें स्वयं ही दिखाई दे जाँयगे। मूर्ख के समान धन देने की प्रतिज्ञा प्रलाप मात्र है। क्योंकि तुम भय के कारण किंकर्त्तव्य विमूढ़ जैसे होरहे हो।

कर्ण बोले—हे शल्य ! मैं अपने भुजबल के भरोसे पर ही अर्जुन को खोजता हूँ। तुम मित्र रूप में शत्रु जैसी बातें कर रहे हो, उनसे मैं विचलित होने वाला नहीं हूँ। देखो गुणी पुरुष ही गुणी के गुण को समझ सकता है, गुणहीन नहीं। तब तुम गुण-हीन होकर किसी गुणवान के गुणों को कैसे समझ सकते हो ? मैं अर्जुन और कृष्ण के गुणों को भले प्रकार जानता हूँ। वे दोनों या तो आज मेरा वध करेंगे अथवा मैं उन्हें मारूँगा। मैं अकेला ही हजार कृष्ण और अर्जुनों से युद्ध कर सकता हूँ। हे मद्रराज ! तुम्हारे देश का प्रभाव ही ऐसा है कि वहाँ का निवासी मित्रद्रोही होता है, उनमें मिलनसारी नहीं होती। वहाँ की स्त्रियाँ मदिरा के मद में चूर रह कर नग्न नृत्य करती हैं। उनमें नैतिकता का अभाव होता है। तुम लोग धर्म को नहीं जानते इसीलिए मुझ धर्म में तत्पर वीर को उत्साहहीन करना चाहते हो। हे अधम ! तुम व्यर्थ ही बकवाद क्यों कर रहे हो ? तुम्हारी इन बातों के कारण मैंने अब तक तुम्हें कभी का मार डाला होता, किन्तु न मारने के तीन कारण हैं, एक तो दुर्योधन की कार्य-सिद्धि का विचार, दूसरा क्षमा करने का वचन दे चुका

हूँ वह प्रतिज्ञा, तीसरा यदि तुम्हें मार दूंगा तो लोक में निन्दा होगी।

कर्ण की बात सुनकर शल्य हँसे, उन्होंने कहा—हे सूततुत्र ! मैं युद्ध से कभी न हटने वाला एवं धर्मपरायण हूं। मैं तुम्हें मित्रभाव से ही सचेत कर रहा हूँ। जब तुमने मुझे इस रथ का रक्षक बनाया है, तब मेरा यह कर्तव्य है कि सभी बातों पर ध्यान रख कर उचित सुझाव देता रहूँ। साथ ही शुभाशुभ शकुन, भार तथा क्षत आदि की प्रतिक्रिया आदि को दृष्टिगत रखना भी मेरा कार्य है। इसीलिए तुम्हें बार-बार समझाता हूँ। हे कर्ण ! समुद्रतटवर्ती किसी राजा के राज्य में अनेक पुत्रों वाला एक धर्मज्ञ वैश्य रहता था। उन पुत्रों ने एक कौआ पाल रखा था, जो उन्हीं की जूठन खाकर पेट भरता था। धीरे-धीरे मोटा-ताजा हो गया और वह गर्व में भरकर अन्य पक्षियों की निन्दा करने लगा। उसी अवसर पर समुद्रतट पर पक्षिराज हंस आये, जिन्हें देख कर वैश्य-बालकों ने कौए से कहा—हे काक ! यह हंस आकाश मार्ग से उड़ते हुए बहुत दूर से चले आ रहे हैं। यदि तुम सब पक्षियों से श्रेष्ठ हो तो इनके समान उड़कर दिखाओ। यह सुनकर कौआ उन हंसों के पास जाकर उनके प्रमुख से बोला—हे हंस ! मुझे तुम्हारे साथ उड़ने की इच्छा है। हंस ने कहा—हे काक ! तू बड़ा मूर्ख है जो हमारी समानता की इच्छा करता है। हम मान सरोवर के हंस सम्पूर्ण भूमण्डल में विचरण करने की सामर्थ्य रखते और सब पक्षियों में पूजनीय समझे जाते हैं। तू हमारे साथ किस प्रकार उड़ेगा ?

कौआ बोला—हंसगण ! मैं सौ प्रकार की विचित्र गतियों का ज्ञाता हूँ और प्रत्येक गति से सौ योजन दूर तक उड़ सकता हूँ। उड्डीन, अवडीन, प्रडीन, डीन, निडीन, सण्डीन, तिर्यक-डीन आदि विभिन्न प्रकार की गतियों में से तुम किस गति से

मेरे साथ उड़ोगे, यह निश्चय करके बताओ। हंस ने कहा—भई ! मैं तो एक ही गति जानता हूँ। कौआ बोला—तुम जिस गति को जानते हो उसी से उड़ो। हे सूतपुत्र ! उसी समय कुछ अन्य पक्षी वहाँ आकर व्यंग पूर्वक बोले—हे काक ! हंस एक गति जानता है और तुम सौ गतियों को जानते हो। फिर यह हंस तुम्हें कैसे जीत लेगा ? यह सुनकर हंस और कौआ दोनों उड़े। कौआ अपनी विविध गतियों से और हंस अपनी एक ही गति से उड़ने लगा। उस समय कौए की तेजी देख कर अन्य कौए हर्षपूर्वक कहने लगे—देखो, वह हंस पिछड़ रहा है। यह सुन कर हंस पश्चिम की ओर वेग पूर्वक बढ़ा और कौआ पहिले ही वेग दिखानेके कारण थक गया। अब वह समुद्र के ऊपर उड़ता हुआ कौआ विश्राम के लिए द्वीप की खोज करने लगा। कौए की यह दशा देखकर हंस ने कहा—काक ! तुम तो कहते थे कि मैं किसी प्रकार थक नहीं सकता। अब तुम थक कर पानी में बार-बार अपनी चोंच को डुबा रहे हो, यह तुम्हारी कौन-सी गति है ? कौए ने दीनता से कहा—हे हंस ! हम लोग तो काँव-काँव करना ही जानते हैं, किसी अद्‌भुत गति को नहीं जानते। अब तुम किसी प्रकार मेरी प्राण-रक्षा करो। यह सुनकर हंस को दया आ गई, उसने कौए को उठाकर अपनी पीठ पर चढ़ाया और लौट कर वहीं आ गया।

हे कर्ण उस कौए के समान ही काँव-कांव करने का तुम्हारा स्वभाव हो गया है। वैश्यपुत्रों की जूठन खाकर पले हुए उस अहङ्कारी कौए के समान तुम भी दुर्योधन आदि के टुकड़े खाकर पले हो। देखो तुम अर्जुन की बराबरी न कभी कर सके हो, न कभी कर सकोगे। कृष्ण और अर्जुन रूपी चन्द्र-सूर्य के सामने तुम खद्योत के समान हो। इसलिए अपनी व्यर्थ प्रशंसा छोड़कर चुपचाप युद्ध में प्रवृत्त हो जाओ।

शल्य के वचनों से मर्माहत हुए कर्ण ने कहा—हे मद्रराज मैं कृष्ण और अर्जुन के पराक्रम को तुमसे अधिक जानता हूँ। किन्तु, मुझे व्यथा है तो उन शापों की जो मुझे अनायास ही लग गये हैं। मैंने ब्रह्मचारी ब्राह्मण बन कर परशुरामजी से शस्त्र शिक्षा ग्रहण की थी। एक दिन वे मेरी जांघ पर सिर रखे सो रहे थे, तब अर्जुन के हित के विचार से इन्द्र ने एक कीड़े का रूप बना कर मेरी जाँघ में काट खाया, जिससे मुझे अत्यन्त पीड़ा हुई। किन्तु गुरुजी की नींद खुल जाने के भय से मैं दम साधे यथावत् बैठा रहा। कुछ देर बाद गुरुजी की नींद टूटी तो उन्होंने मेरी जाँघ से खून बहता हुआ देख लिया। वे बोले—अरे तू ब्राह्मण तो नहीं जान पड़ता, क्योंकि ब्राह्मण में ऐसा धैर्य कठिन है। सत्य बता तू कौन है ? तब मैंने अपना सब जीवन-वृत्त बता दिया, जिसे सुनकर परशुरामजी क्रोधपूर्वक बोले—अरे सूतपुत्र ! मुझे धोखा देकर तू ने जिस ब्रह्मास्त्र को मुझ से प्राप्त किया है, वह मृत्यु जैसा संकट उपस्थित होने पर तुझे याद नहीं रहेगा। क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय के अतिरिक्त कोई अन्य पुरुष ब्रह्मास्त्र का अधिकारी नहीं है। हे शल्य ! उसी शाप के कारण यद्यपि मैं उस ब्रह्मास्त्र को भूल गया हूं, तो भी मैं आज अर्जुन को जीवित नहीं रहने दूँगा।

हे मद्रराज ! मुझे एक और ब्राह्मण ने भी शाप दिया था। एक दिन अनजाने में एक दिन मेरा एक बाण एक ब्राह्मण की अग्निहोत्र की गाय के बछड़े को लग कर उसके प्राण ले बैठा। इस पर उस ब्राह्मण ने शाप दिया कि युद्ध के समय प्राण-संकट उपस्थित होने पर तेरे रथ का पहिया गर्त में पड़ कर धरती में धँस जायगा। मैंने उस ब्राह्मण से बहुत प्रार्थनाएँ कीं कि यह अन-जाने में हो गया है,इस लिए आप एक हजार गौ,छः सौ बैल, सौ दासियाँ, सात सुसज्जित हाथी तथा चौदह हजार श्वेत बछड़ों

वाली गौएँ मुझसे ले लें और शाप को निरस्त कर दें। किन्तु ब्राह्मण बोले—मैं धन के लोभ में झूँठ नहीं बोल सकता हूँ। मेरे वचन का टाला जाना कदापि संभव नहीं है। यह सुनकर मैं चुपचाप चला आया। हे शल्य ! मुझे इन शापों का ही भय है, अन्य किसी प्रकार का कोई भय मुझे संतप्त नहीं कर सकता।

हे राजन् ! इसके पश्चात् भी शल्य और कर्ण के मध्य कटु उक्तियों का आदान-प्रदान होता रहा। यह देख कर राजा दुर्योधन ने दोनों को शान्ति और नम्रता पूर्वक समझा-बुझा कर शान्त किया। तब दोनों चुप होगए और कर्ण ने शल्य से रथ बढ़ाने को कहा। राजा शल्य उस रथ को शत्रु-सेना के समक्ष ले जाकर कर्ण से बोले—कर्ण ! वह श्वेत अश्वों से युक्त अर्जुन का रथ आरहा है। देखो, श्रीकृष्ण उस रथ को हाँक रहे हैं, जिनका सामना तुम्हारा समूची सेना मिल कर भी नहीं कर सकती। इस समय अपशकुन भी होरहे हैं, जिससे तुम्हारा अमंगल होना झलकता है। शल्य इस प्रकार कह ही रहे थे कि दोनों सेनाएँ परस्पर भिड़ कर घमासान युद्ध करने लगीं।

कौरव-पाण्डव के भयंकर युद्ध का वर्णन

संजय बोले—हे राजन् ! कर्ण ने अपनी सेना का जो व्यूह बनाया था, उसकी उपेक्षा करके अर्जुन ने अन्य व्यूह की रचना की। उसी समय संशप्तकगण विशाल सेना के सहित अर्जुन की ओर वेग पूर्वक बढ़े। तब अर्जुन भी अत्यन्त फुर्ती से शत्रुओं का संहार करने लगे। इधर वीरवर कर्ण पाँचाल सेना की ओर बढ़ कर युद्ध में प्रवृत्त हुए। उन्होंने पाण्डव-सेना में प्रविष्ट होकर सतहत्तर वीरों को मार डाला। तभी धृष्टद्युम्न, सात्यकि, भीमसेन, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, आदि बहुत-से योद्धा कर्ण पर भीषण प्रहार करने लगे। महावीर सुषेण ने भीमसेन का

धनुष काट कर सिंहनाद किया, तब भीमसेन ने दूसरा धनुष लेकर सुषेण का धनुष काट दिया और कर्ण के पुत्र सत्यसेन का वध कर दिया।

इधर युधिष्ठिर ने कर्ण का सामना किया उन्होंने कर्णको दस बाण मारे। उसका उत्तर कर्ण ने भी दस बाण मार कर दिया। इसके बाद दोनों योद्धा घोर युद्ध करने लगे, तब युधिष्ठिर के वार से कर्ण वि ह्वल और अचेत हो गए। थोड़ी देर में ही सचेत होकर युधिष्ठिर पर भयंकर बाण-वर्षा करने लगे। उन्होंने युधिष्ठिर का धनुष और कवच काट कर हृदय पर प्रहार किया। फिर सारथी और पृष्ठरक्षकों के भी मारे जाने पर युधिष्ठिर एक अन्य रथ पर चढ़ कर वहाँ से हटने लगे। यह देखकर कर्ण ने युधिष्ठिर के पास जाकर अपना हाथ उनके कन्धे पर रख कर जीवित पकड़ लेना चाहा। उस समय वे राजा युधिष्ठिर को मार भी सकते थे, पर कुन्ती को वचन देने के कारण उन्हें नहीं मारा।

शल्य ने कर्ण को युधिष्ठिर के पकड़ने का प्रयत्न करते देख कर रोक दिया, तब कर्ण ने उन्हें छोड़ते हुए कहा—युधिष्ठिर ! क्षत्रिय धर्म में स्थित वीर युद्ध से भागने की कभी चेष्टा नहीं करता है। तुम वीरधर्म को नहीं जानते, इसलिए वीरों का सामना करना भी तुम्हारे लिए उचित नहीं है। अब तुम कृष्ण-अर्जु न के पास जाओ या डेरे में लौट जाओ, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा। कर्ण के यह वचन सुन कर लज्जित हुए युधिष्ठिर वहां से तुरन्त भाग गये। उस समय चेदि, पाँचाल, सात्यकि एवं पाण्डवगण भी उनके पीछे-पीछे जाने लगे। यह देखकर कौरव सेना में बाजे बज उठे। तभी श्रुतिकीर्ति के रथ पर चढ कर युधिष्ठिर ने कुपित होकर कहा—वीरो ! क्या देखते हो, शत्रुओं पर आक्रमण करके इनके संहार में तत्पर हो जाओ।

यह सुनकर पाण्डवपक्ष के सभी वीर सिंहनाद करते हुए कौरव सेना पर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़े।

हे राजन् ! उस समय भीमसेन और कर्ण का भयंकर युद्ध हुआ। भीमसेन ने सात्यकि और धृष्टद्युम्न से कहा कि तुम महाराज युधिष्ठिर की रक्षा करो। दुष्ट कर्ण ने पकड़ने का यत्न किया था, इसका मुझे अत्यन्त सन्ताप होरहा है। आज मैं उसे मार कर ही चैन लूँगा। यह कह कर भीमसेन कर्ण पर कठोर प्रहार करने लगे। कर्ण भी उन सब प्रहारों को बात की बात में व्यर्थ कर देते थे। तभी सहसा भीमसेन के एक बाण ने मर्मान्तक चोट पहुँचा कर कर्ण को अचेत कर दिया, तब महाराज शल्य उन्हें शीघ्र ही वहाँ से हटा लेगए। यह देख कर कौरव सेना भी वहाँ से भागने लगी।

तभी दुर्योधन की आज्ञा से आपके अन्य सब पुत्र भीमसेन को मारने के लिए तेजी से बढ़े। उनमें से विवित्सु, विकट, सह, क्राथ, नन्द, उपनन्द आपके पुत्रों को भीमसेन ने मार डाला। यह देख कर दुःखित कर्ण ने सँभल कर शल्य से भीमसेन के समक्ष चलने को कहा और जब वे वहाँ पहुँच गए, तब उन दोनों में पुनः घोर युद्ध होने लगा। एक-दूसरे के प्रहारों से दोनों ही वीर घायल होगए। तभी पाँच सौ रथी वीर भीमसेन की ओर बढ़े, किन्तु उन्होंने उन सभी वीरों को शीघ्र ही मार डाला। इस प्रकार पाण्डवों के द्वारा पीड़ित हुई कौरव-सेना छिन्न-भिन्न होने लगी।

उधर अर्जुन संशप्तकगण से भिड़ रहे थे। सुशर्मा ने अर्जुन को दस बाण मार कर श्रीकृष्ण के दाँये हाथ में भी तीन बाण मारे तथा अर्जुन की ध्वजा में जैसे ही एक भल्ल बाण मारा, वैसे ही ध्वजा में स्थित वानर कुपित होकर गरजने लगे और

नाचने लगा, जिससे सम्पूर्ण सेना भय से अचेत-सी होगई। फिर सचेत होकर शीघ्र ही उस सेना ने अर्जुन के रथ को अपने घेरे में ले लिया तथा कृष्ण सहित अर्जुन को पकड़ने की चेष्टा की, वरन् कृष्ण के तो हाथ भी पकड़ लिये। तब कृष्ण ने अपने शरीर को झटक कर नीचे गिरा दिया और तभी अर्जुन समीप से चलाने से योग्य बाणों को चढ़ा कर संशप्तक गणों को मारने लगे। इस प्रकार उस सेना के बहुत से वीरों का हनन करके अपना देवदत्त शंख बजाया, जिसकी ध्वनि से भयभीत हुई संशप्तक-सेना मैदान छोड़ कर भागने लगी। यह देख कर अर्जुन ने नागास्त्र छोड़ा, जिसके प्रभाव से सभी सेना जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई। उस सेना का बुरी तरह संहार होने लगा, तब सुशर्मा ने गरुड़ास्त्र प्रयोग किये, जिससे नागास्त्र विफल हो गया।

तत्पश्चात् अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से अर्जुन के धनुष से हजारों बाण स्वयं निकल-निकल कर संशप्तक-सेना को विनष्ट करने लगे। उस समय अर्जुन ने दस हजार सेना को मार डाला, तो भी मरने से बचे हुए संशप्तक उन्हें पुनः घेरने के प्रयत्न में लगे। इस प्रकार अर्जुन से संशप्तक सेना युद्ध में लगी थी, तभी कृपाचार्य सृंजय-सेना को बाणों से आवृत्त करने लगे। उन्होंने शिखण्डी के सारथी और रथ को नष्ट कर दिया तब रथहीन शिखण्डी कृपाचार्य से पैदल रह कर ही लड़ने लगे। उसी समय कृतवर्मा और धृष्टद्युम्न का घोर युद्ध चल रहा था। उसमें धृष्टद्युम्न उनके सारथी को मार कर गरज रहे थे।

अश्वत्थामा भी पाण्डव-सेना के संहार में लगे थे, यह देख कर सात्यकि, युधिष्ठिर, पांचालगण और द्रौपदी के पाँचों पुत्र उनके सामने जाकर बाण-वर्षा में तत्पर हुए। जिससे अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोधित होगये। उन्होंने अपने प्रहार से शत्रु-पक्ष

को अत्यन्त पीड़ित कर दिया। तब युधिष्ठिर ने कहा—हे आचार्य पुत्र ! आज तुम मुझे ही मारने को उद्यत हो यह देखकर मैं समझता हूँ कि तुममें प्रीति नाम की तो कोई वस्तु है ही नहीं। देखो, ब्राह्मण के कर्म तप, दान, अध्ययन को छोड़कर तुम क्षात्र-धर्म का पालन कर रहे हो, इसलिए ब्राह्मणों में नीच हो। तुम्हें अपने कर्म पर लज्जा आनी चाहिए।

धर्मराज के वचनों को सुन कर भी अश्वत्थामा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे निरन्तर शत्रु-संहार के प्रयत्न में लगे रहे। महाराज युधिष्ठिर उनके सामने न ठहर सके, इसलिए अश्वत्थामा को छोड़ कर अन्यत्र चले गये। दूसरी ओर कर्ण धृष्टद्युम्न और भीमसेन के प्रहारों को रोकने में लगे थे। भीम-सेन उन्हें छोड़ कर कौरव-सेना के भीतर घुस गये। वहाँ उन्होंने आपके वीरों को भारी क्षति पहुँचाई।

क्रुद्ध कर्ण पांचाल-सेना को नष्ट करने में लगे थे, उन्होंने व्याघ्रकेतु, सुशर्मा, चित्र, उग्रायुध, शुक्ल, दुर्जय, रोचमान और सिंहसेन नामक आठ पांचाल-वीरों को मार डाला। इसके बाद और भी अनेकानेक वीर उन्होंने समाप्त कर दिये। उस समय कर्ण के समान पराक्रम आपके पक्ष का कोई भी वीर नहीं दिखा सका। वे पाँचाल-सेना को नष्ट करते हुए विचर रहे थे, उधर भीमसेन अकेले ही असंख्य वाह्लीक, केकय, मत्स्य, वसाति, मद्रक, और सिन्धु देश के वीरों को मार-मार कर गिरा रहे थे।

त्रिगर्तदेशीय संशप्तकगण का संहार करके अर्जुन कौरव-सेना में आ घुसे। उस समय उनके आगे ठहरने की शक्ति किसी में न थी। उन्होंने कौरव-पक्ष के दस हजार राजाओं का वध कर दिया, तब दुर्योधन ने बचे-खुचे संशप्तकों को पुनः उकसा दिया, तब वे पुनः अर्जुन को ललकारने लगे। यह देखकर अर्जुन वेग पूर्वक उनकी ओर बढ़े। तब जो युद्ध हुआ उसमें अर्जुन ने बहुत

वीरों को समाप्त कर दिया। यह देखकर अश्वत्थामा अर्जुन के सामने आकर भयङ्कर संग्राम करने लगे। किन्तु अर्जुन के प्रहारों से अचेत होकर ध्वज-दण्ड पकड़ कर बैठ गये तब उनका सारथी उन्हें रथ सहित हटा ले गया। उधर अर्जुन का रथ भी अन्यत्र बढ़ गया।

अर्जुन द्वारा युधिष्ठिर वध और आत्महत्या का उद्योग

संजय ने कहा—महाराज! इस प्रकार दोनों पक्ष के वीर परस्पर भिड़ कर युद्ध कर रहे थे कि तभी अश्वत्थामा पुन: स्वस्थ होकर मैदान में आये और धृष्टद्युम्न से लड़ने लगे। उन्होंने धृष्टद्युम्न के धनुष, शक्ति, गदा, ध्वज, रथ, और सारथी को नष्ट कर दिया तो धृष्टद्युम्न ढाल-तलवार लेकर धरती पर उतर आये। तभी अश्वत्थामा ने उनकी ढाल-तलवार के भी खण्ड-खण्ड कर दिये और अनेकों बाणों के प्रहार से उन्हें मार डालना चाहते थे, किन्तु न मार सके तो हाथ में तलवार लेकर उन्हें मारने के लिए झपटे। वे निहत्थे धृष्टद्युम्न को पकड़ कर अपनी ओर खींचने लगे.तभी श्रीकृष्ण का संकेत पाकर अर्जुनने बहुत से बाण चला कर अश्वत्थामा को बुरी तरह आहत और विह्वल कर दिया। तब अश्वत्थामा अपने रथ पर पहुँच कर अर्जुन से युद्ध करने लगे। उसी समय सहदेव ने धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर चढ़ाया और रणक्षेत्र से हटा ले गये। उधर अश्वत्थामा भी अर्जुन के सामने नहीं टिक सके। उन्हें मूर्च्छा आदि देखकर उनका सारथी तुरन्त उन्हें लेकर चला गया। इस प्रकार विजय को प्राप्त हुए पाण्डव सिंहनाद करने लगे।

उसी समय कर्ण का युधिष्ठिर से सामना हुआ, तब कर्ण ने युधिष्ठिर के घोड़ों को मार कर सिरस्त्राण काट दिया और नकुल के घोड़ों का वध कर उनके रथ का धुरा और धनुष काट डाला।

तब दोनों भाई सहदेव के रथ पर चले गए। यह देख कर कर्ण सहदेव के रथ पर भीषण बाण वर्षा करने लगे। अपने भानजों को संकटग्रस्त देख कर शल्य ने कर्ण से कहा—आज तुम्हें अर्जुन को मारना है, तो इनसे युद्ध करके अपने शस्त्र क्यों नष्ट करते हो ? फिर धर्मराज को मारने से तुम्हें कुछ लाभ भी नहीं होगा। उधर अर्जुन के शंख की ध्वनि सुनाई दे रही है, उनसे युद्ध करना आवश्यक है। वह देखो, दुर्योधन भीमसेन के वशीभूत होरहे हैं, उनकी रक्षा करना तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। यह सुन कर कर्ण ने उधर देखा कि दुर्योधन के प्राण संकट में हैं तो वे तुरन्त उधर चल दिये। युधिष्ठिर भी यह देख कर नकुल-सहदेव से बोले कि तुम भी वहां जाकर भीमसेन की सहायता करो। ऐसी आज्ञा पाकर नकुल और सहदेव अन्य रथ पर चढ़ कर उधर बढ़े। इधर आहत हुए धर्मराज अपने शिविर में लौट गये, वहां चिकित्सकों ने उनके शरीर से शस्त्रादि निकाल कर घावों पर दवा लगा दी, किन्तु कर्ण से हारने का खेद उन्हें अत्यन्त पीड़ित कर रहा था।

कौरव-पाण्डव सेनाएँ परस्पर घोर विनाश में लगी थीं। कर्ण के बाणों से मारे जारहे पांचालगण और चेदिगण आर्तनाद कर रहे थे। कर्ण के भार्गवास्त्र ने इस प्रकार पाण्डव-सेना का भीषण विनाश करते हुए हलचल मचा दी थी। यह देख कर कृष्ण से अर्जुन ने उधर ही रथ ले चलने को कहा। किन्तु कृष्ण बोले—हे धनंजय ! कर्ण के प्रहारों से जर्जर हुए राजा युधिष्ठिर को आश्वासन देना तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। वहाँ से लौट कर कर्ण से युद्ध करना। इतने में यह भी निरन्तर अपने मन की निकालता हुआ थक जायगा और तुम्हें भी कुछ स्वस्थ होने का अवसर मिलेगा। यह सुन कर अर्जुन ने शिविर में

चलने की स्वीकृति दे दी। और भीमसेन को युद्ध का भार सौंप कर धर्मराज की ओर चल पड़े।

वहाँ जाकर उन्होंने युधिष्ठिर के चरण स्पर्श किये। युधिष्ठिर ने उन्हें असमय में वहाँ आया देख कर समझा कि कर्ण को मार कर ही यह यहाँ आये हैं। उससे प्रसन्न हुए युधिष्ठिर अर्जुन का अभिनन्दन करने लगे। उन्होंने कहा—वीर! तुमने कर्ण को मार कर अद्भुत पराक्रम प्रकट किया। अब मुझे बताओ कि तुमने उसे किस प्रकार मारा ?

अर्जुन ने कहा—महाराज! मैं कर्ण की ओर बढ़ ही रहा था कि अश्वत्थामा से सामना होगया। उनका अद्भुत कर्म देख कर मैं चकित रह गया। तब मैंने भी अपने प्रहारों से उन्हें इतना पीड़ित किया कि उन्हें न सह सकने के कारण वे मेरे सामने से हट गये। तब फुर्ती से कर्ण मेरे सामने आगया। उसका पराक्रम तो और भी अद्भुत है। उसने प्रभद्रकगण के सात सौ रथी वीरों को मार डाला। इसी बीच मैंने सुना कि अश्वत्थामा ने आपको आहत किया और फिर कर्ण ने भी आपको बहुत पीड़ित किया है, इसीलिए आप कर्ण को छोड़ कर चले आये हैं। इसीलिए मैं भी कर्ण के सहायक पचास श्रेष्ठ रथियों को मार कर आपको देखने के लिए यहाँ चला आया हूँ। अब आप मुझे कर्ण को मारने का आशीर्वाद देकर रणभूमि में जाने की आज्ञा दीजिए।

यह सुन कर धर्मराज क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा—अर्जुन! यह क्या ? कर्ण को मारने में असमर्थ होकर तुम अकेले भीमसेन को वहाँ छोड़कर यहाँ भाग आये हो। तुमने कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा भंग कर दी। यदि मैं यह जानता कि तुम्हारी वह प्रतिज्ञा कोरा भ्रम है तो युद्ध का विचार ही छोड़ देता। हे मूढ़! तुमने मेरे साथ यह विश्वासघात किया है। हे दुरात्मन्! तुम को धिक्कार देने के अतिरिक्त मैं क्या कहूँ? कर्ण के सामने से भाग

आने की अपेक्षा तो यही अच्छा था कि माता कुन्ती का वह गर्भ ही गिर जाता, जिससे तुम उत्पन्न हुए हो। तुम्हारे गाण्डीव को, अमोघ अस्त्रों को और अग्निप्रदत्त कपिध्वज रथ को भी धिक्कार है, जो तुम श्रीकृष्ण जैसे नरश्रेष्ठ सारथी के होते हुए भी कर्ण के सामने से कायरों की भाँति भाग आये।

राजा युधिष्ठिर के अपमानजनक शब्दों को सुन कर अर्जुन को भी क्रोध आगया। वे उन्हें मार डालने के विचार से तलवार खींचने लगे। तभी श्रीकृष्ण ने कहा—अर्जुन! तलवार क्यों निकालते हो? यहाँ ऐसा कौन है, जिसे तुम मारना चाहते हो? तुम तो राजा युधिष्ठिर को देखने के लिए आये हो न? फिर तुम्हारी उत्तेजना का क्या कारण है? अर्जुन बोले—केशव! आप जानते हैं कि मैं अपने गाण्डीव की निन्दा नहीं सुन सकता, वरन् निन्दक को मार डालने की मेरी प्रतिज्ञा है। इसलिए राजा को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहता हूँ। अथवा आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ? कृष्ण ने कहा—अर्जुन! होश की बातें करो। तुम धर्म के यथार्थ तत्व को नहीं जानते, इसलिए अपने पूज्य बड़े भाई को मारने के लिए तत्पर हुए हो। देखो, सत्य से अधिक कुछ नहीं है, किन्तु कहीं पर सत्य के स्थान पर मिथ्या बोलना भी अनुचित नहीं होता। जहाँ सत्य मिथ्या के समान अधर्म करने वाला और मिथ्या सत्य के समान धर्म करने वाला सिद्ध हो वहाँ मिथ्या ही सत्य होता है। क्योंकि कभी दारुणकर्मा बलाक व्याध के समान मनुष्य महान् पुण्य को प्राप्त करता है और कभी धर्म करने वाला मूर्ख पुरुष कौशिक ब्राह्मण के समान पाप के पंख में फँस जाता है। यह सुन कर अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! मुझे इन दोनों का वृत्तान्त सुनाओ, जिससे सत्य-धर्म के सूक्ष्म तत्व को मैं ठीक प्रकार से समझ सकूँ।

श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! पूर्व काल में स्वधर्म में निरत बलाक नामक व्याध अपने कुटुम्ब के भरण-पोषणार्थ मृगों को मारता था। एक दिन उसे कोई भी मृग नहीं मिला, वरन् एक ऐसा पशु मिला जो नेत्र-रहित, सूँघ कर ही देखने वाला था। उस जल पीते हुए पशु को व्याध ने मार डाला। तब तो उस व्याध पर आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी और एक दिव्य विमान आकर व्याध को स्वर्ग में ले गया। उसका कारण यह था कि वह दुष्ट पशु ब्रह्मा के वर से सबल होकर प्राणियों की हिंसा में प्रवृत्त था, इसीलिए ब्रह्मा ने उसके नेत्रों का हरण कर लिया था। उस दुष्ट पशु के मारने के पुण्य फल रूप से व्याध को स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी। धर्म का ऐसा सूक्ष्म और दुर्बोध तत्व है।

हे अर्जुन ! अब दूसरा उपाख्यान कहता हूँ। कौशिक नामक एक शास्त्रज्ञानी तपस्वी ब्राह्मण ग्राम के निकट नदियों के संगम पर निवास करते हुए सदा सत्य बोला करते। एक दिन डाकुओं के भय से कुछ नागरिक बन में जा छिपे, उन्हें खोजते हुए आकर डाकुओं ने कौशिक से उनके विषय में पूछा तो कौशिक ने उन्हें डाकू जान कर तथा नागरिकों के प्राण संकट में देख कर भी सत्य बता दिया कि वे उस वन में छिपे हैं। तब उन डाकुओं ने नागरिकों को पकड़ कर उनकी हत्या कर दी। कौशिक ने यहाँ सत्यभाषण से जो हत्या कराई, उसी के पाप-फल स्वरूप उन्हें नरक भागी होना पड़ा। इसलिए हे पार्थ ! सब प्राणियों की जिससे रक्षा हो वही धर्म है। अब तुम स्वयं सोच लो कि क्या धर्मराज का वध करना तुम्हारा धर्म है ?

अर्जुन ने कहा—वासुदेव ! आपका कथन सत्य और हमारे प्रति हित करने वाला है। अब आप ही वह उपाय बताइये, जिससे मेरी प्रतिज्ञा भी भंग न हो और युधिष्ठिर के या मेरे प्राण पर भी आँच न आवे। कृष्ण बोले— हे अर्जुन वह कार्य करो, जिससे

युधिष्ठिर जीवित ही मृतक तुल्य हो जाँय। तुम इन पूजनीय धर्मराज को 'तू' कह दो। बस यह 'तू' कहना ही उनकी हत्या के समान है। क्योंकि तुम्हारे द्वारा 'तू' कहे जाने से ही उन्हें मरने के समान पीड़ा होगी। इस प्रकार तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूर्ण होगी और बड़े भाई की हत्या के महापाप से भी बच जाओगे। यह सुन कर अर्जुन ने युधिष्ठिर के प्रति वैसे ही अपमान जनक शब्दों का प्रयोग किया और अन्त में बोले—राजन्! तुम ही इन सब विपत्तियों की जड़ हो, तुमने ही जुआ खेल-खेल कर भिखारी की तरह हमें वन-वन भटकाया है, तुम्हारे कारण ही कुरुवंश विनष्ट होने जा रहा है। फिर भी मैं तुम्हारे प्रिय करने की इच्छा से युद्ध में महारथियों का वध करता हूँ और तुम द्रौपदी की शय्या पर विहार करते रहते हो। तुमने अभिमन्यु को मरवा कर हमें शोक-सन्तप्त कर दिया। तेरे ही विपरीत आचरण का दुष्परिणाम हमें भोगना पड़ रहा है। यह कह कर खिन्न चित्त हुए अर्जुन पुनः तलवार खींचने को उद्यत हुए। यह देख कर कृष्ण ने पूछा—अर्जुन! अब फिर तलवार निकालना चाहते हो? अर्जुन ने कहा—केशव! मैंने अपने पूजनीय ज्येष्ठ भ्राता को न कहने योग्य कुवचन कहे हैं उस पाप से बचने का उपाय आत्म हत्या ही है। इसलिए मैं आत्म हत्या करूँगा।

कृष्ण बोले—अर्जुन! युधिष्ठिर को दुर्वचन कहने के पाप से बढ़ कर आत्महत्या तो अत्यन्त ही महापाप है। आत्महत्या करके तो तुम युधिष्ठिर को मारने से भी बढ़ कर नरक को प्राप्त होगे। किन्तु विद्वानों ने आत्म प्रशंसा को ही आत्म हत्या कहा है। इसलिए तुम अपने ही गुणों की प्रशंसा करके अपने को मार डालो। यह सुनकर अर्जुन ने धनुष उठा कर कहा—राजन्! मेरे समान धनुर्धर वीर संसार भर में कोई दूसरा नहीं है।

पलभर में ही मैं सम्पूर्ण विश्व के विनाश में समर्थ हूँ। आज या तो कर्ण की माता ही पुत्र शोक से दुःखित होगी अथवा मेरी माता कुन्ती ही। मैं आज कर्ण को मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा।

यह कह कर अर्जुन ने सब शस्त्रास्त्र धर्मराज के सामने रखे और हाथ जोड़ कर कहा—महाराज! मेरा प्रणाम स्वीकार कर प्रसन्न होइये। मेरे कहे हुए कटु वचनों के लिए मुझे क्षमा कर दीजिए और मुझे आज्ञा दीजिए कि कर्ण का वध करने के लिए रणभूमि में जाऊँ। यह सुन कर, पहिले किये हुए अपमान से दुःखित युधिष्ठिर ने ग्लानि पूर्वक कहा—अर्जुन! सत्य ही मैंने कोई ठीक कार्य नही किया। मेरे कारण ही तुम सब को इन विपत्तियों का सामना करना पड रहा है। मैं वन में जाना चाहता हूँ, तुम मुझे छोड़ सुखी हो जाओ और भीमसेन राजा बनें। यह कह कर युधिष्ठिर शय्या त्याग कर उठे और वन में जाने को होगए। यह देख कर कृष्ण ने विनीत भाव से कहा—महाराज! गाण्डीव के विषय में अर्जुन की जो प्रतिज्ञा है उसे आप भी जानते हैं। उस प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए मेरी सम्मति से आपका वध करने के स्थान पर अर्जुन ने आपका तिरस्कार किया है और फिर आपके अपमान के पाप से बचने के लिए आत्महत्या के स्थान पर आत्म प्रशंसा रूप आत्महत्या की है। राजन्! आप धर्म की गतियों को जानते हैं, इसलिए हम दोनों से जो अपराध बना है, उसे क्षमा कर दीजिए। आप निश्चय समझिये कि आपकी आज्ञा मिलने पर आज धरती अवश्य कर्ण का रक्तपान करेगी।

श्रीकृष्ण के प्रणत होकर इस प्रकार कहने पर युधिष्ठिर ने सम्मान पूर्वक उन्हें उठा कर और हाथ जोड़ कर कहा—केशव! आप सत्य कहते हैं। गाण्डीव के विषय में अनुचित शब्द कहकर मैंने ठीक नहीं किया। यह बात अब मेरी समझ में

ठीक प्रकार से आगई हैं। हे वासुदेव ! आपने हमें उसे अनायास प्राप्त मोह से उबार कर निश्चय ही हमारा भारी उपकार किया है। यह कह कर युधिष्ठिर ने अर्जुन को आशीर्वाद देकर युद्ध में जाने की आज्ञा दी। तब अर्जुन धर्मराज के चरणों में बार-बार शिर झुका कर और कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा करके वहाँ से चल पड़े। तभी श्रीकृष्ण ने अपने सारथी दारुक को बुला कर रथ लाने की आज्ञा दी। जब अर्जुन रथ पर बैठे और श्रीकृष्ण ने घोड़ों को हाँका तब विविध प्रकार के शुभ शकुन होने लगे। मार्ग में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—पार्थ ! कर्ण ही सब अनर्थों की जड है, इसलिए कर्ण का वध करना ही तुम्हारे लिए महाकार्य है। मैं सत्य कहता हूँ कि उसे तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता।

भीमसेन द्वारा दुःशासन का वध

जय बोले—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! आप त्रिकालज्ञ हमारी सहायता कर रहे हैं तो हमें विजय अवश्य प्राप्त होगी। आपकी कृपा से कर्ण तो क्या, युद्ध में एकत्र तीनों लोकों के जीवों का वध करने में समर्थ हूँ। मुझ शुभ लक्षण युक्त पुरुष को कोई भी नहीं हरा सकता। इस प्रकार कहते हुए अर्जुन रणक्षेत्र में पहुँच कर कर्ण की ओर बढ़े। उस समय प्रतापी कर्ण सोमक सेना को मार रहे थे और भीमसेन कौरव सेना का संहार कर रहे थे। पाण्डवपक्ष के वीरगण कर्ण के बाणों से अत्यन्त पीडित होकर इधर-उधर भागने लगे थे। उधर कर्ण के पास पहुँचते-पहुँचते महाबली अर्जुन ने कौरवों की चतुरंगिणी सेना को पछाड़ कर रक्त की नदी बहा दी थी। इधर कर्ण के पराक्रम से भागती हुई पाण्डव सेना अर्जुन के रथ को देखते ही आश्वस्त होगई। वह पुनः प्रबल वेग से कौरव-सेना पर प्रहार करने लगी। तभी कर्ण ने

अपने रथ को अर्जुन की ओर वेग से बढ़ाया। यह देखकर राजा दुर्योधन ने कृपाचार्य, कृतवर्मा, शकुनि, अश्वत्थामा आदि वीरों को आज्ञा दी कि वीरो ! तुम सब आगे बढ़ कर कर्ण की सहायता करो। इसके बाद दोनों ओर से वेग पूर्वक घोर युद्ध प्रारंभ हुआ। उसी समय दुर्योधन की आज्ञा से मत्त गजराजों पर चढ़े हुए तेरह सौ म्लेच्छ एक ओर से आक्रमण करने लगे, जिन्हें अर्जुन ने भल्ल और अर्द्धचन्द्र बाणों के द्वारा व्यर्थ कर दिया।

आपके पुत्र वीर दुःशासन भी अद्भुतकर्मा थे। उन्होंने भीमसेन का धनुष काट कर उनके सारथी पर तथा स्वयं उन पर भी घोर बाण-वर्षा की। यह देखकर भीमसेन अत्यन्त कुपित होकर बोले—रे धृतराष्ट्रपुत्र ! पहले तू मन भर कर मुझ पर प्रहार कर ले और फिर मेरा प्रहार सहने को तैयार होजा। यह कह कर भीमसेन ने गदा लेकर सिंहनाद किया, तब दुःशासन ने भीमसेन पर एक प्राणनाशिनी शक्ति चलाई, जिसे कुपित होकर भीमसेन ने नष्ट कर दिया। इस प्रकार दोनों वीर मरने-मारने वाला युद्ध करने लगे। इसी बीच भीमसेन ने उनसे पूछा —अरे पापी ! बतला, तू ने द्रोपदी के केश कौन-से हाथ से खींचे थे। दुःशासन ने कहा—अरे मूर्ख ! यही वह हाथ है, जिसने हजारों गोदान और युद्ध में असंख्य क्षत्रियों का वध किया है। इसी हाथ से द्रौपदी के केश पकड़ कर खींचे थे।

दुःशासन के यह वचन सुनकर भीमसेन ने कहा—अरे नीच ! मैं तेरे इसी हाथ को उखाड़ता हूँ। यह कह कर भीमसेन ने झपट कर दुःशासन का वह हाथ तोड़ कर कण्ठ को इतने जोर से दबा दिया कि दुःशासन के प्राण निकल गए। फिर उन्होंने दुःशासन का हृदय चीर कर वहाँ से निकलते हुए उष्ण रक्त का स्वाद ले लेकर पान करते हुए कहा—माता के दूध में, रस में, मदिरा में अथवा किसी भी

अन्य पेय पदार्थ में, ऐसा स्वाद नहीं आया, जैसा कि इस शत्रु के रक्तपान में स्वाद आ रहा है। हे राजन ! उस समय भीमसेन के उस क्रूर कर्म को जिसने भी देखा, वही आतङ्क और भय से विह्वल होकर धरती पर गिर पड़ा अथवा जो न गिरा उसके हथियार हाथ से छूट कर गिर गये। सभी लोग 'यह मनुष्य नहीं राक्षस है' ऐसे पुकारते हुए इधर-उधर भागने लगे।

इसी मध्य चित्रसेन का युधामन्यु से युद्ध होने लगा। चित्रसेन ने युधामन्यु को तीन और उनके सारथी को छः बाण मारे। तब क्रोधविह्वल युधामन्यु ने एक तीक्ष्ण बाण मार कर चित्रसेन का सिर काट दिया। यह देखकर कर्ण शत्रु-सेना का संहार करने लगे, तब नकुल ने कर्ण का सामना किया। उसी समय भीमसेन ने कृष्ण और अर्जुन के समीप पहुँच कर कहा—वीरो! दुःशासन-वध वाली मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी है। अब शीघ्र ही दुर्योधन को मार कर उसके सिर को लात से ठुकराने की अपनी दूसरी प्रतिज्ञा भी शीघ्र पूर्ण करूँगा। यह कह कर महाबली भीमसेन अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करने लगे।

अर्जुन द्वारा कर्ण का मारा जाना

संजय ने कहा—महाराज ! कर्ण के पुत्र वृषसेन का नकुल से युद्ध हो रहा था। उसमें वृषसेन के पराक्रम के सामने नकुल का बल फीका रहा। वृषसेन ने उनके रथ सारथी आदि को नष्ट करके खड्ग भी काट डाला। इससे व्यथित हुए नकुल भीमसेन के रथ पर चढ़ गये। उसी समय अर्जुन ने वहाँ आकर नकुल की सहायता की। यह देख कर वृषसेन ने शतानीक, अर्जुन और भीमसेन को तीन-तीन, श्रीकृष्ण को बारह तथा नकुल को सात बाण मारे। तब क्रुद्ध हुए अर्जुन सब को सुना

कर कर्ण से कहा—हे कर्ण मैं आज तुम्हारे सामने ही तुम्हारे पुत्र वृषसेन को मारे देता हूँ। क्योंकि तुम सब ने मिलकर अकेले अभिमन्यु का वध किया था। यह कह कर अर्जुन ने एक क्षुरप्र बाण से वृषसेन का वध कर दिया। यह देख कर महावीर कर्ण शोक से सन्तप्त हो उठे और फिर बड़े वेग से अर्जुन की ओर बढ़े।

उधर अर्जुन भी कर्ण को मारने की इच्छा से उनके सामने आये। दोनों में भयानक संघर्ष होने लगा। दोनों ही अत्यन्त पराक्रमी, अद्वितीय रण निपुण, श्रेष्ठतम धनुर्धर तथा दुर्धर्ष वीर थे। उनके सिंहनाद से गगन मण्डल प्रतिध्वनित हो रहा था। उस समय उन्हें देख कर कोई भी नहीं कह सकता था कि दोनों में से कौन जीतेगा।

उनके युद्ध को देखने के लिए आकाश में देवता, सिख, गन्धर्व आदि का जमघट लग गया। उस पाण्डवों की चतुरंगिणी सेना अर्जुन की रक्षा में तथा कौरवों की प्रबल सेनाएँ कर्ण की रक्षा में तत्पर हुई। तभी आकाश में स्थिर इन्द्र अन्य देवताओं से कहने लगे कि आज मेरा पुत्र अर्जुन कर्ण को मारेगा। यह सुन कर सूर्य बोले—यह नहीं हो सकता। आज मेरा पुत्र कर्ण अर्जुन का वध करेगा। हे राजन्! इस प्रकार आकाश में स्थित देवादि के भी दो पक्ष हो गये थे। तब सब देवताओं ने ब्रह्माजी से पूछा हे भगवन्! इन दोनों में कौन जीतेगा? ब्रह्माजी ने कहा—देवताओ! अर्जुन देवपक्ष में और कर्ण असुरपक्ष में है, इसलिए अर्जुन की ही विजय होगी। भगवान् शङ्कर ने भी ब्रह्मा के कथन की पुष्टि की। इसी समय कर्ण और अर्जुन के मध्य घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। तब कौरव-पक्ष के सौ रथी, सौ गजी, सौ अश्वारोही मिल कर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे, जिन्हें अर्जुन ने क्षुरप्र बाणों के प्रहार से शीघ्र ही मार डाला।

इसी समय अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा – राजन्! मेरी बात को शान्त हृदय से सुनो। इस समय पाण्डवों से मेल कर लेना ही उचित प्रतीत होता है। देखो, इस युद्ध में कैसा भयंकर संहार हो रहा है। तुम्हारे अनेकों मित्र, सम्बन्धी, गुरु, पुत्र भाई आदि मारे गये और मारे जारहे हैं,केवल कृपाचार्य और मैं अवध्य होने से जीवित हैं। इसलिये सन्धि करके चिरकाल तक पृथिवी का राज्य भोगो। हे दुर्योधन! यदि मेरी बात न मानोगे तो शत्रुओं के हाथ से तुम भी मारे जाओगे। इसलिए पाण्डवों से मित्रता करनी चाहिये। इससे हमारा-तुम्हारा ही नहीं,संसार भर का भारी उपकार होगा।

यह सुन कर कुछ देर सोचने के बाद दुर्योधन ने दीर्घ श्वास छोड़ कर कहा—मित्र! आपका कथन ठीक है, किन्तु आपके सामने ही दुर्मति भीमसेन ने दुःशासन को मार कर जो क्रूर कर्म किया और जो दुर्वचन मेरे प्रति कहे हैं, वे मेरे हृदय में शूल के समान खटक रहे हैं, तब मेल कैसे होगा? इस समय महाबली कर्ण घोर संग्राम में जुटे हुए हैं, उन्हें रोकना भी सम्भव नहीं है। फिर अर्जुन अब तक थक चुका है, इसलिए कर्ण के द्वारा मारा ही जायगा। इसलिए, हे गुरुपुत्र! अब आप युद्ध बन्द करने के विषय में कुछ भी न कह कर कर्ण की रक्षा में तत्पर हो जाओ। इस प्रकार अश्वत्थामा को विनय पूर्वक समझाकर दुर्योधन ने अन्यान्य वीरों से कहा कि शत्रुओं पर जोरदार आक्रमण करो और अर्जुन को मार डालो।

कर्ण और अर्जुन इन्द्र और वृत्तासुर के समान परस्पर भयंकर प्रहार कर रहे थे। उसी समय सोमकगण ने चिल्ला कर कहा—वीर अर्जुन! दुष्ट कर्ण को शीघ्र मार डालो। इधर कौरव कह रहे थे–वीर कर्ण! पापात्मा अर्जुन का शीघ्र वध करदो। तब कर्ण ने अर्जुन पर और अर्जुन ने कर्ण पर तीक्ष्ण बाणों के प्रहार

किये। साथ ही दोनों वीर पर पक्ष के अन्य वीरों पर भी प्रहार करते जाते थे। तभी कर्ण ने घोर भार्गवास्त्र छोड़ कर अर्जुन के अस्त्रों का प्रभाव कम कर दिया और पाण्डव पक्ष की असंख्य सेना का संहार प्रारम्भ किया। उस समय भीमसेन ने क्रोध पूर्वक कहा—हे अर्जुन ! देखो, यह सूत पुत्र तुम्हारे सामने ही पांचाल सेना के प्रमुख-प्रमुख वीरों को मारे जा रहा है। उसने तुम्हारे भी सभी बाण व्यर्थ कर दिये हैं। हे धनंजय ! यह समय उपेक्षा का नहीं है, इसलिए इस पापी को तुरन्त मार दो। इसी समय कृष्ण ने भी कहा—अर्जुन ! कर्ण तुम्हारे अस्त्रों को व्यर्थं कर रहा है और तुम कुछ मोहित-से हो रहे हो। इसलिए साव-धान होकर शीघ्र ही इसे परास्त कर डालो।

अर्जुन बोले—हे केशव ! अब मैं विश्वकल्याण और कर्ण-वध की इच्छा से ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना चाहता हूँ। इसकी मुझे अनुमति दीजिए। श्रीकृष्ण ने कहा—धनंजय ! तुम ब्रह्मा-स्त्र के अद्वितीय ज्ञाता हो इसलिए उसका शीघ्र प्रयोग करो। यह सुन कर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र को प्रकट किया, तब गाण्डीव से सर्प के समान एवं सूर्य-रश्मियों जैसे चमकदार बाणों ने निकल-निकल कर सम्पूर्ण दिशाओं को भर दिया तब वे गिरते हुए शस्त्रास्त्र कौरव सेना का भीषण संहार करने लगे। उस समय कौरवों ने चिल्ला कर कहा—वीर कर्ण ! तुम इस अर्जुन को शीघ्र मार डालो, अन्यथा यह दम भर में ही सब कौरवों को मार डालेगा। यह सुन कर कर्ण दूने उत्साह से पाण्डवों का संहार करने में तत्पर हुए तथा अपना विजय नामक धनुष लेकर और उस पर अमोघ आर्थवणास्त्र चढ़ा कर अर्जुन के दिव्यास्त्र का प्रभाव नष्ट करने लगे। फिर उन्होंने अनेक अस्त्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों से में अर्जुन को आहतकर दिया,इसी प्रकार अर्जुन ने भी कर्ण को अपने प्रहारों से घायल किया। उस समय आकाश से

कभी 'कर्ण ! तुम धन्य हो' और कभी 'अर्जुन ! तुम धन्य हो' ऐसी वाणियाँ सुनाई देने लगीं।

हे महाराज धृतराष्ट्र ! खाण्डव वन-दाह के समय अश्वसेन नामक नाग की माता को अर्जुन ने मार डाला था और वह नाग पाताल में रहने लगा था। वह उस पुराने वैर को स्मरण कर आकाश में खड़ा होकर युद्ध देखता हुआ अवसर की ताक में था। वह माया के बल से बाण का रूप धारण कर कर्ण के तरकस में जा घुसा। उस समय सर्वत्र बाणों का आवरण छा जाने से अंधकार दिखाई देने लगा था। दोनों वीर जीवन का मोह छोड़ कर युद्ध करते-करते थक रहे थे। तब आकाश से उतर कर अप्सरायें उन पर ठंडा सुगंधित जल छिड़कने और चँवर डुला कर थकान दूर करने लगीं। इन्द्र ने अर्जुन का और सूर्य ने कर्ण का पसीना स्वयं अपने हाथों से, अलक्षित रूप में पोंछ डाला। उसी समय कर्ण को अपने नागबाण का स्मरण हो आया। कर्ण ने उसे चन्दन चूर्ण के साथ तूणीर में रख छोड़ा था तथा वे नित्य प्रातःकाल उसका पूजन किया करते थे। कर्ण ने जब उस बाण को चढ़ाया तब लोकपाल हाहाकार कर उठे और इन्द्र अपने पुत्र के मरने की आशंका से व्याकुल हो उठे। तभी शल्य ने कहा—वीर कर्ण ! तुमने बाण को उल्टा रखा है, इसलिए इसे सीधा करके चढ़ाओ, जिससे शत्रु मारा जा सके। कर्ण बोले—महाराज शल्य ! मैं किसी बाण को दूसरी बार नहीं चढ़ाता तथा एक बार ही चढ़ा कर छोड़ता हूँ। मैं कभी कूटयुद्ध नहीं करता। यह कह कर कर्ण ने बाण को वेग से छोड़ दिया।

कर्ण के धनुष से छूटा हुआ यह बाण आकाश में पहुँच कर प्रज्वलित हो गया। उसे अर्जुन की ओर आता हुआ देख कर श्रीकृष्ण ने रथ को पहियों के सहित धरती में कुछ धँसाकर बाण का लक्ष्य भ्रष्ट कर दिया। तब वह बाण अर्जुन के किरीट को

गिरा कर चला गया। उस समय उसका जो भयङ्कर शब्द हुआ उससे संसार के सभी प्राणी व्याकुल हो उठे।

अर्जुन के सिर काटने में असफल हुआ वह वाण रूपी नाग लौट कर कर्ण के तरकस में पुनः घुसने लगा तो कर्ण ने उसे देख कर पूछा तुम कौन हो ? नाग ने कहा—मैं अश्वसेन नाग हूँ। अर्जुन ने मेरी माता को मार डाला था, इसलिए मैं भी तुम्हारे बाण के साथ जाकर अर्जुन को मार डालूँगा। कर्ण बोले—नागराज ! मैं दूसरे के बल पर कभी विजय प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता। ऐसे सौ अर्जुन हों तो भी उन्हें मारने के लिए एक बाण को दुबारा नहीं चढ़ा सकता। यह सुन कर नाग स्वयं ही उग्ररूप धारण कर अर्जुन को मारने के लिए वेग-पूर्वक चला। यह देख कर कृष्ण बोले—अर्जुन ! इस पुराने शत्रु को तुरन्त मार दो। यह सुनकर अर्जुन ने छः बाणों के प्रहारसे उसके खण्ड-खण्ड कर डाले। इस प्रकार नाग मर गया। तब श्रीकृष्ण ने उस धँसे हुए रथ को अपने हाथ से धरती से निकाल लिया।

तत्पश्चात् कर्ण और अर्जुन में पुनः भयङ्कर युद्ध होने लगा। कर्ण ने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया तो अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र के द्वारा उसका शमन कर दिया। और कर्ण पर रौद्रास्त्र से युक्त बाण छोड़ने को उद्यत हुए तभी कर्ण के रथ का पहिया एक गढ़े में गिर कर धरती में घुस गया। तब कर्ण स्वयं रथ से उतर कर उस पहिये को निकालते हुए अर्जुन से कहने लगे—हे अर्जुन ! मेरे रथ का पहिया धरती में धँस गया, इसलिए मैं जब तक इसे निकालूँ तब तक तुम मुझ पर प्रहार न करना। क्षत्रियों का यही नियम एवं धर्म है कि वे शस्त्रहीन, प्रार्थना करते हुए, प्रहार न करते हुए, केश खुले हुए या किसी भी रण से विमुख हुए शत्रु पर प्रहार नहीं करते हैं। तुम युद्ध

धर्म के ज्ञाता हो, इसीलिए, मैं तुमसे ऐसा कहता हूँ, किसी भय से नहीं कहता।

यह सुन कर कृष्ण ने कहा—हे राधेय ! इस समय तुमको क्षत्रिय-धर्म का स्मरण हुआ, यह बड़ी बात है। किन्तु नीच पुरुषों को सङ्कट के समय दैव की निन्दा करते ही देखा जाता है, अपने दुष्कर्मों को कभी नहीं देखते। जब एकवसना द्रौपदी को तुम सबने अपमानित किया था उस समय तुम्हारी धर्म दृष्टि कहाँ चली गई थी ? जब कपट द्यूत से पाण्डवों का सर्वस्व छीन कर उन्हें लाक्षागृह में भस्म करने की योजना बनाई गई थी, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ था ? जब तुम सब ने मिल कर अकेले बालक अभिमन्यु की हत्या की थी, उस समय तुम धर्म को कहाँ भूल गये थे ? अब तुम कितना भी धर्म-धर्म क्यों न चिल्लाओ, तुम्हारे प्राण बचने सम्भव नहीं है और फिर एक दिन यही हाल धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का होगा।

यह सुनकर कर्ण ने लज्जा से सिर झुका लिया और फिर धनुष तान कर वेग से युद्ध करने लगे। उसी समय कृष्ण ने कहा —अर्जुन ! कर्ण को शीघ्र ही मार गिराओ। तब अर्जुन क्रोध से अधीर होकर कर्ण पर बाण-वर्षा करने लगे। उस समय कर्ण अपने रथचक्र को गढ़े से निकालने का यत्न कर रहे थे। अर्जुन ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया तो कर्ण ने वारुणास्त्र से उसे शान्त कर दिया। अर्जुन ने वायव्यास्त्र चलाकर उन मेघों को छिन्न-भिन्न किया तो कर्ण ने एक अत्यन्त घोर अस्त्र निकाल कर चढ़ाया जो कि बिल में सर्प के घुसने के समान अर्जुन के हृदय में जा घुसा। उससे अर्जुन काँप उठे और गाण्डीव का संभालना भी कठिन हो गया। अर्जुन को अचेत देख कर कर्ण अपने रथ का पहिया निकालने लगे, तभी अर्जुन सचेत हो गए। उनसे कृष्ण ने कहा—पार्थ ! इसे रथ पर चढ़ने

से पहिले ही मार डालो। यह सुन कर अर्जुन ने एक अंजलिक बाण लिया और क्षुरप्र बाण से कर्ण के रथ की ध्वजा काट कर घोर अंजलिक बाण को धनुष पर चढ़ाया, उस समय सब ऋषि महर्षि पुकार उठे कि लोक कल्याण हो। अर्जुन ने भी उस बाण से प्रार्थना की कि हे बाण ! तू मेरे शत्रु का तुरन्त वध कर दे। यह कह कर अर्जुन द्वारा छोड़े हुए उस बाण ने कर्ण का सिर काट डाला। रे राजन् ! महावीर कर्ण के गिरते ही उनके शरीर से एक ज्योति निकल कर सूर्यमण्डल में जाकर समा गई। तब परास्त हुई कौरव-सेना चारों ओर भाग निकली और पाण्डवों में हर्ष-उल्लास छागया तभी मोहित से हुए मद्रराज शल्य कर्ण के ध्वजहीन रथ को लेकर दुर्योधन के पास गये और उन्हें कर्ण की मृत्यु का समाचार सुना कर तथा शोक संतप्त हुए देख कर सान्त्वना देने लगे। इस प्रकार कर्ण की मृत्यु के पश्चात् युद्ध बन्द होने पर कृष्ण सहित अर्जुन ने युधिष्ठिर के पास जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया और कर्ण-वध का समाचार कह सुनाया। जिससे प्रसन्न हुए युधिष्ठिर ने उन्हें हृदय से लगा लिया।

वैशम्पायनजी बोले— हे जनमेजय ! संजय के मुख से दुःशासन-वध और कर्ण-वध का वृतान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्र कटे वृक्ष के समान धरती पर गिर कर अचेत हो गए। संजय और विदुर ने चेत आने पर धृतराष्ट्र को तथा कुरुकुल की महिलाओं ने गान्धारी को समझा कर शान्त किया। जो महात्मा अर्जुन-कर्ण-युद्ध के इस वृत्तान्त को पढ़ता या सुनता है, उसे यज्ञ करने जैसा फल प्राप्त होता है।

॥ कर्ण पर्व समाप्त ॥

शल्य पर्व

दुर्योधन का राजा शल्य को सेनापति बनाना

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! कर्ण की मृत्यु के पश्चात् थोड़े से बचे हुए कौरवों ने क्या किया. यह बताइये वैशम्पायन जी बोले—राजन् ! कर्ण के मारे जाने पर शोक समुद्र में निमग्न दुर्योधन हाय कर्ण । हाय कर्ण ! कहकर रुदन करते हुए अत्यन्त कष्ट पूर्वक मरने से बचे हुए राजाओं के साथ निराशा पूर्वक अपने शिविर में लौटे । उस समय उन्हें मित्र राजाओं ने विविध प्रकार सान्त्वनाएँ देकर समझाया । अन्त में भवितव्यता को प्रबल मान कर दुर्योधन ने प्रात:काल होने पर पुन: रणभूमि को प्रस्थान किया । उस समय दुर्योधन ने महाराज शल्य को सेनापति बनाया था, वे शल्य मध्याह्न काल में युधिष्ठिर के द्वारा मारे गये । तब अत्यन्त असहाय एवं विवश हुए दुर्योधन रणक्षेत्र से भाग कर एक सरोवर में जा घुसे । पता लगने पर दिन के तृतीय प्रहर में पाण्डवों ने उस सरोवर पर जाकर दुर्योधन को ललकारा तो वे सरोवर से निकल कर गदा-युद्ध करने लगे । अन्त में भीमसेन ने जाँघ तोड़ कर उन्हें मार डाला । इससे क्रोधित हुए अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य ने रात्रि के समय पाण्डवों के शिविर में जाकर सोते हुए उनके सैनिकों और पांचाल का वध कर दिया । दूसरे दिन प्रात:काल विलाप करते हुए संजय हस्तिनापुर पहुँच कर महाराज धृतराष्ट्र के पास गये, जहाँ देवी गाँधारी भी सब बहुओं के साथ बैठी हुई थीं । उस समय विदुरादि सजातीय एवं सुहृद हितचिन्तक पुरुष भी वहां उपस्थित थे । वहाँ दु:ख से विह्वल हुए संजय ने भरे गले से

कहा—महाराज ! मैं संजय आपको नमस्कार करता हूँ। पराक्रमी भीमसेन ने कुरुराज दुर्योधन को जाँघ तोड़ कर मार डाला साथ ही आपके सब पुत्र और आपके पक्ष के सब योद्धा मारे गये। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, प्रभद्रकगण, पांचालगण, द्रौपदी के पाँचों पुत्र तथा पाण्डव पक्ष के अन्यान्य वीर भी न बच सके। काल द्वारा कलवित हुए वीरों के कारण दोनों पक्ष के शिविर जनशून्य पड़े हैं। अब तो दोनों पक्षों में केवल श्रीकृष्ण, सात्यकि, पाँचों पाण्डव, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ही जीवित बचे हैं। हे राजन् ! दोनों ओर की अठारह अक्षौहिणी सेनाओं में से उक्त दस मनुष्य ही शेष रहेहैं।

संजय के मुख से उक्त समाचार सुन कर महाराज धृतराष्ट्र मूर्च्छित होकर गिर गये। सभी उपस्थित स्त्री पुरुष उनके मुख पर शीतल जल छिड़कने और पंखा हिलाने आदि उपायों से उन्हें सचेत करने का प्रयत्न करने लगे। देवी गान्धारी आदि स्त्रियाँ रोने लगीं। फिर चेत आने पर राजा ने सभी स्त्री पुरुषों को वहाँ से अन्यत्र जाने की आज्ञा दी और शोकार्त होकर विलाप करने लगे। तब उन्हें विदुर और संजय ने अनेक प्रकार से समझा कर शान्त किया। जब चित्त कुछ शान्त हुआ, तब धृतराष्ट्र ने संजय से कहा—संजय ! युद्ध का पूरा वृत्तान्त मुझे सुनाओ।

संजय बोले—महाराज ! कर्ण के मरने पर कौरव सेना भागने लगी तो दुर्योधन ने उसे पुनः उत्साहित कर युद्ध में प्रवृत्त किया। यह देख कर अर्जुन भी उस सेना का विनाश करने लगे उस समय कौरव-सेना जड़ में नौकाविहीन हुए यात्रियों के समान अपने आश्रयदाता को खोजने लगे। तब पुनः भागती हुई अपनी सेना की ओर देख कर राजा दुर्योधन अकेले ही परपक्ष को ललकारने लगे। उस समय उनका अद्भुत पराक्रम दिखाई दिया

उन्हें लड़ते देख कर पाण्डवपक्ष के वीरों ने उन्हें घेर लिया। तभी कौरवों की अवशिष्ट सेना दुर्योधन के वचनों से उत्साहित होकर आगे बढ़ी। किन्तु कुछ देर में ही उसका साहस घट गया।

पाण्डवों के प्रहार से अत्यन्त पीड़ित और विनष्ट होती हुई उस सेना को देख कर कृपाचार्य जी ने दुर्योधन के पास जाकर कहा—राजन् ! यद्यपि युद्ध ही क्षत्रिय का धर्म है, किन्तु अब हमें यह सोचना चाहिए कि भीष्म पीतामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ दु:शासनादि बड़े-बड़े वीर ही जब मारे जा चुके, तब अब ऐसा क्या रह गया है, जिसके लिए हम युद्ध करें। राजन् ! उस भयंकर संग्राम को चलते हुए सोलह दिन व्यतीत हुए हैं, आज सत्रहवाँ दिन है। इतने समय में ही ऐसा भीषण विनाश होगया है कि सर्वत्र त्राहित्राहि होने लगी है। हे भरतश्रेष्ठ ! बृहस्पति की नीति के अनुसार अपना पक्ष प्रबल हो तो युद्ध करे, अन्यथा सन्धि कर ले। इसलिए युधिष्ठिर के आगे झुक कर भी राज्य बचा रहने में अपना कल्याण है। युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्र की बात अवश्य मान लेंगे, इसलिए इस समय हमें सन्धि कर लेनी चाहिए। यदि मेरी बात न मानोगे तो राज्य और प्राण दोनों ही गँवा बैठोगे।

कृपाचार्य के वचन सुन कर दीर्घश्वास छोड़ते हुए दुर्योधन ने कहा—ब्रह्मन् ! आपका कथन युक्तियुक्त हैं, किन्तु मैंने पाण्डवों का बड़ा अपमान और अपराध किया है, इसलिए प्रथम तो वे ही मुझे क्षमा नहीं करेंगे और यदि वे क्षमा भी करदें तो मैं इस धरती पर एकच्छत्र राज्य कर चुका हूँ, अत: पाण्डवों की कृपा से अधूरे राज्य को लेकर मुझे कैसे सन्तोष होगा ? इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं मेल नहीं कर सकता, युद्ध ही करूँगा। मेरा यह निश्चय किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता।

दुर्योधन का निश्चय सुन कर सब उपस्थित राजाओं ने उनकी सराहना की और बोले—राजन् ! आप किसी एक महारथी को सेनापति बनाकर व्यवस्थित रूप से युद्ध कीजिये। यह सुन कर दुर्योधन तुरंत अश्वत्थामा के पास जाकर पूछने लगे—महामहिम आचार्यपुत्र ! अब हम सबकी एकमात्र गति आप ही हैं। कृपया बताइये कि अब किसे सेनापति बनाया जाय ? अश्वत्थामा ने कहा राजन् ! मद्रराज शल्य रूप,गुण, यश और तेज से सम्पन्न हैं। इस समय यही सेनापति होने के योग्य हैं। अश्वत्थामा के ऐसा कहने पर सभी महारथीगण महाराज शल्य को चारों ओर से घेर कर उनका जयजयकार करने लगे। दुर्योधन ने उनसे हाथ जोड़कर कहा—मामाजी ! इस समय आप ही हमें इस विपत्ति से उबार सकते, इसलिए हमारे सेनापति का पद स्वीकार करने की कृपा कीजिये। शल्य ने कहा—कुरुराज ! जो कहते हो वही करूँगा। यह सुन कर दुर्योधन ने महाराज शल्य का सेनापतिपद पर अभिषेक किया। उस समय कौरव-दल में युद्ध के बाजे बजने लगे। प्रातः काल होने पर दोनों पक्षों ने व्यूह रचना कर युद्ध का आरम्भ कर दिया।

शल्य-वध का वृत्तान्त वर्णन

संजय बोले—हे महाराज ! अब अठारहवें दिन का युद्ध आरम्भ हुआ, उसमें दोनों ओर के हजारों रथी, गजी, अश्वारोही और योद्धा परस्पर भिड़ गये। उस समय महा पराक्रमी भीमसेन और अर्जुन ने कौरव-सेना को मोहित-सा कर दिया और युधिष्ठिर, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि अनेक वीर अकेले शल्य से युद्ध करने लगे। उस समय पाण्डवों के प्रहार से पीडित हुई सेना इधर-उधर भागने लगी। यह देख कर शल्य ने सारथी से कहा—हे सूत ! मेरे रथ को युधिष्ठिर के सामने ले

चलो। यह सुन कर सारथी उनको उधर लेकर बढ़ा। इससे भागती हुई कौरव-सेना भी पुनः उत्साहित होकर युद्ध में डट गई।

कर्ण के पुत्र चित्रसेन से नकुल लड़ रहे थे। चित्रसेन ने उनके धनुष को काट कर घोड़े, ध्वजा और सारथी को नष्ट कर दिया। तब नकुल रथ से कूद कर पैदल ही युद्ध करने लगे। और तलवार के वार से चित्रसेन को मार गिराया। यह देख कर चित्रसेन के भाई सुषेण और सत्यसेन ने नकुल पर घोर प्रहार किया। घोर युद्ध के पश्चात् उन्होंने सुषेण और सत्यसेन का भी वध कर दिया।

तत्पश्चात् राजा शल्य का पाण्डवों से घोर संघर्ष हुआ। शल्य ने पाण्डव-सेना का मर्दन कर युधिष्ठिर को भी अत्यन्त पीड़ित किया। तब भीमसेन, नकुल, सहदेव भी शल्य पर बाण-वर्षा करने लगे। उसी समय कृतवर्मा ने भीमसेन के रथ के अश्वों को मार डाला तब भीमसेन रथ से उतर, गदा हाथ में लेकर आक्रमण करने लगे। उन्होंने कृतवर्मा के रथ पर गदा चलाई, यह देख कर कृतवर्मा रथ से कूद गये और उनका रथ-अश्व आदि नष्ट हो गए।

महाराज शल्य पुनः युधिष्ठिरको पीड़ित करने लगे,तब भीम-सेनगदा लेकर शल्यकी ओर दौड़े और उनके चारोंघोड़ों को मार डाला। यह देखकर अत्यन्त कुपित हुए शल्यने भीमसेन के हृदय में एक तीक्ष्ण तोमर से प्रहार किया। वह तोमर उनके कवच को तोड़ता, हृदय में जा घुसा। किन्तु भीमसेन ने उसे अपने हृदय से निकाल कर शल्य के सारथी पर फेंका, जिससे सारथी की तुरन्त मृत्यु हो गई।

अब शल्य और भीमसेन दोनों ही गदा युद्ध करने लगे। उस समय दोनों के शरीर परस्पर के गदा-प्रहार से आहत हो गए। फिर दोनों वीर मूर्च्छित हो गए, यह देख कर कृपाचार्य शल्य

को अपने रथ पर चढ़ा कर हटा ले गये । उधर भीमसेन सचेत होकर शल्य को पुनः ललकारते हुए सिंहनाद करने लगे। उस समय दुर्योधनादि कौरवपक्ष के वीर भी पाण्डवों से युद्ध कर रहे थे। दुर्योधन ने चेकितान को प्रास मार कर समाप्त कर दिया। फिर कृपाचार्य, कृतवर्मा, शकुनि एवं शल्य, यह चारों मिल कर युधिष्ठिर से युद्ध करने लगे। अश्वत्थामा के नेतृत्व में त्रिगर्तदेश के तीन हजार महारथी अर्जुन से भिड़े हुए थे।

शल्य ने धर्मराज युधिष्ठिर को बुरी तरह आहत किया, तब सहदेव ने शल्य के सारथी को घायल करके तीन बाणोंसे शल्यको आहत किया। फिर भीमसेन ने सत्तर, सात्यकि ने नौ और युधिष्ठिरने साठ बाणों से शल्य पर प्रहार किया। तब क्रुद्ध हुए शल्य ने उन सब महारथियों पर एक साथ बाण-वर्षा की और युधिष्ठिर, को अत्यन्त विह्वल कर दिया। फिर भी युधिष्ठिर, भीससेन आदि पाण्डव शल्य के सामने डटे रह कर उन पर प्रहार करते हुए सिंहनाद करते रहे।

अश्वत्थामा अर्जुन से युद्ध कर रहे थे। तब कुपित हुए अर्जुन कौरव-सेना को नष्ट करने लगे। उन्होंने अनुचरों सहित कौरवोंके दो सहस्त्ररथ और रथी समाप्तकर दियेतथा अश्वत्थामा के रथ के घोड़े और सारथी को मार कर रथ भी छिन्न-भिन्न कर दिया। तब उन्होंने परिघ जैसा एक मूसल अर्जुन पर फेंका जिसे अर्जुन ने मार्ग में ही नष्ट कर दिया। तभी अश्वत्थामा ने पांचाल देश के महारथी सुरथ को बाण-प्रहार से मार डाला और फिर अर्जुन की ओर पुनः बढ़े। उसी समय बचे हुए संशप्तकगण पुनः अर्जुन से संग्राम करने लगे।

मध्याह्न काल हो गया था। पाण्डवगण शल्य से जी खोल कर लड़ रहे थे। उस समय उन्होंने अपने भानजे नकुल को बुरी तरह विह्वल किया। यह देख कर युधिष्ठिर,

भीम, सात्यकि, सहदेव आदि नकुल की सहायता को दौड़ पड़े। उस समय शल्य का पराक्रम देखने योग्य था। उनका रथ दैत्य-सेना में विचरते हुए इन्द्र के समान प्रतीत हो रहा था। उन्होंने पाण्डव-सेना का जो भारी संहार किया, उससे पीड़ित हुई सेना भागने लगी। यह देख कर युधिष्ठिर अत्यन्त क्रोधित हो उठे। उन्होंने नकुल-सहदेव को अपना रथ-चक्र-रक्षक नियुक्त कर सात्यकि और धृष्टद्युम्न को भी ऐसा ही भार सौंपा तथा भीमसेन को आगे करके अपने मामा शल्य को मारने के विचार से वेग-पूर्वक आगे बढ़े।

उसी समय भीमसेन और दुर्योधन का युद्ध होने लगा। भीमसेन की चलाई हुई शक्ति ने दुर्योधन का हृदय विदीर्ण कर दिया और एक क्षुरप्र बाण से सारथी को मार दिया। तब उस सारथी-विहीन रथ को लेकर घोड़े इधर-उधर चल पड़े।। यह देख कर उनकी रक्षा के लिये अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा दौड़ पड़े। उस समय अर्जुन कौरवपक्ष के बचे हुए वीरों के हनन में लगे थे।

उधर युधिष्ठिर भी दारुण कर्म करने लगे। उन्होंने सैकड़ों-हजारों शत्रुओं को मार डाला। फिर वे वेग पूर्वक बाण-प्रहार के द्वारा शल्य को आहत करने लगे। उन्होंने शल्य का रथ नष्ट कर दिया, तब अश्वत्थामा शल्य को अपने रथ पर चढ़ा कर उन्हें रणभूमि से हटा ले गए। कुछ देर बाद ही शल्य दूसरे रथ पर चढ़ कर सामने आ गए। तब युधिष्ठिर अपने अन्य भाइयोंके सहित उनपर भीषण प्रहार करने लगे। धर्मराजने शल्य पर एक घोर शक्ति चलाई। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित वह शक्ति शल्य के कवच को तोड़ कर और हृदय विदीर्ण कर पृथिवी-तल में घुसी चली गई। इस प्रकार महाराज शल्य के मरने पर कौरव-पक्षके बचे-खुचे सैनिक युधिष्ठिर के हाथों मरने लगे।

अपने भाई को मरा हुआ देख कर शल्य के छोटे भाई ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया, किन्तु युधिष्ठिर ने उसे छः वाण मार कर ही धरती पर गिरा दिया। यह देख कर कौरव-सेना में निराशा छा गई और वे वहाँ से भागने लगे, किन्तु सात्यकि ने उन्हें बाणों के प्रहार से मारना प्रारम्भ किया। यह देखकर कृत-वर्मा ने सात्यकि का सामना किया, कुछ देर लड़ने के बाद सात्यकि ने कृतवर्मा का रथादि नष्ट करके पार्श्वरक्षक भी मार डाले, तब रथहीन कृतवर्मा को कृपाचार्यजी अपने रथ पर चढ़ा कर वहाँ से हटा लेगए।

कृतवर्मा को युद्ध से हटा हुआ देख कर कौरवों की उत्साह-हीन सेना भाग खड़ी हुई। पाण्डवपक्ष के वीर उन्हें पीछा करके मारने लगे। यह देख कर दुर्योधन अकेले ही पाण्डवपक्ष के लोगों को रोकने लगे। उस समय सभी शत्रु दुर्योधन को सामने से हटाने में असमर्थ रहे। तभी कृतवर्मा भी दूसरे रथ पर चढ़ कर आगये। युधिष्ठिर ने तुरन्त ही कृतवर्मा के चारों घोड़े मार कर कृपाचार्य पर भी प्रहार किया। तब अश्वत्थामा रथहीन कृत-वर्मा को अपने रथ पर चढ़ा कर लेगये। इधर कृपाचार्य ने युधि-ष्ठिर और उनके घोड़ों पर प्रहार किया, जिसे युधिष्ठिर ने व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार शल्य के मारे जाने पर पाण्डवगण सिंह-नाद करने लगे।

अठारहवें दिन शकुनि आदि का मारा जाना

संजय बोले—राजन्! तत्पश्चात् शल्य के साथ के सात सौ रथी वीर क्रोध पूर्वक शत्रु-सेना की ओर वेग से बढ़े। उन्हें राजा दुर्योधन ने बहुत रोका पर वे रुके नहीं और युधिष्ठिर पर प्रहार करने लगे। पाण्डव, पांचाल, सोमकों ने युधिष्ठिर को बीच में कर लिया। मद्र देश के वे वीर पाण्डवों से डट कर लोहा लेते

हुए नष्ट होने लगे। यह देख कर शकुनि की सलाह से दुर्योधन ने उनकी सहायता के लिए कौरव-सेना भेजी। तब तक पाण्डवों ने मद्रवीरों का संहार कर डाला, यह देखकर अवशिष्ट कौरव-सेना भाग खड़ी हुई, जिसे दुर्योधन ने उत्साहित करके पुनः युद्ध में प्रवृत्त किया। उस समय म्लेच्छराज शाल्व बड़े वेग से पाण्डवों की ओर बढ़ा। तब भयंकर युद्ध के पश्चात् सात्यकि ने शाल्व को मार डाला।

शाल्व के मरने पर कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। यह देख कर कृतवर्मा ने शत्रुपक्ष पर प्रहार किया। जिसका सात्यकि ने डट कर सामना किया और अन्त में कृतवर्मा परास्त होकर भाग खड़े हुए। तब पाण्डवों ने कौरव-सेना को बुरी तरह छिन्न-भिन्न कर डाला। यह देख कर शकुनि ने दुर्योधन से कहा—कुरुराज ! बचे हुए इन सब वीरों को एक साथ लेकर आक्रमण कीजिए यदि पाण्डवों की रथ सेना परास्त होजाय तो हम अब भी जीत सकते हैं। यह सुन कर दुर्योधन ने सब सेना एकत्र कर पाण्डवों पर आक्रमण कर दिया,यह देख कर अर्जुन उस सेना को मारने लगे। उसी समय आपके पक्ष के अनेक वीरों ने धृष्टद्युम्न को घेर लिया। उस समय रथ के नष्ट होने पर दुर्योधन एक श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़ कर हटे और जहाँ शकुनि थे, वहाँ जा पहुँचे। उधर अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा ने दुर्योधन को न देखा तो चिन्तित स्वर से सभी से पूछने लगे कि राजा दुर्योधन कहाँ हैं। क्या वे मारे गये ? तब अन्य क्षत्रियों ने कहा कि इस समय राजा को देखने के बजाय हम सब मिलकर शत्रुओं से युद्ध करें। यह सुन कर अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा वहां से हट कर दुर्योधन की खोज में शकुनि के पास गये। उधर बची हुई कौरव-सेना को पाण्डवगण निःशेष करने लगे। उन्होंने दुर्योधन के सभी भाइयों को मार डाला।

अब शकुनि और उनके पुत्र उलक ने पाण्डवों पर प्रहार किया। सहदेव ने उलूक को मार कर शकुनि से कहा—अरे नराधम ! हमारा उपहास करने वाले सभी वैरी मारे जा चुके हैं, अब तू और दुर्योधन ही शेष बचे हैं, तू भी अपने कर्मों का फल अभी भोगे लेता है। यह कह कर सहदेव ने शकुनि पर आक्रमण किया और घोर युद्ध के पश्चात् एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से उनका सिर काट डाला। यह देख कर पाण्डव-सेना में हर्ष छागया।

शकुनि के मरने पर उनके साथी वीरों ने कुपित होकर पाण्डवपक्ष पर आक्रमण किया। किन्तु पाण्डव-वीरों ने आपकी वह सभी सेना नष्ट कर दी। हे राजन् ! आपके पुत्र द्वारा एकत्र की गई ग्यारह अक्षौहिणी सेना पाण्डवों ने नष्ट कर दी। कौरव पक्ष के सहस्रों राजाओं महारथी राजाओं में एक राजा दुर्योधन ही बचे रह गये। वह भी उस समय आहत और अत्यन्त थके हुए थे। उनका घोड़ा भी मर चुका था, इसलिए शोक से पीड़ित एवं पश्चात्ताप करते हुए दुर्योधन अपनी गदा लेकर पैदल ही द्वैपायन सरोवर की ओर पूर्व दिशा में चले गये।

उधर धृष्टद्युम्न सहित पाण्डवों ने कौरव-सेना के एक-एक योद्धा को खोज-खोज कर मार डाला, अब कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा और दुर्योधन के अतिरिक्त कोई भी महारथी जीवित नहीं दिखाई देता था। पाण्डव सेना में भी दो हजार रथी, सात सौ गजारोही, पाँच हजार अश्वारोही और दस हजार पदाति शेष रहे थे। हे राजन् ! मुझे युद्ध करते समय सात्यकि ने पकड़ लिया था। किन्तु भगवान् व्यासजी ने सहसा वहाँ आकर मुझे छुड़ा दिया। तब मैं तुरन्त राजा दुर्योधन के पास पहुँचा, उन्होंने मुझसे कहा—संजय ! महाराज से कह देना कि मैं महायुद्ध से हट कर द्वैपायन-सरोवर में सुरक्षित हूँ। यह कह कर दुर्योधन उस सरोवर में घुस गये और उन्होंने जल स्तम्भन विद्या के

प्रभाव से सरोवर के जल को बाँध दिया। जब वे सरोवर में जा छिपे तभी आहत अवस्था में अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा भी वहाँ आकर राजा के विषय में पूछने लगे तो मैंने उन्हें बता दिया कि इसी सरोवर में छिपे हैं। यह सुन कर वे तीनों वहाँ से चले गये और शिविर में जाकर रोने लगे। उस समय शिविर रक्षक भयाकुल होगये और कौरव-नारियाँ कुररियों की तरह रो रही थीं। उन नारियों के रक्षक वृद्ध पुरुष उन्हें शिविर से लेकर नगर को चल पड़े।

हे महाराज ! कौरव-शिविर की भगदड़ को देख कर आपके पुत्र युयुत्सु ने सोचा कि मैं पाण्डव पक्ष में होने के कारण जीवित बच रहा हूँ। मैं ही राजा धृतराष्ट्र की एक मात्र सन्तान हूँ, इस लिए अपने परिवार की स्त्रियों के साथ मुझे भी नगर में जाना चाहिए। ऐसा विचारकर उन्होंने राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण की आज्ञा लेकर नगर के लिए प्रस्थान किया।

पाण्डवों का सरोवर पहुँच कर दुर्योधन को ललकारना

संजय बोले—हे राजन् ! तत्पश्चात् अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने सरोवर पर जाकर उच्च स्वर से कहा—कुरु-राज ! वहाँ से निकल आओ। हम तीनों वीर तुम्हारी प्राण-रक्षा में तत्पर रह कर युद्ध करेंगे। दुर्योधन ने कहा—महारथियो ! मैं बहुत थका हूँ, आज युद्ध नहीं कर सकता। रात भर विश्राम करके प्रातःकाल तुम्हारे साथ चल कर युद्ध करूँगा। हे महा-राज ! उनकी वह बात चीत कुछ व्याधों ने सुन ली। वे भीम सेन के लिए माँस पहुँचाया करते थे। उन्होंने सोचा कि दुर्योधन के यहाँ छिपे होने का समाचार हमारे मुख से सुन कर पाण्डव हमें बहुत-सा धन देंगे। इसलिए उन्होंने तुरन्त वह समा-चार उन्हें जासुनाया और भीमसेन से बहुत-सा धन पाकर अपने घर गये।

दुर्योधन के द्वैपायन-ह्रद में छिपे होने का समाचार पाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सदलबल उस सरोवर के लिए प्रस्थान किया। इधर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने मेघगर्जन जैसा सेना का कोलाहल सुना तो दुर्योधन से बोले—राजन्! विजयी पाण्डव इधर ही आरहे हैं। इसलिए हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं है, क्योंकि हमें यहाँ देख कर पाण्डवगण समझ सकते हैं कि आप यहीं छिपे हुए हैं। यह सुन कर दुर्योधन ने उन्हें वहाँ से हटने की अनुमति दे दी। तब वे तीनों वहां से दूर जाकर विश्राम करने लगे।

उसी समय पाण्डवगण सदल-बल उस सरोवर पर पहुँचे और युधिष्ठिर ने दुर्योधन को सम्बोधन करके कहा—हे सुयोधन! सब क्षत्रियों, मित्रों, सम्बन्धियों और अपने कुल को नष्ट कराकर जल में क्यों जा छिपे हो? राजन्! कौरववंश में उत्पन्न तुम जैसे स्वाभिमानी वीर का इस प्रकार युद्ध से भाग कर छिप जाना शोभा नहीं देता। तुम्हें क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करना चाहिए। फिर या तो हमें मार कर तुम ही राज्य करो अथवा हमारे हाथ से मारे जाओ, यही क्षत्रिय का धर्म है।

दुर्योधन बोले—हे युधिष्ठिर! मेरा रथ, तरकस, पार्श्व रक्षक, सारथी, कवच कुछ नही रहा तो इस सरोवर में विश्राम करने के लिए चला आया। आज तुम सब भी विश्राम कर लो तो प्रातःकाल उठ कर मैं अकेला ही तुम सब से युद्ध करूँगा। युधिष्ठिर ने कहा—दुर्योधन! हम तो खूब विश्राम कर चुके और बहुत देर से तुम्हें खोज रहे हैं। इसलिए, सरोवर से बाहर आकर हमसे युद्ध करो और हमें मार कर सुखपूर्वक निष्कंटक राज्य करो अथवा वीर गति को प्राप्त होओ।

दुर्योधन बोले—युधिष्ठिर! सम्पूर्ण पृथिवी वीरों से और धन धान्य से भी शून्य होगई है। अब इसके राज्य को मैं क्या करूँगा?

मैं तो मृगछाला धारण कर वन में जाऊँगा इसलिए अब निष्कण्टक होकर तुम ही इस पृथिवी का राज्य भोगो। यह सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—कुरुराज ! जल के भीतर से ही इस प्रकार का आर्त प्रलाप क्यों करते हो ? अब तुम पृथिवी देने में समर्थ नहीं हो तब पृथिवी देने की बात कहते हो और जब समर्थ थे तब सुई की नोंक के बराबर भी नहीं देना चाहते थे। देखो, इस समय तुम्हारा जीवन मेरे हाथ में है। तुमने हम लोगों का अत्यंत अपमान किया था। इसलिए मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूगा। अब युद्ध करके हमें मारो या स्वयं मरो, यही मार्ग है।

दुर्योधन ने कहा—पाण्डवों ! तुम्हारे पास शस्त्रास्त्र, सेना, रथ, गज, राज, अश्वादि वाहन सब कुछ मौजूद है। किन्तु मैं अकेला शस्त्र-रथादि से रहित हूँ, फिर भी मैं तुम सब शत्रुओं को मारने में समर्थ हूँ। मैं अपने तेज से तुमसे अपने पक्ष के मारे गये सब वीरों का बदला ले लूँगा। युधिष्ठिर बोले—बहुत अच्छी बात है। अब देर न करो, जल से बाहर निकल आओ। फिर तुम इन्द्र की शरण में जाओगे तब भी तुम्हारी रक्षा संभव नहीं है।

भीमसेन का दुर्योधन को अन्याय से मारना

संजय बोले—हे राजन् ! युधिष्ठिर द्वारा की गई बार-बार भर्त्सना और अक्षेपों को दुर्योधन सहन नहीं कर सके। वे भारी गदा लेकर सरोवर से बाहर निकल आये। उनसे युधिष्ठिर ने कहा—हे सुयोधन ! अपने केशों को बाँध लो और हमसे लेकर कवच और शिरस्त्राण धारण कर लो और हम में से जिससे चाहो, उसी से युद्ध कर लो। जीवनदान के अतिरिक्त और कुछ भी चाहो तो हम सहर्ष देने के लिए तैयार हैं। यदि तुम हममें से एक को भी मार सके तो राज्य प्राप्त कर लोगे।

महाराज ! तत्पश्चात् दुर्योधन ने कवच और शिरस्त्राण धारण कर गदा उठाई और बोले-पाण्डवों तुम में से जो अधिक पराक्रमी हो वह मुझसे गदा-युद्ध कर ले । मैं उसे अवश्य मार डालूँगा । यह सुनकर भीमसेन ने गदा उठाई और दुर्योधन के समक्ष जाकर कहा—दुर्योधन ! आज तुझे तेरे कर्मों का फल मिलेगा । मैं तुझे सदा के लिये मिटाये देता हैं । दुर्योधन ने कहा —भीमसेन ! व्यर्थ बकवाद से कुछ लाभ नहीं । यदि कुछ पौरुष है तो सामने आकर युद्ध कर ।

राजन्! गदा-युद्ध प्रारम्भ होने को ही था कि बलदेवजी वहाँ आ गये । सभी ने उठकर उनका पूजन किया तब वे बोले—मैं बयालीस दिन से तीर्थयात्रा पर था । नारद के मुख से आज अपने दोनों शिष्यों का गदायुद्ध होना सुनकर उसे देखने के लिए यहाँ आ गया हूँ । यह कह कर वे एक श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हुए । तभी भीमसेन और दुर्योधन का अन्तिम निर्णायक गदायुद्ध प्रारम्भ हो गया । उस समय दोनों ही आमने-सामने होकर भीषण प्रहार करने लगे ।

उस युद्ध को देख कर सभी दर्शक यह मानने लगे कि गदा-युद्ध में दुर्योधन अजेय हैं तभी दुर्योधन ने भीमसेन ,के सिर पर जोर से गदा मारी, किन्तु भीमसेन उससे विचलित नहीं हुए । फिर भीमसेन ने भी पूरा बल लगा कर गदा चलाई, किन्तु प्रहार व्यर्थ होने से भयङ्कर शब्द के साथ पृथिवी हिल उठी । तभी दुर्योधन ने पैंतरे बदल कर भीमसेन के हृदय पर गदा का प्रहार किया, जिससे भीमसेन कुछ अचेत-से हो गये । फिर सँभल कर उठे और दुर्योधन के पार्श्व में गदा मारी, जिसकी चोट से विह्वल हुए दुर्योधन ने घुटने टेक दिये । किन्तु तुरन्त सँभल कर भीमसेन पर प्रहार करने को वेग से दौड़े और भीमसेन के

मर्मस्थलमें गदा मार कर उन्हें अचेत करदिया। उस समय भीमसेन का कवच टूट गया और मुख से रक्त निकलने लगा था।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण के कहने से अर्जुन ने भीमसेन को दिखा कर अपनी बांई जाँघ पर हाथ मारा। उस संकेत को समझ कर भीमसेन गदा-प्रहार करने लगे, जिसे निष्फल करके दुर्योधन ने भी वार किया। जिससे भीमसेन विह्वल एवं अचेत हो गए और फिर सावधान होकर प्रहार करने लगे। प्रहार से बचने के लिए दुर्योधन ने बैठ कर ज्योंही प्रहार करना चाहा,त्योंही भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघों में जोर से गदा का प्रहार किया, जिससे दुर्योधन की जाँघे टूट गईं और वे धड़ाम से धरती पर गिर गये। राजन् ! इस प्रकार भीमसेन ने अन्याय पूर्वक दुर्योधन की सुडौल जाँघें तोड़ कर मृतक तुल्य कर दिया। उस समय पाण्डवपक्ष के सभी पुरुष भीमसेन की प्रशंसा करने लगे। तभी भीमसेन ने विजयोन्माद में भर कर प्रतापी दुर्योधन के सिर को अपने बाँये पाँव से ठुकराया। इस पर सब लोग उनकी निन्दा करने लगे। युधिष्ठिर ने भी उनके कर्म की भर्त्सना की और धराशायी दुर्योधन के पास जाकर क्षमा माँगने और विलाप करने लगे।

भीमसेन का अन्याय कर्म देख कर बलराजमी क्रुद्ध हो गए। उन्होंने कहा—भीम को धिक्कार है। इसने नाभि के नीचे गदा प्रहार न करने के नियम का उल्लंघन करके भारी अन्याय किया है। दुर्योधन को न्यायपूर्वक गिराने में कोई भी समर्थ नहीं है, इसलिए मैं इसे दण्ड दूँगा। यह कह कर गदायुद्ध विशेषज्ञ महात्मा बलदेवजी अपना हल उठा कर भीमसेन को मारने के लिए झपटे। यह देख कर श्रीकृष्ण ने उन्हें रोक कर शान्त करते हुए कहा—भैया ! नीति छः प्रकार की है—स्ववृद्धि, परपक्ष का क्षय, अपने मित्र की वृद्धि, शत्रु के मित्र का क्षय, अपने मित्र के

मित्रकी वृद्धि और शत्रु के मित्र के मित्र का क्षय। पाण्डव हमारे मित्र, स्वजन एवं सम्बन्धी भी हैं। शत्रुओं ने उनके साथ अन्याय कर उन्हें पीड़ित किया, इसलिए भीमसेन का कार्य भी अनुचित नहीं हैं। इसलिए आप क्रोध को शान्त कर इन्हें क्षमा कर दें।

बलरामजी उस बात से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कहा—भीम ने यह अधर्म किया है, इसलिये लोग इसके कर्म की सदा निन्दा करेंगे। यह कहते हुए बलरामजी रथ पर बैठ कर द्वारका को चले गये।

अश्वत्थामा का सेनापति पद पर अभिषेक

संजय बोले—महाराज! दुर्योधन को मार कर सिंहनाद करते हुए पाण्डवादि वहाँ से लौट पड़े और अपने-अपने शिविरों में जाकर विश्राम करने लगे। किन्तु श्रीकृष्ण, युयुत्सु और सात्यकि के साथ पाण्डवों ने दुर्योधन के शिविर में जाकर देखा तो वह सूना पड़ा था। उसमें नपुंसक, वृद्ध अमात्य और स्त्रियाँ ही दिखाई देती थीं। वहाँ पहुँच कर श्रीकृष्ण ने रथ को रोका और अर्जुन से कहा कि पहिले तुम इस रथ से उतर जाओ। यह सुनकर अर्जुन रथ से उतर गये, तब श्रीकृष्ण भी रास छोड़-कर उतरे और रथ की ध्वजा में स्थित दिव्य वानर भी अन्त-र्धान हो गया, तब भीष्म, द्रोण और कर्ण के दिव्यास्त्रों के तेज से समन्वित वह रथ तुरन्त ही घोड़ों के सहित जल कर भस्म हो गया। यह देख कर अर्जुन ने पूछा—वासुदेव! यह कैसा आश्चर्य हुआ?

कृष्ण बोले—अर्जुन! यह रथ तो भीष्मादि के दिव्यास्त्रों के तेज से पहिले ही भस्म हो चुका था, किन्तु मेरे बैठे रहने के कारण पूर्ववत् बना रहा था। यह कह कर कृष्ण अर्जुन के साथ आपके पुत्र के शिविर में गये, जहाँ उन्हें अपार कोष, रत्न, स्वर्ण, मणिमुक्ता आदि की प्राप्ति हुई। इसके बाद श्रीकृष्ण ने

कहा कि हमें आज की रात कल्याण-कामना के साथ बाहर ही व्यतीत करनी चाहिये। यह सुन कर सब ने पवित्र ओमव्रती नदी के तट पर जाकर रात्रि व्यतीत की उस समय युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा—हे माधव! देवी गान्धारी के सब पुत्र मारे गये हैं,इसलिए तुम हस्तिनापुर जाकर उन्हें समझाओ यहसुनकर श्रीकृष्ण तुरन्त अपने दारुक द्वारा हाँके जाने वाले रथ पर चढ़ कर हस्तिनापुर गये।

वहाँ उन्होंने पहिले धृतराष्ट्र को समझाया और फिर गान्धारी से बोले—पतिव्रते! तुमने मेरे सामने ही दुर्योधन से धर्मयुक्त वचन कह कर समझाया था और जब वह न माना तो तुमने ही निष्पक्ष भाव से कहा था कि अरे मूर्ख! जहाँ धर्म है, वहीं जय है। तुम्हारा वह धर्मसंगत वचन सत्य होना ही था,इसलिये तुम शोक को त्याग कर पाण्डवों को नष्ट करने की इच्छा मत करना, क्योंकि तुम अपने पतिव्रत के बल पर समूचे संसार को भस्म करने में समर्थ हो।

गान्धारी ने कहा—केशव! आपके उपदेश से मेरी विचलित हुई शोक-विह्वल बुद्धि अब निर्मल हो गई है। अब तो शोकाकुल वृद्ध महाराज की गति पाण्डव और तुम ही हो। यह कह कर गान्धारी रोने लगी। तब कृष्ण ने उन्हें पुनः सान्त्वना दी। उसी समय श्रीकृष्ण को स्फुरण हुआ कि अश्वत्थामा आज सोते हुए पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं, इसलिए गाँधारी और धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर कृष्ण पाण्डवों के पास लौट आये।

उधर मरणान्तक अवस्था में पढ़े हुए दुर्योधन के पास लोगों की भीड़ एकत्रित हो गई। उस समय दुर्योधन ने अपने चारों ओर दृष्टि घुमा कर पास खड़े हुए संजय से कहा—हे संजय! पाण्डवों ने इस प्रकार मुझे मार कर अन्याय कर्म किया है। तुम

मेरे पक्ष के सभी लोगों से कह दो कि वे इस अन्याय का समाचार सर्वत्र फैला दें। मेरे पिता महाराज धृतराष्ट्र से भी कहना कि मेरे लिए शोक न करें। मैं अपने वीर धर्म का पालन करता हुआ स्वर्गलोक को जा रहा हूँ। दुर्योधन के वचन सुनकर एकत्रित भीड़ के मनुष्य रोने लगे। अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा ने जब इस समाचार को सुना तब वे तुरन्त वहाँ पहुँचे। उस समय राजा दुर्योधन की दशा देख कर अश्वत्थामा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा—राजन् पापी पाण्डवों ने अन्यायपूर्वक तुम्हें मारा है। उन्होंने मेरे पिता को भी छलपूर्वक मारा था। राजेन्द्र! मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ आज रात में पांचालों और पाण्डवों का अवश्य वध करूँगा। यदि मैं ऐसा न करूँ तो मेरे सभी सुकृत नष्ट हो जाँय। मुझे इसकी आज्ञा दीजिये।

यह सुन कर प्रसन्न हुए दुर्योधन ने जल का कलश मँगवाया और कृपाचार्य से कहा—द्विजवर मेरी आज्ञा से अश्वत्थामा का सेनापतिपद पर अभिषेक कर दो। राजाज्ञा से ब्राह्मण को युद्ध करने में दोष नहीं लगता। यह सुनकर कृपाचार्य ने अश्वत्थामा का अभिषेक किया तब वे तीनों वीर वहाँ से चले गये। इधर रक्त से लथपथ दुर्योधन वहीं पड़े रह कर रात्रि व्यतीत करने लगे।

॥ शल्य पर्व समाप्त ॥

सौप्तिक पर्व

अश्वत्थामा का शिवजी को प्रसन्न करना

संजय ने कहा—राजन् ! सायंकाल के समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा तीनों ही दक्षिण की ओर भाग निकले। दुर्योधन के मारे जाने से यह तीनों ही दुःखित थे। युद्धभूमि से दूर जाकर एक एकान्त स्थान में रथों से उतर कर एक वट वृक्ष के नीचे जा लेटे। कृपाचार्य और कृतवर्मा तो सो गये, पर अश्वत्थामा को नींद नहीं आई। वे सोचने लगे कि मैंने पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा की है, किन्तु उन्हें मैं सामने जाकर तो नहीं मार सकता, इसलिए छिप कर मार देना चाहिए। ऐसा निश्चय कर उन्होंने अपने दोनों साथियों को जगा कर अपना विचार प्रकट किया और उनकी सम्मति माँगी। कृपाचार्य और कृतवर्मा ने उन्हें परामर्श दिया कि सोच-विचार कर ही कुछ करना चाहिए। किन्तु अश्वत्थामा ने उनकी बात का निरादर करते हुए प्रतिज्ञा की कि मैं आज रात्रि में सोते हुए पाँचालों और पाण्डवों की सन्तान के सिरों को अवश्य काट डालूँगा।

कृपाचार्य ने अश्वत्थामा को बहुत समझाया और रोका, पर वे न माने। उन्होंने कृपाचार्य और कृतवर्मा से भी साथ चलने का आग्रह किया और रथ पर चढ़ कर पाण्डवों के शिविर द्वार पर जाकर ठहर गये। उनके पीछे-पीछे कृपाचार्य और कृतवर्मा भी थे।

शिविर द्वार पर बाघम्बर और काली मृगछाला धारण किये एक तेजस्वी पुरुष मार्ग रोके खड़ा था। अश्वत्थामा ने उसका

तिरस्कार कर भीतर जाने की चेष्टा की तो उसके मुख, नेत्र, कान नासिका आदि से ज्वालाएँ निकलने लगीं। यह देख कर अश्वत्थामा उस पर भयंकर बाण-वर्षा करने लगे। किन्तु उस पुरुष ने उनके सभी शस्त्रास्त्रों को तुरन्त ग्रस लिया। अब किंकर्त्तव्य विमूढ़ अश्वत्थामा को सब दिशाओं में करोड़ों विष्णु दिखाई देने लगे, तब भयभीत अश्वत्थामा ने भगवान् शंकर की शरण में जाने का निश्चय किया।

अश्वत्थामा की स्तुति करने पर एक स्वर्ण वेदी प्रकट हुई। यह देख कर वे अपने ही शरीर का बलिदान करने के विचार से स्वयं उस वेदी में बैठ कर भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे। तब शंकर ने प्रकट होकर कहा—वीर! मुझे अर्जुन अत्यन्त प्रिय है, उसी के लिए मैंने पांचालों की अब तक रक्षा की थी। अब उनका काल आगया है।

यह कह कर शंकर ने अश्वत्थामा को एक तलवार देकर उनके शरीर में प्रवेश किया। तब शिवतेज को प्राप्त हुए अश्वत्थामा तेजी से शिविर के भीतर प्रविष्ट हुए। उनके साथ कृपाचार्य और कृतवर्मा तो थे ही, अदृष्य रूप से असंख्य भूत-राक्षस आदि भी भीतर घुस गए।

अश्वत्थामा द्वारा भीषण संहार

अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न के शिविर में घुस कर सर्व प्रथम उन्हीं को पशु के समान मार डाला। उस शब्द से जागकर धृष्टद्युम्न की स्त्रियाँ और शरीर-रक्षक चीत्कार करने लगे। जिससे अन्य क्षत्रिय वीर उठ कर अश्वत्थामा को पकड़ने के लिए दौड़े, किन्तु वे सब पाशुपतास्त्र द्वारा मारे गये।

तभी अश्वत्थामा ने उत्तमौजा, युधामन्यु एवं सोते हुए अनेकानेक क्षत्रिय वीरों को मार डाला, तब द्रौपदी के पुत्र और

सोमक गण उन पर बाण-वर्षा करने लगे। प्रभद्रकगण और शिखण्डी आदि भी जाग पड़े। यह देख कर अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों को मार कर नकुल-पुत्र शतानीक का वध कर दिया। फिर श्रुतकर्मा, श्रुतकीर्ति, शिखण्डी, प्रभद्रकगण, सृंजय-गण, राजा विराट् के बचे-खुचे वीर, द्रुपद के पुत्र पौत्र आदि तथा अन्यान्य बहुत-से वीरों को मार गिराया।

सब ओर भीषण जन-संहार उपस्थित था। भूत और राक्षस भयंकर रूप से तोड़-फोड़ कर रहे थे। जो क्षत्रिय प्राण बचा कर शिविर से बाहर भागे, उन्हें कृपाचार्य और कृतवर्मा ने मार डाला। इस प्रकार सहस्रों वीर मारे गये तब कृपाचार्य और कृतवर्मा ने तीन स्थानों पर आग लगा दी। उसके प्रकाश में अश्वत्थामा ने जिसे देखा उसी को काट डाला। इस प्रकार पूरे शिविर में शव ही शव दिखाई देने लगे। तब अपना कार्य पूरा हुआ देख कर अश्वत्थामा बाहर निकले। उनके दोनों साथियों ने उनका अभिनन्दन किया और फिर तीनों ही शीघ्रता से मृत-वत् दुर्योधन के पास जा पहुँचे। उस समय टूटी जाँघ वाले दुर्यो-धन बेहोश थे। स्यार और भयंकर स्वान उन्हें नोंच-नोंच कर खाने की ताक में हैं। उनकी दशा देख कर तीनों ही रोने लगे। फिर अश्वत्थामा ने उच्च स्वर से कहा कि दुर्योधन! यदि जीवित हो तो सुन लो कि मैंने द्रौपदी के पुत्र धृष्टद्युम्न, उसके पुत्र, पांचाल गण आदि सभी वीरों का पशुओं के समान वध कर दिया है।

अश्वत्थामा के प्रिय वचनों से सचेत हुए दुर्योधन ने नेत्र खोल कर प्रसन्नता व्यक्त की और मन्द वाणी में कहा—अश्व-त्थामा! तुम्हारी बात सुन कर मुझे बड़ा सुख हुआ है, अब तुम लोग सुखी रहो। यह सुन कर तीनों वीरों ने राजा दुर्योधन को

कण्ठ से लगाया और अपने रथों पर चढ़ कर नगर की ओर चल दिये।

संजय ने यह वृत्तान्त सुना कर फिर कहा—महाराज! इस प्रकार आपके पुत्र स्वर्ग चले गए और अब वेदव्यास प्रदत्त मेरी दिव्य दृष्टि भी चली गई।

अश्वत्थामा के शिर की मणि मिलना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! पांचाल-शिविर में दैवयोग से धृष्टद्युम्न का सारथी जीवित बच रहा था, उसने अश्वत्थामा के घोर कृत्य और भयंकर जन संहार का वृत्तान्त धर्मराज को जा सुनाया। उस समाचार को सुन कर शोक-विह्वल हुए युधिष्ठिर अचेत होगए, फिर अर्जुन आदि के संभालने पर संभल कर वे सब के साथ शिविर में गये। उस समय द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी साथ थीं। अपने पुत्र आदि की मृत्यु हुई देखकर द्रौपदी पृथिवी पर गिर पड़ीं। उसकी दशा देख कर भीमसेन अश्वत्थामा को मारने के विचार से उसके रथ की लीक देखते हुए दौड़ पड़े। यह देख कर श्री कृष्ण ने पाण्डवों को परामर्श दिया कि अश्वत्थामा से भीमसेन की रक्षा करनी चाहिए।

तब युधिष्ठिर, अर्जुन और कृष्ण रथ पर चढ़ कर भीमसेन के पीछे दौड़े। उस समय तक भीमसेन गंगा तटपर पहुँच चुके थे। वहाँ ऋषियों के मध्य विराजमान व्यासजी के समीप ही क्रूरकर्मा अश्वत्थामा बैठे थे। उन्होंने भीमसेन को और उनके पीछे युधिष्ठिरादि को आते देखा तो दिव्यास्त्र छोड़ कर भयंकर अग्नि प्रकट की। तब कृष्ण ने भी अर्जुन को दिव्यास्त्र चलाने का परामर्श दिया। अर्जुन के उस अस्त्र ने प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। यह देख कर व्यासजी और नारदजी ने कहा—वीरो यह अस्त्र मनुष्यों पर नहीं चलाये जाते। तुम यह अनर्थ कैसे कर बैठे हो?

यह सुन कर अर्जुन ने अपना अस्त्र लौटा लिया, किन्तु अश्वत्थामा अपने अस्त्र को नहीं लौटा सके। तब व्यासजी ने कहा—अश्वत्थामा ! अर्जुन ने अपना अस्त्र तुम्हें मारने के लिए नहीं, वरन् तुम्हारे क्रोध को शान्त करने के लिए चलाया है। इसलिए तुम अपने क्रोध को शान्त करो और अस्त्र को लौटा लो। युधिष्ठिर अधर्म से विजय की कामना नहीं करते। अब तुम अपने शिर की दिव्य मणि निकाल कर पाण्डवों को दे दो।

अश्वत्थामा ने कहा—ऋषिवर ! आपकी आज्ञानुसार मैं अपनी मणि तो दे सकता हूँ, किन्तु अस्त्र को नहीं लौटा सकता। इसलिए यह अस्त्र उत्तरा के गर्भ पर जाकर गिरेगा। इस प्रकार उस गर्भ का मरना निश्चित है। कृष्ण ने कहा—उस गर्भ का बालक मरा हुआ उत्पन्न होकर भी जीवित हो जायगा, पर तुम्हें अपने पाप का फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

यह सुन कर उदास हुए अश्वत्थामा ने शिर की मणि देकर वन की ओर प्रस्थान किया। तब पाण्डव भी मणि लेकर शिविर में लौट आये। भीमसेन ने वह मणि द्रौपदी को दे दी, जो कि बाद में युधिष्ठिर ने अपने शिर पर धारण की।

श्रीकृष्ण ने द्रौपदी और पाण्डवों को समझाया और बोले—अश्वत्थामा ने शिवजी को प्रसन्न करके ही इतना बड़ा हत्याकांड कर डाला, अकेले अश्वत्थामा के बूते का यह नहीं था। इसलिए अब इस शोक का त्याग करना ही उचित है।

॥सौप्तिक पर्व समाप्त॥

——

स्त्री पर्व

गान्धारी द्वारा श्रीकृष्ण को शाप देना

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण सेना आदि के सहित दुर्योधन के मारे जाने पर राजा धृतराष्ट्र ने क्या किया यह बताइये ? वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! पुत्रों के शोक में राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त व्याकुल होरहे थे, तब उन्हें संजय और विदुर ने अनेक प्रकार के नीति एवं धर्मयुक्त वचनों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु धृतराष्ट्र की विह्वलता दूर नहीं हो रही थी। यह देख कर एक दिन व्यासदेवजी ने आकर उन्हें अनेक प्रकार के उपदेश दिये और अन्त में धृतराष्ट्र ने उनसे कहा—भगवन् ! मैं शोक के कारण अत्यन्त मोहित होरहा हूँ, फिर भी शोक को दूर करने का प्रयत्न करूँगा। यह सुन कर व्यास जी अन्तर्धान होगए।

तत्पश्चात् धृतराष्ट्र ने गान्धारी एवं कुन्ती आदि के सहित मृत पुरुषों को देखने के लिए रणभूमि में जाने का विचार किया और रथों पर चढ़ कर सब के सहित चल दिये। मार्ग में उन्हें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा मिले जो पांचालगण आदि को मार कर भागे जा रहे थे। इसके पश्चात् राजा धृतराष्ट्र के हस्तिनापुर से बाहर आने का समाचार जान कर युधिष्ठिर भी अपने भाइयों, श्रीकृष्ण, युयुत्सु, सात्यकि एवं द्रौपदी आदि स्त्रियों के साथ राजा धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और उनके चरणों में प्रणाम किया। धृतराष्ट्र ने उदास मन से उन्हें गले लगाया तभी

भीमसेन मिलने को आगे बढ़े तो श्रीकृष्ण ने उन्हें रोक लिया और भीमसेन की लोहे की मूर्ति आगे कर दी। धृतराष्ट्र ने उस मूर्ति को भीमसेन समझ कर हृदय से लगा कर इतने बल पूर्वक दबाया कि वह लोहे कि मूर्ति चूर-चूर होगई।

लौह-प्रतिमा को बल पूर्वक चूर्ण करने से धृतराष्ट्र का हृदय फट गया और मुख से रक्त निकलने लगा। इससे वे मूर्च्छित होगए और कुछ देर बाद चेत आने पर भीमसेन को मृत हुआ जान कर 'हाय भीम !' कह कर रोने लगे। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि महाराज ! यह भीम नहीं, वरन् लौह-प्रतिमा थी, जिसे आपने चूर्ण किया है। हे कौरवेन्द्र ! आप परम ज्ञानी हैं, अब आप पाण्डवों पर कोप का त्याग कर शान्त होजाँय, आपके पुत्रों ने इन पर जो अत्याचार किये थे, उसी का फल उन्हें भोगना पड़ा है। अब यह पाण्डव आपके धर्म-पुत्र एवं स्नेह के पात्र हैं। धृतराष्ट्र बोले—यदुनन्दन ! आपका कथन सत्य है, अब मेरा क्रोध शान्त होकर बुद्धि ठिकाने पर आगई है। अब यही मेरे पुत्र हैं।

तदनन्तर पाण्डवगण गान्धारी के पास गए। उस समय पुत्र शोक से विह्वल हुई गान्धारी युधिष्ठिर को शाप देने को तत्पर हुई। तभी वेदव्यासजी ने वहाँ आकर उन्हें समझाया और शाप देने से रोका। तब गान्धारी ने कहा—ब्रह्मन् ! मुझे क्रोध नहीं, वरन् यही सन्ताप है कि श्रीकृष्ण के सामने ही भीमसेन ने मेरे पुत्र को अधर्मपूर्वक मार डाला। धर्मराज युधिष्ठिर कहाँ हैं, उन्हें यहाँ बुलाओ।

यह सुन कर भयभीत युधिष्ठिर ने गान्धारी के चरण स्पर्श किये तो नेत्रों पर बंधी पट्टी के कारण गान्धारी की दृष्टि उनकी अँगुलियों के अग्रभाग पर ही पड़ी, जिससे उनके सुन्दर नाखून

काले पड़ गये। तत्पश्चात् पतिव्रता गान्धारी ने दयावश पाण्डवों को अभय प्रदान कर दिया।

फिर सब पाण्डवादि कुन्ती से मिले। उस समय वह भी रोने-बिलखने लगी थी। फिर रोती हुई द्रौपदी को कुन्ती और गान्धारी दोनों ने ही सान्त्वना दी। तत्पश्चात् सब ने साथ-साथ जाकर रणभूमि के दृश्यों को देखा। एक स्थान पर दुर्योधन के शव को पड़ा देश कर गान्धारी गिर पड़ीं और जोर से विलाप करने लगीं। अन्त में उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—माधव! तुमने समर्थ होकर भी परस्पर के विनाश में तत्पर कौरव-पाण्डव को लड़ने से नहीं रोका। इसलिए तुम भी अपने ही हाथ से अपने भाई, पुत्र आदि का संहार करोगे। आज से छत्तीसवें वर्ष सम्पूर्ण यादव वंश नष्ट होजायगा और तुम अनाथ के समान वन में अकेले ही मारे जाओगे। कौरव-स्त्रियों के समान तुम्हारी स्त्रियाँ भी विलख-विलखकर रोवेंगी।

कृष्ण ने कहा—हे क्षत्रियपुत्री! यह तो होना ही है, किन्तु तुमने इनकी पुनरुक्ति करक अपना ही तप नष्ट कर डाला है। हे गान्धारी! अब शोक त्याग कर उठो, क्योंकि क्षत्रिय पुत्रियाँ युद्ध में मरने के लिए ही पुत्र उत्पन्न करती हैं।

तदनन्तर श्रीकृष्ण की अनुमति से राजा युधिष्ठिर ने विदुर को आज्ञा दी कि सब मृतकों का दाह-संस्कार कराया जाय। उसके अनुसार यथावत् दाह क्रिया पूर्ण होने पर सब लोग राजा धृतराष्ट्र को आगे करके गंगातट पर गये।

हे राजन्! धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर एवं अन्यान्य सभी ने गंगा स्नान किया और स्त्रियों के सहित मृतकों को तिलांजलियाँ दीं। उस समय कुन्ती ने कुछ लज्जित भाव से धीरे से पाण्डवों के प्रति कहा—पुत्रो! जिस महाधनुर्धर कर्ण को अर्जन ने मारा है।

उसकी उत्पत्ति सूर्य के द्वारा मेरे ही गर्भ से हुई थी। अपने उस ज्येष्ठ भ्राता को तिलांजलि दो।

माता के मुख से कर्ण का अपना भाई होना सुन सभी पाण्डव अत्यंत दुःखित हुए। उन्होंने कर्ण को तिलांजलि देकर कहा कि यदि हमें यह बात पहिले मालूम होजाती तो यह नर संहार नहीं होता।

॥ स्त्री पर्व समाप्त ॥

शान्ति पर्व

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! पाँचों पाण्डव, विदुर, धृतराष्ट्र आदि ने जलदान आदि से तर्पण किया और फिर पाण्डवगण अपनी शुद्धि के लिए एक महीने पर्यन्त नगर के बाहर ही निवास करते रहे। उस समय शोक-सन्तप्त युधिष्ठिर को अनेक ऋषि मुनियों ने आकर सान्त्वना दी। व्यासजी ने उन्हें क्षत्रिय-धर्म का उपदेश किया और अन्त में कहा—पुत्र ! यदि तुम सभी धर्मों को सुनना चाहते हो तो शर-शैया पर पड़े हुए भीष्म पितामह के पास जाओ। वह धर्म के सूक्ष्म तत्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं। यह कह कर व्यासजी चले गए।

तब श्रीकृष्ण की अनुमति से सब पाण्डव उठ खड़े हुए और धृतराष्ट्र को आगे करके अपने नगर की ओर चल दिये। वहां नगर निवासियों ने उनका हर्ष पूर्वक स्वागत किया।

फिर शुभ मुहूर्त में युधिष्ठिर राजसभा में पहुँचे उस समय ब्राह्मणों ने उनका राज्याभिषेक किया। भीम, अर्जुन आदि युवराज बनाये गये। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने युद्ध में मारे गये सभी सजातीगों के पृथक्-पृथक् श्राद्ध कराये और धृतराष्ट्र-गान्धारी आदि का सत्कार करते हुए निष्कंटक राज्य करने लगे।

फिर एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति से उन्हें साथ लेकर युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास गये। उस समय भीष्म ने युधिष्ठिर का स्वागत कर श्रीकृष्ण की स्तुति की। तब प्रसन्न

हुए श्रीकृष्ण ने भीष्म की प्रशंसा कर उनसे युधिष्ठिर को उपदेश देने के लिए कहा।

भीष्म ने कहा—आप जगद्गुरु के समक्ष मेरा जैसा मनुष्य क्या उपदेश दे सकता है? जिसमें मैं तो अत्यन्त पीड़ित और क्षीण भी हूँ। यह सुन कर श्रीकृष्ण ने उनके शरीर को दृढ़ कर दिया और बोले—हे गांगेय! आपके द्वारा ऐसे विनीत वचन कहे जाना आश्चर्य प्रद नहीं है। फिर भी मैं आपको वर देता हूँ कि आपके हृदय में सम्पूर्ण ज्ञान जाग उठे।

तत्पश्चात् युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर भीष्म ने राजधर्म का वर्णन किया। फिर चारों वर्णों और आश्रमों का धर्म बताया तत्पश्चात् राजनीति की चर्चा की तथा अनेक वीर, कर्त्तव्य पालक क्षत्रिय राजाओं के चरित्र सुनाये। मित्र अमित्र के लक्षण कहे और मन्त्री की परीक्षा के लिए कालक वृक्षीय मुनि का उपाख्यान कहा।

फिर उन्होंने माता, पिता और गुरु की महिमा सुनाई, सत्य और मिथ्या का विवेचन किया, मोक्ष के उपायों पर प्रकाश डाला और फिर कहा—हे युधिष्ठिर! काम, क्रोध, मोह, मद, विवित्सा, मात्सर्य, ईर्ष्या, शोक, निन्दा, दुष्कर्म, असूया, कृपा और भय यह तेरह दोष मनुष्य के भयंकर शत्रु हैं, इनसे सदैव सावधान रहना चाहिए। इन दोषों को केवल शान्ति गुण से ही नष्ट किया जा सकता है।

जापक का उपाख्यान

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने सदाचार के विषय में सुनने की इच्छा प्रकट की तो भीष्म ने कहा—धर्मराज! सज्जन पुरुष सदाचारी कहलाते हैं, वे आवश्यक शुद्धि, स्नान, तर्पण, देव-पूजनादि करते और सदा सत्य

बोलते हैं। अधर्म में उनकी मति कभी नहीं होती। परोपकार दया, अहिंसा आदि गुणों से समन्वित वे सदाचारी पुरुष इहलोक और परलोक में भी परम सुख प्राप्त करते हैं।

इसके अनन्तर पितामह ने अध्यात्म योग और ध्यान योग का वर्णन किया। फिर जप का फल सुनाते हुए कहा कि जो जिस कामना से जप करता है, उसे उसी की प्राप्ति होती है। किन्तु श्रद्धा, भक्ति, हर्ष और विधि सहित जप न करने से नरक की प्राप्ति होती है। इस विषय में एक उपाख्यान सुनाता हूँ—

हिमालयके समीप एक परम विज्ञ,यशस्वी ब्राह्मण कठोरतपश्चर्या के साथजप करता था उसे भगवती सावित्री ने दर्शन देकर कहा—'पुत्र ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ' ब्राह्मण ने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मेरा चित्त जप में सदैव लगा रहे। सावित्री बोली—ऐसा ही हो। धर्म, काल,मृत्यु और यम तुमसे बातें करेंगे।

सावित्री के अन्तर्धान होने पर धर्म ने आकर कहा—ब्रह्मन्! तुमने जप के प्रताप से देवताओं के सब लोक जीत लिये हैं, अब अपने इच्छित लोक को गमन करो। ब्राह्मण ने कहा—भगवन् ! मैं किसी लोक को नहीं जाना चाहता, इसी शरीर से मुक्त होने की कामना करता हूँ।

इसी समय यमराज ने आकर कहा—ब्रह्मन् ! मैं यम हूँ, तुम्हें तपस्या का महान् फल मिला है। इस शरीर को त्याग कर उच्च लोक में जाओ। तभी काल ने प्रकट होकर कहा—मैं काल हूं। यह बताने आया हूँ कि तुम्हें शरीर त्याग कर स्वर्गलोक जाने का समय आ गया है। उसी समय मृत्यु ने प्रत्यक्ष होकर बतलाया-मैं मृत्यु हूँ, तुम्हें इस लोक से ले जानेके लिये आई हूँ।

इसी अवसर पर तीर्थाटन करते हुए महाराज इक्ष्वाकु वहाँ आकर बोले—ब्रह्मन् ! आपको कितना धन प्रदान करूँ? ब्राह्मण

ने कहा—राजन् मैं दान नहीं लेता। जो ब्राह्मण दान लेते हों, उन्हें जाकर दीजिए। अब आप बताइये कि मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ।

इक्ष्वाकु ने कहा—ब्रह्मन् यदि आप मेरी इच्छा पूरी करना चाहते हैं तो आपने जो सौ दिव्य वर्षों तक जप किया है, उसका सम्पूर्ण फल मुझे दे दीजिये। किन्तु फल देने से पहिले यह बताइये कि वह फल क्या है ?

ब्राह्मण ने कहा—मेरे जप का फल क्या है ? यह तो मैं भी नहीं जानता। किन्तु मैंने जो कुछ जप किया है वह सब आपको दिया। उसे यह धर्म, काल, यम और मृत्यु भले प्रकार जानते हैं।

इक्ष्वाकु बोले—भगवन् ! जब आप ही अपने जप का फल नहीं जानते तो मैं ही उस अज्ञात् फल को लेकर क्या करूँगा ? इसलिए वह फल आपके पास ही रहे।

ब्राह्मण ने कहा—राजन् ! आपने माँगा वह मैंने दे दिया, अब मैं उसे लौटा नहीं सकता और न आपको ही अपना वचन तोड़ना चाहिये। राजा बोले—क्षत्रिय दान नहीं लेते तो मैं आप से दान कैसे लूँ। ब्राह्मण ने कहा—मैंने स्वयं देने को नहीं कहा था। आपने स्वयं आकर मांगा तो दे दिया अब आप लेना स्वीकार क्यों नही करते ?

ब्राह्मण और राजा को इस प्रकार झगड़ते हुए देख कर धर्म ने कहा—मैं धर्म हूं, आप दोनों व्यर्थ विवाद न करें। सुनो, ब्राह्मण दान-फल के और राजा सत्य फल के भागी हैं।

तभी शरीर धारण करके स्वर्ग भी वहाँ आकर बोला—मैं स्वर्ग हूँ, तुम दोनों ही समान फल के भागी हो। राजा बोले—हे स्वर्ग ! मैंने तुम्हें नहीं बुलाया, यदि ब्राह्मण ने बुलाया हो, यह तुम्हें प्राप्त करें।

ब्राह्मण ने कहा—मैं भी स्वर्ग की इच्छा नहीं करता। मैंने दान लेना छोड़ दिया है, इसलिए आपके पुण्यकाल की भी मुझे इच्छा नहीं है। राजा बोले–यदि तुम अपने जप का फल देना ही चाहते हो तो आधा फल देकर मेरे धर्म का आधा फल ले लो अथवा मेरे धर्म का पूरा फल ले लो तो बड़ी दया होगी।

राजा और ब्राह्मण में परस्पर यह विवाद चल रहा था, तभी दो कराल रूप वाले पुरुष एक-दूसरे के कन्धे पर हाथ रखे हुए वहाँ आये, उनमें एक का नाम विरूप और दूसरे का विकृत था। विकृत कह रहा था कि 'तुम मेरे ऋणी नहीं हो' पर विरूप कहता था कि 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। यहाँ राजा मौजूद हैं, यही न्याय करेंगे। हे राजन्! विकृत से गोदान का फल लेकर मैं ऋणी हो गया था, अब मैं उस ऋण को चुकाना चाहता हूँ, किंतु यह लेने से इंकार करते हैं।

राजा ने कहा—विकृत! तुम अपना ऋण वापस क्यों नहीं लेते? विकृत बोला—मैं जो वस्तु एक बार दे चुका उसे वापस कैसे ले सकता हूँ? राजा ने कहा—वह ऋण चुकाता है तो तुम्हें लेना ही होगा।

यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा—महाराज! यदि यही न्याय है तो आप भी मेरे द्वारा देने को कहे हुए जपके फल को ले लीजिये। यदि न लोगे तो मैं शाप दे दूँगा।

विवश होकर राजा ने ब्राह्मण से उसके जप का फल लेते हुए कहा—ब्रह्मन्! आप भी मेरा धर्म-फल दान रूप में स्वीकार कीजिये, जिससे हम दोनों ही समान फल के भागी हो जाँय।

तभी विरूप ने कहा—राजन्! हम दोनों काम-क्रोध हैं। आपको जापक के जप का फल लेने के लिए प्रेरित करने के

उद्देश्य से ही यहाँ आये हैं। अब आप दोनों ही तुल्यलोक को प्राप्त करें। तत्पश्चात् दोनों को समान गति प्राप्त हुई।

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर ! जप करने वालों को जो फल मिलता है वह तुमसे वर्णन किया। जापक मोक्ष की इच्छा से मोक्ष और उच्च लोक की इच्छा से उच्च लोक प्राप्त करता है। यदि रागयुक्त मन से जप करे तो उसे वैसे ही सुख-दुःख मिश्रित लोकों की प्राप्ति होती है।

नारायण का वृत्तान्त

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! सब की उत्पत्ति करने वाले वरन् भूत भावन नारायण का वृत्तान्त सुनाईये। भीष्म बोले—राजन्! महात्माओं के मुख से जो सुना है वह कहता हूँ। भगवान् नारायण आकाश, वायु, पृथिवी, तेज और जल को उत्पन्न करके स्वयं जल के ऊपर ही सो गये। फिर उन्होंने मन और अहंकार को उत्पन्न किया। तदनन्तर उनकी नाभि से एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिससे लोक पितामह ब्रह्माजी हुए। तभी मधुनामक एक तमोगुणी दैत्य होकर ब्रह्माजी को भक्षण करने के लिए झपटा किन्तु भगवान् नारायण ने उसे मार डाला। तभी से भगवान् का नाम मधुसूदन हुआ।

ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु नामक मानसपुत्र उत्पन्न किये। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। इनसे पूर्व अपने अँगूठे से ब्रह्माजी ने दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति की। दक्ष की तेरह कन्याएँ हुई जो कश्यपजी को विवाही गईं फिर दक्ष ने दस कन्याएँ और उत्पन्न कीं, जो धर्म की पत्नी हुईं। फिर सत्ताईस कन्याएँ और पैदा कीं, जो चन्द्रमा को दे दीं। कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से आदित्यगण हुए, जिनमें एक वामन-रूपी विष्णु का अवतार भी था। दिति से महाबली असुर

और दनु से दानव हुए तथा अन्य स्त्रियों से गन्धर्व, अश्व, विहग गौ, किन्नर, मत्स्य एवं अन्य उद्भिज जीव हुए।

धर्म ने वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, साध्य एव वायु आदि पुत्रों को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् भगवान् ने दिन, रात, काल, ऋतु, पूर्वाह्न पराह्न, मेघ, पृथिवी तथा स्थावर-जंगम जीवों की रचना की। फिर उन्होंने मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जाँघ से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न किये। उस समय जो मनुष्य जब तक जीवित रहना चाहता था, तब तक उसे मृत्यु का भय नहीं था। क्योंकि इच्छा मृत्यु थी। मैथुन धर्म का अभाव था, स्त्री को स्पर्श करते ही सन्तान उत्पन्न होजाती थी। इस प्रकार परमात्मा से यह सब सृष्टि हुई है। यह भगवान् वासुदेव नित्य हैं, इनकी महिमा अपार है, इन्हें साधारण मनुष्य मत समझो।

उन्हीं भगवान् नारायण ने वराह रूप धारण किया, दानवों ने पृथिवी को सन्तप्त कर दिया तब देवताओं के साथ वह ब्रह्मा जी की शरण में गई। उन्हें ब्रह्माजी ने सान्त्वना देते हुए कहा कि वराह भगवान् शीघ्र ही उनका नाश करेंगे। तदुपरान्त वराहरूप धारी भगवान् ने पाताल में पहुँच कर दानवों पर आक्रमण किया। उस समय क्रोधित हुए असंख्य दानव उन्हें पकड़ कर इधर-उधर खींचने लगे, किन्तु जब उन्हें वश में न कर सके तो बड़े भयभीत हुए। उसी समय वराह भगवान् ने भयंकर गर्जना की जिसे सुनते ही दानवगण गिर-गिर कर मरने लगे। उस भयंकर शब्द के करने के कारण ही भगवान् का नाम सनातन हुआ। उस शब्द से डरे हुए देवता भी जब ब्रह्माजी की शरण में गये, तब ब्रह्माजी ने कहा—देवताओ! डरो मत, यह वराह भगवान् विधि प्रभाव और संहारकर्त्ता काल हैं। लोकों की रक्षा के लिए ही इन्होंने यह भीषण शब्द किया है। यह सभी के आदि पुरुष एवं ईश्वर हैं।

बलि और इन्द्र का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! राज्य नष्ट होने पर जब भारी विपत्ति आपड़े तब राजा को क्या करना चाहिए ? भीष्म बोले—धर्मराज ! इस विषय में बलि और इन्द्र का सम्वाद कहा जाता है। प्राचीन काल में सब असुरों को हराकर इन्द्र ब्रह्माजी के पास गये और हाथ जोड़ कर बोले—ब्रह्मन् ! सदा दान करते रहने पर भी जिसके धन का क्षय नहीं हुआ, वे महाप्रतापी राजा बलि इस समय कहाँ हैं ?

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र ! तुम्हारा यह प्रश्न अनुचित है, फिर भी पूछा है तो कहता हूँ। इस समय राजा बलि ऊँट, बैल, गधे अथवा घोड़े के रूप में किसी शून्य गृह में रहते हैं।

इन्द्र बोले—यदि इस अवस्था में वह मुझे मिलें तो मैं उन्हें मार दूँ या नहीं ? ब्रह्माजी ने कहा—इन्द्र ! बलि मारने के योग्य नहीं हैं, उनसे तो न्याय की बात पूछनी चाहिए।

यह सुन कर इन्द्र अपने ऐरावत पर बैठ कर पृथिवी पर घूमने लगे, तब सहसा उन्होंने एक खाली घर में राजा बलि को गधे के रूप में देखा। उनसे इन्द्र ने कहा—दानवराज ! अब तुम इस अधम योनि में हो, किन्तु पहिले दिव्य विमान में बैठ कर हमारा तिरस्कार किये घूमते थे। बताओ,तुम्हें अपनी इस दुर्दशा पर सन्ताप है या नही ? इस समय तुम्हारा वह वैभव, गडुआ, छत्र, चँवर और ब्रह्मा-प्रदत्त माला आदि कहाँ हैं।

बलि ने कहा—इन्द्र ! इस समय वे सब वस्तुएँ छिपी हुई हैं। अपने को वैभवशाली देखकर मेरी निन्दा करना तुम्हें उचित नहीं है। ज्ञानी पुरुष विपत्ति में दुःख और सम्पत्ति में हर्ष नहीं मानता। हे इन्द्र ! सभी वस्तु अनित्य हैं, सभी कार्य काल के वश में होते हैं। इसलिए मुझे गधा होने का कोई सन्ताप नहीं है। मैं इस योनि में किसी के भी अधीन नहीं हूँ तो शोक क्यों करूँ ?

काल से मारा हुआ ही, किसी के द्वारा मारा जा सकता है, इस लिए 'मैं इसे मारता हूँ' या 'मुझे यह मारता है' ऐसा विचार भ्रान्ति मात्र है। क्योंकि संसार में कोई किसी को नष्ट नहीं कर सकता।

इस समय मुझे गधे के रूप में देख कर तुम मेरी हँसी उड़ाते हो, किन्तु मैं चाहूँ तो अब भी अनेक रूप धारण कर सकता हूँ। उन रूपों को देख कर तुम तुरन्त भाग खड़े होगे। उन्नति के साथ अवनति भी निश्चित् है। ऐश्वर्य का मिलना, न मिलना किसी के अपने हाथ की बात नहीं है। देखो, राजश्री कभी किसी एक के पास नहीं रही, वह तुम जैसे हजारों इन्द्रों के पास रही है और कभी तुम्हें भी छोड़कर किसी अन्य के पास चली जायगी। इसलिए व्यर्थ के गर्व को त्याग दो।

इसके पश्चात् राजा बलि के शरीर से एक परम सुन्दरी नारी प्रकट हुई। इन्द्र ने उसे आश्चर्य से देखते हुए पूछा—दानवराज! तुम्हारे शरीर से निकली हुई यह सुन्दरी कौन है? बलि बोले—इन्द्र! यह देवी, आसुरी या मानवी में से कोई भी नहीं है। तुम्हें जो कुछ जानना हो, वह इसी से पूछ लो।

इन्द्र के पूछने पर सुन्दरी ने बताया—देवराज! मैं लक्ष्मी हूँ। बलि को छोड़ कर अब तुम्हारे पास आरही हूँ।

इन्द्र बोले—ऐसा क्यों करती हो देवि? लक्ष्मी ने कहा—एक को छोड़ कर दूसरे के पास जाना मेरा स्वभाव है। जो सावधानी से मेरी रक्षा करता है, मैं उसे नहीं छोड़ना चाहती। यदि तुम मेरे चार भाग करके चार स्थानों पर स्थापित करो. तो तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।

इन्द्र ने कहा—देवि! तुम्हारा प्रथम भाग पृथिवी धारण करेगी, दूसरा भाग जल और तीसरा भाग अग्नि धारण करेगा।

लक्ष्मी ने इन्द्र के कहे अनुसार अपने तीन पद उन-उन स्थानों पर रख कर चौथे पद के लिए स्थान पूछा तो इन्द्र बोले— ब्राह्मणों और वेदों की रक्षा करने वाले सत्यवादियों के स्थान में अपना चौथा भाग रखो। यह सुन कर लक्ष्मी ने वैसा ही किया।

तदनन्तर बलि ने कहा—इन्द्र ! समय आने पर मैं भी तुम्हें देवासुर-संग्राम में परास्त करूँगा, तब यह लक्ष्मी पुनः मेरे पास आजायगी। यह कह कर दानवराज बलि दक्षिण दिशा में चले गये और इन्द्र अपने स्थान को लौट गये।

अहिंसा धर्म की श्रेष्ठता

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! अब शुद्ध धर्म प्राप्त कराने वाले यज्ञ का वर्णन कीजिए। भीष्म बोले—पाण्डुनन्दन ! सत्य नाम का एक ब्राह्मण उञ्छवृत्ति से यज्ञ करता था। वह दरिद्रता के कारण पशु आदि नहीं पाल सकता था, किन्तु फल-मूल में पशु-भाव करके उनसे हिंसा-प्रधान यज्ञ किया करता था।

एक दिन मृग के रूप में धर्म ने उसके पास आकर कहा— विप्र ! इस प्रकार अंगहीन यज्ञ करना उचित नहीं है। तुम मुझे अग्नि में होम दो तो स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। उसी समय सावित्री ने प्रकट होकर कहा—ब्राह्मण ! मेरी प्रीति के लिए इस पशु का होम करके वांछित फल प्राप्त करो।

ब्राह्मण ने वह बात स्वीकार नहीं की और मृग रूप धर्म से चले जाने को कहा—वह मृग आठ पग जाकर पुनः लौट आया, उसने कहा—यज्ञ में वध होने से मुझे सद्गति प्राप्त होगी, इसलिए मुझे होम दीजिए। मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ, उससे स्वर्ग में स्थित उन अप्सराओं और विमानों को देखिये जिन्हें आप प्राप्त करेंगे।

मृग के कहने से ब्राह्मण ने स्वर्ग में स्थित अप्सराओं और विमानों को देख कर उनकी प्राप्ति के लिए मृग के वध को

उचित ठहराया तभी मृग ने बात बदलते हुए कहा—ब्रह्मन् ! यज्ञ में हिंसा करना काल्याणकारी नहीं है । यह सुनते ही ब्राह्मण की हिंसा-भावना तुरन्त नष्ट हो गई, किन्तु मन में मृग के वध का विचार उठने के कारण उसकी सम्पूर्ण साधना नष्ट होगई । इसलिए ज्ञानीजन यज्ञ में पशु-हिंसा करना कभी उचित नहीं मानते ।

तदनन्तर भगवान् धर्म ने मृग रूप छोड़ कर उस ब्राह्मण का यज्ञ स्वयं ही कराया और अहिंसा धर्म का अवलम्बन करता हुआ वह ब्राह्मण अपने इच्छित को पा गया । हे युधिष्ठिर ! हिंसा से बढ़ कर अन्य कोई पाप नहीं, इसलिए सत्यवादी पुरुषों ने अहिंसा धर्म को मान्यता दी है ।

दक्ष यज्ञ में भाग न पाने से शिव का कोप

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! इन्द्र-वृत्तासुर युद्ध में ज्वर से मोहित हुए वृत्त को इन्द्र ने मार डाला था, उस ज्वर की उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी ? भीष्म बोले—धर्मराज ! दक्ष प्रजापति ने यज्ञ किया था, उसमें सभी देवता-दैत्य आदि सम्मिलित हुए थे । उसके विषय में देवी पार्वती ने भगवान् शंकर से पूछा कि प्रभो ! आप उस यज्ञ में क्यों नहीं जारहे हैं ?

शंकर बोले—प्रिये ! देवगण मुझे यज्ञभाग नहीं देते, इसी परिपाटी के अनुसार मुझे इस यज्ञ में भी नहीं बुलाया गया है ।

पार्वती ने कहा—नाथ ! आप तो सब से बड़े हैं, आपको यज्ञभाग न मिलना सुन कर मुझे अत्यन्त दुःख होरहा है ।

पार्वती को दुःखित जान कर अपने अनुचरों सहित भगवान् शंकर दक्ष की यज्ञभूमि में जाकर यज्ञ का विध्वंस करने लगे, तब पीड़ित हुआ यज्ञ मृग का रूप धारण कर आकाश मार्ग से भागने

लगा।यह देख कर कुपित हुए शिवजी ने धनुष पर बाण चढ़ा कर उसका पीछा किया, उस समय परिश्रम के कारण उनके मस्तक से पसीने की बूँदें टपक पड़ीं । उन बूँदों से अग्नि उत्पन्न हुई, जिससे एक विकराल नाटा पुरुष लाल वस्त्र धारण किये प्रकट हुआ। उसके भय से विश्व में हाहाकार मच गया।

यह देख कर ब्रह्माजी ने कहा—हे महेश्वर ! अपना क्रोध शान्त कीजिए। आपके पसीने से उत्पन्न पुरुष तेज-समूह रूप ज्वर है, इसे धारण करने में पृथिवी असमर्थ है, इसलिए इसे अनेक भागों में विभाजित कर दीजिए।

यह कह कर ब्रह्माजी ने यज्ञ में शिव-भाग निश्चित किया, तब शिवजी ने भी ज्वर के अनेक भाग कर दिये। शिवजी का यह तेज सदैव प्रणाम करने के योग्य है। दानवराज वृत्र इसी ज्वर से पीड़ित हुए तभी इन्द्र ने वज्र चलाकर उन्हें मार डाला। वृत्र विष्णु-भक्त थे इसलिए उन्हें विष्णु लोक की प्राप्ति हुई।

शुक्राचार्य का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! शुक्राचार्य को शुक्रत्व की प्राप्ति हुई बताते हैं, वह किस प्रकार हुई ? भीष्म बोले—धर्मराज ! विष्णु के द्वारा अपनी माता का वध होने के कारण भृगु-वंशोत्पन्न शुक्राचार्यजी देवताओं से वैर करने लगे थे। एक दिन उन्होंने कुबेर के शरीर में प्रविष्ट होकर, उन्हें वश में कर लिया और सब सम्पत्ति छीन ली तो कुबेर ने शिवजी की शरण में जाकर सब वृत्तान्त निवेदन किया। इससे क्रोधित हुए शिवजी ने शुक्राचार्य का आकर्षण किया। तब शुक्राचार्य तुरन्त उनके हाथ में आगये और शिवजी ने उनका भक्षण कर लिया। तदनन्तर शिवजी के उदर में जाकर शुक्राचार्यजी इधर-उधर घूमने लगे।

इधर शिवजी कठोर तपस्या में लीन होगए। अब तो शुक्राचार्य बड़े व्याकुल हुए और शिवजी की स्तुति करने लगे। शिवजी ने कहा—अच्छा, लिंग-द्वार से बाहर निकल जाओ। यह सुन कर शुक्राचार्यजी ने वैसा ही किया। उन्हें निकलते देख कर शिवजी ने शूल से मारने का विचार किया तो पार्वतीजी बोलीं—हे प्रभो ! यह आपके लिंग द्वार से निकला है, इसलिए मेरा पुत्र होगया। शिवजी बोले—अच्छा तो मैं इसे नहीं मारता, यह जहाँ चाहे वहीं चला जाय। तब शुक्राचार्य शिव-पार्वती को प्रणाम करके वहाँ से चल दिये।

सुलभा और जनक का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! क्या गृहस्थाश्रम में रह कर भी कोई मुक्त हुआ है ? तथा लिंग शरीर और स्थूल शरीर के त्याग एवं मोक्ष के विषय में भी बतलाने की कृपा करिये।

भीष्म बोले—इस विषय में सुलभा और जनक के मध्य जो वार्तालाप हुआ उसे कहता हूँ। जनक वंश में उत्पन्न राजा धर्मध्वज मिथिला का राज्य करते थे। वे बड़े विद्वान्, इंद्रिय संयमी एवं सदाचारी थे। सुलभा नाम की एक संन्यासिनी ने उनके धर्म का वृत्तान्त सुन कर मिलने का निश्चय किया और योग के द्वारा अपना शरीर छोड़ कर सुन्दर रूप धारण कर भिक्षा के बहाने राजा के पास जा पहुँची। उसके असाधारण रूप लावण्य से विस्मित हुए राजा ने उसे पाद्य, आसन, भोजनादि देकर सम्मानित किया।

तदुपरान्त राजा ने पूछा—देवि ! तुम कौन हो ? कहाँ से आई और कहाँ जाती हो ? देखो, महात्मा पंचशिख मेरे गुरु हैं, उन्होंने मुझे तीन प्रकार का धर्म बता कर राज-कार्य करते रहने की आज्ञा दी है। मैं विषयों के साथ रह कर उन्हें अंकुरित नहीं

होने देता। मैं स्त्री से प्रेम या शत्रु से द्वेष नहीं करता। मेरी दृष्टि में शत्रु-मित्र, मिट्‌टी और सोना एक समान हैं। मोक्ष का अभिलाषी होकर भी राज्य करता हूँ। क्योंकि रंगे वस्त्र पहनने मूँड मुड़ाने, दण्ड-कमण्डलु धारण करने आदि से ही मोक्ष नहीं मिल सकती। मोक्ष प्राप्ति तो तत्वज्ञान से ही हो सकती है।

हे देवि ! मैं तुम्हें संन्यासिनी समझ कर भी तुम्हारी आयु और रंग-रूप देख कर शंका कर रहा हूँ। तुमने मेरे योग की परीक्षा के लिए मेरा शरीर रोक लिया है, यह उचित नहीं है। भोग-रत रह कर त्रिदण्ड धारण करना निष्फल ही है। तुमने मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर व्यभिचार दोष की उत्पत्ति की है। तुम ब्रह्माणी और मैं क्षत्रिय, इससे मेरे-तुम्हारे संयोग से वर्ण-संकर की उत्पत्ति होगी। तुम संन्यासिनी और मैं गृहस्थ, इससे आश्रम-संकर और कहीं मेरे ही गोत्र की हुई तो गोत्रसंकर दोष होगा। इस पर भी यदि तुम्हारा पति जीवित हुआ तो पराई-भार्या होने के कारण धर्म-संकर दोष भी लगेगा।

देवि ! मैं तुमसे प्रेम नहीं करता, इसलिए इकतरफा प्रेम का संयोग विषतुल्य होता है। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण नहीं होने दूँगा। अब तुम मुझे यह सत्य बताओ कि तुम स्वार्थ-सिद्धि के उद्‌देश्य से ही गुप्तभाव से आई हो, अथवा किसी राजा की प्रेरणा से उसका कार्य बनाने के लिये। तुम छल-कपट को त्याग कर अपने आगमन का ठीक-ठीक प्रयोजन कह दो, यही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है।

यह सुन कर अविचलित भाव से सुलभा ने उत्तर दिया—राजन् ! सदा दोष-रहित एवं गुणयुक्त बात कहनी उचित है। सौक्ष्म्य, सांख्य, क्रम, निर्णय और प्रयोजन, इन पांच अंगों वाले समूह को वाक्य कहते हैं। इनमें संशय-सूचक सौक्ष्म्य, गुण-दोष

के विचार में सहायक सांख्य, पूर्वापर के क्रम निरूपण में सहायक क्रम, पूर्व और अपार के विचारोपरान्त निकलने वाला सिद्धान्त निर्णय तथा करनेनकरने योग्य कार्यों मे प्रवृत्ति-निवृत्ति उत्पन्न करने में सहायक को प्रयोजन कहते हैं। बात वह कहे, जो सार्थक, सरल, संक्षिप्त, मधुर और शंका रहित हो, व्यर्थ की या युक्ति शून्य बात कभी नहीं कहनी चाहिए। महाराज दूसरों को सदा अपने समान समझना चाहिए। यदि आप अपने को और दूसरों को समान समझते हैं तो 'तुम कौन हो ?' कहाँ से आई हो, कहाँ जाओगी ? यह प्रश्न क्यों करते हैं ? जो राजा शत्रु, मित्र उदासीन के साथ उचित व्यवहार करता हुआ सन्धि-विग्रह में आसक्त रहता है, वह मोक्षपद का अधिकारी कैसे हो सकता है ? मोक्ष का अधिकारी तो वही है जो स्त्री आदि संसर्ग विषयों को आत्मा से भिन्न समझे।

राजन् ! असार राज्य का भार वहन करना कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं, इससे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। क्योंकि पूर्णतया राजधर्म की रक्षा करना कोई सरल कार्य नहीं है, उसमें कहीं न कहीं त्रुटि रह ही जायगी। आपने मुझे शरीर स्पर्श न करने को कहा तो मेरा स्पर्श तो अपने शरीर से भी नहीं है, फिर किसी अन्य के शरीर से होना कैसे सम्भव है ? यदि आप जीवन्मुक्त हैं तो मेरे प्रवेश से आपके शरीर को कौन-सी हानि होगई ? सूने गृह में रहना तो संन्यासियों का धर्म ही है। मेरे निर्लिप्त भाव से आपके शरीर में प्रवेश करने में आपको स्पर्श-दोष की प्रतीति हो तो जो ज्ञान आपको पंचशिख की कृपा से प्राप्त हुआ, वह निरर्थक है।

राजन् ! मैं ब्राह्मणी, वैश्या या शूद्रा में से कोई नही हूँ, वरन् आपकी सजातीया हूँ। राजर्षि प्रधान के वंश में उत्पन्न हुई हूं, मुझे सुलभा कहते है। योग्य वर के अभाव में संन्यासिनी होगई,

आपको मोक्ष-धर्म के श्रेष्ठ ज्ञाता सुन कर ही यहां चली आई हूँ। सूने घर के समान आपके शरीर में आज की रात रहूँगी और रात्रि व्यतीत होने पर कल चली जाऊँगी।

भीष्म बोले—हे धर्मराज! मनस्विनी सुलभा के सार्थक वचनों को सुन कर राजा जनक कुछ भी न कह सके। उन्हें मौन रह जाना पड़ा।

धर्मारण्य ब्राह्मण का उपाख्यान

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर! मैं तुम्हें अत्रिवंशीय धर्मारण्य ब्राह्मण का वृत्तान्त सुनाता हूँ। वह महापद्म नगर में भागीरथी के तट पर रहते थे। वे वेद-वेदांग में पारंगत थे। जब उनके पुत्र बड़े होगए तब किस धर्म का आचरण करूँ? यह सोचते रहते। एक दिन उनके यहाँ एक अतिथि आया, जिसका स्वागत सत्कार कर भोजन, शय्या आदि देने के पश्चात् ब्राह्मण ने कहा—ब्रह्मन्! मैं संन्यास लेना चाहता था, पर विषयों में फँसा रहने के कारण नहीं ले पाता। अब मुझे किस आश्रम का अवलम्बन करना चाहिए? यह बताने का कष्ट कीजिए।

अतिथि ने कहा—विप्रश्रेष्ठ! धर्म का मार्ग अत्यन्त दुरुह है। देखो गोमती तट पर नैमिषारण्य में नागपुर है। वहाँ पद्मनाभ नामक एक प्रसिद्ध नागराज रहते हैं। वह कुलीन, गुणवान, अतिथिसेवी, दानी, सन्तोषी एवं धर्म की गति के जानकार हैं। आप उनके पास जाकर अपना संशय निवारण करो।

यह सुन कर धर्मारण्य ब्राह्मण दूसरे दिन नागपुर के लिए चल पड़े और वन, पर्वत, तीर्थ, सरोवर आदि से निकलते हुए एक दिन पद्मनाभ के घर जा पहुँचे। उस समय नागराज घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी ने बताया कि मेरे पति प्रति वर्ष एक मास तक सूर्य का रथ चलाते हैं। उनके

लौटने में पंद्रह दिन शेष हैं। तब तक आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करते हुए यहाँ निवास करें।

ब्राह्मण ने कहा--देवि ! मैं गंगातट पर ठहरूँगा जब नागराज आजाँय तब उन्हें मेरे आगमन की सूचना दे देना। जब तक वे नहीं लौटेंगे, तब तक मैं कठोर व्रत करूँगा, जिससे कि वे समय पर लौट आवें। यह कह कर ब्राह्मण गंगातट की ओर चल दिये। उन्होंने नाग-पत्नी के आतिथ्य-ग्रहण की बात स्वीकार नहीं की।

पंद्रह दिन व्यतीत होने पर नागराज लौट आये। उनकी पत्नी ने उनके चरण धोये और उनका श्रम दूर करने के पश्चात् उन्हें ब्राह्मण के आने का पूरा वृत्तान्त सुना दिया। तदनन्तर नागराज ने ब्राह्मण के पास आकर कहा—विप्रश्रेष्ठ ! मैं पद्मनाभ नाग हूँ, आज्ञा दीजिए कि आपकी क्या सेवा करूँ ?

धर्मारण्य बोले—नागराज ! मैं आपसे कुछ जानने और आपके दर्शन करने के लिए यहाँ आया हूँ। सुना है कि आप सूर्यलोक में रह कर एक मास पर्यन्त सूर्य का रथ हाँकते हैं। वहाँ आपने क्या-क्या आश्चर्य देखे, यह बताइये। इसके बाद मैं बतलाऊँगा कि यहाँ क्यों आया हूँ ?

नाग ने कहा—ब्रह्मन् ! सूर्य तो सभी अद्भुत वस्तुओं की खान हैं,। उनसे उत्पन्न वायु, उन्हीं की किरणों का आश्रय करके आकाशमंडल में विचरण करता है। सूर्य ही वर्षा करते हैं। सूर्य की रश्मियों में देवगण और महर्षिगण का निवास है। यह [illegible] हा आश्चर्य हैं।

एक बार ऐसा हुआ कि मध्याह्न काल में जब सूर्यदेव सब किरणों से लोकों को तप्त कर रहे थे, उसी समय सूर्य के समान एक अत्यंत तेजस्वी पुरुष वहाँ आया। सूर्य ने उसके स्वागतार्थ दोनों हाथ बढ़ाये तो उसने भी अपना दाँया हाथ सूर्य की ओर

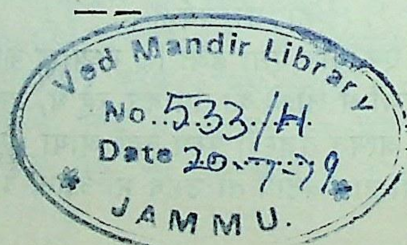
बढ़ायाऔर फिर आकाश मण्डल को भेदता हुआ सूर्य-रश्मियों में प्रविष्ट होगया। उस समय सूर्य से उसका अभेद होने पर यह पहिचानना कठिन था कि उनमें सूर्य कौन-से हैं। तब हमने सूर्य-देव से ही पूछा कि भगवन् यह पुरुष कौन हैं?

सूर्य बोले—हे नाग! यह उच्छवृत्ति करने वाले एक महर्षि हैं। इन्होंने तपस्या के द्वारा शिवजी को प्रसन्न कर स्वर्ग की प्राप्ति की है। अब तक देवता, असुर, गन्धर्व, नाग आदि जितनों को भी सूर्य मंडल की प्राप्ति हुई है, उन सब में यह ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।

ब्राह्मण बोला—नागराज! आपकी बात सुनने में ही मेरा कार्य सिद्ध होगया। अब कुछ पूछना शेष नहीं है। मैं भी अब परमार्थ प्राप्त करने के लिए उच्छवृत्ति का अवलम्बन करूँगा।

यह कह कर ब्राह्मण देवता नागराज से विदा होकर महर्षि च्यवन के पास गये, जिन्होंने उन्हें उच्छवृत्ति की दीक्षा दी। उन ब्राह्मण ने उसी का अवलम्बन किया। यह वृत्तान्त राजा जनक की सभा में महर्षि च्यवन ने नारदजी से कहा नारदजी ने इन्द्र से और इन्द्र ने अन्य ब्राह्मणों को इसे सुनाया। जब परशुरामजी से मेरा युद्ध हो रहा था तब वसुगण ने इसे मुझसे वर्णन किया वहीं मैंने तुम्हारे प्रति कहा है।

॥ शान्ति पर्व समाप्त ॥



अनुशासन पर्व

गौतमी और व्याध का उपाख्यान

भीष्म बोले—धर्मराज ! प्राचीन काल में गौतमी नाम की एक वृद्धा ब्राह्मणी थी। एक दिन उसका एकमात्र पुत्र सर्पदंश से मर गया। यह देख कर अर्जुन नामक व्याध ने सर्प को बाँध कर वृद्धा के समक्ष प्रस्तुत कर कहा—इसने तुम्हारे पुत्र को डस लिया है, इस पापी को अग्नि में भस्म करूँ या खण्ड-खण्ड करके कहीं फेंक दूँ ?

वृद्धा बोली—अर्जुन ! इस सर्प को मारने से मेरा पुत्र तो जीवित नहीं होगा, फिर इसे क्यों मारा जाय ? सज्जनों को सदा धर्म का ध्यान रखना चाहिये। इसलिए इसे तुरन्त छोड़ दो।

व्याध ने कहा—इसे मार डालना ही श्रेयस्कर है। इसे मारने से और भी अनेक प्राणियों की रक्षा होगी।

इस प्रकार व्याध ने बहुत कहा, पर गौतमी ने उसकी बात नहीं मानी। उसी समय सर्प बोला—हे व्याध ! मैंने तो मृत्यु की प्रेरणा से ही इसे काटा है। तो इसमें मेरा क्या दोष है ?

व्याध ने कहा—किसी की भी प्रेरणा से काटा हो, दोष तुम्हारा ही माना जायगा। इसलिए तुम्हारा वध अनुचित नहीं है।

सर्प बोला—व्याध ! जैसे चाक और डण्डा एक दूसरे के सहायक है, वैसे ही मैं, काल और मृत्यु तीन ही एक-दूसरे के प्रेरक और सहायक हैं। इसलिए अकेला मैं ही दोषी नहीं हो सकता।

व्याध बोला—मृत्यु के प्रधान कारण होते हुए तू उस दोष से बच नहीं सकता, इसलिए तू अवश्य दण्ड का भागी है। मैं तुझे अवश्य मारूँगा।

इसी समय मृत्यु ने प्रकट होकर कहा—सर्प ! काल की प्रेरणा से ही मैंने तुम्हें प्रेरित किया था, इसलिए इस बालक के मरने में तू और मैं दोनों ही निर्दोष हैं। फिर भी यदि तू मुझे दोषी बताता है तो तू उस दोष से कैसे बचा रह सकता है ?

सर्प बोला—मृत्यु ! मैंने तुम्हें ही दोषी नहीं बताया है। मैं तो यह कहता हूँ कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ।

व्याध ने कहा—सर्प ! तू निर्दोष सिद्ध नहीं होता। मैं तुझे अवश्य मारूँगा।

मृत्यु बोली—व्याध हम दोनों ने काल के वश में होकर ही यह कार्य किया है, इसलिए हम दोनों में से कोई भी दोषी नहीं है।

व्याध और मृत्यु में यह बात हो ही रही थी कि काल ने प्रगट होकर कहा—व्याध ! सर्प, मृत्यु और मैं तीनों ही निर्दोष हैं। इस बालक के पूर्व जन्म के कर्मों ने ही यह कार्य कराया है। इसलिए इसके मरने में कारण इसके पूर्व कर्म ही हैं। इस प्रकार यह अपनी मौत स्वयं मरा है।

काल की बातें सुन कर गौतमी ने कहा—व्याध ! मेरे पुत्र की मृत्यु में उसके कर्म ही कारण हैं, इसलिए इस सर्प को छोड़ दो और मृत्यु एवं काल भी अपने-अपने स्थान को प्रस्थान करें।

भीष्म बोले—युधिष्ठिर ! व्याध ने सर्प को छोड़ दिया, मृत्यु और काल भी चले गए। ब्राह्मणी ने पुत्र-शोक को त्याग दिया, इसलिये तुम भी सब मनुष्यों के कर्म के अधीन समझ कर शोक को छोड़ दो। इस भयङ्कर हत्याकाण्ड में तुम्हारा या दुर्योधन का किंचित् भी दोष नहीं है। सभी अपने कर्म-वश काल को

प्रेरणा से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। यह सुन कर युधिष्ठिर को कुछ शान्ति प्राप्त हुई।

सुदर्शन का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने पूछा--पितामह ! गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए मृत्यु पर किसने विजय प्राप्त की है ? भीष्म बोले—धर्म-राज ! अग्निदेव के पुत्र सुदर्शन हुए। उन्होंने बाल्यकाल में ही सब वेद-शास्त्र पढ़ लिये थे। सुदर्शन का विवाह राजा ओघवान की पुत्री ओघवती से हुआ था। सुदर्शन उसके साथ गृहस्थ धर्म पालन करते हुए कुरुक्षेत्र में रहते थे। एक दिन उन्होंने ओघवती से कहा—प्रिये ! अतिथिसेवा कभी मत छोड़ना। वही कार्य करना, जिससे अतिथि पूरी तरह सन्तुष्ट हो, उसमें चाहें आत्मसमर्पण ही क्यों न करना पड़े।

सुदर्शन ने यह विचार मृत्यु को जीतने के उद्देष्य से किये थे, किन्तु मृत्यु उन्हें जीतने के लिए उनके पीछे लग गई।

एक दिन सुदर्शन ईंधन लेने के लिए घर से निकल कर वन में गये। उसी समय ब्राह्मणका वेश धारण करके धर्म उनके घरपर आकर बोले—हे सुन्दरी ! मैं तुम्हारा अतिथि हूँ और तुम्हारे साथ समागम की इच्छा करता हूँ इसलिए मुझे प्रसन्न करो। यह सुन कर राजकुमारी उन्हें अन्याय वस्तुएँ देकर प्रसन्न करने लगी। किन्तु अतिथि किसी और बात पर सहमत ही न हुए। तब विवश हुई राजकुमारी ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तदनन्तर अतिथि उसका हाथ पकड़ कर शयन कक्ष में ले गया।

इसी बीच में सुदर्शन घर पर लौट आये। उन्होंने पत्नी को पुकारा, किन्तु लज्जावश उसने कुछ उतर नहीं दिया। जब सुद-र्शन बारम्बार पत्नी को पुकारने लगे तब अतिथि ने भीतर से ही उत्तर दिया—ब्रह्मन् ! मैं एक ब्राह्मण अतिथि आपके घर में

हूँ। आपकी पत्नी मेरी सेवा में व्यस्त है, इसलिये आने में विलम्ब है।

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर! सिर पर लकड़ी का बोझा रखे हुए सुदर्शन के पीछे ही मृत्यु खड़ी थी। वह सोचती थी कि यह अतिथि की बात सुन कर जैसे ही क्रोध करेंगे, वैसे ही मैं इन्हें मार दूंगी। किन्तु अतिथि की बात से सुदर्शन को किंचित् भी क्रोध न हुआ और उन्होंने कहा—ब्रह्मन्! आप निश्चित होकर अपनी इच्छा पूर्ण कर लीजिए। मेरी तो यही प्रतिज्ञा है कि अतिथि को सर्वस्व देकर भी प्रसन्न करना चाहिए। क्योंकि अतिथि-सेवा से बढ़ कर अन्य कोई धर्म नहीं है। इसलिए प्राणी के पाप-पुण्य के द्रष्टा पंच महाभूत, बुद्धि, आत्मा, मन, काल और दिशाएँ मेरी प्रतिज्ञा सत्य हो तो मेरी रक्षा करें, अन्यथा तुरन्त भस्म कर दें। यह सुन कर तुरन्त आकाशवाणी ने कहा कि आपकी प्रतिज्ञा सत्य है।

तभी वायु-वेग से निकलते हुए अतिथि ने कहा—सुदर्शन! मैं धर्म हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही अतिथि रूप में आया था। तुमने आज मृत्यु को अपने वश में कर लिया है। तुम्हारी यह पतिव्रता स्त्री अपने तपोबल से कभी ओघवती नदी बन कर सब लोकों का पवित्र करेगी। धर्म के इस प्रकार कहते ही सहस्र अश्वों से संयुक्त रथ लेकर इन्द्र स्वयं उपस्थित हुए और सुदर्शन का उसकी पत्नी के सहित उस पर चढ़ा कर स्वर्ग लोक में ले गए।

हे धर्मराज! इस प्रकार गृहस्थ धर्म में रहते हुए सुदर्शन ने अतिथि सत्कार के द्वारा ही मृत्यु, आत्मा, सब लोक, पंच महाभूत, बुद्धि, काल, मन, आकाश, काम और क्रोध को भी जीत लिया था। गृहस्थ के लिए अतिथि से बढ़ कर कोई देवता

नहीं है। इस कथा के सुनने से आयु, बल, यश एवं धन संतति की वृद्धि और पवित्र लोको की प्राप्ति होती है।

कुशिक और च्यवन का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! विश्वामित्रजी का जन्म कौशिक वंश में हुआ था, तो वे ब्राह्मण कैसे हो गए ? इस विषय में बताने की कृपा करें। भीष्म बोले—युधिष्ठिर ! इस विषय में कुशिक और च्यवन का संवाद कहता हूँ, उसे सुनो। एक बार महर्षि च्यवन ने राजा कुशिक के पास जाकर कहा–राजन् ! अब मैं आपके साथ रहूँगा। राजा बोले—भगवन् ! पति-पत्नी के अतिरिक्त अन्य कोई एक साथ नहीं रहते, फिर भी आपकी आज्ञा है तो आप सहर्ष रहें। मैं और रानी दोनों ही आपकी सेवा में तत्पर हैं। आप इस राज्य के राजा होकर शासन करें, मैं आपके आश्रय में रहूँगा।

च्यवन बोले—मुझे राज्य आदि कुछ भी नहीं चाहिए। यदि तुम और महारानी दोनों तैयार हो तो में यहाँ रह कर एक व्रत करूँगा और जब तक मैं व्रत करूँ, तब तक तुम दोनों मेरी सेवा करते रहोगे।

राजा-रानी ने उनकी बात मान ली। सायंकाल महर्षि ने भोजन की इच्छा प्रकट की तो उन्हें भोजन कराया गया। फिर रात्रि होने पर उन्होंने कहा—राजन् ! मेरे सोने का समय हो गया है। जब मैं सो जाऊँ तो मुझे जगाना मत और तुम दोनों रात भर जागते रह कर मेरे पाँव दबाते रहना।

दोनों ने वैसा ही किया। प्रातःकाल होने पर भी महर्षि को नहीं जगाया और भोजन-पानी की चिन्ता छोड़कर उनकी सेवा करते रहे। महर्षि इक्कीस दिन तक सोते रहे, बाईसवें दिन

जाग कर शयन गृह से चल दिये । भूखे-प्यासे, निद्रा से व्याकुल राजा-रानी उनके पीछे-पीछे चले, तभी महर्षि अन्तर्धान होगए । इससे दुःखित हुए राजा को रानी ने समझा-बुझा कर शान्त किया । और तब दोनों अपने भवन में जाकर देखते हैं कि महर्षि उसी शय्या पर पूर्ववत् सोरहे हैं । तब वे दोनों पुनः उनके पाँव दाबने लगे ।

तदनन्तर बहुत दिनों के पश्चात् महर्षि शय्या से उठ कर बोले—मैं स्नान करूँगा, इसलिए मेरे मालिश कर दो । उन्होंने वैसा ही किया तब ऋषि स्नान घर में जाकर स्नान करने लगे और फिर सिंहासन पर आ बैठे । उनकी आज्ञा पाकर महाराज ने भोजन की सामग्री उपस्थित की । तब च्यवन ने उस सामग्री के साथ शय्या, आसन, वस्त्र आदि अनेक वहुमूल्य वस्तुएँ रख कर आग लगा दी, यह देख कर भी राजा-रानी शान्त भाव से बैठे रहे ।

इस प्रकार उन्चास दिन व्यतीत हुए, पचासवें दिन ऋषि ने कहा महाराज ! मुझे रथ में बैठा कर आप स्वयं रानी के सहित उस रथ को खींचे। राजा ने पूछा—क्रीड़ा-रथ लाऊँ या सांग्रामिक? ऋषि बोले—सांग्रामिक रथ ही ले आओ । यह सुन कर राजा ने सांग्रामिक रथ उपस्थित किया और स्वयं दाँयी ओर लग कर रानी को बाँई ओर लगाया । तब एक नुकीला चाबुक लेकर ऋषि रथ पर सवार होगए । फिर बोले—राजन् ! मैं मार्ग में उपस्थित ब्राह्मणादि को इच्छित धन-रत्न दान करना चाहता हूँ। तुम इसकी व्यवस्था करके रथ को धीरे-धीरे नगर में होकर ले चलो ।

राजा ने वह व्यवस्था भी कर दी और रथ चलाने लगे । ऋषि ने राजा और रानी के कण्ठ और पीठ पर नुकीले चाबुक के प्रहार करके घाव कर दिये । यह देख कर नागरिक चिल्लाने

लगे, किन्तु राजा-रानी भूख-प्यास, निद्रा आदि से व्याकुल हुए तथा मार सहते हुए शान्तभाव से रथ खींचते रहे।

ऋषि ने बहुत-सा रत्न-मणि-स्वर्ण आदि धन कुबेर के समान दान कर दिया। इससे राज-कोश खाली होने लगा, किन्तु राजा रानी तब भी धैर्यपूर्वक यह सब देखते रहे। तब ऋषि ने रथ से उतर कर राजा से कहा—महाराज! तुम दोनों का अविचल धैर्य और धर्म बुद्धि देख कर मैं बहुत प्रसन्न हूं। अब तुम्हारा अत्यन्त सौभाग्य का समय आगया है। तुम्हारे यह घाव तुरन्त मिट जाँय। मैं अब इसी गंगातट पर रह कर व्रत करूँगा, तुम कल यहां आना।

महाराज कुशिक और रानी के घाव उसी समय ठीक होगए उनकी थकान मिट गई। वे महर्षि को प्रणाम करके अपने नगर में गए। वहाँ भोजन करके जैसे ही शय्या पर विश्राम करने लगे, वैसे ही उन्होंने देखा कि वे और महारानी दोनों ही अत्यंत सौन्दर्य-सम्पन्न और नवयुवक के समान होगए हैं। तभी उन्हें पता चला कि उनका राजकोश भी धन से परिपूर्ण होगया है। इससे महाराज की प्रसन्ता का पारावार नहीं था।

दूसरे दिन महाराज कुशिक अपनी रानी के सहित च्यवन के पास गये। उस समय उस वन की शोभा नन्दन कानन जैसी होरही थी। सर्वत्र वैभव का साम्राज्य था। उसे देख कर राजा आश्चर्य चकित होगए। तभी महर्षि ने उन्हें अपने पास आने का संकेत किया। जब राजा-रानी उनके पास पहुँचे, तब उन्होंने कहा—राजन्! आपने मन लगा कर मेरी सेवा की है। मैं उससे बहुत प्रसन्न हूं, इसलिए जो चाहो, वही माँग लो।

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरा यह संदेह दूर कीजिए कि आप इक्कीस दिनों तक निरन्तर एक करवट सोते रहे। फिर बाहर जाकर अन्तर्धान होगए और पुनः

इक्कीस दिन तक सोये। मालिश कराई, स्नान के पश्चात् भोजन वस्त्रादि को जलाया और फिर हमें रथ में जोत कर सवार हुए, बहुत-सा धन दान किया आदि कार्यों को सोच कर मुझे आश्चर्य होरहा है।

ऋषि बोले—राजन् ! एक बार ब्रह्माजी की सभा में मैंने सुना था कि आपके वंश से मेरे वंश में क्षत्रिय धर्म चलेगा और आपके पौत्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होगी। मैं ऐसा होने देना नहीं चाहता था, इसीलिए तुमको भाँति-भाँति से दुःखित करके कुपित करूँगा और तुम्हारे किसी भी छिद्र को देख कर तुम्हें शाप दे दूँगा। किन्तु तुममें क्रोध और छिद्र नाम को भी नहीं मिला। तब मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अब आप जो चाहो वह मुझसे तुरन्त माँग लो।

राजा ने पूछा—भगवन् ! मैं आपके वचन सत्य होने की ही कामना करता हूँ। अब आप मुझे यह बतावें कि मेरे वंश में ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कैसे होगी ?

च्यवन बोले– भविष्य में क्षत्रियगण भृगुवंशियों को नष्ट करेंगे, किन्तु भृगुवंश की एक गर्भवती स्त्री पर्वत में जा छिपेगी, जिससे ऊर्व नामक पुत्र होगा। ऊर्व सब लोकों को भस्म करने की इच्छा करेंगे तब सम्पूर्ण विश्व व्याकुल होकर उनकी स्तुति करेगा। इससे प्रसन्न होकर वे क्रोध को समुद्र में फेंक देंगे। ऊर्व के पुत्र ऋचीक होंगे, वे क्षत्रियों को नष्ट करने के अभिप्राय से धनुर्वेद सीखेंगे। पर, आपके वंश की रक्षा के लिए ऋचीक आपके पुत्र गाधि की पुत्री से विवाह करेंगे। उसके पश्चात् ऋचीक अपनी पत्नी और सास दोनों के पुत्रवती करने के लिए ब्राह्म और क्षात्र दो प्रकार के चरु पृथक्-पृथक् बनायेंगे। किन्तु गाधि की पत्नी श्रेष्ठ पुत्र प्राप्ति की इच्छा से अपनी पुत्री के चरु को बदल कर, उसके ब्राह्म चरु का भक्षण कर लेगी। तब

ऋचीक यह बता देंगे कि गाधि का पुत्र स्वभाव से ब्राह्मण और अपना पुत्र स्वभाव से क्षत्रिय होगा। यह सुन कर गाधिकन्या उनसे प्रार्थना करेगी कि मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो, चाहे पौत्र क्षत्रिय होजाये। ऋचीक इसे स्वीकार कर लेंगे और उनके पुत्र महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम होंगे, जो कि क्षत्रिय धर्मावलम्बी एवं सम्पूर्ण धनुर्वेद के ज्ञाता होंगे। उधर राजा गाधि की पत्नी के गर्भ से ब्राह्म चरु के प्रभाव से धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्र होंगे, जो कि घोर तप करके ब्राह्मण बन जाँयगे। हे राजन्! इस प्रकार स्त्रियों के कारण आपके वंश में ब्राह्मणत्व और मेरे वंश में क्षत्रियत्व आजायगा। अब आप अपना इच्छित वर माँग लीजिए।

राजा ने कहा—आपकी कृपा से मेरे वंश में ब्राह्मणत्व आयेगा, यह प्रसन्नता की बात है। पर, मैं यह वर माँगता हूँ कि मेरे वंश में धर्म की दृढ़ता सदैव बनी रहे। महर्षि ने कहा—ऐसा ही हो। तदन्नतर राजा से विदा होकर महर्षि च्यवन तीर्थ यात्रा को चले गये।

पुण्य-पुरुषों के नामोच्चार से पुण्य फल प्राप्ति

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! देखा जाता है कि कभी बलवान् मनुष्य भी धन नहीं पाता और कभी निर्बल भी धनी हो जाता है। अनेक मनुष्य बहुत यत्न करके भी धन प्राप्त नहीं कर पाते। अनेक व्यक्ति शस्त्रों से मारने पर भी नहीं मरते और अनेक पुरुष तिनके के प्रहार से भी मर जाते हैं। तो अपने कल्याणके लिए मनुष्य को क्या कार्य करना चाहिए?

भीष्म बोले—युधिष्ठिर! उद्योग करने पर भी धन प्राप्त न हो तो तप करे। बीज बोये बिना फल नहीं उगता, दान से सुख, वृद्धों की सेवा से बुद्धि और अहिंसा से दीर्घ आयु होती है। इस-

लिए दानी, वृद्धों की सेवा करने वाला, अहिंसक और अयाची होना चाहिए। संसार के सभी जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार योनि पाकर पुण्य-पाप के फल को भोगते हैं। इसलिए सभी को कर्म के अधीन समझ कर अपना चित्त शान्त करना चाहिए।

हे धर्मराज ! शुभ-कर्मों से सुख और अशुभ कर्मों से दुःख की प्राप्ति होती है। शुभ कर्मों से धर्म की वृद्धि और दुःखों का नाश होता है। उसके साथ काल का प्रभाव भी कम नहीं है। क्योंकि काल ही दण्ड दाता और काल ही उपकारकर्त्ता है। जिसकी बुद्धि दृढ़ है वह काल के प्रभाव में नहीं पड़ता। उसे धर्म के फल की भी आकांक्षा नहीं होती। धर्म निष्फल और सकाम के भेद से दो प्रकार का है। निष्काम धर्म नित्य है, इसलिए उसका फल भी नित्य एवं स्वयं सिद्ध है, किन्तु सकाम धर्म अनित्य होने से शीघ्र नष्ट हो जाने वाला है। सभी मनुष्यों का शरीर और आत्मा एक प्रकार का होते हुए भी किसी-किसी के हृदय में ही धर्मयुक्त संकल्प उत्पन्न होता है, क्योंकि पूर्व जन्म के कर्म ही सुख-दुःख के कारण हैं, इसीलिए जीवों को कहीं सुख भोगते और कहीं दुःख उठाते हुए देखा जाता है।

हे युधिष्ठिर ! देवता, ऋषि, पर्वत और नदियों के शुभ नाम भी मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं। इनके नाम-पाठ या नाम जप से सभी पाप नष्ट होते हैं। देव-दानवों के गुरु ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, कार्तिकेय, अग्नि, पवन, चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, हर्मषि विश्रवा सङ्कल्प, सागर, मरुद्गण, बालखिल्यगण, द्वादश आदित्य, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, पितरगण, अश्विद्वय, धर्म, मानस सरोवर, हिमालय, सुमेर, महेन्द्र, मलय आदि पर्वत, गङ्गा-यमुना आदि नदियाँ, ब्रह्मपत्नी, लक्ष्मी, पार्वती आदि देवियाँ, भृगु, अङ्गिरा, कण्व, गौतम, व्यास, विश्वामित्र, वसिष्ठ, लोमश, परशुराम आदि ऋषि, नृग, ययाति, नहुष, पुरु,

दिलीप, सगर, भरत, जनक, दशरथ आदि राजर्षि अथवा अन्यान्य अनेक देवता, ऋषि, राजर्षि, देवर्षि आदि के नामोच्चार से निःसन्देह धर्म फल की प्राप्ति होती है। इन सब की स्तुति करके प्रार्थना करे कि यह मुझे पुष्टि, आयु, यश और स्वर्ग की प्राप्ति करायें। मुझे शत्रुओं से कभी न हारना पड़े और अन्त समय में श्रेष्ठ गति मिले। हे युधिष्ठिर पुण्य-पुरुषों के नामों से उज्वल पुण्य और सद्‌गति की प्राप्ति होती है।

भीष्म की आज्ञा से युधिष्ठिरादि का प्रस्थान

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! युधिष्ठिर को इस प्रकार उपदेश देकर महात्मा भीष्म मौन हो गए, यह देख कर व्यासजी बोले—भीष्म ! युधिष्ठिर के सन्देहों की निवृत्ति हो चुकी है, अब इन्हें हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दो। यह सुन कर भीष्म ने कहा—धर्मराज ! अब तुम सबके सहित हस्तिनापुर जाओ और सब प्रकार के शोक को त्याग दो। तुम्हारा कल्याण होगा। जब भगवान् सूर्य उत्तरायण हो जाँय तब हमारे पास आना।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया और अपने भाइयों, महर्षियों, नगरवासियों, मन्त्रियों, परिवारियों और महात्मा वासुदेव को साथ लेकर महाराज धृतराष्ट्र और गांधारी को आगे करके हस्तिनापुर के लिये चल दिये।

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! जब सूर्य उत्तरायण हो गए तब भीष्म की मृत्यु का समय जान कर युधिष्ठिर ने उनकी अन्त्येष्टि-संस्कार के लिए माला, रत्न, चन्दन, घृत, गन्ध, द्रव्य, दुपट्टा आदि सामग्री साथ लेकर धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, और भाइयों के सहित कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ भगवान् वासुदेव, विदुर, युयुत्सु और युयुधान भी थे।

जब यह लोग वहाँ पहुँचे तब महर्षि वेद व्यास, देवर्षि नारद असित, देवल आदि भीष्म के पास उपस्थित थे। युद्ध से बचे हुए कुछ राजे आदि उनकी रक्षा और सेवा में तत्पर थे। उस समय भीष्म ने कहा—धर्मराज ! सूर्य उत्तरायण हो गये हैं। आज इस तीक्ष्ण बाणों की शैया पर पड़े हुए मुझे अट्ठावन दिन हो गए, जो कि मेरे लिए सौ वर्षों के समान व्यतीत हुए हैं। अब यह माघ मास के शुक्ल पक्ष का अन्तिम तृतीयांश है। अब मैं चलना चाहता हूँ।

तदनन्तर उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज ! तुम धर्म अर्थ के तत्व को भले प्रकार जानते हो। जो होना था, उसे कोई नहीं मिटा सकता था। धर्म के अनुसार पाण्डव तुम्हारे पुत्र हैं, इनका पालन करो और यह भी सदा तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। तुम्हारे पुत्र क्रोधी, लोभी और दुरात्मा थे, वे अपने ही कर्मों से मारे गए, उनके लिए शोक मत करो।

फिर श्रीकृष्ण से बोले—मधुसूदन ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जहाँ आप हैं, वहीं धर्म है और जहाँ धर्म है वहाँ विजय है, मैंने यह बता कर दुर्योधन को सन्धि के लिए बहुत प्रेरित किया, पर कालवश वह नहीं माना। व्यासजी ने कहा है कि आप और अर्जुन नर-नारायण हैं, मैं आपको पुनः नमस्कार करता हूँ। आप आज्ञा दीजिए कि मैं देह त्याग कर परम गति को प्राप्त करूँ।

कृष्ण ने कहा—महात्मन् ! आप वसुलोक को पधारिये। आपने इस लोक में रह कर कभी कोई पाप नहीं किया है।

तत्पश्चात् उन्होंने पाण्डवादि से कहा—आप सब सदा सत्य का पालन करना। अब मैं शरीर त्यागना चाहता हूँ।

यह कह कर भीष्म चुप हो गए। उन्होंने योगाभ्यास द्वारा वायु को रोक कर क्रमशः ऊपर चढ़ाना प्रारम्भ किया। जिस-

जिस अङ्ग को छोड़ कर प्राण वायु उपर चढ़ती थी, उस-उस अङ्ग के बाण स्वयं निकलने और घाव भरने लगे। यह देख कर सभी को अत्यन्त विस्मय हुआ। क्षण भर में शरीर भर के सभी बाण निकल गये और ब्रह्मरन्ध्र को फोड़ कर प्राण आकाश-मार्ग से चल पड़े। उस समय आकाश में दुंदुभि बजने और पुष्पवृष्टि होने लगी। कुछ देर में आकाश-मार्ग में गया हुआ तेज सभी के सामने विलीन हो गया।

इसके बाद युधिष्ठिरादि ने मिल कर उनका अन्त्येष्टि संस्कार किया और तब जैसे ही भागीरथी के तट पर जाकर जल देने लगे, वैसे ही भागीरथ प्रकट होकर अपने पुत्र भीष्म के शोक में विलाप करने लगीं। तब महात्मा वासुदेव और व्यासजी ने उन्हें समझाया—देवि ! शोक को छोड़ दो। वे तो आठ वसुओं में से एक थे, जिन्हें वसिष्ठ के शाप से मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा था। अब वे स्वेच्छा से ही वसुलोक में गये हैं।

इस प्रकार समझाने से भागीरथी का शोक मिट गया, तब सब उन्हें प्रणाम करके वहाँ से चल दिये।

॥ अनुशासन पर्व समाप्त ॥

———

अश्वमेध पर्व

युधिष्ठिर का शोकाकुल होना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! भीष्म को जलदान करके चलते हुए युधिष्ठिर शोक-विह्वल होकर गंगातट पर गिर गये, उन्हें भीमसेन ने सँभाला और फिर श्रीकृष्ण ने सान्त्वना दी। तब धृतराष्ट्र बोले—युधिष्ठिर ! शोक को त्याग कर अधिकृत पृथिवी को संभालो। तुम्हारे शोक का कोई कारण दिखाई नहीं देता। शोक तो मुझे और गांधारी को है जिनके सौ पुत्र नष्ट हो गए। अपनी मूर्खता के कारण विदुर के हितकारी वचनों का-तिरस्कार करने से ही आज मैं पुत्र-शोक में दुःखित हो रहा हूँ। इसलिए हमारी ओर देख कर तुम अपने शोक का त्याग करो।

धृतराष्ट्र के वचन सुन कर युधिष्ठिर ने कोई उत्तर नहीं दिया तब श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया—धर्मराज ! परलोक गये हुओं के लिए शोक करना व्यर्थ है क्योंकि शोक करने से उनकी आत्मा को दुःख पहुँचता है। अब तो देवताओं, पितरों, अतिथियों और निर्धनों को सब प्रकार तृप्त और सन्तुष्ट करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। इसके साथ ही पूर्वजों के समान उत्साह पूर्वक राज्य करो। शोक करने से कोई भी परलोवगत व्यक्ति लौट कर नहीं आ सकता।

व्यासजी बोले—पुत्र युधिष्ठिर ! तुम तो बालक के समान मोहित होरहे हो। देखो, स्वधर्म में निष्ठा वाले राजा कभी शोक

नहीं करते। तुम राजधर्म, दानधर्म और मोक्ष धर्म को भी जानते हो, इसलिए मोह और शोक को त्याग कर स्वस्थ चित्त हो जाओ। मेरी सम्मति में अब तुम्हें अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! अश्वमेध यज्ञ करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। धन के लोभ से पृथिवी का धन और सभी शूरवीर मर-खप गये। दुर्योधन की दुष्टता से कोश में कुछ भी नहीं रहा, तब यज्ञ किस प्रकार किया जा सकता है?

वेदव्यास बोले—तुम्हें धन की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। प्राचीनकाल में महाराज मरुत्त ने हिमालय में यज्ञ करके ब्राह्मणों को अतुल स्वर्णादि धन दिया था, जिसे वे ब्राह्मण वहाँ से नहीं लासके। वह धन वहाँ अब भी वैसे ही पड़ा है, इसलिए उसे वहाँ से उठवा कर मँगा लो, उससे तुम्हारा कार्य बन जायगा।

श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन

भगवान् श्रीकृष्ण को पाण्डवों के पास रहते हुए बहुत दिन होगए थे। वे उन्हें बार-बार सान्त्वना देकर शोक दूर किया करते। उन्होंने अर्जुन के कहने पर गीता के अनुसार संक्षिप्त ज्ञान पुनः दिया और अन्त में बोले—अर्जुन! युद्ध के साथ जो उपदेश मैंने दिया था, उसी के अनुसार धर्म का पालन करना। अब मैं पिताजी के दर्शनार्थ द्वारका को जाना चाहता हूँ।

अर्जुन ने कहा—माधव! महाराज युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर द्वारका को चले जाना।

तदनन्तर अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के पास गये। कृष्ण के द्वारका-गमन की बात सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—वासुदेव! आप द्वारका पहुँच कर सब को मेरा प्रणाम कहना। आपकी कृपा से ही मेरे शत्रु नष्ट होगए और राज्य की प्राप्ति हुई है। जब मैं अश्वमेध यज्ञ करूँ तब आप अवश्य आना।

कृष्ण ने कहा—महाराज ! आपको पृथिवीपति हुआ देखकर मैं बहुत प्रसन्न हो रहा हूँ। आपके अश्वमेध यज्ञ में मैं अवश्य उपस्थित हूँगा। यदि आज्ञा हो तो बहिन सुभद्रा को भी अपने साथ ले जाऊँ।

सुभद्रा को साथ ले जाने के लिए युधिष्ठिर ने सहर्ष कह दिया। तब वे रथ पर चढ़कर द्वारका के लिए चल दिये।

परीक्षित का जीवित होना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! धर्मराज सहित पाँचों पाण्डवों ने राजा मरुत्त का धन लाने के लिए मुंजवान पर्वत को सेना सहित प्रस्थान किया और एक समतल स्थान में रात्रिवास करने के उपरान्त शिवजी का पूजन किया। तदुपरान्त व्यासजी के बताये हुए स्थान को खोद कर महान धनराशि निकाल कर लाखों हाथी, रथ, अश्व, ऊँट, छकड़े, आदि लाद कर हस्तिनापुर लौट आये।

उधर श्रीकृष्ण भी अश्वमेध यज्ञ होने का अवसर आया जान कर सुभद्रा के सहित हस्तिनापुर आ पहुँचे। वहाँ कुन्ती आदि स्त्रियों ने रोते हुए कहा—माधव ! अभिमन्यु का पुत्र अश्वत्थामा के अस्त्र के प्रभाव से मारा गया है, उसे जीवित कर दो। क्योंकि मैं इसी बालक की आशा से जीवित हूँ। इसी प्रकार की प्रार्थना सुभद्रा और उत्तरा ने भी की, तब श्रीकृष्ण ने आचमन करके अश्वत्थामा के अस्त्र को विफल कर दिया और बोले—मेरे पुण्यों के प्रभाव से अभिमन्यु का पुत्र जीवित होजाय। इतना कहते ही वह बालक जीवित होगया, जिसका नाम परीक्षित हुआ।

दिग्विजय एवं यज्ञ की सम्पन्नता

वैशम्पायनजी ने कहा—हे जनमेजय ! इसके पश्चात् व्यास जी की आज्ञा से अश्वमेध यज्ञ का अश्व छोड़ा गया।

उसका रक्षा-भार अर्जुन पर था। अर्जुन ने अनेक वीर राजाओं को जीत-जीत कर छोड़ दिया। फिर मणिपुर के राजा वभ्रुवाहन से अर्जुन का घोर युद्ध हुआ। वभ्रुवाहन अर्जुन के ही पुत्र थे, उन्होंने अर्जुन के प्राण ले लिये, किन्तु नागकन्या उलूपी ने उन्हें पुनर्जीवित कर दिया।

इस प्रकार सभी दिशाओं के राजाओं को परास्त करके अर्जुन हस्तिनापुर में लौट आये। तब व्यासजी की आज्ञा से धर्मराज यज्ञ के लिए दीक्षित हुए और अश्वमेध यज्ञ का; प्रारंभ हुआ।

तदनन्तर प्रतिदिन शास्त्रानुसार यज्ञानुष्ठान चलता रहा। अन्त में विधिवत् अश्व का वध किया गया और यज्ञ के सम्पन्न होने पर असंख्य गाय,अश्व,हाथी आदि के साथ सम्पूर्ण पृथिवी का दान हुआ। व्यासजी ने वह पृथिवी युधिष्ठिर को ही लौटा दी इस प्रकार युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

॥अश्वमेध पर्व समाप्त॥

——

आश्रम वासिक पर्व

धृतराष्ट्र का वन में जाकर तप करना

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन् ! मेरे प्रपितामह पाण्डवों ने कितने दिनों तक राज्य का उपभोग किया तथा आश्रयहीन महाराज धृतराष्ट्र ने किस प्रकार जीवन बिताया ? यहकहिये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! राज्य प्राप्त कर पाण्डवों ने पन्द्रह वर्ष तक राजा धृतराष्ट्र की अनुमति से ही सब कार्य किये थे। वे सब स्त्रियों सहित धृतराष्ट्र गांधारी की सेवा किया करते। किन्तु पन्द्रह वर्ष व्यतीत होने पर एक दिन भीमसेन के मुख से कुछ कठोर वाक्य निकल गये, जिन्हें सुन कर दुःखित हुए धृतराष्ट्र ने गांधारी सहित वन में जाने का निश्चय किया। यद्यपि युधिष्ठिर ने उन्हें बहुत रोका, किन्तु वे न माने तो व्यास जी के समझाने पर युधिष्ठिर ने उनके वन गमन में बाधा नहीं डाली।

तत्पश्चात् कार्तिकी पूर्णिमा के प्रातःकाल राजा धृतराष्ट्र ने गान्धारी और कुन्ती के साथ वन को प्रस्थान किया। जाते समय उन्होंने युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश किया और फिर प्रजाजनों को बुलाकर उनसे वन गमन की आज्ञा ली। उस समय विदुर और संजय भी उनके साथ चल दिये सब पाण्डवों ने नगर के बाहर तक आकर उन्हें विदा किया।

कुरुक्षेत्र में पहुँच कर उन्होंने शतयूप के आश्रम पर धृतराष्ट्र ने तप प्रारम्भ किया। महर्षि नारद ने उनके पास पहुँचा कर उस तपोवन की महिमा बताई। फिर सब भाइयों सहित युधिष्ठिर ने भी कुरुक्षेत्र जाकर उनके दर्शन किये। तत्पश्चात् जैसे ही वे

विदुरजी से मिले, वैसे ही तपस्या-निरत विदुरजी योगबल से अपने प्राण त्याग कर युधिष्ठिर के शरीर में विलीन होगए।

उसके पश्चात् शतयूप आश्रम में श्री व्यासजी समागत हुए। उन्होंने दिव्य दृष्टि देकर धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर आदि को युद्ध में निहत सब कौरवादि वीरों एवं मृत पुत्रों, सम्बन्धियों आदि को प्रत्यक्ष दिखलाया। उस समय कुन्ती ने भी व्यासजी से निवेदन किया कि भगवन्! दुर्वासा ऋषि ने मुझे वर दिया कि तू जिस देवता का आह्वान करेगी वह तेरे वश में होगा. तब एक दिन मैंने सूर्य भगवान् का आह्वान किया तो उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपना तेज मेरे शरीर में प्रविष्ट कर दिया। उस गर्भ से ही महावीर कर्ण की उत्पत्ति हुई। मैंने अपने उस गुप्त पुत्र की जीवन भर उपेक्षा की है, यह बात स्मरण करके मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जारहा है। मैं अपने उस पुत्र को देखने को अत्यन्त उत्सुक हूँ।

यह सुन कर व्यासजी ने कहा—कुन्ती! बालकपन में सूर्य का आह्वान करने से तुम्हें कोई दोष नहीं लगा। महाबली देवता अणिमादि ऐश्वर्य से सम्पन्न होते हैं और बली पुरुषों के लिए सभी कुछ पवित्र, पथ्य एवं धर्म है। मैं तुम्हें कर्ण को ही नहीं, सभी सगे सम्बन्धियों को अभी दिखाऊँगा। तुम सब के साथ गंगातट पर चलो, वहाँ सभी प्रियजनों और बन्धु बान्धवों को देख सकोगी।

वैशम्पायनजी ने कहा—हे जनमेजय! व्यासजी की आज्ञा पाकर महाराज धृतराष्ट्र, सभी पाण्डवगण, मन्त्रिगण, मुनिगण और गन्धर्वगण आदि सभी गंगातट पर पहुँच कर सब एक साथ ठहर कर मृतकों को पुनः देखने की प्रतिक्षा करने लगे। जब सायंकाल हुआ तब व्यासजी ने गंगा के जल में प्रविष्ट होकर युद्ध में निहत वीरों का आह्वान किया। तभी पहिले के समान

दोनों ओर की सेनाओं का घोर शब्द सुनाई देने लगा। फिर तुरन्त ही भीष्म, द्रोणाचार्य, विराट्, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, दुःशासन, भगदत्त, भूरिश्रवा, शल्य, वृषसेन, शिखण्डी आदि सभी वीर दिव्य-स्वरूप धारण किये हुए जल से निकले। अब उन सभी ने अहंकार, द्वेष, मात्सर्य आदि का त्याग कर दिया था और वे दिव्य वस्त्रा-भूषण धारण किये अप्सरादि के साथ सुशोभित थे। उस समय उनके साथ प्रकट हुए गन्धर्वगण और वन्दीगण स्तुति-गान कर रहे थे। उन सबको देखने के लिए व्यासजी ने नेत्रहीन धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। उस समय का दृश्य अभूतपूर्व था। अब वे सब परस्पर प्रेम-भाव से मिले और प्रसन्न चित्त से वार्तालाप करने लगे। गान्धारी, कुन्ती आदि स्त्रियाँ भी उनसे मिल कर बहुत प्रसन्नता को प्राप्त हुईं।

रात्रि व्यतीत होनेपर सभी समागत मृतक अपने-अपने स्थान कोजाने के लिए तत्पर होकर व्यासजी से आज्ञा माँगने लगे और जैसे ही व्यासजी ने अनुमति दी, वैसे ही वे सब अपने रथ-ध्वज, वाद्य आदि एवं अप्सरागण और गन्धर्वगण आदि के साथ भागीरथी के जल में उतर कर अन्तर्धान होगए। तत्पश्चात् जल में खड़े हुए व्यासजी ने विधवा स्त्रियों से कहा तुममें से जो भी अपने-अपने पतिलोक को जाने की इच्छा करती हों, वे जल में कूद जाँय। यह सुन कर पतिव्रता विधवाएँ गंगा की धारा में कूद कर दिव्य वेश धारण कर पतिलोक को चली गईं। तत्पश्चात् वहां उपस्थित व्यक्तियों ने व्यासजी से जो वर माँगा, वही उन्हें मिल गया। युद्ध में मरे हुए वीरों के लौटने का वृत्तान्त सुनकर सभी देश-विदेश के मनुष्य आश्चर्य में निमग्न होगए।

इस वृत्तान्त को सुन कर जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! जो लोक परलोकगामी हो गए वे पुनः देह धारण कर मृत्यु लोक में कैसे लौट आये ? इस पर व्यासजी ने कहा—राजन् ! कर्मों का क्षय फल भोगने पर ही होता है और कर्म फल ही शरीर धारण में कारण है, इसलिये कर्म नष्ट होने पर ही द्वितीय रूप की प्राप्ति होती है। परलोक में स्वकर्म का फल भोग कर लौटने पर जीव दूसरा शरीर धारण तो करता है, किन्तु वह भी पंच-भूतों से ही निर्मित होता है ; इसलिए पहले और दूसरे शरीर में कोई अन्तर नहीं होता । इस प्रकार आत्मा और पंचभूत के नित्य होने से शरीर भी नित्य है । जीवात्मा जिस शरीर से जो-जो कर्म करता है, उसी शरीर से उस-उस कर्म का फल भी भोगता है, उसे मन के द्वारा मानसिक और देह के द्वारा दैहिक कर्मों के फल भोगने होते हैं ।

व्यासजी द्वारा जनमेजय को उनके पिता आदि का दर्शन कराना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र जन्मांध थे, उन्होंने अपने पुत्रों को पहले कभी नहीं देखा था, किन्तु व्यासजी की कृपा से अब देख लिया । यह सुन कर जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन् ! व्यासजी का ऐसा प्रभाव सुन कर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ है । मैं भी अपने पिताजी के दर्शन करना चाहता हूँ । यदि मुझ पर भी वे ऐसी कृपा कर दें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ ।

सौति बोले—राजन् ! जनमेजय की प्रार्थना सुन कर महर्षि व्यासजी ने उनके पिता राजा परीक्षित का मन्त्रियों के सहित तथा महर्षि शमीक और उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि का भी परलोक से आह्वान किया । उनके दर्शन कर जनमेजय अत्यन्त प्रसन्न

हो गये और यज्ञ समाप्त कर अपने पिता को यज्ञान्त स्नान कराया और स्वयं भी स्नानादि से पवित्र होकर महर्षि आस्तीक से बोले—ब्रह्मन्! शोकनाशक पूज्य पिताजी के यज्ञभूमि में आगमन से यह यज्ञ अत्यन्त अद्भुत हो गया है। इस पर आस्तीक ने कहा—महाराज ! स्वयं महर्षि वेदव्यास जिसके यज्ञ में विराजमान हों, उसके लोक-परलोक दोनों ही सुफल हैं। तुम्हारे प्रभाव से अनेकानेक सर्प भस्म हो चुके हैं, किन्तु सत्य वचन के कारण तक्षक शेष रह गया है। अब साधु-संग से तुम्हारी शङ्काएँ निवृत्त हो चुकीं। तुम ऋषि-पूजक को अन्त में पिता का सालोक्य प्राप्त हो। अब पापनाशक सदाचारी और धार्मिक पुरुषों को श्रद्धासहित नमस्कार कीजिए। यह सुन कर राजा जनमेजय ने सब का यथोचित सम्मान किया और आस्तीक की पूजा की और फिर शेष वृत्तान्त सुनने की इच्छा से नत मस्तक होकर बैठ गए।

पाण्डवों का हस्तिनापुर लौटना

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन् ! अपने पुत्र पौत्रादि को देखकर राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर ने फिर क्या किया ? यह सुन कर वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! उस चमत्कार को देखने के पश्चात् सब के सहित राजा धृतराष्ट्र अपने आश्रम में लौट आये। तब व्यासजी ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज ! आप सर्वज्ञानी, देवताओं और सृष्टि के रहस्य से परिचित और परम धार्मिक हो। तुम अपने उन पुत्र, पौत्र, मित्र, बन्धु आदि को भी देख चुके हो, जो युद्ध में मर गये थे। इसलिए अब तुमने शोक का भी त्याग कर दिया होगा। अब युधिष्ठिर आदि को राजधानी में जाने की आज्ञा दो, क्योंकि अधिक दिनों तक उनके यहां रहने से राजतन्त्र में व्यवधान उपस्थित हो सकता है।

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को पास बुला कर कहा—पुत्र ! मैं अब सम्पूर्ण शोक-सन्ताप से रहित हो चुका हूँ, इसलिए तुम अविलम्ब हस्तिनापुर को लौट जाओ, क्योंकि तुम्हारे यहाँ रहने से राजकाज में विघ्न हो सकता है और तुम्हें देख कर स्नेहवश तपस्या भी नहीं बन रही है।

युधिष्ठिर बोले—महाराज ! मुझ निरपराध का त्याग न करिये। यदि आपकी आज्ञा हो तो अपने भाइयों, अनुचरों, स्त्रियों आदि को हस्तिनापुर भेज कर मैं अकेला ही आपकी सेवा में यहाँ रह जाऊँ ? इस पर गान्धारी ने समझाया—पुत्र ! तुम कौरवों के वंशधर और पुरुषों का श्राद्ध-तर्पण करने के अधिकारी हो, तुम हमारी बहुत सेवा कर चुके हो, अब महाराज की बात मान कर हस्तिनापुर चले जाओ।

इसके पश्चात् कुन्ती ने भी उन्हें समझाया, तब युधिष्ठिर आदि ने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती की आज्ञा लेकर हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। उस समय आश्रम में अश्वादि के चलने और हिनहिनाने का शब्द सुनाई देने लगा।

धृतराष्ट्रादि का देह-त्याग

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! तदनन्तर धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती ने गङ्गातट पर रह कर छः मास तक कठिन व्रतोपवास पूर्वक घोर तपस्या की और फिर अपने आश्रम पर लौट आये। तभी एक दिन सहसा उस वन में घोर दावानल प्रकट होकर वन को भस्म करने लगी। यह जान कर धृतराष्ट्र ने संजय से कहा—तुम शीघ्र यहाँ से भाग कर अपने प्राण बचाओ, मैं इसी अग्नि में शरीर त्याग करूँगा। यह कह कर गान्धारी और कुन्ती के सहित धृतराष्ट्र पूर्वाभिमुख होकर समाधि लगा कर बैठ गए। इच्छा न होने पर भी संजय उनकी

प्रदक्षिणा करके चले, तभी दावानल ने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती का दाह कर दिया।

संजय उस दावानल से बड़ी कठिनाई से बचे। उन्होंने मार्ग में नारदादि ऋषियों को उक्त वृत्तान्त बताया और तप करने के लिये हिमालय पर चले गए। नारदजी ने उक्त समाचार युधिष्ठिर को सुनाया तो वे सब शोकाकुल होकर रुदन करने लगे। तब नारदजी द्वारा समझाये जाने पर उन्होंने शोक का त्याग किया और गङ्गातट पर पहुँच कर उनका श्राद्धादि संस्कार किया। हे जनमेजय! इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र महाभारत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पन्द्रह वर्ष तक नगर में रह कर, तीन वर्ष वन में जीवित रहे।

॥ आश्रम वासिक पर्व समाप्त ॥

मौसल पर्व

यादवों का प्रभास तीर्थ में जाना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! राज्य पालन करते हुए राजा युधिष्ठिर को पेंतीस वर्ष व्यतीत होगए और छत्तीसवें वर्ष उन्हें सहसा घोर अपशकुन दिखाई दिये। उसके कुछ दिनों बाद उन्हें समाचार मिला कि मूसल के प्रभाव से वृष्णिवंश नष्ट होगया और कृष्ण-बलदेव भी इस संसार में नहीं रहे। इस समाचार को सुन कर सभी पाण्डव शोक-विह्वल होकर सोचने लगे कि अब क्या किया जाय ?

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! महात्मा श्रीकृष्ण के रहते हुए वृष्णि, अंधक और भोजवंश के वीरों का विनाश कैसे होगया ? वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! एक बार महर्षि विश्वामित्र, कण्व और नारदजी द्वारका में गये थे, तभी सारणादि यादव युवक साम्ब को स्त्री बनाकर उनके पास ले गए और हँसी में बोले—महर्षिगण ! वभ्रु की यह पत्नी पुत्र चाहती है, इसके क्या उत्पन्न होगा ? यह सुन कर महर्षियों ने क्रोधित होकर कहा—इससे यदुकुल का नाश करने वाला मूसल उत्पन्न होगा। उन बालकों से यह कह कर वे महर्षिगण जब कुछ शान्त हुए तब श्रीकृष्ण के पास स्वयं जाकर उक्त वृत्तान्त सुना दिया। किन्तु श्रीकृष्ण ने उस शाप की निवृत्ति का कोई उपाय नहीं किया।

दूसरे दिन साम्ब ने मूसल उत्पन्न किया। राजा उग्रसेन ने शाप का वृत्तान्त जान कर मूसल को चूर्ण—चूर्ण करके समुद्र में फिकवा दिया और नगर में घोषणा करा दी कि आज से कोई

भी मदिरा न बनावे, अन्यथा प्राणदण्ड दिया जायगा। तब से मदिरा बनना बन्द होगया। किन्तु तभी से द्वारका में घोर अपशकुन दिखाई देने लगे। यह देख कर श्रीकृष्ण की आज्ञा से सभी यादवों ने प्रभास तीर्थ के लिए प्रस्थान किया।

यदुवंश का विनाश वर्णन

वैशम्पायनजी ने कहा—हे जनमेजय! सभी यादव सपरिवार प्रभास तीर्थ में जाकर पृथक्-पृथक् भवनों में रहने लगे। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभास क्षेत्र में होने का समाचार पाकर योगवेत्ता भक्त उद्धवजी उनके दर्शनार्थ गये तब वार्तालाप के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उद्धव का वहाँ रुकना उचित न समझ कर हाथ जोड़ कर प्रणाम किया, जिससे उद्धव समझ गए कि अब यहाँ से चल देना ही ठीक है। इस प्रकार श्रीकृष्ण से अनुमति और सम्मान प्राप्त कर उद्धवजी चले गए।

इधर काल के वश में पड़े हुए यादव इच्छानुसार मद्य-मांस भक्षण करने लगे। ब्राह्मणों के लिये बनाये हुए पक्वान्न में मदिरा मिला कर बन्दरों को खिलाते और उससे अपना मनोरंजन करते उन दिनों प्रभास क्षेत्र में नटों, नर्तकों, मदमत्त गायकों, बाजीगरों आदि का जमघट लग गया था और वहाँ हर समय बाजे की ध्वनि सुनाई देती रहती थी।

प्रभास क्षेत्र उस समय तीर्थ के रूप में नहीं, वरन् मतवाले यादवों की आमोद भूमि अथवा विहार-स्थल के रूप में हो रहा था। उसके सभीमार्ग जनाकीर्ण रहने लगे, कोई निकलना चाहे तो कठिनाई से ही निकल पाता था। सर्वत्र खेल-कूद, नाच रंग, मदिरा-पान तथा संगीत आदि का उत्तेजनापूर्ण वातावरण दिखाई देने लगा। लोग भूल गये कि यह कि अत्यन्त पवित्र-तीर्थ

है, और यहाँ ऋषि-मुनि एवं वेदज्ञ ब्राह्मण अपने-अपने कर्म से इस भूमि का माहात्म्य बढ़ाने और ब्रह्म से साक्षात् करने के प्रयत्न में तल्लीन रहते हैं।

जनमेजय ने पूछा—भगवन्! यादवों को उच्छृंखलता देख कर भी श्रीकृष्ण ने उन्हें क्यों नहीं रोका?

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय! श्रीकृष्ण जानते थे कि इसी बहाने से यदुकुल के नाश का समय आगया है तभी एक दिन वहाँ बल्देव, सात्यकि, बभ्रु, कृतवर्मा आदि ने मदिरा-पान किया और फिर सात्यकि ने कृतवर्मा का उपहास करते हुए कहा—हार्दिक्य! ऐसा कौन क्षत्रिय है जो सोते हुओं को मार डाले, तुम्हारी करतूतों को कभी सहन नहीं किया जा सकता। यह सुन कर कृतवर्मा अत्यन्त क्रोधित होगया। उसने भी सात्यकि को बुरी भली बातें कहीं। इसके बाद दोनों में घोर तर्क-वितर्क, विवाद प्रारम्भ होगया। फिर तो वे परस्पर लड़ने झगड़ने लगे।

तभी सात्यकि ने कृतवर्मा का शिर धड़ से पृथक् कर दिया और फिर श्रीकृष्ण की उपस्थिति में ही अन्यान्य वीरों पर प्रहार करने लगे। यह देख कर श्रीकृष्ण उन्हें रोकने को बढ़े ही थे कि मद में उन्मत्त भोज और अंधक वंश के अनेक शूरों ने सात्यकि को घेर कर उच्छिष्ट पात्रों से प्रहार करना प्रारम्भ किया। तब प्रद्युम्न सात्यकि की रक्षा के लिए दौड़े और तभी भोज, अन्धक दोनों वंश के वीरों ने उनका भी सामना किया। इस प्रकार परस्पर के घोर युद्ध में श्रीकृष्ण के सामने ही सात्यिक और प्रद्युम्न दोनों ही वीर मार डाले गए।

उन दोनों वीरों की मृत्यु हुई देख कर श्रीकृष्ण भी क्रोधित हो उठे, उन्होंने मूसल के चूर्ण से उत्पन्न हुई एरका घास को एक मुट्ठी भर तोड़ कर हाथ में ली तो वही एक भयंकर मूसल का

कार्य करने लगी। उससे श्रीकृष्ण ने भोज और अन्धक वंश के यादवों का संहार प्रारम्भ किया। किन्तु वही घास शिनि और वृष्णि वंश के यादवों की भी मृत्यु का कारण बनी। क्योंकि जो भी क्रोध के वशीभूत होकर उस घास को तोड़ कर हाथ में लेता वही उसे वज्र के समान घातक देखता और प्रतिपक्षी को समाप्त करने में सफल होजाता।

उस समय वह दशा थी कि न तो पिता को पुत्र देखता और न पुत्र को पिता। जो जिसके सामने आगया वही शत्रु के समान युद्ध करता-करता धराशायी होगया। इस प्रकार सभी यादव वीर अग्नि में गिर कर भस्म होते हुए पतंगों के समान गृह युद्ध की भयंकर अग्नि में शाप वश और कालवश भस्म होने लगे। अपने सामने ही साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गद आदि को मरते देख कर श्रीकृष्ण ने भी अधिकांश वीरों को मार डाला।

इस प्रकार मूसल का चूर्ण किनारे लग कर घास रूप हो गया। उसी घास को उखाड़ कर परस्पर लड़ते हुए यादव एक-एक कर मरने लगे। तब अपने प्रियजनों के मरने पर श्रीकृष्ण ने शेष सब को मार डाला। उस समय वभ्रु और दारुक ने कहा—वासुदेव! आप सब वीरों को मार चुके, अब बलदेवजी के पास चलिये। तब वे बलदेवजी के पास गये। उस समय बलदेवजी एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए तप कर रहे थे, तभी उनके मुख से श्वेत वर्ण का एक सहस्र शीर्ष सर्प निकल कर समुद्र की ओर चला गया। सर्प के निकलते ही बलदेवजी का शरीर प्राण-हीन होगया।

यह देखकर गम्भीर हुए श्रीकृष्ण वहाँ से दूर निर्जन वन में एक वृक्ष के नीचे बैठ कर विश्राम करने लगे। तभी जरा नामक एक व्याध ने उन्हें मृग समझ कर बाण चलाया, जो कि उनके

चरण के तलुए में आकर लगा। तब जैसे ही व्याध को ज्ञात हुआ कि मेरा वाण किसी मनुष्य को लगा है, वैसे ही वह दौड़ कर आया और श्रीकृष्ण को देख कर क्षमा माँगने लगा। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन देकर अपने लोक को गमन किया।

श्रीकृष्ण ने दारुक को पहिले ही हस्तिनापुर भेज दिया था, उससे यदुकुल-नाश का समाचार पाकर अर्जुन तुरन्त द्वारका के लिए चल पड़े और वहाँ वसुदेवजी के पास पहुँचे तो देखा कि वे पुत्रों के शोक में विह्वल होरहे हैं। वे बोले—अर्जुन! तुम्हारा आना ठीक रहा। यह राज्य, स्त्री, धन आदि सब तुम्हें सोंपता हूँ। तुम कृष्ण के कहे अनुसार कार्य करना। यह कह कर वसुदेव जी ने योगबल से अपने प्राण त्याग दिये। देवकी आदि उनकी पत्नियां उनके साथ सती होगईं।

अर्जुन ने यादवों का शास्त्रानुसार प्रेतकर्म कराया और सातवें दिन वृष्णिवंश की सभी स्त्रियों, बालकों, वृद्धों और भृत्यादि को लेकर हस्तिनापुर को चल दिये। उस समय सम्पूर्ण नगर खाली होने लगा। और जब पूर्ण रूप से खाली हो गया, तब आठवें दिन वह नगर समुद्र में डूब गया।

मार्ग में जाते हुए अर्जुनादि पर दस्युओं ने आक्रमण कर धन-रत्नादि लूटा और स्त्रियों का अपहरण कर लिया। उस समय अर्जुन की शक्ति इतनी क्षीण हो चुकी थी, कि बहुत प्रयत्न करके भी उनकी रक्षा नहीं कर सके, इससे अर्जुन अत्यन्त दुःखी हुए।

उन्होंने द्वारकावासियों को एक उपयुक्त स्थान पर ठहराकर वज्र को उनका राजा बनाया। तत्पश्चात् महर्षि व्यास जी के पास जाकर उन्होंने कहा कि भगवन्! अर्जुन का प्रणाम स्वीकार कीजिए। वेदव्यासजी ने उन्हें बैठने की अनुमति देकर पूछा—पुत्र! क्या किसी ने तुम पर नखों, केशों, वस्त्रों या कलशों का

पानी तो नही फेंक दिया अथवा तुमने कोई पापकर्म तो नहीं कर डाला ? या तुम किसी से हार तो नहीं गये ? मुझे अपनी उदासी का कारण बताओ ?

यह सुन कर अर्जुन ने सब वृत्तान्त निवेदन करते हुए कहाकि—ब्रह्मन् ! मैं उन स्त्री आदि की रक्षा न कर सका, मेरा बल न जानें कहाँ गया ? अब मुझे क्या करना चाहिए।

व्यासजी बोले—अर्जुन ! यह सब समय का प्रभाव है। जब अमंगल का समय आता है तब किसी प्रकार का बल काम नहीं देता। अब तुम्हें धैर्यपूर्वक सब कार्य करना चाहिए। भगवान् वासुदेव चाहते तो उस संहार को टाल सकते थे, क्योंकि वे तो महर्षियों का शाप तो क्या दूसरे विश्व को उत्पन्न करने में समर्थ थे। किन्तु उन्होंने स्वयं ही उपेक्षा की तो, इससे यही प्रतीत होता है कि यह विनाश अवश्यंभावी था। भगवान् स्वयं ऐसा ही चाहते थे, इसीलिए तो वह हुआ। क्योंकि उनकी इच्छा के बिना तो एक पत्ता भी हिलने में समर्थ नहीं है। अर्जुन ! वे पुरातन ऋषि तुम्हारे स्नेह के वशीभूत होकर ही तुम्हारे रथ के आगे भागते थे। उन्होंने समझ लिया कि पृथिवी का भार हल्का होगया है,इसलिए स्वेच्छा पूर्वक शरीर त्यागकर अपने स्थान को चले गए। इसलिए तुम्हें उनके लिए चिन्तित होने का कोई कारण नहीं है।

पार्थ ! तुमने भी देवताओं का बहुत कार्य सिद्ध किया है। तुम सब अपने-अपने उद्देश्य में कृतकार्य हो चुके हो। इस लोक में अब ऐसा कोई कार्य तुम्हारे लिए शेष नहीं है, जिसके लिए रहना चाहिए। इसलिए तुम्हारे लिये भी यही श्रेयस्कर है कि तुम शीघ्र ही इस लोक से प्रस्थान करो। जब मनुष्य का कल्याण उपस्थित होता है तब उसे बुद्धि उत्पन्न होकर उज्वल भविष्य दिखाई देता है और अमंगल होने को होता है तब सब कुछ विप-

रीत होजाता है। पुत्र ! काल ही जगत् प्रपंच का बीज है, उसी के प्रभाव से सर्ग और प्रलय का कार्य होता है, वही स्थिति का भी कारण है। वह बलवान काल अपने पक्ष में होता है तब दूसरों को आज्ञाकारी बनाता है और विपक्षमें होता है तब दुर्बल भी सबल का तिरस्कार कर बैठते हैं। देखो, तुम्हारे अस्त्र अपना कार्य पूरा करके जहाँ से आये थें, वहाँ लौट गए, जब उनका समय पुनः आयेगा तब वे फिर तुम्हारे पास आकर सिद्धिदायक होंगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! व्यासजी के उक्त वचनों को सुनकर अर्जुन ने उन्हें प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर हस्तिनापुर गये तथा यादव-संहार आदि का पूर्ण वृत्तान्त युधिष्ठिर को जा सुनाया।

॥ मौसल पर्व समाप्त ॥



महा प्रस्थानिक पर्व

पाण्डवों का राज्य त्याग

जनमेजय ने पूछा—हे ब्रह्मन्! वृष्णि आदि यादवों के संहार और श्रीकृष्ण के स्वधामगमन के वृत्तान्त को सुन कर पाण्डवों ने क्या किया, यह बताने की कृपा करें। इस पर वैशम्पायनजी ने कहा—राजन्! अर्जुन के मुख से वह सब वृत्तान्त सुन कर युधिष्ठिर बोले—हे अर्जुन! सब जीवों का संहार कर्त्ता काल ही है, मैं अब उसी काल का आश्रय करके शरीर-त्याग की इच्छा कर रहा हूँ। तुम्हें क्या करना है, इस पर स्वयं विचार करो।

अर्जुन ने कहा – महाराज! मैं भी काल का आह्वान करना चाहता हूँ। यह सुन कर भीमसेन, नकुल और सहदेव ने भी वैसा ही विचार प्रकट किया। इस प्रकार सभी ने प्राणत्याग कर निश्चय कर लिया तो युधिष्ठिर ने परीक्षित को राज्य पर अभिषिक्त कर, उनकी देख-रेख का भार वैश्या पुत्र युयुत्सु को सोंप कर सुभद्रा से कहा—हे कल्याणी! तुम्हारे पौत्र परीक्षित को हस्तिनापुर का राज्य दे दिया है और कृष्ण के पौत्र वज्र को इन्द्रप्रस्थ का राज पहिले ही दे चुका हूँ। तुम इन दोनों बालकों पर समदृष्टि रख कर इनकी रक्षा करना।

तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण, बलराम, वासुदेव एवं अन्याय यादवों का श्राद्ध-तर्पणादि किया और ऋषि-महर्षियों को यथेष्ट धनादि से सन्तुष्ट कर अपने कुलगुरु कृपाचार्य का पूजन कर परीक्षित् को उनके भरोसे छोड़ दिया और सब प्रजाजनों को अपने विचार से अवगत कराया, जिसे सुन कर सभी लोग व्याकुल हो

उठे। तब युधिष्ठिर ने उन सबको समझा-बुझा कर सम्मान सहित विदा किया और फिर सब राजसी वस्त्राभूषण उतार कर वल्कल धारण किये अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी ने भी मुनि वेश बनाया और उत्सर्गेष्टि यज्ञ को समाप्त कर जल में अग्नि को विसर्जित किया।

इसके बाद द्रौपदी सहित पाँचों भाई वहाँ से चल पड़े। उस समय सभी स्त्रियाँ अत्यंत व्याकुल होकर रोने लगीं। नगर निवासी उनके पीछे-पीछे बहुत दूर तक गये और फिर निराश हो कर लौट आये। द्रौपदी आदि सभी बिना कुछ खाये-पिये निरन्तर पूर्व की ओर चले जा रहे थे। सब से आगे युधिष्ठिर, फिर भीमसेन, फिर अर्जुन, फिर नकुल, फिर सहदेव और उन सब के पीछे द्रौपदी चल रही थी। हस्तिनापुर से चलते समय एक कुत्ता भी उनके पीछे-पीछे चल दिया। इस प्रकार अनेक देश, नदी, वन आदिको लांघते हुए वे लोग लालसागरके तटपर पहुँच गये। वहाँ पुरुष रूप से भगवान् अग्नि मार्ग रोके खड़े थे, उन्होंने कहा— पाण्डवो ! मैं अग्नि हूँ। अर्जुन और कृष्ण के सहयोग से मैंने ही खाण्डव वन को भस्म किया था। अब अर्जुन को गाण्डीव धनुष आदि की आवश्यकता नहीं है, इसलिए उन्हें यहीं छोड़ कर वन में बढें। क्योंकि वरुण से लिया हुआ गाण्डीव उन्हीं को लौटा देना उचित है। महात्मा श्रीकृष्ण ने भी अपने सुदर्शन चक्र को त्याग दिया था। अग्नि के वचन सुन कर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकस का जल में विसर्जन कर दिया और अग्नि के अन्तर्धान होने पर सब दक्षिण की ओर बढ़ कर खारी समुद्र के उत्तर तट से दक्षिण-पश्चिम कोण की ओर चल दिये। वहाँ से पश्चिम दिशा में मुड़ने पर उन्हें समुद्र में डूबी हुई द्वारकापुरी दिखाई दी। वहाँ से उत्तर को ओर चलते हुए उन्होंने पृथिवी की प्रदक्षिणा का विचार किया।

द्रौपदी आदि का मार्ग में गिरना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! एकाग्र चित्त वाले पाण्डवों ने चलते-चलते उत्तर दिशा में पहुँच कर हिमवान् पर्वत के दर्शन किये और उस पर चढ़ कर आगे जाने पर बालू का महासागर और फिर सुमेरु पर्वत मिला। सभी यात्रा में चित्त लगाये हुए बढ़ रहे थे, पर चित्त बँटने से सब से पीछे चलती हुई द्रौपदी मार्ग में गिर पड़ीं। तब भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा—धमराज ! धर्मात्मा द्रौपदी क्यों गिर गईं ? युधिष्ठिर बोले—यह अर्जुन के प्रति अधिक पक्षपात करती थीं, उसी का फल है। यह कह कर युधिष्ठिर द्रौपदी की ओर देखे बिना ही एकाग्र चित्त से आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर सहदेव पृथिवी पर गिर गये। भीमसेन ने फिर पूछा—यह निरहंकारी सहदेव क्यों गिर गये ? युधिष्ठिर ने कहा—यह किसी को अपने समान बुद्धिमान नहीं समझते थे, उसी का फल मिला है।

आगे बढ़ने पर नकुल भी गिर गये, तब भीमसेन ने पूछा—यह धर्मात्मा नकुल क्यों गिरे ? युधिष्ठिर बोले—यह अपने समान किसी को भी सुन्दर या बलवान नहीं समझते थे। यह कह कर कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि द्रौपदी और दोनों भाइयों के शोक से पीड़ित हुए अर्जुन भी गिर गये। भीमसेन ने पुनः पूछा—यह तो कभी झूँठ भी नहीं बोलते थे, इनके गिरने का क्या कारण है ? युधिष्ठिर बोले-यह सभी शत्रुओं को एक दिन में ही समाप्त करने की बात कहते थे, जिसे पूरी नहीं कर सके और सब धनुर्धारियों को अपने से तुच्छ समझते थे, यह उसका फल है।

यह कह कर युधिष्ठिर जैसे ही आगे बढ़े, वैसे ही भीमसेन भी गिर गये। उन्होंने पूछा—धर्मराज ! मैं आपका अत्यन्त प्रिय था, मेरे गिरने का क्या कारण है ? युधिष्ठिर बोले—भीम ! तुम अपनी उदर पूर्ति में मस्त रहते हुए दूसरे को नहीं देते थे और

अपनी वीरता की स्वयं प्रसंसा करते थे, इसलिए तुम गिरे हो। यह कह कर युधिष्ठिर आगे बढ़ गये, जो कुत्ता साथ चला था, वही उनके साथ रह कर पीछे-पीछे चलने लगा।

युधिष्ठिर का स्वर्गारोहण

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् देवराज इन्द्र रथ लेकर आये और युधिष्ठिर से रथ पर चढ़ने के लिए कहा। युधिष्ठिर बोले—सुरराज ! मेरे भाई और द्रौपदी तो मार्ग में ही गिर गये हैं, मैं उनके बिना स्वर्ग में कैसे जा सकता हूँ ? इन्द्र बोले—उनकी चिन्ता न करो,वे सब वहाँ पहले ही पहुँच चुके हैं, वे अपने मनुष्य देह को छोड़कर गये हैं, किन्तु तुम अपने पुण्य से सदेह स्वर्ग को प्राप्त करोगे। युधिष्ठिर ने कहा- देवराज यदि ऐसा है तो मैं चलने को तैयार हूँ, पर, यह मेरा भक्त कुत्ता भी मेरे साथ चलेगा। इन्द्र ने समझाया—युधिष्ठिर ! तुम्हें मेरे सम्मान सिद्धि और ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है, इसलिए कुत्ते का मोह छोड़ देना ही ठीक है। क्योंकि कुत्ते के लिए स्वर्ग में स्थान नहीं है। युधिष्ठिर बोले—भक्त को त्यागना ब्रह्महत्या के समान घोर पाप है। अपने सुख के लिए मैं इस कुत्ते को नहीं छोड़ सकता। इन्द्र ने पुनः समझाया—प्रिय द्रौपदी और भाइयों को छोड़ कर तुमने अपने कर्म से देवलोक प्राप्त किया है, इसलिए इस कुत्ते के मोह में पड़ने से ही क्या लाभ होगा। देखो, कुत्ते के देखने मात्र से क्रोधवश नामक देवता सम्पूर्ण दान-पुण्य के फल का हरण कर लेते हैं। युधिष्ठिर बोले—देवराज ! कुछ भी हो, भक्त का त्याग महापाप है,इसलिए मैं इसे नहीं छोड़ सकता।

युधिष्ठिर की दृढ़ता देख कर धर्म ने कुत्ते का रूप छोड़ कर कहा—पुत्र ! तुम में मेरे ही समान चरित्र, बुद्धि और दया है, यह देख कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे

समान धर्माचरण वाला तो स्वर्ग में भी कोई नहीं होगा। इसलिए तुम्हें दिव्य गति प्राप्त हो गई है, अब तुम इसी देह से अक्षय लोकों को प्राप्त हो। यह कह कर धर्म ने रथ पर चढ़ने का संकेत किया और जब युधिष्ठिर रथ पर चढ़ गये तब धर्म इन्द्र, मरुद्-गण, अश्विनीकुमार आदि देवगण उन्हें स्वर्ग में ले गये। उस समय स्वेच्छा गति वाले पुण्यात्मा सिद्धगण भी अपने-अपने विमानों पर चढ़े हुए उनके साथ चले। अपने तेज से पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हुए युधिष्ठिर रथ के द्वारा द्रुत-गति से ऊपर चढ़े चले जा रहे थे। तब नारदजी ने देवमण्डली के मध्य उच्च स्वर से कहा—अब तक जितने भी राजर्षि स्वर्ग में आ चुके हैं, उनकी कीर्ति को अपनी कीर्ति से युधिष्ठिर ने ढक दिया है। क्योंकि युधिष्ठिर के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस स्वर्ग में सदेह नहीं आ सका है। तभी युधिष्ठिर वहाँ पहुँच गये, नारद जी ने उनसे कहा—धर्मराज ! पृथिवी से तुम जिस नक्षत्र-तारा-मण्डलादि को देखते थे, उन्हें यहाँ प्रत्यक्ष देखो।

युधिष्ठिर ने इधर-उधर देख कर कहा—यहां मेरे भाई, द्रौपदी या मेरे पक्ष के क्षत्रिय वीर आदि कोई भी यहीं दिखाई देते। वे सब जहाँ हों, वहीं मुझे पहुँचा दीजिए। यह सुन कर इन्द्र बोले—राजेन्द्र ! सभी अपने-अपने कर्मानुसार फल प्राप्त करते हैं। अब तुम साधारण मनुष्यों जैसे मोह-बन्धन को छोड़-कर अपने शुभ कर्मों से जीते हुए इस लोक में सुखपूर्वक रहो। तुम्हारे समान सिद्धि तुम्हारे भाइयों को भी नहीं मिल सकी। किन्तु, तुम में अभी तक जो मनुष्यभाव बना है, उसे छोड़ देने में ही कल्याण है। देखो, यह स्वर्ग है और यह देवताओं के भवन हैं। युधिष्ठिर ने कहा—सुरराज ! मैं अपने भाई आदि के बिना यहाँ नहीं रह सकता, इसलिए जहाँ मेरे भाई और द्रौपदी हैं, वहीं मुझे भी पहुँचा दो।

।। महा प्रस्थानिक पर्व समाप्त ।।

स्वर्गारोहण पर्व

स्वर्ग में दुर्योधन को देख कर युधिष्ठिर का कुपित होना

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन् ! आप भगवान् वेद व्यासजी के शिष्य हैं, आपसे क्या छिपा है ? कृपया बतलाइये कि मेरे पूर्व पुरुषा पाण्डव और धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादि स्वर्ग प्राप्त करके किन-किन स्थानों को गए ? वैशम्पायनजी बोले— राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिर ने स्वर्ग में पहुँच कर देखा कि साध्यगण और देवगण के मध्य बैठे हुए दुर्योधन सूर्य के समान तेजस्वी एवं शौर्यलक्ष्मी से सुशोभित हैं। यह देख कर युधिष्ठिर अत्यन्त क्रोधित हो उठे, उन्होंने कहा—देवगण ! जिस लोभी दुर्योधन के कारण हमें घोर संग्राम करना पड़ा, जिसके कारण हमें वन-वन भटकते हुए अत्यन्त कष्टों का सामना करना पड़ा, जिसके कारण हमारी सहधर्मिणी पतिव्रता द्रौपदी को अपमानित होना पड़ा, उसी दुरात्मा के साथ इस स्वर्ग में मैं कैसे रह सकता हूँ ? मैं इसका मुख भी नहीं देखना चाहता। इसलिए मुझे वहीं पहुँचा दिया जाय, जहाँ मेरे चारों भाई और द्रौपदी आदि हैं।

युधिष्ठिर के वचन सुन कर नारदजी ने कहा—युधिष्ठिर ! स्वर्ग में आकर वैर-विरोध का निःशेष हो जाता है। इसलिए दुर्योधन के प्रति इस प्रकार के वचन कहना उचित नहीं है। स्वर्ग में रहने वाले सब राजागण दुर्योधन का सम्मान करते हैं। वे महाभय उपस्थित होने पर भी भयभीत नहीं हुए और क्षत्रिय धर्म के अनुसार संग्राम में देह त्याग कर यहाँ आये हैं। इन्हीं पुण्यों के प्रभाव से उन्हें स्वर्ग के इस ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है।

इसलिए पुराने वैर-भाव को छोड़ कर सुहृदभाव से इनके साथ निवास करो। युधिष्ठिर बोले—देवर्षे ! जिसके कारण पृथिवी पर भयङ्कर जन-संहार हुआ और जिससे प्रतिशोध लेने के लिए हम क्रोधाग्नि में दग्ध हो रहे थे, उस दुरात्मा को इस सनातन वीर लोक की प्राप्ति हुई है तो मेरे परम पराक्रमी, सत्यवादी एवं धर्मात्मा बन्धुगण किस लोक को प्राप्त हुए ? कुन्ती-पुत्र महावीर कर्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, विराट्, द्रुपद, शिखण्डी, अभिमन्यु, द्रौपदी-पुत्र आदि भी तो क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध में देह त्याग कर ही आये हैं ? वे कहाँ हैं. मैं उन्हें देखने के लिए व्याकुल हो रहा हूं। देवगण ! इनके अतिरिक्त हमारे पक्ष के अनेक राजा और राजपुत्रों ने भी क्षत्रिय धर्म का पालन किया था, क्या वे लोग इस लोक में नहीं आये ? मैं उन्हीं के साथ रहना चाहता हूँ। देवराज ! मैं महावीर कर्ण के दर्शन करने को अत्यन्त इच्छुक हूं। यह सुन कर देवताओं ने कहा—यदि तुम वहाँ जाना चाहते हो तो अवश्य जाओ। हम देवराज के आदेशसे तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूर्ण करनेके लिए तत्पर हैं। यह कह कर उन्होंने एक दूत को संकेत किया जो कि तुरन्त युधिष्ठिर को साथ लेकर चल दिया।

युधिष्ठिर का अपने भाइयों को नरक में देखना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! वह देवदूत युधिष्ठिर को एक अत्यन्त दुर्गम एवं अन्धकार युक्त मार्ग से ले चला। पापियों के आवागमन वाले उस मार्ग में अत्यन्त दुर्गन्ध, मांस, रक्त, पीव आदि की कीचड़, अस्थियों, केशों, ठठरियों आदि के अम्बार, मच्छर, मक्खी, कृमि-कीट एवं रीछ आदि हिंसक जीवों की सर्वत्र अधिकता थी। काक, गिद्ध एवं पर्वताकार सूचीमुख प्रेत इधर-उधर घूम रहे थे, उनके शरीरों से मेद और रक्त झर

रहा था और किसी-किसी का तो हाथ-पाँव, नाक, मुख आदि अवयव ही नहीं था। कहीं खोलते हुए जल से परिपूर्ण नदी, कहीं तीक्ष्ण धार वाले शस्त्रों से परिपूर्ण असिपत्र वन, कहीं अत्युष्ण बालू, कहीं खौलते हुए तेल के पात्र और इन सब साधनों के द्वारा विभिन्न प्रकार की भयङ्कर यन्त्रणाएँ भोगते हुए पापी जीवों को युधिष्ठिर ने देखा। जिससे घबराते हुए युधिष्ठिर ने उस देवदूत से पूछा—ऐसे मार्ग में अभी कितनी दूर चलना शेष है ? देवदूत ने कहा—महाराज ! देवताओं ने कहा था कि चलते चलते युधिष्ठिर जहाँ थक जाँय वहाँ से वापस ले आना। इसलिए यदि आप थक गये हों तो यहीं से लौट चलें। यह सुन कर युधिष्ठिर वहाँ से लौटनेको मुड़े तभी उन्हें चारोंओर से सुनाई दिया—धर्मराज ! अभी मत जाइये, कम से कम एक क्षण तो ठहरिये। देखिये, आपके आते ही जो पवित्र वायु का झोंका आया है, उससे हम अत्यन्त सुखी हुए हैं। आपके आगमन ने हमारी यातना को कुछ कम कर दिया है।

उस आग्रह को सुन कर दयालु युधिष्ठिर वहीं खड़े होगए। अब बारम्बार वैसी ही चीख-पुकार सुनाई देने लगी। उनके दुःख से दुःखित हुए युधिष्ठिर ने उच्च स्वर में पूछा—तुम सब कौन हो ? यहाँ किसलिए आये हो ? इसके उत्तर में उन्होंने सुना—मैं कर्ण हूँ, मैं भीम हूँ, मैं अर्जुन हूँ, मैं नकुल हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं द्रौपदी हूँ, मैं धृष्टद्युम्न हूँ। इस प्रकार अपना-अपना नाम सुना कर वे करुण चीत्कार करने लगे।

अब तो युधिष्ठिर बड़े आश्चर्य में पड़े और सोचने लगे कि इन लोगों ने ऐसा कौन पाप किया था, जिसके फल स्वरूप इस नरक की प्राप्ति हुई ? देखो, दैव की कैसी विचित्र गति है कि पापात्मा दुर्योधन अपने अधर्मी अनुचरों के सहित स्वर्ग के सुख भोग रहा है और यह सब पुण्यात्मा घोर नरक की यन्त्रणाएँ

भोग रहे हैं ? पता नहीं मैं सोता हूँ या जागता ? मेरी बुद्धि ठीक है अथवा नहीं ? कहीं मुझे भ्रम तो नहीं हो रहा है ? ऐसा सोचते हुए युधिष्ठिर धर्म और देवताओं की निन्दा करते हुए बोले—महात्मन् ! आप जिनके दूत हों उनसे जाकर कह दीजिए कि मैं अब स्वर्गलोक में न जाकर यही रहूँगा। क्योंकि मेरे यहाँ आने से मेरे दुःखित भाइयों को अत्यन्त सुख मिल रहा है। युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुन कर देवदूत लौट कर इन्द्र के पास गया और उसने उन्हें सब वृत्तान्त सुना दिया।

युधिष्ठिर का स्वर्ग दर्शन

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! कुछ देर बाद ही सिद्ध, महर्षि आदि के सहित धर्म और इन्द्रादि देवता युधिष्ठिर के पास आगये तभी वहाँ का सब अन्धकार दूर होगया। खौलते हुए जल और तेल के पात्र, गर्म बालू, असिपत्र वन आदि सभी नारकीय यातनाएँ वहाँ से अदृश्य होगईं। शीतल, मंद, सुगन्धित वायु चलने लगी। इन्द्र ने कहा—महाराज ! अब तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना होगा। राजाओं को नरक अवश्य देखना होता है, इसलिए तुम्हें भी नरक में आना पड़ा है।

युधिष्ठिर ने कहा—मैं तो यहाँ स्वेच्छा से आया हूँ, फिर ऐसा क्यों कहते हैं ? इन्द्र बोले—'यहाँ स्वेच्छा से कोई नहीं आता। सभी को अपने पाप-पुण्य का फल भोगना अनिवार्य है। तुमने द्रोणाचार्य को अश्वत्थामा की मृत्यु का मिथ्या समाचार दिया था, इसलिए तुम्हें नरक दिखाया गया है। जिनका पुण्य अधिक होता है उन्हें पहिले नरक देखना होता है, बाद में स्वर्ग में जाते हैं, और जिनका पाप अधिक होता है, वे पहिले स्वर्ग-सुख भोग कर नरक में पड़ते हैं। तुम्हारे भाइयों, द्रौपदी और तुम्हारे पक्ष के राजा आदि को इसीलिए पहले नरक में आना

पड़ा कि उनका पाप न्यून और पुण्य अधिक था, वे सब अपने पाप का फल भोग कर स्वर्ग में चले गये हैं। जिन सूर्य पुत्र कर्ण का स्मरण करते हुए तुम खिन्न रहा करते थे, उन कर्ण को भी देखना। अब तुम शोक को त्याग कर हमारे साथ चलो और अपने पुण्य-फल का भोग करो। वह देखो, समीप में ही तीनों लोकों को पवित्र करने वाली मन्दाकिनी है, उसमें स्नान करते ही सब शोक-सन्ताप और मनुष्य भाव नष्ट हो जाता है। इसलिए तुम भी उसमें स्नान करके अक्षय लाभ प्राप्त करो।

धर्म ने कहा—पुत्र ! तुम्हारे समान पवित्र भाव वाला कोई अन्य पुरुष मैंने नहीं देखा। तुम्हारे भाई भी नरक के योग्य नहीं हैं, यह सब इन्द्र की माया है। राजाओं को नरक अवश्य देखना होता है, इसलिए तुम्हें नरक दिखा कर स्वर्ग में ले जाया जारहा है। अब तुम मेरे साथ चल कर मन्दाकिनी के पवित्र जल में स्नान करो।

धर्म के वचन सुन कर युधिष्ठिर ने उनके साथ जाकर पवित्र मन्दाकिनी में जैसे ही स्नान किया, वैसे ही उनका मनुष्य शरीर छूट कर दिव्य रूप हो गया। तब तो उनमें न शोक रहा और न वैरभाव। तदन्तर वे देवताओं के साथ अपनी स्तुतियाँ सुनते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहां उनके चारों भाई और धृत-राष्ट्र-पुत्र सभी सुहृदभाव से साथ-साथ बैठे थे।

वहाँ जाकर युधिष्ठिर ने भगवान् वासुदेव को भी अपने पूर्व-रूप में विराजमान देखा। चक्र आदि दिव्यास्त्र पुरुषरूप में उनकी स्तुतियाँ कर रहे हैं और अर्जुन उनकी उपासना में लगे हैं। वासुदेव ने युधिष्ठिर को सम्मान पूर्वक बैठाला। फिर युधि-ष्ठिरने वहाँ उपस्थित लोगों पर दृष्टि डाली तो द्वादश आदित्योंके समान तेजस्वी कर्ण, मूर्तिमान पवनके समीप भीमसेन, अश्विद्वय

के समीप नकुल और सहदेव तथा उनके पास ही कमलमाल विभूषिता तेजस्वनी द्रौपदी विराजमान थी।

इन्द्र ने कहा—राजन् ! यह तेजस्वनी द्रौपदी अयोनिसम्भूता कमला हैं, भगवान् शङ्कर ने तुम लोगों पर प्रसन्न होकर ही इनका आविर्भाव किया था। अग्नि के समान तेजस्वी यही पांचों गन्धर्व तुम्हारे द्वारा द्रौपदी से उत्पन्न हुए थे। यह गन्धर्व-राज धृतराष्ट्र तुम्हारे चाचा धृतराष्ट्र हैं। वह देखो, तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता कर्ण सूर्य के साथ जा रहे हैं। वृष्णि, अन्धक और भोज-वंशी सात्यकि आदि यादव साध्य, देवता और विश्वेदेवाओं के साथ तथा सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु चन्द्रमा के साथ बैठे हैं। वह तुम्हारे पिता पाण्डु कुन्ती और माद्री के साथ सुशोभित हैं। वसुओं के साथ महात्मा भीष्म और बृहस्पति के पास द्रोणाचार्य विराजमान हैं। अन्य राजा आदि में कोई गन्धर्वों के साथ हैं, कोई यक्षों के साथ और कोई-कोई गुह्यक संज्ञक देवयोनि को प्राप्त होकर श्रेष्ठ लोकों में विचर रहे हैं।

यज्ञ और कथा की समाप्ति एवं महाभारत का माहात्म्य

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! भीष्म, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, विराट् आदि ने कितने काल तक स्वर्ग का सुख भोगा ? और फिर वे अपनी-अपनी प्रकृति में लीन हुए अथवा किन्हीं अन्य गतियों की प्राप्ति हुई ? वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय ! कर्म-फल का भोग करके सभी अपनी-अपनी प्रकृति में लीन नही होते। महाज्ञानी व्यासजी ने उनकी जो गति बताई थी, वह तुम्हें सुनाता हूँ। भीष्म वसुलोक में गए, द्रोणाचार्य बृहस्पति के शरीर में, कृतवर्मा मरुद्गण के शरीर में और प्रद्युम्न सन-त्कुमार के शरीर में प्रविष्ट हो गए। गान्धारी सहित धृतराष्ट्र

कुबेरलोक को तथा कुन्ती और माद्री सहित पाण्डु इन्द्रलोक को प्राप्त हुए। विराट्, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, भूरि, कंस उग्रसेन, वसुदेव, उत्तर और शङ्ख विश्वेदेवों के शरीर में प्रविष्ट हुए। कर्ण सूर्य के शरीर में, शकुनि द्वापर के और धृष्टद्युम्न अग्नि के शरीर में प्रवेश कर गए। धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों की उत्पति राक्षसों के अंश से हुई थी, वे सब शस्त्रास्त्रों से पवित्र होकर स्वर्ग को प्राप्त हुए। विदुर और युधिष्ठिर धर्म के शरीर में लीन होगए। बलदेवजी अनन्तनाग के रूप में पाताल में जाकर पृथिवी को शिर पर धारण करने वाले कार्य में लगे। नारायण के अंश से अवतीर्ण महात्मा वासुदेव नारायण में ही प्रविष्ट होगए उनकी सोलह हजार रानियां अप्सराओं के रूप में उन्हीं को प्राप्त हुईं। घटोत्कच आदि राक्षस और दुर्योधन के पक्ष में जो-जो राक्षस या राक्षांश से उत्पन्न थे, वे कोई देवलोक, इन्द्रलोक, यक्षलोक, वरुणलोक आदि को गए। हे महाराज! इस प्रकार कौरव और पाण्डव पक्ष के वीरों की गति हुई, वह सब मैंने तुम्हारे प्रति कह दी है।

सूतजी बोले—महर्षिगण! सर्पयज्ञ के अवसर पर वैशम्पायन जी के मुख से इस प्रकार यह महाभारत इतिहास सुनकर महाराज जनमेजय अत्यन्त विस्मित हुए। फिर ऋत्विकों ने यज्ञ का शेष कार्य पूर्ण किया। सर्पोंकी रक्षासे महर्षि आस्तीकको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सभी ऋत्विक आदि प्रचुर धन और यथोचित सम्मान प्राप्त कर अपने-अपने स्थान को गए और राजा जनमेजय भी सर्व कार्य सम्पूर्ण होने पर तक्षशिला से हस्तिनापुर चले गये।

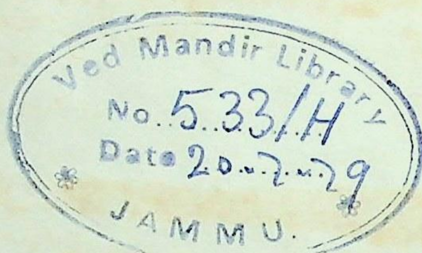
महर्षियो! व्यासजी की आज्ञा से, वैशम्पायनजी के द्वारा कही हुई महाभारत कथा मैंने आपको सुनाई है। इसके समान

पवित्र अन्य कोई इतिहास नहीं है। जो मनुष्य प्रत्येक पर्व के दिन इसे सुने-सुनावेगा, वह सब पापों से मुक्त होकर ब्रह्मरूप हो जायगा। इसे संयत चित्त से सुने तो करोड़ों ब्रह्महत्या आदि का पाप छूटता है। श्राद्ध के समय सुनाने पर पितरों को अक्षय अन्न-पान की प्राप्ति होती है। इसमें भरतवंशी राजाओं का उज्वल चरित्र होने के कारण इसका नाम महाभारत पड़ा है, वैसे महत्व और भारवत्व के कारण भी इसे महाभारत कहते हैं। इस प्रकार 'महाभारत' शब्द के अर्थ समझ जाने वाले के भी सब पाप दूर होते हैं। व्यासजी का सिंहनाद है कि सम्पूर्ण धर्मशास्त्र, सांगोपांग चारों वेद और अठारह पुराण एक ओर और 'महाभारत' दूसरी ओर रखने पर समान बैठेंगे अर्थात् महाभारत उन वेद-शास्त्र-पुराण के समक्ष अकेला ही उतना महिमासम्पन्न है। इसे सुनने से विद्या और लक्ष्मी की भी प्राप्ति होती है। इसके सुनने वाले मुमुक्षु को मोक्ष, विजयेच्छुक को विजय और गर्भवती स्त्रीको श्रेष्ठ पुत्र या सौभाग्यवती कन्या की प्राप्ति होती है। इस पवित्र महाभारत के सुनने से स्वर्णमण्डित सींगों वाली अलंकृत गौओं के दान का फल होता है।

कथावाचक को भी पवित्र स्थान में एकाग्रचित्त से बैठ कर कथा कहे और श्रोता भी प्रसन्न चित्त से श्रवण करे। कथा समाप्त होने पर आहुतियों और ब्राह्मण भोजन आदि का भी विधान है। हे राजन! यह सम्पूर्ण भारत उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया है।

॥ स्वर्गारोहण पर्व समाप्त ॥

॥ महाभारत सम्पूर्ण ॥



भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ

१—ऋग्वेद ४ खण्ड	...	३६)
२—अथर्व वेद २ खण्ड	...	१८)
३—यजुर्वेद	...	६)
४—सामवेद	...	८)
५—वेद महाविज्ञान	...	१२)
६—शतपथ ब्राह्मण	...	१०)
७—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	...	३०)
८—उपनिषद् रहस्य	...	६)५०
९—वृहदारण्यकोपनिषद्	...	४)
१०—छान्दोग्योपनिषद्	...	४)
११—वैशेषिक दर्शन	...	५)७५
१२—न्याय दर्शन	...	५)७५
१३—सांख्य दर्शन	...	५)७५
१४—योग दर्शन	...	५)७५
१५—वेदान्त दर्शन	...	५)७५
१६—मीमांसा दर्शन	...	७)५०
१७—२० स्मृतियां २ खण्ड	...	२०)
१८—मनुस्मृति	...	६)७५
१९—योग वासिष्ठ २ खण्ड	...	२४)
२०—कौटिल्य अर्थशास्त्र	...	१२)
२१—ब्रह्म सूत्र	...	१०)
२२—गृह्य सूत्र संग्रह	...	१०)
२३—पञ्चदशी	...	१२)७५
२४—विचार सागर	...	११)
२५—विचार चंद्रोदय	...	२)
२६—पञ्चीकरण	...	३)५०
२७—उपदेश साहस्री	...	५)७५
२८—वृत्ति प्रभाकर	...	७)५०
२९—सौन्दर्य लहरी	...	४)७५

प्रकाशकः-संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर,
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)